तुलसी-ग्रंथावली

(खंड – 2)

रामलला नहछू, वैराग्य संदीपिनी,

बरवै रामायण, पार्वती मंगल, जानकी मंगल,

रामाज्ञा प्रश्न, दोहावली, कवितावली,

गीतावली, कृष्ण गीतावली, विनय पत्रिका

[हिन्दीकोश]

Tittle: Tulsi Granthavali Khand 2

Author: Goswami Tulsidas

Release Date: 31 Dec 2020

Edition: 1.0

Language: Hindi

While every precaution has been taken in the preparation of this book, the publisher assumes no responsibility for errors or omissions, or for damages resulting from the use of the information contained herein.

Suggestions and corrections are welcome.

Visit https://www.hindikosh.in for more…

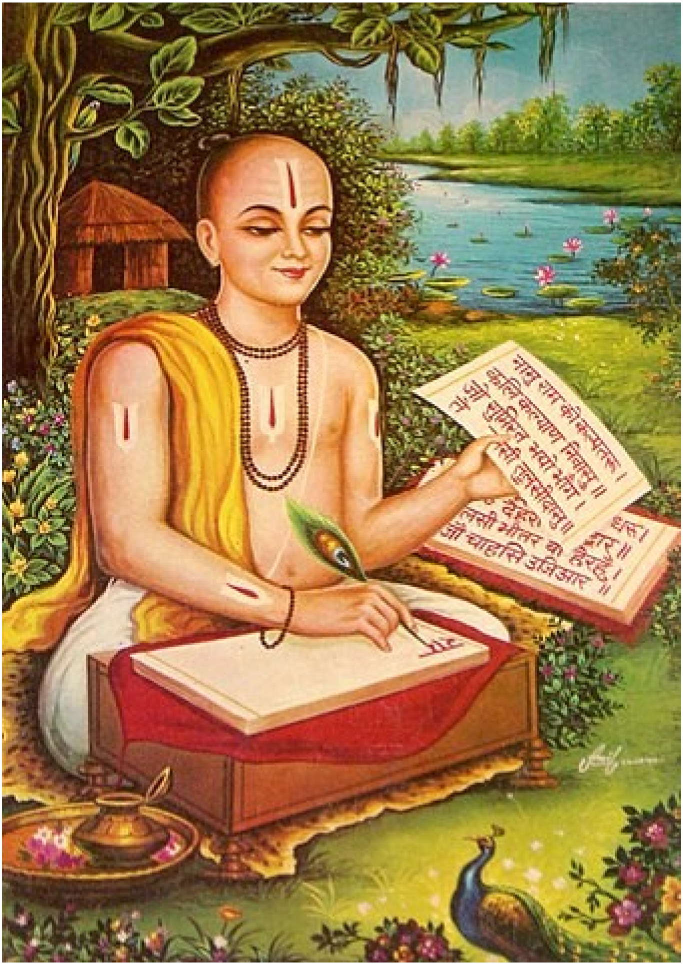

गोस्वामी तुलसीदास (1497 - 1623 ई.)

तुलसी-ग्रंथावली

खंड 2

रामलला नहछू, वैराग्य संदीपिनी,

बरवै रामायण, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, रामाज्ञा प्रश्न, दोहावली,

कवितावली, गीतावली, कृष्ण गीतावली, विनय पत्रिका।

संपादक : रामचंद्र शुक्ल, भगवानदीन, व्रजरत्नदास

गोस्वामी तुलसीदास की त्रिशत जयंती के अवसर पर

काशी-नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित।

(1980)

यह तुलसी-ग्रंथावली

अलवर-नरेश

श्रीमान महाराजाधिराज राजराजेश्वर भारतधर्मप्रभाकर

वीरेंद्रशिरोमणि सवाई

श्रीमहाराज जयसिंह जू देव बहादुर

जी. सी. आई.ई., के. सी. एस. आई.

को

उनकी हिंदी के प्रति उदारता, सहानुभूति तथा सहायता के उपलक्ष में

काशी-नागरीप्रचारिणीसभा द्वारा

सादर समर्पित है।

ग्रंथ सूची

वक्तव्य

रामलला नहछू

वैराग्य संदीपनी

बरवै रामायण

पार्वती मंगल

जानकी मंगल

रामाज्ञा प्रश्न

दोहावली

कवितावली

गीतावली

श्रीकृष्णगीतावली

विनयपत्रिका

वक्तव्य

गोस्वामी तुलसीदासजी की प्रायः सभी रचनाएँ, विशेषकर रामचरितमानस, कितनी सर्वप्रिय हैं, इसे सभी जानते हैं; पर मानस के विविध प्रकार के जितने संस्करण निकाले गए उतने उनके किसी अन्य ग्रंथ के नहीं निकले। संपादकों तथा प्रकाशकों की इनपर उतनी कृपा नहीं हुई, क्योंकि जनता में इनकी माँग मानस के समान नहीं थी। बीसवीं शताब्दि विक्रमीय के उत्तरार्द्ध में शिक्षित समुदाय में कवियों के समग्र ग्रंथों के अनुशीलन का उत्साह बढ़ा, जिससे गोस्वामीजी की अन्य रचनाओं का प्रकाशन भी आवश्यक हो गया।

सं. 1980 में गोस्वामीजी की मृत्यु की त्रिशती मनाने का आयोजन काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने किया और उस अवसर पर गोस्वामीजी के समग्र ग्रंथों के प्रकाशन का निश्चय हुआ। इसी के अनुसार तीन भाग में तुलसी-ग्रंथावली प्रकाशित हुई, जिसमें प्रथम में रामचरितमानस, द्वितीय में अन्य ग्यारह ग्रंथ और तृतीय में उनकी जीवनी, आलोचना आदि। यह प्रथम संसकरण विशेष शीघ्रता में किया गया था अतः कुछ अशुद्धियाँ रह गई थीं, जो नए संस्करण में यथा-साध्य ठीक कर दी गई हैं।

गोस्वामीजी के जिन ग्यारह ग्रंथों का इसमें संग्रह है, उनका सन्निवेश छक्कनलालजी के प्रमाण पर किया गया है। मिर्जापुर के प्रसिद्ध रामायणी तथा भक्त रामगुलामजी द्विवेदी ने गोस्वामीजी के ग्रंथों की खोज बड़े प्रयत्न के साथ की थी और अपने संग्रह में इन्हीं ग्रंथों को तुलसीकृत माना था। इन्हीं की परंपरा में छक्कनलालजी भी थे और स्वयं भी भक्त और रामायणी थे। ग्रंथों का वर्णन इस प्रकार है –

1. रामलला-नहछू – सोहर छंद में बीस तुकों की यह एक छोटी-सी रचना है। यह छंद पुत्रजन्म, विवाह आदि सभी शुभोत्सवों पर गाया जाता है। इसे सोहला या सोहलो भी कहते हैं। नहछू की प्रथा भारत के उत्तरी प्रांतों में दिल्ली से बिहार तक प्रचलित है, जो कर्णवेध, बारात आदि के पहले चौक बैठने के समय नाइनें करती हैं, जिसमें उन्हे नेग मिलता है। इसकी भाषा पूर्वी अवधी है।

रामचंद्र तथा लक्ष्मणजी मिथिला में थे और वहीं एकाएक विवाह निश्चित हो जाने पर अयोध्या से बारात वहाँ गई थी अतः यह नहछू विवाह के समय का नहीं हो सकता। यह कर्णवेध या यज्ञोपवीत के समय का हो सकता है। कर्णवेध, यज्ञोपवीत या बारात के पहिले चौक बैठने पर नाइन बालक या वर

के पैरों में महावर लगाती है और नहरनी को पैरों के नखों से इस प्रकार छुलाती है मानों नख काट रही है। इसी प्रथा को नहछू कहते हैं।

2. वैराग्य-संदीपनी – यह दोहे चौपाइयों में छोटी-सी रचना है। तीन प्रकाशों में संतस्वभाव, संत-महिमा तथा शांति का वर्णन किया है। इसमें कुछ 62 छंद हैं।

3. बरवै रामायण – उनहत्तर बरवों का यह एक छोटा-सा ग्रंथ है, जो सात अध्यायों में बँटा है। गोस्वामीजी ने इसे ग्रंथ के रूप में निर्मित नहीं किया था, ऐसा स्पष्ट ही ज्ञात होता है। ये यथारुचि बने हुए स्फुट बरवै थे, जिन्हें बाद में स्वयं गोस्वामीजी ने या उनके किसी भक्त ने मानस के कांडक्रम में संग्रहीत कर दिया है।

4. पार्वती-मंगल – इस रचना में शिव-पार्वती का विवाह वर्णित है। इसमें सोहर के 148 तुक और 16 छंद दिए गए हैं। इसका निर्माण

जय संवत फागुन सुदि पाँतै गुरु दिनु।
अस्विनि बिरचेऊँ मंगल सुनि सुख छिनु छिनु॥

यह जय संवत महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी के अनुसार सं. 1643 में पड़ता है। इसकी भाषा शुद्ध पूर्वी है।

5. जानकी मंगल – इसमें सोहर के 192 तुक तथा 24 छंद हैं और प्रति आठ सोहर पर एक-एक छंद है। इसमे सीता राम-विवाह का वर्णन है। यह पार्वती मंगल के समय ही का बना ग्रंथ है और भाषा-छंद सभी में उससे मिलता-जुलता है। मानस की कथा से इसमें कुछ भेद किया गया है; जैसे –

(क) पुष्पवाटिका में रामचंद्र तथा सीता के एक-दूसरे के देखने का वर्णन नहीं है। धनुषयज्ञ ही से कथा का आरंभ है।

(ख) इसमें लक्ष्मण के कोप करने के बाद विश्वामित्र का आज्ञा पर रामचंद्र का धनुष तोड़ना नहीं दिया है प्रत्युत् जनक के संदेह प्रकट करने तथा विश्वामित्र के राम की महिमा कहने पर रामचंद्रने धनुष तोड़ा था।

(ग) इसमें बिदाई के पीछे परशुरामजी आए हैं, धनुषभंग के बाद ही नहीं।

ये दोनों मंगल अपनी सुगठित वाक्य योजना तथा शब्दविन्यास के कारण विशेष गौरवपूर्ण है। शैथिल्य नाम को भी नहीं है और ये कवि की प्रौढ़ रचनाएँ हैं।

6. रामाज्ञा-प्रश्न – गोस्वामीजी ने इसे शकुन विचारने के लिये बनाया है और इसी बहाने रामचरित्र वर्णन किया है। इसमें सात सर्ग हैं और प्रत्येक सर्ग में सात-सात दोहों के सात-सात सप्तक हैं। इसके बहुत से दोहे गोस्वामीजी के

अन्य ग्रंथों से लिए गए हैं। सातवें सर्ग के अंतिम सप्तक में शकुन विचारने की विधि भी दी गई है। यह पूरा ग्रंथ दोहों में है।

7. दोहावली – इसमें 573 दोहे हैं, जिनमें 23 सोरठे हैं। ये भगवन्नाम-माहात्म्य, धर्मोपदेश, नीति आदि पर हैं। इनमें से प्रायः आधे रामायण, रामाज्ञा-प्रश्न तथा वैराग्य-संदीपनी में भी मिलते हैं। यह संग्रह संभव है कि तुलसीदासजी ने स्वयं किया हो या उनके पीछे किसी अन्य ने। पर इन दोहों में संसार की अनेक अनुभूत बातों तथा गूढ़ तत्वों का वर्णन है और प्रेम भक्त का अच्छा निरूपण किया है।

8. कवितावली या कवित्त-रामायण – इसमें कवित्त, घनाक्षरी, सवैये तथा छप्पय छंद है और भाषा शुद्ध ब्रज है। इसमें रामचरित्र कांडक्रम से वर्णित हैं। यह तो अवश्य कहा जा सकता है कि ये एक साथ इसी क्रम से नहीं बने हैं प्रत्युत् बाद को इस क्रम से संगृहीत किए गए हैं। इनमें दरबारी तथा भाटों की शैली के कवित्त भी हैं और श्रृंगारिक भी। स्वजीवन संबंधी भी कई पद हैं और महामारी से पीड़ित होने पर हनुमानबाहुक ही परिशिष्ठ रूप में रचकर इसमें जोड़ दिया है।

9. गीतावली – यह रचना राग-रागिनियों में है और इसमें कांड-क्रम से रामचरित्र वर्णित है। यह शुद्ध ब्रजभाषा में है। यह कृष्ण भक्त कवियों की

शैली पर वैसा ही सरस तथा मनोरम है। बाललीला तथा रामराज्य के सुख ऐश्वर्य का विस्तार से वर्णन है और अन्य का संक्षिप्त। कुछ पद ऐसे भी हैं, जो सूरदास की प्रतिलिपि मात्र हैं और केवल राम-श्याम, तुलसी सूर आदि का हेरफेर है। हो सकता है कि तुलसीभक्तों ने ऐसा किया हो।

10. श्रीकृष्णगीतावली – इसमें 61 पदों में श्रीकृष्णचरित्र का वर्णन है। इसमें कई पद सूरदासजी के भी छाप बदलकर मिल गए हैं। यह किसी क्रम से नहीं बना है प्रत्युत् समय पर बने पदों का संग्रह है। श्रीकृष्ण की कुछ लीलाओं का वर्णन करने पर विरह, गोपी-उद्धव-संवाद, भ्रमरगीत तथा द्रौपदी के वस्त्र बढ़ाने की कथा है।

11. विनयपत्रिका – इसमें विनय के 279 पद हैं। यह गोस्वामीजी की अंतिम रचना ज्ञात होती है और इसमें इनकी कवित्वशक्ति पूर्णरूप से प्रकट हुई है। इसमें इनके अगाध पांडित्य, शब्दकोष, काव्य कौशल आदि का पूरा परिचय मिलता है। यह पत्रिका प्रार्थना के रूप में सजाई गई है और इतने हार्दिक आस्था से लिखी गई है कि अवश्य ही भगवान् श्रीरामचंद्र ने इसे स्वीकार कर लिया होगा।

गोस्वामी तुलसीदास

रामलला नहछू

[हिन्दीकोश]

रामलला नहछू

(सोहर छन्द)

आदि सारदा गनपति गौरि मनाइय हो।
रामलला कर नहछू गाइ सुनाइय हो॥
जेहि गाये सिधि होय परम निधि पाइय हो।
कोटि जनम कर पातक दूरि सो जाइय हो ॥ 1॥

कोटिन्ह बाजन बाजहि दसरथ के गृह हो।
देवलोक सब देखहि आनँद अति होय हो॥
नगर सोहावन लागत बरनि न जातै हो।
कौसल्या के हरष न हृदय समातै हो॥ 2॥

आल हि बाँस के माँड़व मनिगन पूरन हो।
मोतिन्ह झालरि लागि चहूँ दिसि झूलन हो॥
गंगाजल कर कलस तौ तुरित मँगाइय हो।
जुवतिन्ह मंगल गाइ राम अन्हवाइय हो॥ 3॥

गजमुकुता हीरामनि चौक पुराइय हो।
देह सुअरघ राम कहँ लेइ बैठाइय हो॥
कनकखंभ चहुँओर मध्य सिंहासन हो।
मानिकदीप बराय बैठि तेहि आसन हो॥ 4॥

बनि बनि आवति नारि जानि गृह मायन हो।
विहँसत आउ लोहरिनि हाथ बरायन हो॥
अहिरिनि हाथ दहेंड़ि सगुन लेइ आवइ हो।
उनरत जोबनु देखि नृपति मन भावइ हो॥ 5॥

रूपसलोनि तँबोलिनि वीरा हाथहि हो।
जाकि ओर बिलोकहि मन तेहि साथहि हो॥
दरजिनि गोरे गात लिहे कर जोरा हो।
केसरि परम लगाइ सुगंधन बोरा हो॥ 6॥

मोचिनि बदन-सँकोचिनि हीरा माँगन हो।
पनहि लिहे कर सोभित सुंदर आँगन हो॥
बतिया सुघरि मलिनिया सुंदर गातहि हो।

कनक रतनमनि मौर लिहे मुसुकातहि हो॥ 7॥

कटि कै छीन बरिनिया छाता पानिहि हो।
चंद्रबदनि मृगलोचनि सब रसखानिहि हो॥
नैन विशाल नउनिया भौं चमकावइ हो।
देह गारि रनिवासहि प्रमुदित गावइ हो॥ 8॥

कौसल्या की जेठि दीन्ह अनुसासन हो।
नहछू जाइ करावहु बैठि सिंहासन हो॥
गोद लिये कौसल्या बैठी रामहि बर हो।
सोभित दूलह राम सीस पर आँचर हो॥ 9॥

नाउनि अति गुनखानि तौ बेगि बोलाई हो।
करि सिंगार अति लोन तौ विहसति आई हो॥
कनक चुनिन सों लसित नहरनी लिय कर हो।
आनँद हिय न समाइ देखि रामहि बर हो॥ 10॥

कानन कनक तरीबन, बेसरि सोहइ हो।
गजमुकुता कर हार कंठमनि मोहइ हो॥

कर कंकन, कटि किंकिनि, नूपुर बाजइ हो।

रानि कै दीन्हीं सारी अधिक बिराजइ हो॥ 11॥

काहे रामजिव साँवर, लछिमन गोर हो।

कीदहुँ रानि कौसिलहि परिगा भोर हो॥

राम अहहिं दसरथ कै लछिमन आन क हो।

भरत सत्रुहन भाइ तौ रघुनाथ क हो॥ 12॥

आजु अवधपुर आनँद नहछू राम क हो।

चलहु नयन भरि देखिय सोभाधाम के हो॥

अति बड़भाग नउनियाँ छुऐ नख हाथ सों हो।

नैनन्ह करति गुमान तौ श्रीरघुनाथ सों हो॥ 13॥

जो पगु नाउनि धोवइ राम धोवावइँ हो।

सो पगधूरि सिद्ध मुनि दरस न पावइँ हो॥

अतिसय पुहुप क माल राम-उर सोहइ हो।

तिरछी चितवनि आनँद मुनिमुख जोहइ हो॥ 14॥

नख काटत मुसुकाहिं बरनि नहिं जातहि हो।

पदुमराग-मनि मानहुँ कोमल गातहि हो॥

जावक रचि क अँगुरियन्ह मृदुल सुठारी हो।

प्रभु कर चरन पछालत अति सुकुमारी हो॥ 15॥

भइ निवछावरि बहु बिधि जो जस लायक हो।

तुलसिदास बलि जाऊँ देखि रघुनायक हो॥

राजन दीन्हें हाथी, रानिन्ह हार हो।

भरि गे रतनपदारथ सूप हजार हो॥ 16॥

भरि गाड़ी निवछावरि नाऊ लावइ हो।

परिजन करहिं निहाल असीसत आवइ हो।

तापर करहिं सुमौज बहुत दुख खोवहि हो।

होई सुखी सब लोग अधिक सुख सोवहि हो॥ 17॥

गावहि सब रनिवास देहि प्रभु गारी हो।

रामलला सकुचाहि देखि महतारी हो॥

हिलिमिति करत सवाँग सभा रसकेलि हो।

नाउनि मन हरषाइ सुगंधन मेलि हो॥ 18॥

दूलह कै महतारि देखि मन हरषइ हो।

कोटिन्ह दीन्हेउ दान मेघ जनु बरखई हो॥

रामलला कर नहछू अति सुख गाइय हो।

जेहि गाये सिधि होइ परम निधि पाइय हो॥ 19॥

दसरथ राउ सिंहासन बैठि बिराजहि हो।

तुलसिदाल बलि जाहि देखि रघुराजहि हो॥

जे यह नहछू गावैं गाइ सुनावइँ हो।

ऋद्धि सिद्धि कल्यान मुक्ति नर पावइँ हो॥ 20॥

(इति)

गोस्वामी तुलसीदास

वैराग्य संदीपिनि

[हिन्दीकोश]

वैराग्य संदीपिनी

(दोहा)

राम बाम दिसि जानकी, लषन दाहिनी ओर।

ध्यान सकल कल्यानमय, सुरतरु तुलसी तोर॥ 1॥

तुलसी मिटै न मोहतम, किये कोटि गुनग्राम।

हृदय-कमल फूलै नहीं, बिनु रवि-कुल-रवि राम॥ 2॥

सुनत लखत श्रुति नयन बिनु, रसना बिनु रस लेत।

बास नासिका बिनु लहै, परसै बिना निकेत॥ 3॥

(सोरठा)

अज अद्वैत अनाम, अलख रूप गुनरहित जो।

मायापति सोइ राम, दास-हेतु नर-तुन धरेउ॥ 4॥

(दोहा)

तुलसी यह तनु खेत है, मन वच कर्म किसान।

पाप पुन्य द्वै बीज हैं, बवै सो लवै निदान॥ 5॥

तुलसी यह तन तवा है, तपत सदा त्रय ताप।

सांति होहि जब सांतिपद, पावै रामप्रताप॥ 6॥

तुलसी वेद-पुरान-मत, पूरन सास्त्र बिचार।

यह बिराग-संदीपिनी, अखिल ज्ञान को सार॥ 7॥

संत-स्वभाव-वर्णन

(दोहा)

सरल बरन भाषा सरल, सरल अर्थमय मानि।

तुलसी सरलै संतजन, ताहि परी, पहिचानि॥ 8॥

(चौपाई)

अति सीतल अति ही सुखदाई। सम दम रामभजन अधिकाई।

जड़ जीवन को करै सचेता। जह माहीं बिचरत एहि हेता॥ 9॥

(दोहा)

तुलसी ऐसे कहुँ कहूँ, धन्य धरिन बहु संत।

परकाजै परमारथी, प्रीति लिये निबहंत॥ 10॥

की मुख पट दीन्हें रहै, यथा अर्थ भाषंत।

तुलसी या संसार में, सो बिचारयुत संत॥ 11॥

बोले बचन बिचारि कै, लीन्हें संत सुभाव॥

तुलसी दुख दुर्वचन के, पंथ देत नहिं पाव॥ 12॥

सत्रु न काहू करि गनै, मित्र गनै नहीं काहि॥

तुलसी यह मत संत को, बोलै समता माहि॥ 13॥

(चौपाई)

अति अनन्य गति इंद्रीजीता। जाको हरि बिनु कतहुँ न चीता॥

मृगतृष्ना सम जग जिय जानी। तुलसी ताहि संत पहिचानी॥ 14॥

(दोहा)

एक भरोसो एक बल, एक आस विस्वास।

राम-रूप-स्वाती-जलद, चातक तुलसीदास॥ 15॥

सो जन जगत-जहाज है, जाके राग न दोष।

तुलसी तृष्ना त्यागि कै, गहेउ सील संतोष॥ 16॥

सील गहनि सबकी सहनि, कहनि हीय मुख राम।

तुलसी रहिए एहि रहनि, संत जनन को काम॥ 17॥

निज संगी निज सम करत, दुर्जन मन दुख दून।

मलयाचल हैं संत जन, तुलसी दोषबिहून॥ 18॥

कोमल वानी संत की, स्रवै अमृतमय आइ।

तुलसी ताहि कठोर मन, सुनत मैन होइ जाइ॥ 19॥

अनुभव सुख-उत्पति करत, भवभ्रम धरै उठाइ।

ऐसी वानी संत की, जो उर भेदै आइ॥ 20॥

सीतल वानी संत की, ससि हू ते अनुमान।

तुलसी कोटि तपनि हरै, जो कोउ धारै कान॥ 21॥

(चौपाई)

पाप ताप सब सूल नसावै। मोह-अंध रवि-बचन बहावै॥

तुलसी ऐसे सदगुरु साधू। वेद मध्य गुन बिदित अगाधू॥ 22॥

(दोहा)

तन करि मन करि बचन करि, काहू दूषत नाहिं।

तुलसी ऐसे संतजन, रामरूप जग माहिं॥ 23॥

मुख देखत पातक हरै, परसत कर्म बिलाहिं।

बचन सुनत मन मोहगत, पूरब भाग मिलाहि॥ 24॥

अति कोमल अरु विमल रुचि, मानस में मल नाहिं।

तुलसी रत मन होइ रहै, अपने साहिब माहिं॥ 25॥

जाके मन ते उठि गई, तिल तिल तृष्ना चाहि।

मनसा बाचा कर्मना, तुलसी बंदत ताहि॥ 26॥

कंचन काँचहि सम गनै, कामिनि काठ पषान।

तुलसी ऐसे संतजन, पृथ्वी ब्रह्म समान॥ 27॥

(चौपाई)

कंचन को मृतिका करि मानत। कामिनि काष्ठ सिला पहिचानत।

तुलसी भूलि गयो रस एहा। ते जन प्रकट राम की देहा॥ 28॥

(दोहा)

आकिंचन, इंद्रियदमन, रमन राम इकतार।

तुलसी ऐसे संतजन, बिरले या संसार॥ 29॥

अहंवाद, ‘मैं तैं’ नहीं, दुष्टसंग नहिं कोइ।

दुख ते दुख नहिं ऊपजै, सुख से सुख नहि होइ॥ 30॥

सम कंचन काँचै गिनत, सबु मित्र सम दोइ।

तुलसी या संसार में, कहत संतजन सोइ॥ 31॥

बिरले बिरले पाइए, माया त्यागी संत।

तुलसी कामी कुटिल कलि, केकी काक अनंत॥ 32॥

“मैं तैं” मेट्यो मोह तम, ऊगो आतम-भानु।

संतराज सो जानिए, तुलसी या सहिदानु॥ 33॥

संत-महिमा-वर्णन

(सोरठा)

को बरनै मुख एक, तुलसी महिमा संत।

जिन्हके बिमल विवेक, सेष महेस न कहि सकत॥ 34॥

(दोहा)

महि पत्री करि सिंधु मसि, तरु लेखनी वनाइ।

तुलसी गनपति सों तदपि, महिमा लिखी न जाइ॥ 35॥

धन्य धन्य माता पिता, धन्य पुत्रवर सोइ।

तुलसी जो रामहि भजै, जैसेहु कैसेहु होइ॥ 36॥

तुलसी जाके बदन तें, धोकेउ निकसत राम।

ताके पग की पगतरी, मेरे तनु को चाम॥ 37॥

तुलसी भगत सुपच भलो, भजै रैनि दिन राम।

ऊँचौ कुल केहि काम को, जहाँ न हरि को नाम॥ 38॥

अति ऊँचे भूधरनि पर, भुजगन के अस्थान।

तुलसी अति नीचे सुखद, ऊख अन्न अरु पान॥ 39॥

(चौपाई)

अति अनन्य जो हरि को दासा। रटै नाम निसि दिन प्रति स्वासा।

तुलसी तेहि समान नहिं कोई। हम नीके देखा सब लोई॥ 40॥

जदपि साधु सबही बिधि हीना। तद्यपि समता के न कुलीना।

यह दिन रैनि नाम उच्चरै। वह नित नाम-अगिनि में जरै॥ 41॥

(दोहा)

दास रता एक नाम सों, उभय लोक सुख त्यागि।

तुलसी न्यारे ह्वै रहै, दहै न दुख की आगि॥ 42॥

शांति-वर्णन

(दोहा)

रैनि को भुषन इंदु है, दिवस को भूषन भानु।
दास को भूषन भक्ति है, भक्ति को भूषन ज्ञान॥ 43॥
ज्ञान को भूषन ध्यान है, ध्यान को भूषन त्याग।
त्याग को भूषन शांतिपद, तुलसी अमल अदाग॥ 44॥

(चौपाई)

अमल अदाग सांतिपद सारा। सकल कलेसन करत प्रहारा।
तुलसी उर धारै जो कोई। रहै अनंदसिंधु महँ सोई॥ 45॥
बिबिध-पाप-संभव जो तापा। मिटहिं दोष दुख दुसह कलापा।
परम सांति सुख रहै समाई। तहँ उतपात न भेदै आई॥ 46॥
तुलसी ऐसे सीतल संता। सदा रहैं एहि भाँति एकंता।
कहा करैं खल लोग भुजंगा। कीन्ह्यौं गरलसील जो अंगा॥ 47॥

(दोहा)

अति सीतल अति ही अमल, सकल कामनाहीन।
तुलसी ताहि अतीत गनि, वृत्ति सांति लयलीन॥ 48॥

(चौपाई)

जौ कोइ कोप भरै मुख बैना। सन्मुख हतै गिरा शर पैना।

तुलसी तऊ लेस रिस नाहीं। सो सीतल कहिए जगमाहीं॥ 49॥

(दोहा)

सात दीप नव खंड लौं, तीनि लोक जग माहिं।

तुलसी सांति समान सुख, अपर दूसरो नाहिं॥ 50॥

(चौपाई)

जहाँ साँति सतगुरु की दई। तहाँ क्रोध की जर जरि गई॥

सकल कामबासना बिलानी। तुलसी यहै सांति सहिदानी॥ 51॥

तुलसी सुखद सांति को सागर। संतन गायो करन उजागर॥

तामें तन मन रहै समोई। अहं-अगिनि नहि दाहै कोई॥ 52॥

(दोहा)

अहंकार की अगिनि में, दहत सकल संसार।

तुलसी बाँचै संतजन, केवल सांति अधार॥ 53॥

महा सांतिजल परसि कै, सांत भए जन जोइ।

अहं-अगिनि ते नहिँ दहैं, कोटि करै जो कोइ॥ 54॥

तेज होत तन तरनि की, आचरज मानत लोइ।

तुलसी जो पानी भया, बहुर न पावक होइ॥ 55॥

जद्यपि सीतल, सम सुखद, जग में जीवन प्रान।

तदपि सांतिजल जनि गनौ, पावक तेज प्रमान॥ 56॥

(चौपाई)

जरै बरै अरु खीझि खिझावै। राम द्वेष महँ जनम गँवावै॥

सपनेहू सांति नहीं उन देही। तुलसी जहाँ तहाँ व्रत एही॥ 57॥

(दोहा)

ओह पंडित सोइ पारखी, सोई संत सुजान।

सोई सूर सचेत सो, सोई सुभट प्रमान॥ 58॥

सोइ ज्ञानी सोइ गुनी जन, सोई दाता ध्यानि।

तुलसी जाके चित भई, रागद्वेष की हानि॥ 59॥

(चौपाई)

राग द्वेष की अगिनि बुझानि। काम क्रोध बासना नसानी।

तुलसी जबहिं सांति गृह आई। तब उर ही उर फिरी दोहाई॥ 60॥

(दोहा)

फिरी दोहाई राम की, गे कामादिक भाजि।

तुलसी ज्यों रवि के उदय, तुरत जात तम लाजि॥ 61॥

यह बिराग-संदीपनी, सुजन सुचित सुनि लेहु।

अनुचित बचन विचारि कै, जस सुधारि तस लेहु॥ 62॥

(इति)

गोस्वामी तुलसीदास

बरवै रामायण

[हिन्दीकोश]

बरवै रामायण

बाल कांड

केस-मुकुत सखि भरकत मनिमय होत।

हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत॥ 1॥

सम सुबरन सुखमाकर सुखद न थोर।

सीय अंग, सखि! कोमल कनक कठोर॥ 2॥

सियमुख सरदकमल जिमि किमि कहि जाइ।

निसि मलीन वह, निसि दिन यह बिगसाइ॥ 3॥

बड़े नयन, कटि, भ्रुकुटी, भाल बिसाल।

तुलसी मोहत, मनहिं मनोहर बाल॥ 4॥

चंपक-हरवा अँग मिलि अधिक सोहाइ।

जानि परै सिय हियरे जब कुँभिलाइ॥ 5॥

सिय तुव अंग-रंग मिलि अधिक उदोत।

हार बेलि पहिरावौं चंपक होत॥ 6॥

साधु सुसील सुमति सुचि सरल सुभाव।

राम नीतिरत, काम कहा यह पाव?॥ 7॥

कुंकुमतिलक भाल, स्त्रुति कुंडल लोल।

काकमच्छ मिलि, सखि! कस लसत कपोल॥ 8॥

भाल तिलक सर, सोहत भौंह कमान।

मुख अनुहरिया केवल चंद समान॥ 9॥

तुलसी बंक बिलोकनि, मृदु मुसुकानि।

कस प्रभु नयन कमल अस कहौं बखानि॥ 10॥

काम रूप सम तुलसी राम सरूप।

को कबि समसरि करै परै भवकूप॥ 11॥

चढ़त दसा यह उतरत जात निदान।

कहौं न कबहूँ करकस भौंह कमान॥ 12॥

नित्य नेम-कृत अरुन उदय जब कीन।

निरखि निसाकर-नृप-मुख भए मलीन॥ 13॥

कमठपीठ धनु सजनी कठिन अँदेस।

तमकि ताहि ए तोरिहि कहब महेस॥ 14॥

नृप निरास भए निरखत नगर उदास।

धनुष तोरि हरि सब कर हरेउ हरास॥ 15॥

का घूँघट मुख मूँदहु नवला नारि?

चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि॥ 16॥

गरव करहु रघुनंदन जनि मन माँह।

देखहु आपनि मूरति सिय कै छाँह॥ 17॥

उठी सखी हँसि मिस करि करि मृदु बैन।

सिय रघुबर के भए उनीदे नैन॥ 18॥

सींक धनुष, हित सिखन, सकुचि प्रभु लीन।

मुदित माँगि इक धनुही नृप हँसि दीन॥ 19॥

अयोध्या कांड

सात दिवस भए साजत सकल बनाउ।

का पूछहु सुठि राउ सरल सुभाउ॥ 20॥

राजभवन सुख बिलसत सिय सँग राम।

विपिन चले तजि राज, सुबिधि बड़ बाम॥ 21॥

कोउ कह नरनारायन, हरिहर कोउ।

कोउ कह बिहरत वन मधु मनसिज दोउ॥ 22॥

तुलसी भइ मति बिथकित करि अनुमान।

राम लषन के रुप न देखेउ आन॥ 23॥

तुलसी जनि पग धरहु गंग महँ साँच।

निगानाग करि नितहिं नचाइहि नाच॥ 24॥

सजल कठौता कर गहि कहत निषाद।

चढ़हु नाव पग धोइ करहु जनि बाद॥ 25॥

कमल कंटकित सजनी, कोमल पाइ।

निसि मलीन, यह प्रफुलित नित दरसाइ॥ 26॥

(वालमीकि वचन)

द्वै भुज कर हरि रघुबर सुंदर वेष।

एक जीव कर लछिमन दूसर शेष॥ 27॥

अरण्य कांड

बेद-नाम कहि, अँगुरिन खंडि अकास।

पठयो सूपनखाहि लषन के पास॥ 28॥

हेमलता सिय मूरति मृदु मुसुकाइ।

हेम हरिन कहँ दीन्हेउ प्रभुहिं देखाइ॥ 29॥

जटा मुकुट कर सर धनु, संग मरीच।

चितवनि बसति कनखियनु अँखियनु बीच॥ 30॥

(राम-वाक्य)

कनकसलाक, कला ससि, दीपसिखाउ।

तारा सिय कहँ लछिमन मोहिं बताउ॥ 31॥

सीय बरन सम केतकि अति हिय हारि।

किहेसि भँवर कर हरवा हृदय बिदारि॥ 32॥

सीतलता ससि की रहि सब जग छाइ।

अगिनि-ताप है तन कह सँचरत आइ॥ 33॥

किष्किंधा कांड

स्याम गौर दोउ मूरति लछिमन राम।

इनते भइ सित कीरति अति अभिराम॥ 34॥

कुजन-पाल गुन-बर्जित, अकुल, अनाथ।

कहहु कृपानिधि राउर कस गुनगाथ॥ 35॥

सुन्दर कांड

बिरह आगि उर ऊपर जब अधिकाइ।

ए अँखियाँ दोउ बैरिनि देहिं बुझाइ॥ 36॥

डहकु न है उजियरिया निसि नहि घाम।

जगत जरत अस लागु मोहिं बिनु राम॥ 37॥

अब जीवन कै है कपि आस न कोइ।

कनगुरिया कै मुँदरी कंकन होइ॥ 38॥

राम-सुजस कर चहुँ जुग होत प्रचार।

असुरन कहँ लखि लागत जग अँधियार॥ 39॥

(कवि-वाक्य)

सिय-वियोग-दुख केहि विधि कहउँ बखानि।

फूलवान ते मनसिज बेधत आनि॥ 40॥

सरद चाँदनी सँचरत चहुँ दिसि आनि।

बिधुहि जोरि कर बिनवति कुलगुरु जानि॥ 41॥

लंका कांड

बिबिध बाहिनी विलसति सहित अनंत।

जलधि सरिस को कहै राम भगवंत॥ 42॥

उतर कांड

चित्रकूट पयतीर सो सुर-तरु-बास।

लषन-राम सिय सुमिरहु तुलसीदास॥ 43॥

पय नहाइ फल खाहु, परिहिय आस।

सीयराम-पद सुमिरहु तुलसीदास॥ 44॥

स्वारथ परमारथ हित एक उपाय।

सीयराम-पद तुलसी प्रेम बढ़ाय॥ 45॥

काल कराल बिलोकहु होइ सचेत।

रामनाम जपु तुलसी प्रीति समेत॥ 46॥

संकट सोचविमोचन, मंगलगेह।

तुलसी रामनाम पर करिय सनेह॥ 47॥

कलि नहिं ज्ञान, विराग, न जोग-समाधि।

रामनाम जपु तुलसी नित निरपाधि॥ 48॥

रामनाम दुइ आखर हिय हितु जानु।

राम लषन सम तुलसी सिखब न आनु॥ 49॥

माय पाप गुरु स्वामि राम कर नाम।

तुलसी जेहि न सोहाइ ताहि विधि बाम॥ 50॥

रामनाम जपु तुलसी होइ बिसोक।

लोक सकल कल्यान, नीक परलोक॥ 51॥

तप, तीरथ, मख, दान, नेम, उपवास।

सब ते अधिक राम जपु तुलसीदास॥ 52॥

महिमा रामनाम कै जान महेस।

देत परम पद कासी करि उपदेस॥ 53॥

जान आदि-कवि तुलसी नामप्रभाउ।

उलटा जपत कोल ते भए ऋषिराउ॥ 54॥

कलसजोनि जिय जानेउ नामप्रतापु।

कौतुक सागर सोखेउ करि जिय जापु॥ 55॥

तुलसी सुमिरत राम सुलभ फल चारि।

बेद पुरान पुकारत, कहत पुरारि॥ 56॥

रामनाम पर तुलसी नेह निवाहु।

एहि ते अधिक, न एहि सम जीवनलाहु॥ 57॥

दोष-दुरित-दुख-दारिद-दाहक नाम।

सकल सुमंगलदायक तुलसी राम॥ 58॥

केहि गिनती महँ? गिनती जब बनघास।

राम जपत भए तुलसी तुलसीदास॥ 59॥

आगम निगम पुरान कहत करि लीक।

तुलसी नाम राम कर सुमिरन नीक॥ 60॥

सुमिरहु नाम राम कर, सेवहु साधु।

तुलसी उतरि जाहु भव उदधि अगाधु॥ 61॥

कामवेनु हरिनाम, कामतरु राम।

तुलसी सुलभ चारि फल सुमिरत नाम॥ 62॥

तुलसी कहत सुनत सब समुझत कोय।

बड़े भाग अनुराग राम सन होय॥ 63॥

एकहि एक सिखावत जपतै आप।

तुलसी रामप्रेम कर बाधक पाप॥ 64॥

मरम कहत सब सब कहँ सुमिरहु राम।

तुलसी अब नहिं जपन समुझि परिनाम॥ 65॥

तुलसी रामनाम जपु आलस छाँड़ु।

रामबिमुख कलिकाल क भयो न भाँड़ु॥ 66॥

तुलसी रामनाम सम मित्र न आन।

जो पहुँचाव रामपुर तनु अवसान॥ 67॥

नाम भरोस, नाम बल, नाम सनेहु।

जनम जनम रघुनंदन तुलसिहि देहु॥ 68॥

जनम जनम जहँ जहँ तनु तुलसिहि देहु।

तहँ तहँ राम निबाहिब नामसनेहु॥ 69॥

(इति)

गोस्वामी तुलसीदास

पार्वती-मंगल

[हिन्दीकोश]

पार्वती-मंगल

बिनइ गुरुहि, गुनिगनहि, गिरिहि, गननाथहिं।

हृदय आनि सियराम धरे धनु भाथहि॥ 1॥

गावउँ, गौरि-गिरिस-विवाह सुहावन।

पापनसावन, पावन, मुनि-मन-भावन॥ 2॥

कवितरिति नहि जानउँ, कबि न कहावउँ।

शंकर-चरित सुसरित मनहि अन्हवावउँ॥ 3॥

पर अपवाद-विवाद-विदूषित बानिहि।

पावनि करउँ सो गाइ भवेस-भवानिहि॥ 4॥

जय संवत फागुन, सुदि पाँचै, गुरु दिनु।

अस्विनि बिरचेउँ मंगल, सुनि सुख छिनु छिनु॥ 5॥

गुननिधान हिमवान धरनिधर धुरधनि।

मैना तासु घरनि घर त्रिभुवन तियमनि॥ 6॥

कहहु सुकृत केहि भाँति सराहिय तिन्ह कर।

लीन्ह जाइ जगजननि जनम जिन्ह के घर॥ 7॥

मंगलखानि भवानि प्रकट जब तें भइ।
तब तें ऋधि सिधि संपति गिरिगृह नित नइ॥ 8॥

नित नव सकल कल्यान मंगल मोदमय मुनि मानहीं।
ब्रह्मादि सुर नर नाग अति अनुराग भाग बखानहीं॥
पितु, मातु, प्रिय परिवार हरषहिं निरखि पालहिं लालहीं।
सित पाख बाढ़ति चंद्रिका जनु चंद्रभूषन भालहीं॥ 9॥

कुँवरि सयानि बिलोकि मातु पितु सोचहिं।
गिरिजा-जोग जुरिहि बर अनुदिन लोचहिं॥ 10॥
एक समय हिमवान भवन नारद गए।
गिरिवर मैना मुदित मुनिहि पूजत भए॥ 11॥
उमहिं बोलि ऋषि-पगन मातु मेलति भइ।
मुनि मन कीन्ह प्रनाम, बचन आसिष दइ॥ 12॥
कुँवरि लागि पितु काँध ठाढ़ि भइ सोहइ।
रूप न जाइ बखानि, जान जोइ जोहइ॥ 13॥
अति सनेह सतिभाय पाँय परि पुनि पुनि।
कह मैना मृदु बचन "सुनिय बिनती, मुनि॥ 14॥

तुम तिभुवन तिहुँकाल विचार बिसारद।
पारवती-अनुरूप कहिय वर, नारद"॥ 15॥
मुनि कह "चौदह भुवन फिरउँ जग जहँ जह।
गिरिवर सुनिय सरहना राउरि तहँ तहँ॥ 16॥
भूरि भाग तुम सरिस कतहुँ कोउ नाहिन।
कछु न अगम, सब सुगम, भयो बिधि दाहिन॥ 17॥

दाहिन भय बिधि, सुगम सब, सुनि तजहु चित चिंता नई।
वर प्रथम विरवा बिरँचि बिरचो मंगला मंगलमई।
विधिलोक चरचा चलति राउरि चतुरि चतुरानन कही॥
हिमवान कन्या योग बर बाउर बिबुध वंदित सही॥ 18॥

मोरेंहु मन अस आव मिलिहि बर बाउर"।
लखि नारद-नारदी उमहिं सुख भा उर॥ 19॥
सुनि सहमे परि पाइँ, कहत भए दंपति –
"गिरिजहि लागि हमार जिवन सुख संपति॥ 20॥
नाथ! कहिय सोइ जतन मिटइ जेहि दूषनु।"
"दोषदलनु" मुनि कहेउ "बाल बिधुभूषनु॥ 21॥

अवसि होइ सिधि साहस फलै सुसाधन।

कोटि कल्पतरु सरिस संभु-अवराधन॥ 22॥

तुम्हरे आस्रम अबहि ईस तप साधहिं।

कहिय उमहि मनु लाइ जाइ अवराधहिं”॥ 23॥

कहि उपाय दंपतिहि मुदित मुनिबर गए।

अति सनेह पितु मातु उमहि सिखवत भए॥ 24॥

सजि समाज गिरिराज दीन्ह सबु गिरिजहि।

बदति जननि “जगदीस जुबति जिनि सिरजहिं”॥ 25॥

जननि-जनक-उपदेस महेसहि सेवहि ।

अति आदर अनुराग भगति मनु भेवहि॥ 26॥

भेवहि भगति मन बचन करम अनन्य गति हरचरन की।

गौरव सनेह सँकोच सेवा जाइ केहि बिधि बरन की॥

गुन-रूप जोबन सींव सुंदरि निरखि छोभ न हर हिए।

ते धीर अछत बिकार-हेतु जे रहत मनसिज बस किए॥ 27॥

देव देखि भल समय मनोज बुलायउ।

कहेउ करिअ सुर-काजु, साजु सजि धायउ॥ 28॥

बामदेव सन कामु बाम होइ बरतेउ।
जग-जय-मद निदरेसि, पायसि फर तेउ॥ 29॥
रति पति-हीन मलीन बिलोकि बिसूरति।
नीलकंठ मृदु सील कृपामय मूरति॥ 30॥
आसुतोष परितोष कीन्ह बर दीन्हेउ।
सिव उदास तजि बास अनत गम कीन्हेउ॥ 31॥
उमा नेहबस बिकल देह सुधि बुधि गई।
कलप-बेलि बन बढ़त बिषम हिम जनु हई॥ 32॥
समाचार सब सखिन जाइ घर घर कहे।
सुनत मातु पितु परिजन दारून दुख दहे॥ 33॥
जाइ देखि अति प्रेम उमहि उर लावहिं।
बिलपहिं बाम बिधातहि दोष लगावहिं॥ 34॥
जो न होहिं मंगल-मग सुर बिधि बाधक।
तौ अभिमत फल पावहिं करि स्रमु साधक॥ 35॥

साधक कलेस सुनाइ सब गौरिहि निहोरत धाम को।
को सुनइ काहि सोहाय घर चित चहत चंद्र-ललाम को।
समुझाइ सबहि दृढ़ाइ मनु पितु मातु, आयसु पाइ कै।

लागी करन पुनि अगमु तपु तुलसी कहै किमि गाइकै॥ 36॥

फिरेउ मातु पितु परिजन लखि गिरिजा पन।

जेहिं अनुरागु लागु, चितु, सोइ हितु आपन॥ 37॥

तजेउ भोग जिमि रोग, लोग अहि गन जनु।

मुनि मनसहु ते अगम तपहिं लायउ मनु॥ 38॥

सकुचहिं बसन बिभूषन परसत जो बपु।

तेहिं सरीर हर हेतु अरंभेउ बड़ तपु॥ 39॥

पूजइ सिवहि समय तिहुँ करइ निमज्ञन।

देखि प्रेमु ब्रतु नेमु सराहहिं सज्ञन॥ 40॥

नींद न भूख पियास सरिस निसि बासरू।

नयन नीरू, मुख नाम, पुलक तनु, हिय हरू॥ 41॥

कंद मूल फल असन, कबहुँ जल पवनहिं।

सूखे बेलके पात खात दिन गवनहि॥ 42॥

नाम अपरना भयो परन अब परिहरे ।

नवल धवल कल कीरति सकल भुवन भरे॥ 43॥

देखि सराहहिं गिरिजहिं मुनिवरू मुनि बहु।

अस तप सुना न दीख कबहुँ काहू कहुँ॥ 44॥

काहू न देख्यौ, कहहिं यह तपु जोग फल फल-चारिका।

नहिं जानि जाइ न कहति, चाहति काहि कुधर-कुमारिका।

बटु-बेष पेषन-पेम पन ब्रत नेम ससि-सेखर गए।

मनसहिं समरपेउ आपु गिरिजहि, बचन मृदु बोलत भए॥ 45॥

देखि दसा करूनाकर हर दुख पायउ।

मोर कठोर सुभाय, हृदय अस आयउ॥ 46॥

बंस प्रसंसि, मातु पितु कहि सब लायक।

अमिय बचनु बटु बोलेउ अति सुख दायक॥ 47॥

“देवि! करौ कछु बिनती बिलगु न मानब।

कहौं सनेह सुभाय साँच जिय जानब॥ 48॥

जनमि जगत जस प्रगटेहु मातु-पिता कर।

तीयरतन तुम उपजिहु भव-रतनाकर॥ 49॥

अगम न कछु जग तुम कहँ, मोहि अस सूझइ।

बिनु कामना कलेस कलेस न बूझइ॥ 50॥

जौ बर लागि करहु तप तौ लरिकाइय।

पारस जौ धर मिलै तौ मेरू कि जाइय?॥ 51॥

मोरे जान कलेस करिय बिनु काजहिं ।

सुधा कि रोगहि चाहहि, रतन कि राजहि?”॥ 52॥

लखि न परेउ तप-कारन बटु हिय हारेउ।

सुनि प्रिय बचन सखी-मुख गौरि निहारेउ॥ 53॥

गौरी निहारेउ सखी-मुख, रूख पाइ तेहिं कारन कहा।

“तपु करहिं हरहितु” सुनि बिहँसि बटु कहत “मुरूखाई महा॥

जेहिं दीन्ह अस उपदेस बरेहु कलेस करि बरू बावरो।

हित लागि कहौं सुभाय सो बड़ बिषम बैरी रावरो॥ 54॥

कहहु काह सुनि रीझिहु बर अकुलीनहिं ।

अगुन अमान अजाति मातु पितु हीनहिं॥ 55॥

भीख माँगि भव खाहिं, चिता नित सोवहिं ।

नाचहिं नगन पिसाच, पिसाचिनि जोवहिं॥ 56॥

भाँग धतूर अहार, छार लपटावहिं।

जोगी, जटिल, सरोष, भोग नहिं भावहिं॥ 57॥

सुमुखि सुलोचनि! हर मुख-पंच, तिलोचन।

बामदेव फुर नाम, काम-मद-मोचन॥ 58॥

एकउ हरहिं न बर गुन, कोटिक दूषन।
नर-कपाल, गज-खाल, ब्याल, बिष भूषन॥ 59॥
कहँ राउर गुन सील सरूप सुहावन।
कहाँ अमंगल बेषु बिसेषु भयावन॥ 60॥
जो सोचइ ससि-कलहि सो सोचहि रौरेहि।
कहा मोर मन धरि न बिरय बर बौरेहि। 60॥
हिए हेरि हठ तजहु, हठै दुख पैहहु।
ब्याह-समय सिख मोरि समुझि पछितैहहू॥ 61॥

पछिताब भूत पिसाच प्रेत जनेत ऐहैं साजि कै।
जम-धार सरिस निहारि सब नर-नारि चलिहहिं भाजि कै॥
गज-अजिन दिब्य दुकूल जोरत सखी हँसि मुख मोरि कै।
कोउ प्रगट कोउ हियँ कहिहि ‘मिलवत अमिय माहुर घोरि कै’॥ 63॥

तुमहिं सहित असवार बसहिं जब होइहहिं।
निरखि नगर नर नारि बिहँसि मुख गोइहहिं॥ 64॥
बटु करि कोटि कुतरक जथा-रूचि बोलइ।
अचल-सुता-मनु-अचल बयारि कि डोलइ?॥ 65॥

साँच सनेह साँच रूचि जो हठि फेरइ।

सावन-सरिस सिंधु रूख सूप सो घेरइ॥ 66॥

मनि बिनु फनि जल हीन मीन तनु त्यागइ।

सो कि दोष गुन गनइ जो जेहि अनुरागइ॥ 67॥

करन-कटुक चटु बचन बिसिष सम हिय हए।

अरून नयन चढ़ि भृकुटि अधर फरकत भए॥ 68।

बोली फिर लखि सखिहि काँपु तन थर-थर॥

“आलि! बिदा करू बटुहि बेगि बड़ बरबर॥ 69॥

कहुँ तिय होहिं सयानि सुनहिं सिख राउरि?

बौरेहि कैं अनुराग भइउँ बड़ि बाउरि॥ 70॥

दोष-निधान इसानु सत्य सबु भाषेउ।

मेटि को सकइ सो आँकु जो बिधि लिखि राखेउ॥ 71॥

को करि बाटु बिबादु बिषादु बढ़ावइ?।

मीठ काहि कबि कहहिं जाहि जोइ भावइ॥ 72॥

भइ बड़ि बार आलि कहूँ काज सिधारहिं।

बकि जनि उठहिं बहोरि कुजुगुति सवाँरहिं॥ 73॥

जनि कहहिं कछु बिपरीत जानत प्रीति रीति न बात की।

सिव-साधु-निंदकु मंद अति जोउ सुनै सोउ बड़ पातकी॥
सुनि बचन सोधि सनेहु तुलसी साँच अबिचल पावनो।
भए प्रगट करूनासिंधु संकर, भाल चंद सुहावनो॥ 74॥

सुंदर गौर सरीर भूति भलि सोहइ।
लोचन भाल बिसााल बदनु मन मोहइ॥ 75॥
सैल-कुमारि निहारि मनोहर मुरति।
सजल नयन हिय हरषु पुलक तन पूरति॥ 76॥
पुनि पुनि करै प्रनामु न आवत कछु कहि।
“देखौं सपन कि सौतुख ससि-सेखर, -सहि” ॥ 77॥
जैसें जनम-दरिद्र महामनि पावइ।
पेखत प्रगट प्रभाउ प्रतीति न आवइ॥ 78॥
सुफल मनोरथ भयउ, गौरि सोहइ सुठि।
घर तें खेलन मनहुँ अबहिं आई उठि॥ 79॥
देखि रूप अनुराग महेस भए बस।
कहत बचन जनु सानि सनेह-सुधा-रस॥ 80॥
“हमहिं आजु लगि कनउड़ काहुँ न कीन्हेउ।
पार्बती तप प्रेम मोल मोहि लीन्हेउ॥ 81॥

अब जो कहहु सो करउँ बिलंबु न यहिं घरि।”

सुनि महेस मृदु बचन पुलकि पाँयन परि॥ 82॥

परि पायँ सखि मुख कहि जनायो आपु बाप-अधीनता।

परितोषि गिरिजहि चले बरनत प्रीति नीति प्रबीनता॥

हर हृदय धरि घर गौरि गवनी कीन्ह बिधि मन-भावनो ।

आनंद प्रेम समाजु मंगल-गान बाजु बधावनो॥ 83॥

सिव सुमिरे मुनि सात आइ सिर नाइन्हि।

कीन्ह संभु सनमानु जनम-फल पाइन्हि॥ 84॥

“सुमिरहिं सकृत तुम्हहिं जन तेइ सुकृती-बर।

नाथ जिन्हहि सुधि करिअ तिनहिं सम तेइ, हर”॥ 85॥

सुनि मुनि-बिनय महेस परम सुचा पायउ।

कथा प्रसंग मुनीसन्ह सकल सुनायउ॥ 86॥

“जाहु हिमाचल-गेह प्रसंग चलायहु।

जौं मन मान तुम्हार तौ लगन लिखायहु॥ 87॥

अंरूधती मिलि मैनहिं बात चलाइहि।

नारि कुसल इहिं काजु, काजु बनि आइहि”॥ 88॥

“दुलहिनि उमा, ईस बर, साधक ए मुनि ।
बनिहि अवसि यहु काज” गगन भइ अस धुनि॥ 89॥
भयउ अकानि आनंद महेस मुनीसन्ह।
देहिं सुलोचनि सगुन कलस लिए सीसन्ह॥ 90॥
सिव सों कहेउ दिन ठाउँ बहोरि मिलनु जहँ।
चले मुदित मुनिराज गए गिरिबर पहँ॥ 91॥

गिरि-गेह ते अति नेह आदर पूजि पहुनाई करी।
घरबात घरनि समेत कन्या आनि सब आगे धरी॥
सुख पाइ बात चलाइ सुदिन सोधाइ गिरिहि सिखाइ कै।
ऋषि सात प्रातहिं चले प्रमुदित ललित लगन लिखाइ कै॥ 92॥

बिप्र-बृंद सनमानि पुजि कुल-गुरु सुर।
परेउ निसानहिं घाउ, चाउ चहुँ दिसि पुर॥ 93॥
गिरि, बन, सरित, सिंधु, सर सुनइ जो पायउ।
सब कहँ गिरिबर-नायक नेवत पठायउ॥ 94॥
धरि धरि सुंदर बेष चले हरिषित हिए।
कँचन चीर उपहार हार मनि-गन लिए॥ 95॥

कहेउ हरषि हिमवान बितान बनावन।

हरिषित लगीं सुआसिनि मंगल गावन॥ 96॥

तोरन कलस चवँर धुज बिबिध बनाइन्हि।

हाट पटोरन्हि छाय, सफल तरू लाइन्हि॥ 97॥

गौरी नैहर केहि बिधि कहहुँ बखानिय।

जनु ऋतुराज मनोज-राज रजधानिय॥ 98॥

जनु राजधानी मदन की बिरची चतुर बिधि और हीं।

रचना बिचित्र बिलोकि लोचन बिथकि ठौरहिं ठौर हीं॥

यहि भाँति ब्याहु समाजु सजि गिरिराजु मगु-जोवन लगे।

तुलसी लगन लै दीन्ह मुनिन्ह महेस आनँद-रँग-मगे॥ 99॥

बेगि बोलाइ बिरंचि बँचाइ लगन जब ।

कहेन्हि ‘बियाहन चलहु बुलाइ अमर सब’॥ 100॥

बिधि पठए जहँ तहँ सब सिव-गन धावन ।

सुनि हरषहिं सुर कहहिं निसान बजावन॥ 101॥

रचहिं बिमान बनाइ सगुन पावहिं भले।

निज निज साजु समाजु साजि सुरगन चले॥ 102॥

मुदित सकल सिवदूत भूत-गन गाजहिं।
सूकर, महिष, स्वान, खर बाहन साजहिं॥ 103॥
नाचहिं नाना रंग, तरंग बढ़ावहिं।
अज, उलूक, बृक नाद गीत गन गावहिं॥ 104॥
रमानाथ, सुरनाथ, साथ सब सुर-गन।
आए जहँ बिधि संभु देखि हरषे मन॥ 105॥
मिले हरिहिं हर हरषि सुभाषि सुरेसहि।
सुर निहारि सनमानेउ मोद महेसहि॥ 106॥
बहु बिधि बाहन जान बिमान बिराजहिं।
चली बरात निसान गहागह बाजहिं॥ 107॥

बाजहिं निसान, सुगान नभ, चढ़ि बसह बिधुभूषन चले।
बरषहिं सुमन जय जय करहिं सुर, सगुन सुभ मंगल भले॥
तुलसी बराती भूत प्रेत पिसाच पसुपति सँग लसे।
गजछाल, ब्याल, कपाल-माल बिलोकि बर सुर हरि हँसे॥ 108॥

बिबध बोलि हरि कहेउ निकट पुर आयउ।
आपन आपन साज सबहिं बिलगायउ॥ 109॥

प्रमथनाथ के साथ प्रमथ-गन राजहिं।

बिबिध भाँति मुख, बाहन, बेष बिराजहिं॥ 110॥

कमठ खपर मढि खाल निसान बजावहिं।

नर-कपाल जल भरि-भरि पियहिं पियावहिं॥ 111॥

बर अनुहरत बरात बनी हरि हँसि कहा।

सुनि हिय हँसत महेस, केलि कौतुक महा॥ 112॥

बड़ बिनोद मग मोद न कछु कहि आवत।

जाइ नगर नियरानि बरात बजावत॥ 113॥

पुर खरभर, उर हरषेउ अचल-अखंडलु।

परब उदधि उमगेउ जनु लखि बिधु-मंडलु॥ 114॥

प्रमुदित गे अगवान बिलोकि बरातहि।

भभरे, बनइ न रहत, न बनइ परातहि॥ 115॥

चले भाजि गज बाजि फिरहिं नहिं फेरतं।

बालक भभरि भुलाल फिरहिं घर हेरत॥ 116॥

दीन्ह जाइ जनवास सुपास किए सब।

घर घर बालक बात कहन लागे तब॥ 117॥

“प्रेत बेताल बराती, भूत भयानक।

बरद चढ़ा बर बाउर, सबइ सुबानक॥ 118॥

कुसल करइ करतार कहहिं हम साँचिय।
देखब कोटि बियाह जियत जो बाँचिय"॥ 119॥
समाचार सुनि सोचु भयउ मन मैनहिं।
नारद के उपदेस कवन घर गे नहिं?120॥

घरघाल चालक कलहप्रिय कहियत परम परमारथी।
तैसी बरेखी कीन्हि पुनि मुनिसात स्वारथ सारथी। ।
उर लाइ उमहि अनेक बिधि, जलपति जननि दुख मानई।
हिमवान कहेउ "इसान महिमा अगम, निगम न जानई"॥ 121॥

सुनि मैना भइ सुमन, सखी देखन चली।
जहँ तहँ चरचा चलइ हाट चौहट गली॥ 122॥
श्रीपति, सुरपति, बिबुध बात सब सुनि सुनि।
हँसहिं कमल-कर जोरि, मोरि मुख पुनि पुनि॥ 123॥
लखि लौकिक गति संभु जानि बड़ सोहर।
भए सुंदर सत-कोटि मनोज मनोहर॥ 124॥
नील निचोल छाल भइ, फनि मनि-भूषन ।
रोम रोम पर उदित रूपमय पूषन॥ 125॥

गन भए मंगल बेष मदन-मनमोहन ।

सुनत चले हिय हरषि नारि नर जोहन॥ 126॥

संभु सरद राकेस, नखत-गन सुर-गन।

जनु चकोर चहुँ ओर बिराजहिं पुर-जन॥ 127॥

गिरिबर पठए बोलि लगन बेरा भई।

मंगल अरघ पाँवड़े देत चले लई॥ 128॥

होहिं सुमंगल सगुन, सुमन बरषहिं सुर।

गहगहे गान निसान मोद मंगल पुर॥ 129॥

पहिलिहिं पँवरि सुसामध भा सुख-दायक।

इत बिधि उत हिमवान सरिस सब लायक॥ 130॥

मनि चामीकर चारू थार सजि आरति रति ।

रति सिहाहिं लखि रूप, गान सुनि भारति॥ 131॥

भरी भाग अनुराग पुलक-तनु मुद-मन।

मदनमत्त गजगवनि चलीं बर परिछन॥ 132॥

बर बिलोकि बिधु-गौर सु अंग उजागर।

करति आरती सासु मगन सुख-सागर॥ 133॥

सुखसिंधु मगन उतारि आरति करि निछावर निरखि कै।

मगु अरघ बसन प्रसून भरि लेइ चलीं मंडप हरषि कै॥

हिमवान् दीन्हें उचित आसन सकल सुर सनमानि कै।

तेहि समय साज समाज सब राखे सुमंडप आनि कै॥ 134॥

अरघ देइ मनि-आसन बर बैठायउ।

पूजि कीन्ह मधुपर्क अमी अँचपायउ॥ 135॥

सप्त ऋसिन्ह बिधि कहेउ, बिलंब न लाइय।

लगन बेर भइ बेगि बिधान बनाइय॥ 136॥

थापि अनल हर-बरहिं बसन पहिरायउ।

आनहु दुलहिनि बेगि समय अब आयउ॥ 137॥

सखी सुवासिनि संग गौरि सुठि सोहति।

प्रगट रूपमय मूरति जनु जग मोहति॥ 138॥

भूषन बसन समय सम सोभा सो भली।

सुषमा बेलि नवल जनु रूप-फलनि फली॥ 139॥

कहहु काहि पटतरिय गौरि गुन-रूपहि।

सिंधु कहिय केहि भाँति सरिस सर कूपहिं॥ 140॥

आवत उमहिं बिलोकि सीस सुर नावहिं।

भव कृतारथ जनम सुख पावहिं॥ 141॥

बिप्र बेद धुनि करहिं सुभासिष कहि कहि।
गान निसान सुमन झरि अवसर लहि लहि॥ 142॥

बर दुलहिनिहि बिलोकि सकल मन हरसहिं।
साखोच्चार समय सुर मुनि बिहँसहिं॥ 143॥

लोक-बेद-बिधि कीन्ह लीन्ह जल कुस कर।
कन्यादान संकलप कीन्ह धरनिधर॥ 144॥

पूजे कुलगुरु देव, कलसु सिल सुभ घरी।
लावा होम बिधान बहुरि भाँवरि परी॥ 145॥

बंदन बंदि, ग्रंथिबिधि करि, धुव देखेउ।
भा बिबाह सब कहहिं जनम-फल पेखेउ॥ 146॥

पेखेउ जनम-फल भा बियाह, उछाह उमगहि दस दिसा।
नीसान गान प्रसूत झरि तुलसी सुहावनि सो निसा॥
दाइज बसन मनि धेनु धन हय गय सुसेवक सेवकी ।
दीन्हीं मुदित गिरिराज जे गिरिजहिं पिआरी पेव की॥ 147॥

बहुरि बराती मुदित चले जनवासहि।
दूलह दुलहिन गे तब हास-अवासहि॥ 148॥

रोकि द्वार मैना तब कौतुक कीन्हेउ।

करि लहकौरि गौरि हर बड़ सुख दीन्हेउ॥ 149॥

जुआ खेलावत गारि देहिं गिरि-नारिहि।

आपनि ओर निहारि प्रमोद पुरतारिहि ॥ 150॥

सखी सुवासिनि, सासु पाउ सुख सब बिधि।

जनवासेहि बर चलेउ सकल मंगल-निधि॥ 151॥

भइ जेवनारि बहोरि बुलाइ सकल सुर।

बैठाए गिरिराज धरम-धरनि-धुर। 152॥

परूसन लगे सुवार, बिबुध जन जेवहिं।

देहिं गारि बर नारि मोद मन भेवहिं॥ 153॥

करहिं सुमंगल गान सुघर सहनाइन्हं।

जेइँ चले हरि दुहिन सहित सुर भाइन्ह॥ 154॥

भूधर भोर बिदा करि साज सजायउ।

चले देव सजि जान निसान बजायउ॥ 155॥

सनमाने सुर सकल दीन्ह पहिरावनिं।

कीन्ह बड़ाई बिनय सनेह सुहावनि॥ 156॥

गहि सिवपद कह सासु बिनय मृदु मानबि ।

गौरि-सजीवनि मूरि मोरि जिय जानबि॥ 157॥

भेंटि बिदा करि बहुरि भेंटि पहुँचावहिं।

हुँकरि हुँकरि सु लवाइ धेनु जनु धावहिं॥ 158॥

उमा मातु मुख निरखि नैन जल मोचहिं।

‘नारि जनमु जग जाय’ सखी कहि सोचहिं॥ 159॥

भेंटि उमहिं गिरिराज सहित सुत परिजन ।

बहु समुझाइ बुझाइ फिरे बिलखित मन॥ 160॥

संकर गौरि समेत गए कैलासहि।

नाइ नाइ सिर देव चले निज बासहिं॥ 161॥

उमा महेस बियाह-उछाह भुवन भरे ।

सब के सकल मनोरथ बिधि पूरन करे॥ 162॥

प्रेम-पाट पटडोरि गौरि-हर-गुन मनि।

मंगल हार रचेउ कबि मति मृगलोचनि॥ 163॥

मृगनयनि बिधुबदनी रचेउ मनि मंजु मंगलहार सो।

उर धरहु जुबती जन बिलोकि तिलोक समा-सार सो॥

कल्यान काज उछाह ब्याह सनेह सहित जो गाइहैं ।

तुलसी उमा-संकर-प्रसाद प्रमोद मन प्रिय पाइहै॥ 164॥

गोस्वामी तुलसीदास

जानकी-मंगल

[हिन्दीकोश]

जानकी-मंगल

(मंगल छंद)

गुरु गनपति गिरिजापति गौरि गिरापति।

सादर सेष सुकबि श्रुति संत सरल मति ॥ 1॥

हाथ जोरि करि बिनय सबहि सिर नावौं।

सिय-रघुबीर-बिबाहु जथामति गावौं॥ 2॥

सुभ दिन रच्यौ स्वयंबर मंगलदायक।

सुनत स्रवन हिय बसहिं सीय-रघुनायक॥ 3॥

देस सुहावन पावन बेद बखानिय।

भूमि-तिलक सम तिरहुत त्रिभुवन जानिय॥ 4॥

तहँ बस नगर जनकपुर परम उजागर।

सीय लच्छि जहँ प्रगटी सब सुखसागर॥ 5॥

जनक नाम तेहिं नगर बसै नरनायक।

सब गुन अवधि, न दूसर पटतर लायक॥ 6॥

भयेहु न होइहि, है न, जनक सम नरवइ।
सीय सुता भै जासु सकल मंगलमइ॥ 7॥
नृप लखि कुँवरि सयानि बोलि गुर परिजन।
करि मत रचेउ स्वयंबर सिव-धनु धरि पन॥ 8॥

पनु धरेउ सिवधनु रचि स्वयंबर अति रूचिर रचना बनी।
जनु प्रगटि चतुरानन देखाई चतुरता सब आपनी॥
पुनि देस देस सँदेस पठयउ भूप सुनि सुख पावहीं ।
सब साजि साजि समाज राजा जनक-नगरहिं आवहीं॥ 9॥

रूप सील बय बंस बिरूद बल दल भले।
मनहुँ पुरंदर निकर उतरि अवनी चले॥ 10॥
दानव देव निसाचर किन्नर अहिगन ।
सुनि धरि धरि नृप बेष चले प्रमुदित मन॥ 11॥
एक चलहिं एक बीच एक पुर पैठहिं।
एक धरहिं धनु धाय नाइ सिर बैठहीं॥ 12॥
रंगभूमि पुर कौतुक एक निहारहिं ।
ललकि सुभाहिं नयन मन, फेरि न पारहिं॥ 13॥

जनकहिं एक सिहाहिं देखि सनमानत।

बाहर भीतर भीर न बनै बखानत॥ 14॥

गान निसान कोलाहल कौतुक जहँ तहँ।

सीय-बिबाह-उछाह जाइ कहि का पहँ॥ 15॥

गाधि सुवन तेहिं अवसर अवध सिधायउ।

नृपति कीन्ह सनमान भवन लै आयउ॥ 16॥

पूजि पहुनई कीन्ह पाइ प्रिय पाहुन।

कहेउ भूप "मोहि सरिस सुकृत किए काहु न"॥ 17॥

'काहूँ न कीन्हेउ सुकृत' सुनि मुनि मुदित नृपहि बखानहीं।

महिपाल मुनि को मिलन-सुख महिपाल मुनि मन जानहीं॥

अनुराग भाग सोहाग सील सरूप बहु भूषन भरीं।

हिय हरषि सुतन्ह समेत रानीं आइ ऋषि-पायनह परीं॥ 18॥

कौसिक दीन्हि असीस सकल प्रमुदित भई।

सींचीं मनहुँ सुधा रस कलप-लता नईं॥ 19॥

रामहिं भाइन्ह सहित जबहिं मुनि जोहेउ।

नैन नीर, तन पुलक, रूप मन मोहेउ॥ 20॥

परसि कमल कर सीस हरषि हिय लावहिं।

प्रेम-पयोधि मगन मुनि न पावहिं॥ 21॥

मधुर मनोहर मूरति सादर चाहहिं ।

बार बार दसरथ के सुकृत सराहहिं॥ 22॥

राउ कहेउ कर जोर सुबचन सुहावन।

"भयउँ कृतारथ आजु देखि पद पावन। 23॥

तुम्ह प्रभु पूरन काम चारि-फल दायक।

तेहिं ते बूझत काजु डरौं मुनिदायक"॥ 24॥

कौसिक सुनि नृप बचन सराहेउ राजहिं।

धर्मकथा कहि कहेउ गयउ जेहि काजहिं॥ 25॥

जबहिं मुनीस महीसहि काज सुनायउ।

भयउ सनेह-सत्य-बस उतर न आयउ॥ 26॥

आयउ न उतरू बसिष्ठ लखि बहु भाँति नृप समझायऊ।

कहि गाधि-सुत तप तेज कछु रघुपति-प्रभाउ जनायऊ॥

धीरजु धरेउ गुरु-बचन सुनि कर जोरि कह कोसल-धनी॥

"करूनानिधान सुजान प्रभु सों उचित नहिं बिनती घनी॥ 27॥

नाथ मोहि बालकन्ह सहित पुर परिजन

राखनहार तुम्हार अनुग्रह घर बन”॥ 28॥

दीन बचन बहु भाँति भूप मुनि सन कहे।

सौंपि राम अरू लखन पाँय-पंकज गहे॥ 29॥

पाइ मातु-पितु-आयसु गुरु पाँयन परे।

कटि निषंग पट पीत, करनि सर धनु धरे॥ 30॥

पुरबासी नृप् रानिन्ह संग दिये मन।

बेगि फिरेउ करि काजु कुसल रघुनंदन॥ 31॥

ईस मनाइ असीसहिं जय जसु पावहु ।

न्हात खसै जनि बार, गहरू जनि लावहु॥ 32॥

चलत सकल पुर-लोग बियोग बिकल भये।

सानुज भरत सप्रेम राम पाँयन नए॥ 33॥

होहिं सगुन सुभ मंगल जनु कहि दीन्हेउ।

राम लषन मुनि साथ गवन तब कीन्हेउ॥ 34॥

स्यामल गौर किसोर मनोहरता-निधि।

सुषमा सकल सकेलि मनहुँ बिरचे बिधि॥ 35॥

बिरचे बिरंचि बनाइ बाँची रूचिरता रंचौ नहीं ।

दस-चारि भुवन निहारि देखि बिचारि नहिं उपमा कहीं॥
ऋषि संग सोहत जात मगु छबि बसत सो तुलसी हिए।
कियो गवन जनु दिननाथ उत्तर संग मधु माधव लिए॥ 36॥

गिरि तरु बेलि सरित सर बिपुल बिलोकहिं।
धावहिं बाल सुभाय, बिहँग मृग रोकहिं॥ 37॥
सकुचहिं मुनिहिं सभीत बहुरि फिरि आवहिं।
तोरि फूल फल किसलय माल बनावहिं॥ 38॥
देखि बिनोद प्रमोद प्रेम कौसिक उर।
करत जाहिं घन छाँह, सुमन बरषहिं सुर॥ 39॥
बधी ताड़का राम जानि सब लायक।
बिद्या-मंत्र-रहस्य दिए मुनिनायक॥ 40॥
मन-लोगन्ह के करत सुफल मन लोचन।
गए कौसिक आश्रमहिं बिप्र-भय-मोचन॥ 41॥
मारि निसाचर-निकर जज्ञ करवायउ।
अभय किए मुनिबृंद जगत जसु गायउ॥ 42॥
बिप्र साधु सुर-काज महामुनि मन धरि।
रामहिं चले लिवाइ धनुष-मख मिसु करि॥ 43॥

गौतम-नारि उधारि पठै मति-धामहि।
जनक-नगर लै गयउ महामुनि रामहिं॥ 44॥

लै गयउ रामहिं गाधि-सुवन बिलोकि पुर हरषे हिए।
सुनि राउ आगे लेन आयउ सचिव गुर भूसुर लिए॥
नृप गहे पाँय, असीस पाई मान आदर अति किए॥
अवलोकि रामहि अनुभवत मनु ब्रह्मसुख सौगुन किए॥ 45॥

देखि मनोहर मूरति मन अनुरागेउ।
बँधेउ सनेह बिदेह, बिराग बिरागेउ॥ 46॥
प्रमुदित हृदय सराहत भल भवसागर।
जहँ उपजहिं अस मानिक, बिधि बड़ नागर॥ 47॥
पुन्य-पयोधि 'मातु-पितु ए सिसु सुरतरू।
रूप सुधा सुख देत नयन अमरनि बरू॥ 48॥
"केहि सुकृति के कुँअर" कहिय मुनिनायक।
"गौर स्याम छबि धाम धरें धनु-सायक॥ 49॥
बिषय बिमुख मन मोर सेइ परमारथ।
इन्हहिं देखि भयो मगन जानि बड़ स्वारथ"॥ 50॥

कहेउ सप्रेम पुलकि मुनि सुनि, “महिपालक!
ए परमारथ-रूप ब्रह्ममय बालक॥ 51॥
पूषन-बंस-बिभूषन दसरथ-नंदन।
नाम राम अरू लषन सुरारिनिकंदन”॥ 52॥
रूप सील बय बंस राम परिपूरन।
समुझि कठिन पन आपन लाग बिसूरन॥ 53॥

लागे बिसूरन समुझि पन मन बहुरि धीरज आनि कै।
लै चले देखावन रंगभूमि अनेक बिधि सनमानि कै॥
कौसिक सराही रूचिर रचना, जनक सुनि हरषित भए।
तब राम लखन समेत मुनि कहँ सुभग सिंहासन दए॥ 54॥

राजत राज-समाज जुगल रघुकुल-मनि।
मनहुँ सरद-बिधु उभय, नखत धरनी-धनि॥ 55॥
काकपच्छ सिर, सुभग सरोरूह लोचन।
गौर स्याम सत-कोटि-काम-मद मोचन॥ 56॥
तिलक ललित सर, भ्रुकुटी काम-कमानै।
स्रवन बिभूषन रूचिर देखि मन मानै॥ 57॥

नासा चिबुक कपोल अधर रद सुंदर।

बसन सरद-बिधु-निंदक सहज मनोहर॥ 58॥

उर बिसाल बृष-कंध सुभग भुज अति बल।

पीत बसन उपबीत, कंठ मुकुता-फल॥ 59॥

कटि निषंग, कर-कमलन्हि धरें धनु-सायक।

सकल अंग मन मोहन जोहन लायक॥ 60॥

राम-लषन-छबि देखि मगन भए पुरजन ।

उर आनँद जल लोचन, प्रेम पुलक तन॥ 61॥

नारि परस्पर कहहिं देखि दुहुँ भाइन्ह।

“लहेउ जनम फल आजु जनमि जग आइन्ह॥ 62॥

जग जनमि लोचन-लाहु पाए” सकल सिवहि मनावहिं।

“बर मिलौ सीतहि साँवरो हम हरषि मंगल गावहीं”॥

एक कहहिं “कुँवर किसोर कुलिस-कठोर सिव-धनु है महा।

किमि लेहि बाल मराल मंदर नृपहिं अस काहु न कहा”॥ 63॥

भे निरास सब भूप बिलोकत रामहिं।

“पन परिहरि सिय देब जनक बरू स्यामहिं”॥ 64॥

कहहिं एक “भलि बात, ब्याहु भल होइहिं।

बर दुलहिनि लगि जनक अपन पन खोइहि”॥ 65॥

सुचि सुजान नृप कहहिं “हमहिं अस सूझई।

तेज प्रताप रूप जहँ तहँ बल बूझइ॥ 66॥

चितइ न सकहु राम-तन, गाल बजावहू।

बिधि बस बलउ लजान, सुमति न लजावहु॥ 67॥

अवसि राम के उठत सरासन टूटिहि।

गवनहिं राज समाज नाक अस फूटिहिं॥ 68॥

कस न पियहु भरि लोचन रूप-सुधा-रसु।

करहु कृतारथ जनम, होहु कत नर-पसु”॥ 69॥

दुहुँ दिसि राजकुमार बिराजत मुनिबर।

नील पीत पाथोज बीच जनु दिनकर॥ 70॥

काकपच्छ ऋषि परसत पानि सरोजनि।

लाल कमल जनु लालत बाल-मनोजनि॥ 71॥

“मनसिज मनोहर मधुर मूरति कस न सादर जोवहू।

बिनु काज राज समाज महुँ तजि लाज आपु बिगोवहू”॥

सिष देइँ भूपति साधु भूप अनूप छबि देखन लगे ।

रघुबंस कैरव-चंद चितइ चकोर जिमि लोचन ठगे॥ 72॥

पुर-नर-नारि निहारहिं रघुकुल दीपहिं।

दोषु नेहबस देहिं बिदेह महीपहिं॥ 73॥

एक कहहिं “भल भूप, देहु जनि दूषन।

नृप न सोह बिनु बचन,नाक बिनु भूषन॥ 74

हमरे जान जनेस बहुत भल कीन्हेउ।

पन-मिस लोचन-लाहु सबन्हि कहँ दीन्हेउ॥ 75॥

अस सुकृती नरनाहु जो मन अभिलाषिहि।

सो पुरइहिं जगदीस पैज पन राखिहि॥ 76॥

प्रथम सुनत जो राउ राम गुन-रूपहिं।

बोलि ब्याहि सिय देत दोष नहिं भूपहिं॥ 77॥

अब करि पैज पंच महँ जो पन त्यागै।

बिधि-गति जानि न जाइ, अजसु जग जागै॥ 78॥

अजहुँ अवसि रघुनंदन चाप चढ़ाउब।

ब्याह उछाह सुमंगलत्रिभुवन गाउब”॥ 79॥

लागि झरोखन्ह झाँकहिं भूपति भामिनि।

कहत बचन रद लसहिं दमक जनु दामिनि॥ 80॥

जनु दमक दामिनि, रूप रति मदु निदरि सुंदरि सोहहीं।
मुनि ढिग देखाए सखिन्ह कुँवर बिलोकि छबि मन मोहहीं॥
सिय-मातु हरषी निरखि सुषमा अति अलौकिक राम की।
हिय कहति 'कहँ धनु कुँअर कहँ बिपरीत गति बिधि बाम की'॥ 81॥

कहि प्रिय बचन सखिन्ह सन रानि बिसूरति ।
"कहाँ कठिन सिव धनुष कहाँ मृदु मूरति॥ 82॥
जो बिधि लोचन अतिथि करत नहिं रामहिं।
तौ कोउ नृपहिं न देत दोषु परिनामहि॥ 83
अब असमंजस भयउ न कछु कहि आवै"।
रानिहिं जानि ससोच सखी समझावै॥ 84
"देवि! सोच परिहरिय हरष हिय आनिय
चाप चढ़ाउब राम बचन फुर मानिय॥ 85॥
तीनि काल को ग्यान कौसिकहि करतल।
सो कि स्वयंबर आनहि बालक बिनु बल?"॥ 86
मुनि-महिमा सुनि रानिहिं धीरजु आयउ ।
तब सुबाहु-सूदन-जसु सखिन सुनायउ॥ 87॥

सुनि जिय भरउ भरोस रानि हिय हरखइ।

बहुरि निरखि रघुबरहि प्रेम मन करखइ॥ 88॥

नृप रानी पुर-लोग राम तन चितवहिं।

मंजु मनोरथ-कलस भरहिं अरू रितवहिं॥ 89॥

रितवहिं भरहिं धनु निरखि छिनु-छिनु निरखि रामहिं सोचहीं।

नर नारि हरष-बिषाद-बस हिय सकल सिवहिं सँकोचहीं।

तब जनक-आयसु पाइ कुलगुरु जानकिहिं लै आयऊ।

सिय रूप-रासि निहारि लोच- लाहु लोगन्हि पायऊ॥ 90॥

मंगल भूषन बसन मंजु तन सोहहिं।

देखि मूढ़ महिपाल मोह-बस मोहहिं॥ 91॥

रूप-रासि जेहि ओर सुभाय निहारइ।

नील-कमल-सर-श्रेनि मयन जनु डारइ॥ 92॥

छिनु सीतहिं छिनु रामहि पुरजन देखहिं।

रूप् सील बय बंस बिसेष बिसेषहिं॥ 93॥

राम दीख जब सीय, सीय रघुनायक ।

दोउ तन तकि तकि मयन सुधारत सायक॥ 94॥

प्रेम प्रमोद परस्पर प्रगटत गोपहिं।

जनु हिरदय गुन-ग्राम-थूनि थिर रोपहिं॥ 95॥

राम-सीय बय, समौ, सुभाय सुहावन।

नृप जोबन छबि पुरइ चहत जनु आवन॥ 96॥

सो छबि जाइ न बरनि देखि मनु मानै ।

सुधा-पान करि मूक कि स्वाद बखानै॥ 97॥

तब बिदेह-पन बंदिन्ह प्रगट सुनायउ।

उठे भूप आमरषि सगुन नहिं पायउ॥ 98॥

नहिं सगुन पायेउ रहे मिसु करि एक धनु देखन गए।

टकटोरि कपि ज्यौं नारियरु सिर नाइ सब बैठत भए। ।

एक करहिं दाप, न चाप सज्जन-बचन जिमि टारे टरैं।

नृप नहुष ज्यो सब के बिलोकत बुद्धि-बल बरबस हरै॥ 99॥

देखि सपुर परिवार जनक हिय हारेउ।

नृप-समाज जनु तुहिन बनज-बन मारेउ॥ 100॥

कौसिक जनकहिं कहेउ “देहु अनुसासन।

देखि भानु-कुल-भानु इसानु-सरासन॥ 101॥

“मुनिबर तुम्हरे बचन मेरू महि डोलहिं।

तदपि उचित आचरत पाँच भल बोलहिं॥ 102॥

बानु बानु जिमि गयउ, गवहिं दसकंधरू।

को अवनी-तल इन्ह सम बीर-धुरंधरू॥ 103॥

पारबती मन सरिस अचल धनु-चालक।

हहिं पुरारि तेउ एक-नारि-ब्रत-पालक॥ 104॥

सो धनु कहिय अवलोकन भूप-किसोरहि।

भेद कि सिरिस सुमन-कन कुलिस कठोरहिं॥ 105॥

रोम रोम छबि निंदति सोभ मनोजनि।

देखिय मूरति, मलिन करिय मुनि सो जनि”॥ 106॥

मुनि हँसि कहेउ “जनक, यह मूरति सो हइ।

सुमिरत सकृत मोह मल सकल बिछोहइ॥ 107॥

सब मल-बिछोहनि जानि मूरति जनक कौतुक देखहू।

धनु-सिंधु नृप-बलजल बढ़यो रघुबरहि कुंभज लेखहू॥”

सुनि सकुचि सोचहिं जनक, गुरु-पद बंदि रघुनंदन चले।

नहिं हरष हृदय बिषाद कछु भए सगुन सुभ मंगल भले॥ 108॥

बरिसन लगे सुमन सुर, दुंदुभि बाजहिं।

मुदित जनक पुर-परिजन नृपगन लाजहिं॥ 109॥

महि महिधरनि लषन कह बलहि बढ़ावन ।

राम चहत सिव-चापहि चपरि चढ़ावन॥ 110॥

गए सुभाय राम जब चाप समीपहि।

सोच सहित परिवार बिदेह महीपहि॥ 111॥

कहि न सकति कछु सकुचति, सिय हिय सोचइ।

गौरि गनेस गिरीसहि सुमिरि सँकोचइ॥ 112॥

होत बिरह-सर-मगन देखि रघुनाथहिं।

फरकि बाम भुज नयन देत जनु हाथहि॥ 113॥

धीरज धरति, सगुन बल रहति सो नाहिन।

बर किसोर धनु घोर दइउ नहिं दाहिन॥ 114॥

अंतरजामी राम मरम सब जानेउ।

धनु चढ़ाइ कौतुकहिं कान लागि तानेउ॥ 115॥

प्रेम परखि रघुबीर सरासन भंजेउ।

जनु मृग-राज किसोर महा गल भंजेउ॥ 116॥

गंजेउ सो गर्जेउ घोर धुनि सुनि भूमि भूधर लरखरे।

रघुबीर जस मुकता बिपुल सब भुवन पटु पेटक भरे॥

हित-मुदित, अनहित रूदित मुख, छबि कहत कबि धनु-जाग की।

जनु भोर चक्क चकोर कैरव सघन कमल तड़ाग की॥ 117॥

नभ पुर मंगल गान निसान गहागहे।

देखि मनोरथ सुरतरू ललित लहालहे॥ 118॥

तब उपुरोहित कहेउ, सखी सब गावत।

चली लेवाइ जानकिहि भा मनभावत॥ 119॥

कर-कमलनि जयमाल जानकी सोहइ।

बरनि सकै छबि अतुलित अस कबि को हइ॥ 120॥

सीय सनेह-सकुच-बस पिय-तन हेरइ।

सुरतरू रूख सुरबेलि पवन जनु फेरइ॥ 121॥

लसत ललित कर-कमल माल पहिरावत।

काम-फंद जनु चंदहिं बनज फँसावत ॥ 122॥

राम-सीय छबि निरूपम, निरूपम सो दिनु ।

सुख-समाज लखि रानिन्ह आनँद छिनु-छिनु॥ 123॥

प्रभुहि भाल पहिराइ जानकिहि लै चलीं।

सखीं मनहुँ बिधु-उदय मुदित कैरव कलीं॥ 124॥

बरषहिं बिबुध प्रसून हरषि कहि जय जय।
सुख सनेह भरे भुवन राम गुर पहिं गय॥ 125॥

गए राम गुरु पहिं, राउ रानी नारि-नर आनँद भरे।
जनु तृषित करि-करिनी-निकर सीतल सुधासागर परे॥
कौसिकहि पूजि प्रसंसि आयसु पाइ नृप सुख पायऊ।
लिखि लगन तिलक समाज-सजि कुल-गुरहिं अवध पठायऊ॥ 126॥

गुनि-गन बोलि कहेउ नृप माँडव छावन।
गावहिं गीत सुवासिनि, बाज बधावन॥ 127॥
सीय-गीत-हित पूजहिं गौरि गनेसहि।
परिजन पुरजन सहित प्रमोद नरेसहि॥ 128॥
प्रथम हरदि बंदन करि मंगल गावहिं
करि कुल-रीति, कलम थपि तैलु चढ़ावहिं॥ 129॥
गे मुनि अवध, बिलोकि सुसरित नहायउ।
सतानंद सत-कोटि-नाम फल पायउ॥ 130॥
नृप सुनि आगे आइ पूजि सनमानेउ।
दीन्हि लगन कहि कुसल राउ हरषानेउ॥ 131॥

सुनि पुर भयउ अनंद बधाव बजावहिं।
सजहिं सुमंगल कलम बितान बनावहिं॥ 132॥
राउ छाँड़ि सब काज साज सब साजहिं।
चलेउ बरात बनाइ पूजि गनराजहिं॥ 133॥
बाजहिं ढोल निसान सगुन सुभ पाइन्हि।
सिय नैहर जनकौर नगर नियराइन्हि॥ 134॥

नियरानि नगर बरात हरषी लेन अगवानी गए।
देखत परस्पर मिलत मानत, प्रेम-परिपूरन भए॥
आनंद पुर कौतुक कोलाहल बनत सो बरनत कहाँ।
लै दियो तहँ जनवास सकल सुपास नित नूतन जहाँ॥ 135॥

गे जनवासहिं कौसिक राम-लखन लिए।
हरषि निरखि बरात, प्रेम प्रेमुदित हिए॥ 136॥
हृदय लाइ लिए गोद मोद अति भूपहि।
कहि न सकहिं सत सेष अनंद अनूपहिं॥ 137
राय कौसिकहि पूजि दान बिप्रन्ह दिए।
राम सुमंगल हेतु सकल मंगल किए॥ 138॥

ब्याह-बिभूषन-भूषित भूषन-भूषन।

बिश्व-बिलोचन, बनज-बिकासक पूषन॥ 139॥

मध्य बरात बिराजत अति अनुकूलेउ ।

मनहुँ काम आराम कल्पतरु फूलेउ॥ 140॥

पठई भेंट बिदेह बहुत बहु भाँतिन्ह।

देखत देव सिहाहिं अनंद बरातिन्ह॥ 141॥

बेद-बिहित कुलरीति कीन्हि दुहुँ कुलगुर।

पठई बोलि बरात जनक प्रमुदित उर ॥ 142॥

जाइ कहेउ "पगु धारिय" मुनि अवधेसहि।

चले सुमिरि गुरु गौरि गिरीस गनेसहि॥ 143॥

चले सुमिरि गुरु, सुर सुमन बरषहि परे बहु बिधि पाँवड़े।

सनमानि सब बिधि जनक दसरथ किए प्रम कनावड़े॥

गुन सकल सम सम समधी परस्पर मिलन अति आनँद लहे।

जय धन्य जय जय धन्य धन्य बिलोकि सुर नर मुनि कहे॥ 144॥

तीनि लोक अवलोकहिं नहिं उपमा कोउ।

दसरथ जनक समान जनक दसरथ दोउ॥ 145॥

सजहिं सुमंगल साज रहस रनिवासहि।
गान करहिं पिकबैनि सहित परिहासहि॥ 146॥
उमा रमादिक सुरतिय सुनि प्रमुदित भइँ ।
कपट नारि-बर-बेष बिरच मंडम गइँ॥ 147॥
मंगल आरति साज बहरि परिछन चलीं।
जनु बिगसीं रबि-उदय कनक-पंकज-कलीं ॥ 148॥
नख सिख सुंदर राम-रूप जब देखहिं।
सब इंद्रिन्ह महँ इंद्र-बिलोचन लेखहिं॥ 149॥
परम प्रीति कुलरीति करहिं गज-गामिनि।
नहिं अघाहिं अनुराग भाग भरि भामिनि॥ 150॥
नेगचारु कहँ नागरि गहरू न लावहिं।
निरखि निरखि आनंद सुलोचनि पावहिं ॥ 151॥
करि आरती निछावरि बरहिं निहारहिं ।
प्रेम-मगन प्रमदागन तन न सँभारहिं॥ 152॥

नहिं तन सम्हारहिं छबि निहारहिं निमिष-रिपु जनु रन जए।
चक्रवै-लोचल राम-रूप-सुराज-सुख भागी भए॥
तब जनक सहित समाज राजहिं उचित रूचिरासन दए।

कौसिक बसिष्ठहि पूजि पूजे राउ दै अंबर नए॥ 153॥

देत अरघ रघुबीरहि मंडप लै चलीं।
करहिं सुमंगल गान उँमगि आनँद अली॥ 154॥
बर बिराज मंडप महँ बिस्व बिमोहइ।
ऋतु बसंत बन-मध्य मदन जनु सोहइ॥ 155॥
कुल-बिबहार, बेद-बिधि चाहिय जहँ जस।
उपरोहित दोउ करहिं मुदित मन तहँ तस॥ 156॥
बरहि पूजि नृप दीन्ह सुभग सिंहासन।
चलीं दुलहिनिहि ल्याइ पाइ अनुसासन॥ 157॥
जुबति जुत्थ महँ सीय सुभाइ बिराजइ।
उपमा कहत लजाइ भारती भाजइ॥ 158॥
दुलह दुलहिनिन्ह देखि नारि नर हरषहिं ।
छिनु छिनु गान निसान सुमन सुर बरषहिं॥ 159॥
लै लै नाउँ सुआसिनि मंगल गावहिं।
कुँवर कुँवरि हित गनपति गौरि पुजावहिं॥ 160॥
अगिनि थापि मिथिलेस कुसोदक लीन्हेउ।
कन्या-दान बिधान संकलप कीन्हेउ॥ 161॥

संकल्पि सिय रामहि समर्पी सील सुख सोभामई।
जिमि संकरहि गिरिराज गिरिजा, हरिहि श्री सागर दई॥
सिंदूर-बंदन होम लावा होन लागीं भाँवरी।
सिल-पोहनी करि मोहनी मन हर्‌यौ मूरति साँवरी॥ 162॥

यहि बिधि भयो बिवाह उछाह तिहूँ पुर।
देहिं असीस मुनीस सुमन बरषहिं सुर॥ 163॥
मन-भावत बिधि कीन्ह, मुदित भामिनि भईं।
बर दुलहिनिहि लवाइ सखी कोहबर गईं॥ 164॥
निरखि निछावर करहि बसन मनि छिनु छिनु।
जाइ न बरनि बिनोद मोदमय सो दिनु॥ 165॥
सिय-भ्राता के समय भोम तहँ आयउ।
दुरीदुरा करि नेगु सुनात जनायउ॥ 166॥
चतुर नारि बर कुँवरिहि रीति सिखावहिं।
देहिं गारि लहकौरि समौ सुख पावहिं॥ 167॥
जुआ खेलावन कौतुक कीन्ह सयानिन्ह।
जीति-हारि-मिस देहिं गारि दुहुँ रानिन्ह॥ 168॥

सीय-मातु मन मुदित उतारति आरति।
को कहि सकइ अनंद मगन भइ भारति॥ 169॥
जुबति जूथ रनिवास रहस बस एहि बिधि।
देखि देखि सिय राम सकल मंगलनिधि॥ 170॥

मंगल-निधान बिलोकि लोयन-लाह लूटति नागरी।
दइ जनक तीनिहु कुँवर बिबाहि सुनि आनँद-भरीं॥
कल्यान मो कल्यान पाइ बितान छबि मन मोहई।
सुर धेनु ससि, सुरमनि सहित मानहुँ कलप-तरू सोहई॥ 171॥

जनक-अनुज-तनया दइ परम मनोरम।
जेठि भरत कहँ ब्याहि रूप रति सय सम॥ 172॥
सिय लघु भगिनि लषन कहुँ रूप-उजागरि।
लषन-अनुज श्रुतकीरति सब-गुन-आगरि॥ 173॥
राम-बिबाह समान ब्याह तीनिउ भए।
जीवन-फल, लोचन-फल बिधि सब कहँ दए॥ 174॥
दाइज भयउ बिबिध बिधि, जाइ न सो गनि।
दासी, दास, बाजि, गज, हेम, बसन, मनि॥ 175॥

दान मान परमान प्रेम पूरन किए।

समधी सहित बरात बिनय बस करि लिए।176॥

गे जनवासे राउ, सृंग सुत सुतबहु।

जनु पाए फल चारि सहित साधन चहुँ॥ 177॥

चहुँ प्रकार जेवनार भई बहु भाँतिन्ह ।

भोजन करत अवधपति सहित बरातिन्ह॥ 178॥

देहि गारि बर नारि नाम लै दुहुँ दिसि

जेंवत बढ़ेउ अनंद, सुहावनि सो निसि॥ 179॥

सो निसि सोहावनि, मधुर गावति, बाजने बाजहिं भले।

नृप कियो भोजन पान, पाइ प्रमोद जनवासेहि चले॥

नट भाट मागध सूत जाचक जस प्रतापहिं बरनहीं॥

सानंद भूसुर-बृंद मनि गज देत मन करषैं नहीं॥ 180॥

करि करि बिनय कछुक दिन राखि बरातिन्ह।

जनक कीन्ह पहुनाई अगनित भाँतिन्ह॥ 181॥

“प्रात बरात चलिहि सुनि भूपति-भामिनि।

परि न बिरह-बस नींद, बीति गइ जामिनि॥ 182॥

खगभर नगर, नारि नर बिधिहि मनावहिं।

बार बार ससुरारि राम जेहि आवहिं ॥ 183॥

सकल चलन के साज जनक साजत भए ।

भाइन्ह सहित राम तब भूप-भवन गए॥ 184॥

सासु उतारि आरती करहिं निछावरि।

निरखि निरखि हिय हरषहिं मूरति साँवरि॥ 185॥

माँगेउ बिदा राम तब, सुनि करूना भरी।

परिहरि सकुच सप्रेम पुलकि पायन्ह परी॥ 186॥

सीय सहित सब सुता सौंपि कर जोरहिं।

बार बार रघुनाथहि निरखि निहोरहिं॥ 187॥

“तात तजिय जनि छोह मया राखबि मन।

अनुचर जानब राउ सहित पुर परिजन॥ 188॥

जन जानि करब सनेह, बलि” कहि दीन बचन सुनावहीं

अति प्रेम बारहिं बार रानी बालिकन्हि उर लावहीं॥

सिय चलत पुरजन नारि हय गज बिहँग मृग ब्याकुल भए॥

सुनि बिनय सासु प्रबोधि तब रघुबंस-मनि पितु पहिं गए॥ 189॥

परेउ निसानहिं घाउ राउ अवधहिं चले।

सुर-गन बरषहिं सुमन सगुन पावहिं भले॥ 190॥

जनक जानकिहि भेटि सिखाइ सिखावन।

सहित सचिव गुरु बंधु चले पहुँचावन॥ 191॥

प्रेम पुलकि कहि राय "फिरिय अब राजन।"

करत परस्पर बिनय सकल गुन-भाजन ॥ 192॥

कहेउ जनक कर जोरि "कीन्ह मोहि आपन।

रघुकुल-तिलक सदा तुम उथपन-थापन॥ 193॥

बिलग न मानब मोर जो बोलि पठायउँ।

प्रभु प्रसाद जस जानि सकल सुख पायउँ"॥ 194॥

पुनि बसिष्ठ आदिक मुनि बंदि महीपति।

गहि कौसिक के पाँय कीन्ह बिनती अति॥ 195॥

भाइन्ह सहित बहोरि बिनय रघुबीरहि।

गदगद कंठ, नयन जल, उर धरि धीरहिं॥ 196॥

"कृपा-सिंधु सुख-सिंधु सुजान-सिरोमनि।

तात! समय सुधि करबि छोह छाँड़ब जनि"॥ 197॥

जनि छोह छाँड़ब बिनय सुनि रघुबीर बहु बिनती करी।

मिलि भेटि सहित सनेह फिरेउ बिदेह मन धीरज धरी॥
सो समौ कहत न बनत कछु सब भुवन भरि करूना रहे।
तब कीन्ह कोसलपति पयान निसान बाजे गहगहे॥ 198॥

पंथ मिले भृगुनाथ हाथ फरसा लिये।
डाँटहिं आँखि देखाइ कोप दारून किए॥ 199॥
राम कीन्ह परितोष रोष रिस परिहरि।
चले सौंप सारंग सुफल लोचन करि॥ 200॥
रघुबर-भुज-बल देखि उछाह बरातिन्ह।
मुदित राउ लखि सन्मुख बिधि सब भाँतिन्ह॥ 201॥
एहि बिधि ब्याहि सकल सुत जग जसु छायउ।
मग-लोगन्हि सुख देत अवधपति आयउ॥ 202॥
होहिं सुमंगल सगुन सुमन सुर बरषहिं।
नगर कोलाहल भयउ नारि नर हरषहिं॥ 203॥
घाट बाट पुर द्वार बजार बनावहिं।
बीथीं सींचि सुगंध सुमंगल गावहिं॥ 204॥
चौकैं पुरैं चारू कलस ध्वज साजहिं।
बिबिध प्रकार गहागह बाजन बाजहिं॥ 205॥

बंदन वार बितान पताका घर घर।

रोपैं सफल सपल्लव मंगल तरूबर॥ 206॥

मंगल बिटप मंजुल बिपुल दधि दूब अच्छत रोचना।

भरि थार आरति सजहिं सब सारंग-सावक-लोचना॥

मन मुदित कौसल्या सुमित्रा सकल भूपति-भामिनी।

सजि साजि परिछन चलीं रामहिं मत्त-कुंजर-गामिनी॥ 207॥

बधुन्ह सहित सुत चारिउ मातु निहारहिं।

बारहिं बार आरती मुदित उतारहिं॥ 208॥

करहिं निछावरि छिनु छिनु मंगल मुद भरी।

दूलह दलहिनिन्ह देखि प्रेम-पय-निधि परीं॥ 209॥

देत पाँवड़े अरघ चलीं लै सादर ।

उमगि चलेउ आनंद भुवन भुहँ बादर॥ 210॥

नारि उहारि उहारि दुलहिनिन्ह देखहिं।

नैन-लाहु लहि जनम सफल करि लेखहिं॥ 211॥

भवन आनि सनमानि सकल मंगल किए।

बसन कनक मनि धेनु दान बिप्रन्ह दिए॥ 212॥

जाचक कीन्ह निहाल असीसहिं जहँ तहँ।

पूजे देव पितर सब राम-उदय कहँ।213॥

नेगचार करि दीन्ह सबहिं पहिरावनि।

समधी सकल सुआसिनि गुरुतिय पावनि ॥ 214॥

जोरी चारि निहारि असीसत निकसहिं।

मनहुँ कुमुद बिधु-उदय मुदित मन बिकसहिं॥ 215॥

बिकसहिं कुमुद जिमि देखि बिधु भइ अवध सुख सोभामई ।

एहि जुगुति राम बिबाह गावहिं सकल कबि कीरति नई। ।

उपबीत ब्याह उछाह जे सिय राम मंगल गावहीं।

तुलसी सकल कल्यान ते नर नारि अनुदित पावहीं॥ 216॥

गोस्वामी तुलसीदास

रामाज्ञा प्रश्न

[हिन्दीकोश]

रामाज्ञा प्रश्न

अष्टोत्तर सत कमल फल, मुष्टो तीनि प्रमान।

सप्त सप्त तजि सेष को, राखै सत्र बिलगान॥

प्रथम सर्ग जो सेष रह, दूजे सप्तक होइ।

तीजे दोहा जानिए, सगुन बिचारब सोइ॥

प्रथम सर्ग

सप्तक 1

बानि बिनायकु अबं रबि, गुरु हर रमा रमेस।

सुमिरि करहु सब काज सुभ मंगल देस बिदेस॥ 1॥

गुरु सरसइ सिंधुरबदन, ससि सुरसरि सुरगाइ।

सुमिरि चलहु मग मुदित मन, होइहि सुकृति सहाइ॥ 2॥

गिरा गौरि गुरु गनप हर, मंगल मंगलमूल।

सुमिरत करतल सिद्धि सब, होइ ईस अनुकूल॥ 3॥

भरत भारती रिपुदवनु, गुरु गनेस बुधवार।

सुमिरत सलभ सधरम फल, बिद्या विनय बिचार॥ 4॥

सुरगुरु गुरु सिय राम गन राउ गिरा उर आनि

जो कछु करिय सो होइ सुभ, खुलहिं सुमंगल खानि॥ 5॥

सुक्र सुमिरि गुरु सारदा, गनपु लषनु हनुमान।

करिय काज सबु साजु भल, निपटहि नीक निदान॥ 6॥

तुलसी तुलसी राम सिय, सुमिरि लषन हनुमान।

काजु बिचारेहु सो करहु, दिनु दिनु बड़ बल्यान॥ 7॥

सप्तक 2

दसरथ राज न ईति-भय, नहिं दुख दुरित दुकाल।

प्रमुदित प्रजा प्रसन्न सब, सब सुख सदा सुकाल॥ 1॥

कौसल्यापद नाइ सिर, सुमिरि सुमित्रापाय।

करहु काज मंगल कुसल, बिधि हरि संभु सहाय॥ 2॥

बिधिबस बन मृगया फिरत, दीन्ह अंध मुनि साप।

सो सुनि बिपति बिषाद बड़, प्रजहि सोक संताप॥ 3॥

सुतहित बिनती कीन्हि नृप, कुलगुरु कहा उपाउ।

होइहि भल संतान सुनि, प्रमुदित कोसलराउ॥ 4॥

पुत्रजागु करवाइ ऋषि,राजहिं दीन्ह प्रसाद।

सकल-सुमंगल-मूल जग, भूसुर-आसिरबाद॥ 5॥

रामजनम घर घर अवध, मंगल गान निसान।

सगुन सुहावन होइ सुत, मंगल-मोद-निधान॥ 6॥

राम भरतु सानुज लषनु, दसरथ बालक चारि।

तुलसी सुमिरत सगुन सुभ, मंगल कहब पचारि॥ 7॥

सप्तक 3

भूप-भवन भाइन्ह सहित, रघुबर बाल बिनोद।

सुमिरत सब कल्यान जग, पग पग मंगल मोद॥ 1॥

करनबेध चूड़ा करन, श्रीरघुबर उपबीत।

समय सकल कल्यानमय, मंजुल मंगल गीत॥ 2॥

भरत सत्रुसूदन लषनु, सहित सुमिरि रघुनाथ।

करहु काज सुभ साज सब, मिलहिं सुमंगल साथ॥ 3॥

राम लखनु कौसिक सहित सुमिरहु करहु पयान।

लच्छि लाभ जय जगत जसु, मंगल सगुन प्रमान॥ 4॥

मुनि मखपाल कृपाल प्रभु, चरनकमल उर आनु।

तजहु सोच, संकट मिटिहि, सत्य सगुन जिय जानु॥ 5॥

हानि मीचु दारिद दुरित, आदि अंत-गत बीच।

राम बिमुख अघ आपने, गये निसाचर नीच॥ 6॥

सिला-साप मोचन चरन, सुमिरहु तुलसीदास।

तजहु सोच, संकट मिटहि, पूजिहि मन कै आस॥ 7॥

सप्तक 4

सीय-स्वयंबर समउ भल, सगुन साध सब काज।

कीरति बिजय बिबाह विधि, सकल सुमंगल साज॥ 1॥

राजत राज-समाज महँ राम भंजि भव-चाप।

सगुन सुहावन, लाभ बड़, जय पर-सभा प्रताप॥ 2॥

लाभ-मोद-मंगल-अवधि, सिय रघुबीर विवाहु।

सकल सिद्धि-दायक समउ, सुभ सब काज उछाहु॥ 3॥

कोसल-पालक बाल-उर, सिय मेली जयमाल।

समउ सुहावन सगुन भल, मुद-मंगल सब काज॥ 4॥

हरषि बिबुध बरषसिं सुमन, मंगल गान निसान।

जय जय रबिकुल-कमल-रबि, मंगल-मोद-निधान॥ 5॥

सतानंद पठये जनक, दसरथ सहित समाज।

आये तिरहुत सगुन सुभ, भए सिद्ध सब काज॥ 6॥

दसरथ पूरन परम-बिधु, उदित समय संजोग।

जनक-नगर सर कुमुदगन, तुलसी प्रमुदित लोग॥ 7॥

सप्तक 5

मन मलीन मानी महिप, कोक कोकनद बृंद।

सुहृद-समाज चकोर चित, प्रमुदित परमानंद॥ 1॥

तेहि अवसर रावन-नगर, असगुन असुभ अपार।

होहिं हानि-भय-मरन-दुख-सूचक बारहिं बार॥ 2॥

मधु माधव दसरथ जनक, मिलब राज ऋतुराज।

सगुन सुवन नव दल सुतरु, फुलत फलत सुकाज॥ 3॥

बिनय-पराग सुप्रेम रस, सुमन सुभग संबाद।

कुसुमित काज रसाल तरु, सगुन सुकोकिल-नाद॥ 4॥

उदित भानु-कुल-भानु लखि, लुके उलूक नरेस।

गये गँवाई गरूर पति, धनु मिस हये महेस॥ 5॥

चारि चारु दसरथ कुँवर, निरखि मुदित पुर लोग।

कोसलेस मथिलेस को समउ सराहन जोग॥ 6॥

एक बितान बिबाहि सब, सुवन सुमंगल रूप।

तुलसी सहित समाज सुख, सुकृत-सिंधु दोउ भूप॥ 7॥

सप्तक 6

दाइज भयउ् अनेक बिधि, सुनि सिहाहिं दिसिपाल।

सुख संपति संतोषमय, सगुन सुमंगल माल॥ 1॥

बर दुलहिनि सब परसपर, मुदित पाइ मनकाम।

चारु चारि जोरी निरखि, दुहूँ समाज अभिराम॥ 2॥

चरिउ कुँवर बियाहि पुर, गवने दसरथ राउ।

भये मंजु मंगल सगुन, गुर-सुर-संभु-पसाउ॥ 3॥

पंथ परसु-धर आगमनु, समय सोच सब काहु।

राज-समाज विषाद बड़, भय बस मिटा उछाहु॥ 4॥

रोष कलुष लोचन भ्रुकुटि, पानि परसु धनु बान।

काल कराल बिलोकि मुनि, सब समाज बिलखान॥ 5॥

प्रभुहि सौपि सारंग मुनि, दीन्ह सुआसिरबाद।

जय मंगल सूचक सगुन राम राम संबाद॥ 6॥

अवध अनंद बधावनो, मंगल गान निसान।

तुलसी तोरन कलस पुर, चँवर पताक बितान॥ 7॥

सप्तक 7

साजि सुमंगल आरती, रहस बिबस रनिवासु।

मुदित मातु परिछन चलीं, उमगत हृदय हुलासु॥ 1॥

करहिं निछावरि आरती, उमगि उमगि अनुराग।

बर दुलहिन अनुरूप लखि, सखी सराहहिं भाग॥ 2॥

मुदित नगर नर नारि सब, सगुन सुमंगल मूल।

जय धुनि मुनि दुंदुभी, बाजहिं बरषहिं फुल॥ 3॥

आये कोसलपाल पुर, कृतज्ञ समाज समेत।

समउ सुन सुमिरत सुखद, सकल सिद्धि सुभ देत॥ 4॥

रूप सील बय बंस-गुन, सम बिबाह भये चारि।

मुदित राउ रानी सकल, सानुकूल त्रिपुरारि॥ 5॥

बिधि हरि हर अनुकुल अति दशरथ राजहि आजु।

देखि सराहत सिद्ध सुर, संपति समय समाजु॥ 6॥

सगुन प्रथम उनचास सुभ, तुलसी अति अभिराम।

सब प्रसन्न सुर भूमिसुर, गोगन गंगा राम॥ 7॥

द्वितीय सर्ग

सप्तक 1

समय राम-जुबराज कर, मंगल-मोद-निकेतु।

सगुन सुहावन संपदा, सिद्धि सुमंगल हेतु॥ 1॥

सुर-माया-बस केकयी, कुसमय किन्हि कुचालि।

कुटिल नारि मिस छलु, अनभल आजु कि कालि॥ 2॥

कुसमय कुसगुन कोटि सम, राम-सीय-बन-बास।

अनरथ-अनभल-अवधि जग, जानब सरबस-नास॥ 3॥

सोचत पुर-परिजन सकल, बिकल राउ-रनिवास।

छल मलीन मन तीय-मिस, बिपति बिषाद बिनास॥ 4॥

लषन-राम-सिय-बन-गमनु, सकल अमंगल मूल।

सोच पोच संताप बस, कुसमय संसय-सूल॥ 5॥

प्रथम बास सुरसरि निकट, सेवा कीन्हि निषाद।

कहब सुभासुभ सगुन फल, बिसमय हरष बिषाद॥ 6॥

चले नहाइ प्रयाग प्रभु, लखन सीय रघुराय।

तुलसी जानब सगुन फल, होइहि साधु समाज॥ 7॥

सप्तक 2

सीय रामु लोने लषनु तापस वेष अनुप।

तप तीरथ जप जाग हित, सगुन सुमंगल रूप॥ 1॥

सीता-लषन-समेत प्रभु, जमुना उतरि नहाइ।

चले सकल संकट-समन, सगुन सुमंगल पाइ॥ 2॥

अवध सोक-संताप बस, बिकल सकल नर-नारि।

बाम बिधाता राम बिनु, माँगत मीचु पुकारि॥ 3॥

लषन सीय रघुबंस-मनि, पथिक पाय उर आनि।

चलहु अगम मग सुगम सुभ, सगुन सुमंगल खानि॥ 4॥

ग्राम-नारि नर मुदित मन, लषन राम सिय देखि।

होइ प्रीति पहिचान बिनु, मान बिदेस बिसेषि॥ 5॥

बन मुनि-गन रामहि मिलहिं, मुदित सुकृत फल पाइ।

सगुन सिद्ध साधक दरस, अभिमान होइ अघाइ॥ 6॥

चित्रकुट पय-तीर प्रभु, बसे भानु-कुल-भानु।

तुलसी तप जप जोग हित, सगुन सुमंगल जानु॥ 7॥

सप्तक 3

हंस-बंस-अवतंस जब, कीन्ह बास पय पास।

तापस साधम सिद्ध मुनि, सब कहँ सगुन सुपास॥ 1॥

बिटप बेलि फुलहिं फलहिं, जल थल-बिमल बिसेषि।

मुदित किरात बिहंग मृग, मंगल-मूरति देखि॥ 2॥

सींचति सीय सरोज-कर बये बिटप बट बेलि।

समय सुकाल किसान-हित, सगुन सुमंगल केलि॥ 3॥

हय हाँके फिरी दखिन दिसि, हेरि हेरि हिहिनात।

भये निषाद बिषाद बस, अवध सुमंतहि जात॥ 4॥

सचिव सोच ब्याकुल सुनत, असगुन अवध प्रबेस।

समाचार सुनि सोक बस, माँगी मीचु नरेस॥ 5॥

राम राम कहि राम सिय, राम-सरन भये राउ।

सुमिरहु सीता राम अब, नाहिन आन उपाउ॥ 6॥

राम बिरह दसरथ मरनु, मुनि मन आगम सुमीचु।

तुलसी मंगल मरन-तरु, सुचि सनेह जल सींचु॥ 7॥

सप्तक 4

धीर बीर रघुबीर प्रिय सुमिरि समीर कुमारु।

अगम सुगम सब काज करु, करतल सिद्धि बिचारु॥ 1॥

सुमिरि सत्रु-सूदन-चरन, सगुन सुमंगल मानि।

परपुर बाद-बिबाद जय, जूझ जुआ जय जानि॥ 2॥

सेवक सखा सुबंधु हित, सगुन बिचारु बिसेषि।

भरत नाम गुनगन बिमल, सुमिरि सत्य सब लेषि॥ 3॥

साहिब समरथ सीलनिधि, सेवत सुलभ सुजान।

राम सुमिरि सेइय सुप्रभ, सगुन कहब कल्यान॥ 4॥

सुकृत-सील-सोभा-अवधि, सीय सुमंगल-खानि।

सुमिरि सगुन तिय धर्म हित, कहब सुमंगल जानि॥ 5॥

ललित लषन-मूरति हृदय, आनि धरें धनु-बान।

करहु काज सुभ सगुन सब, मुद मंगल कल्यान॥ 6॥

राम-नाम पर राम-ते, प्रीति प्रतीति भरोस।

सो तुलसी सुमिरत सकल, सगुन सुमंगल कोस॥ 7॥

सप्तक 5

गुरु आयुस आये भरत, निरखि नगर-नर-नारि।

सानुज सोचत पोच बिधि, लोचन मोचत बारि॥ 1॥

भूप-मरनु प्रभु-बन-गवनु, सब बिधि अवध अनाथ।
रीवत समुझि कुमात कृत्त, मीजि हाथ धुनि माथ॥ 2॥
बेद-बिहित पितु-करम करि, लिये संग सब लोग।
चले चित्रकूटहि भरत, ब्याकुल राम-बियोग॥ 3॥
राम-दरस हिय हरषु बड़, भूपति-मरन-बिषादु।
सोचत सकल समान सुनि, राम-भरत-संबादु॥ 4॥
सुनि सिख आसिष, पाँवरी, पाइ, नाइ पद माथ।
चले अवध संताप-बस बिकल लोग सब साथ॥ 5॥
भरत-नेम ब्रत धरम सुभ, राम-चरन-अनुराग।
सगुन समुझि साहस करिय, सिद्ध होइ जप जाग॥ 6॥
चित्रकूट सब दीन बसत प्रभु सिय-लषन समेत।
राम-नाम जप जापकहि, तुलसी अभिमत देत॥ 7॥

सप्तक 6

पय पावनि, बन-भूमि भलि, सैल सुहावन पीठ।
रागिहि सीठ बिसोषि थलु, बिषय-बिरागिहि मीठ॥ 1॥
फटिक-सिला मन्दाकिनी, सिय-रघुबीर-बिहारा।
राम-भगत हित सगुन सुभ, भूतल भगतिभँडार॥ 2॥

सगुन सकल-संकट-समन, चित्रकूट चलि जाहु।

सीता-राम-प्रसाद सुभ, लघु साधन बड़ लाहु॥ 3॥

दिए अत्रि-तिय जानकिहि, बसन बिभुषन भूरि।

राम-कृपा संतोष सुख, होहिं सकल दुख दुरि॥ 4॥

काक-कुचालि, बिराध-बध, देह तजी सरभंग।

हानि मरन-सूचक सगुन, अनरथ-असुभ प्रसंग॥ 5॥

राम लषन मुनि-गन मिलन, मंजुल मंगल-मूल।

सत समाज तब होइ जब, रमा राम अनुकुल॥ 6॥

मिले कुंभसंभव मुनिहिं, लषन सीय रघुराज।

तुलसी साधु-समाज-सुख, सिद्ध दरस सुभ काज॥ 7॥

सप्तक 7

सुनि मुनि आयसु प्रभु कियो, पंचबटी बर-बास।

भइ महि पावनि परसि पद, भा सब भाँति सुपात॥ 1॥

सरित सरोबर सजल सब, जलज बिपुल बहु-रंग।

समउ सुहावन सगुन सुभ, राजा प्रजा प्रसंग॥ 2॥

बिटप बेलि फूलहि फलहिं, सीतल सुखद समीर।

मुदित बिहँग मृग मधूप गन बन-पालक दोउ बीर॥ 3॥

मोदाकर गोदावरी, बिपिन सुखद सब काल।

निर्भय मुनि जप तप करहिं, पालक राम कृपाल॥ 4॥

भेंट गीध रघुराज सन, दुहुँ दिसि हृदय हुलासु।

सेवक पाइ सुसाहिबहि, साहिब पाइ सुदासु॥ 5॥

पढहिं पढ़ावहिं, मुनि-तनय, आगम निगम पुरान।

सगुन सुबिद्या लाभ-हित, जानब समय समान॥ 6॥

निज कर सींचित जानकी, तुलसी लाइ रसाल।

सुभ दूती उनचास भलि, बरषा कृषी सुकाल॥ 7॥

तृतीय सर्ग

सप्तक 1

दंडकबन पावन-करन, चरन-सरोज प्रभाउ।

ऊसर जामहि, खल तरहिं होइँ रंक तें राउ॥ 1॥

कपट-रूप मन-मलिन गइ, सुपनखा प्रभु पास।

कुसगुन कठिन कुनारि-कृत, कलह कलुष उपहस॥ 2॥

नाक कान बिनु बिकल भइ, बिकट कराल कुरूप।

कुसगुन, पाउ न देब मग, पग पग कंटक कूप॥ 3॥

खर दूषन देखी दुखित, चले साजि सब साज।

अनरथ असगुन अघ असुभ, अनभल अखिल अकाज॥ 4॥

कटु कुठाय करटा रटहिं, फेकरहिं फेरु कुभाँति।

नीच निसाचर मीचु-बस अनी मोह मद-माति॥ 5॥

राम-रोष-पावक प्रबल, निसिचर सलभ समान।

लरत परत जरि जरि मरत, भये भसम जगु जान॥ 6॥

सीता लषन समेत प्रभु, सोहत तुलसीदास।

हरषत सुर बरषत सुमन, सगुन सुमंगल बास॥ 7॥

सप्तक 2

सुभट सहस चौदह सहित, भाइ काल बस जानि।

सूपनखा लंकहि चली, असुभ अमंगल-खानि॥ 1॥

बसन सकल सोनित-समल, बिकट बदन गत गात।

रोवति रावन की सभा, तात मात, हा! भ्रात॥ 2॥

काल कि मुरति कालिका, कालराति बिकराल।

बिनु पहिचाने लंकपति, सभा सभय तेहि काल॥ 3॥

सूपनखा सब भाँति गत, असुभ अमंगल-मूल।

समय साढ़साती सरिस, नृपहि प्रजहि प्रतिकूल॥ 4॥

बरबस गवनत रावनहि, असगुन भए अपार।

नीचु गनत नहिं मीचु-बस मिलि मारीच बिचार॥ 5॥

इत रावन उत राम-कर, मीचु जानि मारीच।

कनक कपट-मृग-बेस तब, कीन्ह निसाचर नीच॥ 6॥

पंचबटी बट बिटप-तर, सीता लषन समेत।

सोहत तुलसीदास प्रभु, सकल सुमंगल देत॥ 7॥

सप्तक 3

मायामृग पहिचानि प्रभु, चले सीय-रुचि जानि।

बंचक चोर प्रपंच-कृत, सगुन कहब हित-हानि॥ 1॥

सीय-हरन अवसर सगुन, भय संसय संताप।

नारि-काज-हित निपट गत, प्रगट पराभव पाप॥ 2॥

गीधराज रावन समर, घायल बीर बिराज।

सूर सुजसु संग्राम महि, मरनु सुसाहिब काज॥ 3॥

राम लषनु बन बन बिकल फिरत सीय सुधि लेत।

सूचत सगुन बिषादु बड़, असुभ अरिष्ट अचेत॥ 4॥

रघुबर बिकल बिहंग लखि सो बिलोकि दोउ बीर।

सिय सुधि कहि 'सिय राम' कहि तजी देह मतिधीर॥ 5॥

दसरथ ते दसगुन भगति, सहित तासु करि काज।

सोचत बंधु समेत प्रभु, कृपासिंधु रघुराज॥ 6॥

तुलसी सहित सनेह नित, सुमिरहु सीताराम।

सगुन सुमंगल सुभ सदा, आदि मध्य परिनाम॥ 7॥

सप्तक 4

सकल काज सुभ समउ भल, सगुन सुमंगल जानु।

कीरति बिजय बिभूति भलि, हिय हनुमानहि आनु॥ 1॥

सुमिरि सत्रुसूदन-चरन, चलहु करहु सब काज।

सत्रु-पराजय निज बिजय, सगुन सुमंगल साज॥ 2॥

भरत नाम सुमिरत मिटहिं, कपट कलेस कुचालि।

नीति प्रीति परतीति हित, सगुन सुमंगल सालि॥ 3॥

राम-नाम कलि कामतरु, सकल सुमंगल कंद।

सुमिरत करतल सिद्धि जग, पग पग परमानंद॥ 4॥

सीता-चरन प्रनाम करि, सुमिरि सुनाम सनेम।

सुतिय होहिं पतिदेवता, प्राननाथ प्रिय प्रेम॥ 5॥

लषन ललित मूरति मधुर, सुमिरहु सहित सनेह।

सुख संपति कीरति बिजय, सगुन सुमंगल गेह॥ 6॥

तुलसी तुलसी मंजरीं, मंगल मंजुल मूल।

देखत सुमिरत सगुन सुभ, कलपलता फल फूल॥ 7॥

सप्तक 5

खल-बल अंध कबंध बस, परे सुबंधु समेत।

सगुन सोच संकट कहब, भूत प्रेत दुख देत॥ 1॥

पाई नीच सुमीचु भलि, मिटा महा-मुनि साप।

बिहँग-मरन सिय सोचु मन, सगुन सभय संताप॥ 2॥

काहि सबरी सब सीय-सुधि, प्रभु सराहि फल खात।

सोच समय संतोष मुनि, सगुन सुमंगल बात॥ 3॥

पवनसुवन सन भेंट भइक भूमि-सुता सुधि पाइ।

सोच-बिमोचन सगुन सुभ, मिला सुसेवक आइ॥ 4॥

राम लखन हनुमान मन, दुहुँ दिसि परम उछाहु।

मिला सुसाहिब सेवकहि, प्रभुहि सुसेवक लाहु॥ 5॥

कीन्ह सखा सुग्रीव प्रभु, दीन्हि बाँह रघुबीर।

सुभ सनेह हित सगुन फलु, मिटइ सोच भय-भीर॥ 6॥

बली बालि बलसलि दलि, सखा कीन्ह कपिराज।

तुलसी राम कृपालु को बिरद गरीब नेवाज॥ 7॥

सप्तक 6

बंधु-बिरोध न कुसल कुल, कुसगुन कोटि कुचालि।

रावन-रबि को राहु सो, भयो काल-बस बालि॥ 1॥

कीन्ह बास बरषा निरखि, गिरिबर सानुज राम।

काज बिलंबित सगुन फल, होइहि भल परिनाम॥ 2॥

सीय-सोध कपि भालु सब, बिदा किये कपिनाथ।

जतन करहु आलस तजहु, नाइ राम-पद माथ॥ 3॥

हनूमान हिय हरषि तब, राम जोहारे जाइ।

मंगल-मूरति मारुतिहि, सादर लीन्ह बुलाइ॥ 4॥

डाँटे बानर भालु सब, अवधि गये बिन काज।

जो आइहि सो काल-बस, कोपि कहा कपिराज॥ 5॥

जानि-सिरोमनि जानि जिय, कपि बल-बुद्धि-निधानु।

दीन्हि मुद्रिका मुदित प्रभु, पाइ मुदित हनुमानु॥ 6॥

तुलसी करतल सिद्धि सब, सगुन सुमंगल साज।

करि प्रनाम रामहि चलहु, साहस सिद्ध सुकाज॥ 7॥

सप्तक 7

नाथ हाथ माथे धरेउ, प्रभु-मुँदरी मुहँ मेलि।

चलेउ सुमिरि सारंगधर, आनिहि सिद्धि सकेलि॥ 1॥

संग नील नल कुमुद गद, जामवंत जुबराज।

चले राम-पद नाइ सिर, सगुन सुमंगल साज॥ 2॥

पैठि त्रिबर मिलि तापसिहि, अचइ पानि, फलु खाइ।

सगुन सिद्ध साधक दरस, अभिमत होइ अघाइ॥ 3॥

बनचर बिकल बिषाद-बस, देखि उदधि अवगाह।

असमंजस बढ़ सगुन गत, बिधि-बस होइ निबाह॥ 4॥

सब सभीत संपाति लखि, हहरे हृदय हरास।

कहत परस्पर गीध-गति, परिहरि जीवन-आस॥ 5॥

नव तनु पाइ देखाइ प्रभु, महिमा कथा सुनाइ।

धरहु धीर साहसु करहु, मुदित सीय-सुधि पाइ॥ 6॥

तुलसी राम-प्रभाउ कहि, मुदित चले संपाति।

सुभ तीसर उनचास भल, सगुन सुमंगल पाँति॥ 7॥

चतुर्थ सर्ग

सप्तक 1

राम-जनम सुभ सगुन भल, सकल सुकृत सुख-सारु।
पुत्र-लाभ कल्यानु बड़, मंगल-चारु बिचारु॥ 1॥
दसरथ कुल-गुरु की कृपा, सुत-हित जाग कराइ।
पायस पाइ बिभाग करि, रानिन्ह दीन्ह बुलाइ॥ 2॥
सब सगरभ सोहहि सदन, सकल सुमंगल-खानि।
तेज प्रताप प्रसन्नता, रूप न जाहिं बखानि॥ 3॥
देखि सुहावन सपन सुभ, सगुन सुमंगल पाइ।
कहहिं भूप सन मुदित, मन हर्ष न हृदय समाइ॥ 4॥
सपन सगुन सुनि राउ कह, कुलगुरु-आसिरबाद।
पूजिहि सब मन-कामना, संकर-गौरि-प्रसाद॥ 5॥
मास पाख तिथि जोग सुभ, नखत लगन ग्रह बार।
सकल सुमंगल मूल जग, राम लीन्ह अवतार॥ 6॥
भरत लषन रिपुदवन सब, सुवन सुमंगल मूल।
प्रगट भये नृप सुकृत-फल, तुलसी बिधि अनुकूल॥ 7॥

सप्तक 2

घर घर अवध बधावने, मुदित नगर-नर-नारि।

बरषि सुमन हरषहिं बिबुध, बिधि त्रिपुरारि मुरारि॥ 1॥

मंगल-गान निसान नभ, नगर मुदित नर-नारि।

भूप-सुकृत-सुरतरु निरखि फरे चारु फल चारि॥ 2॥

पुत्र-काज कल्यान नृप, दिये दान बहु भाँति।

रहस बिबस रनिवास सब, मुद मंगल दिन राति॥ 3॥

अनुदिन अवध बधावने, नित नव मंगल मोद।

मुदित मातु पितु लोग लखि, रघुबर बाल-बिनोद॥ 4॥

करनबेध चूड़ाकरन, लौकिक बैदिक काज।

गुरु आयसु भूपति करत, मंगल साज समाज॥ 5॥

राज-अजिर राजत रुचिर, कोसल पालक बाल।

जानु-पानि-चर चरित बर, सगुन सुमंगल माल॥ 6॥

लहे मातु पितु भोग-बस, सुत जग जलधि ललाम।

पुत्र-लाभ-हित सगुन सुभ, तुलसी सुमिरहु राम॥ 7॥

सप्तक 3

बाल बिभुषन-बसन-धर, धूरि-धूसरित अंग।

बालकेलि रघुबर करत, बाल-बंधु सब संग॥ 1॥

राम भरत लछिमन ललित, सत्रु समन सुभ नाम।

सुमिरत दसरथ-सुवन सब पूजिहिं सब मन-काम॥ 2॥

नाम ललित, लीला ललित, ललित रूप रघुनाथ।

ललित बसन, भूषन ललित, ललित अनुज-सिसु साथ॥ 3॥

सुदिन साधि मंगल किये, दिये भूप ब्रतबंध।

अवध बधाव ब्रिलोकि सुर, बरषत सुमन सुगंध॥ 4॥

भूपति भूसुर भाट नट, जाचक पुर-नर नारि।

दिये दान सनमानि सब, पूजे कुल-अनुहारि॥ 5॥

सखी सुआसिनि बिप्रतिय, सनमानी सब राय।

ईस मनाय असीस सुभ, देहि सनेह सुभाय॥ 6॥

राम-काज कल्यान सब, सगुन सुमंगल मूल।

चिर-जीवहु तुलसीस सब, कहि सुर बरषहिं फूल॥ 7॥

सप्तक 4

राम-जनम सुभ-काज सब, कहत देवऋषि आइ।

सुनि सुनि मन हनुमान के, प्रेम उमँग न अमाइ॥ 1॥

भरतु स्यामतन राम सम, सब गुन रूप-निधान।

सेवक सुखदायक सुलभ, सुमिरत सब कल्यान॥ 2॥

ललित लाहु लोने लषनु, लोयन-लाहु निहारि।

सुत ललाम लालहु ललित, लेहु ललकि फल चारि॥ 3॥

मंगल-मूरति मोद-निधि, मधुर मनोहर बेष।

रम अनुग्रह पुत्र-फल, होइहि सगुन बिसेष॥ 4॥

सोधत मख महि जनकपुर, सीय सुमंगल-खानि।

भूपति पुन्य पयोधि जनु, रमा प्रगट भइ आनि॥ 5॥

नाम सत्रुसूदन सुभग, सुषमा-सील-निकेत।

सेवत सुमिरत सुलभ सुख, सकल सुमंगल देत॥ 6॥

बालक कोसलपाल के सेवक-पाल कृपाल।

तुलसी मन-मानस बसत, मंगल मंजु मराल॥ 7॥

सप्तक 5

जनकनंदिनी जनकपुर, जब तें प्रगटीं आइ।

तब तें सब सुखसंपदा अधिक अधिक अधिकाइ॥ 1॥

सीय स्वयंबर जनकपुर सुनि सुनि सकल नरेस।

आए साज समाज सजि, भूषन बसन सुदेस॥ 2॥

चले मुदित कौसिक अवध, सगुन सुमंगल साथ।

आए सुनि सनमानि गृह, आने कोसलनाथ॥ 3॥

सादर सोरह भाँति नृप पूजि पहुनई कीन्हि।

बिनय बड़ाई देखि मुनि, अभिमत आसिष दीन्हि॥ 4॥

मुनि माँगे दसरथ दिये, रामु लषनु दोउ भाइ।

पाइ सगुन फल सुकृत फल प्रमुदित चले लेवाइ॥ 5॥

स्यामल गौर किसोर बर, धरें तून धनु बान।

सोहत कौसिक सहित मग, मुद मंगल कल्यान॥ 6॥

सैल सरित सर बाग बन,, मृग बिहंग बहुरंग।

तुलसी देखत जात प्रभु, मुदित गाधिसुत संग॥ 7॥

सप्तक 6

लेत बिलोचन-लाभु सब बड़भागी मग-लोग।

राम-कृपा दरसनु सुगम, अगन जाग जप जोग॥ 1॥

जलद-छाँह मृदु मग अवनि, सुखद पवन अनुकूल।

हरषत बिबुध बिलोकि प्रभु, बरषत सुरतरु-फूल॥ 2॥

दले मलिन खल, राखि मख, मुनि सिष आसिष दीन्ह।

बिद्या बिस्वामित्र सब, सुथल समरपित कीन्हि॥ 3॥

अभय किए मुनि राखि मखु, धरें बान धनु हाथ।
धनु मख कौतुक जनकपुर, चले गाधिसुत साथ॥ 4॥
गौतमतिय-तारन चरन, कमल आनि उर देषु।
सकल सुमंगल सिद्धि सब, करतल सगुन बिसेषु॥ 5॥
जनक पाइ प्रिय पाहुने, पूजे पूजन जोगु।
बालक कोसलपाल के, देखि मगन पुर-लोगु॥ 6॥
सनमाने आने सदन, पूजे अति अनुराग।
तुलसी मंगल सगुन सुभ, भूरि भलाई भाग॥ 7॥

सप्तक 7

कौसिक देखन धनुष मख, चले संग दोउ भाइ।
कुँवर निरखि पुर नारि नर, मुदित नयन-फल पाइ॥ 1॥
भूप-सभा भव-चाप दलि, राजत राजकिसोर।
सिद्धि सुमंगल सगुन सुभ, जय जय जय सब ओर॥ 2॥
जयमय मंजुल माल उर, मंगल-मूरति देषि।
गान निसान प्रसून झरि, मंगल मोद बिसेषि॥ 3॥
समाचार सुनि अवधपति, आए सहित समाज।
प्रीति परस्पर मिलत मुद, सगुन सुमंगल साज॥ 4॥

गान निसान बितान बर, बिरचे बिबिध बिधान।

चारि बिबाह उछाह बड़, कुसल काज कल्यान॥ 5॥

दाइज पाइ अनेक बिधि, सुत सुतबधुन समेत।

अवधनाथु आए अवध, सकल सुमंगल लेत॥ 6॥

चौथ चारु उनचास पुर, घर घर मंगलचार।

तुलसी सब दिन दाहिने, द्सरथ राजकुमार॥ 7॥

पंचम सर्ग

सप्तक 1

राम-नाम कलि-कामतरु, राम-भगति सुरधेनु।

सगुन सुमंगल मूल जग, गुरु-पद-पंकज रेनु॥ 1॥

जलधि-पार मानस अगम, रावन-पालित लंक।

सोच बिकल कपि भालु सब, दुहुँ दिसि संकट संक॥ 2॥

जामवंत हनुमान बलु, कहा पचारि पचारि।

राम सुमिरि साहसु करिय, मानिय हिये न हारि॥ 3॥

राम-काज लगि जनमु जग, सुनि हरषे हनुमान।
होइ पुत्र फलु सगुन सुभ, राम भगतु बलवान॥ 4॥
कहत उछाहु बढ़ाइ कपि, साथी सकल प्रबोधि।
लागत राम-प्रसाद मोहि, गोपद सरिस पयोधि॥ 5॥
राखि तोषि सबु साथ सुभ, सगुन सुमंगल पाइ।
कूदि कुधर चढ़ि आनि उर, सीय सहित दोउ भाइ॥ 6॥
हरषि सुमन बरषत बिबुध, सगुन सुमंगल होत।
तुलसी प्रभु लंघेउ जलधि, प्रभु प्रताप करि पोत॥ 7॥

सप्तक 2

राहु-मातु माया मलिन, मारी मारुत पूत।
समय सगुन मारग मिलहिं, छल मलीन खल धूत॥ 1॥
पूजा पाइ मिनाक पहिं, सुरसा कपि संबादु।
मारग अगम सहाय सुभ, होइहि राम-प्रसादु॥ 2॥
लंका लोलुप लंकिनी, काली काल कराल।
काल करालहि कीन्हि बलि, कालरूप कपि-काल॥ 3॥
मसक-रूप दसकंध-पुर, निसि कपि घर घर देषि।
सीय बिलोकि असोक तर, हरष बिसाद बिसेषि॥ 4॥

फरकत मंगल अंग सिय, बाम बिलोचन बाहु।
त्रिजटा सुनि कह सगुन फल, प्रिय सँदेस बड़ लाहु॥ 5॥
सगुन समुझि त्रिजटा कहति, सुनु, सिय! अबहीं आजु।
मिलिहि राम-सेवक कहिहि, कुसल लषनु रघुराजु॥ 6॥
तुलसी प्रभु गुन-गन बरनि, आपनि बात जनाइ।
कुसल खेम सुग्रीव-पुर, रामु लषन दोउ भाइ॥ 7॥

सप्तक 3

सुरुष जानकी जानि कपि, कहे सकल संकेत।
दीन्हि मुद्रिका, लीन्हि सिय, प्रीति प्रतीति समेत॥ 1॥
पाइ नाथ कर मुद्रिका, सिय-हिय हरष बिषादु।
प्राननाथ प्रिय सेवकहि, दीन्ह सुआसिरबादु॥ 2॥
नाथ-सपथ पन रोपि कपि, कहत चरन सिरु नाइ।
नहि बिलंब, जगदंब! अब आइ गये दोउ भाइ॥ 3॥
समाचार कहि सुनत प्रभु, सानुज सहित सहाय।
आए अब रघुबंस-मनि, सोचु परिहरिय माय॥ 4॥
गए सोच संकट सकल, भए सुदिन जिय जानु।
कौतुक सागर सेतु करि, आये कृपा-निधानु॥ 5॥

सकल सदन जमराजपुर, चलन चहत दसकंधु।
काल न देखत काल-बस, बीस-बिलोचन-अंधु॥ 6॥
आसिष आयसु पाय कपि, सीय-चरनु सिर नाइ।
तुलसी रावन-बाग-फल, खात बराइ बराइ॥ 7॥

सप्तक 4

सुर-सिरोमनि साहसी, सुमति समीर कुमार।
सुमिरत सब सुख संपदा, मुद मंगल-दातार॥ 1॥
सत्रुसमन पद-पंकरुह, सुमिरि करहु सब काज।
कुसल खेम कल्यान सुभ, सगुन सुमंगल साज॥ 2॥
भरत भलाई की अवधि, सील सनेह निधान।
धरम भगति भायप समय, सगुन कहब कल्यान॥ 3॥
सेवकपाल कृपाल-चित, रबि-कुल-कैरव-चंद।
सुमिरि करहु सब काज सुभ, पग पग परमानंद॥ 4॥
सिय-पद सुमिरि सुतीय हित, सगुन सुमंगल जान।
स्वामि सोहागिल भाग बड़, पुत्र-काजु कल्यान॥ 5॥
लछिमन पद-पंकज सुमिरि सगुन सुमंगल पाइ।
जय बिभूति कीरति कुसल, अभिमत लाभु अघाइ॥ 6॥

तुलसी कानन कमल-बन, सकल सुमंगल बास।

राम-भगति-हित सगुन सुभ, सुमिरत तुलसीदास॥ 7॥

सप्तक 5

रुख निपातत, खात फल, रक्षक अक्ष निपाति।

कालरूप बिकराल कपि, सभय निसाचर जाति॥ 1॥

बनु उजारि जारेउ नगर, कूदि कूदि कपिनाथ।

हाहाकार पुकारि सब, आरत मारत माथ॥ 2॥

पूँछ बुताइ प्रबोधि सिय, आइ गहे प्रभु पाय।

खेम कुसल जय जानकी, जय जय जय रघुराय॥ 3॥

सुनि प्रमुदित रघुबंस-मनि, सानुज सेन समेत।

चले सकल मंगल सगुन, बिजय सिद्धि कहि देत॥ 4॥

राम-पयान निसान नभ, बाजहिं गाजहिं बीर।

सगुन सुमंगल समय जय, कीरति कुसल सरीर॥ 5॥

कृपासिंधु प्रभु सिंधु सन, माँगेउ पंथु न देत।

बिनय न मानहिं जीव जड़, डाँटे नवहिं अचेत॥ 6॥

लाभु लाभु लोवा कहत, छेमकरी कह छेम।

चलत बिभीषन सगुन सुनि, तुलसी पुलकत पेम॥7॥

सप्तक 6

पाहि पाहि असरन-सरन, प्रनतपाल रघुराज।

दियो तिलक लंकेसु कहि, राम गरीब-नेवाज॥ 1॥

लंक असुभ चरचा चलति हाट, बाट, घर, घाट।

रावन सहित समाज अब जाइहि बारह बाट॥ 2॥

ऊकपात, दिकादाह दिन, फेकरहिं स्वान सियार।

उदित केतु, गतहेतु महि, कंपति बारहि बार॥ 3॥

राम-कृपा कपि भालु करि, कौतुक सागर सेतु।

चले पार बरसत बिबुध, सुमन सुमंगल हेतु॥ 4॥

नीच निसाचर मीचु बस, चले साजि चतुरंग।

प्रभु-प्रताप पावक प्रबल, उड़ि उड़ि परत पतंग॥ 5॥

साजि साजि बाहन चलहिं, जातुधानु बलवानु।

असगुन असुभ न गगहिं गत, आइ कालु नियरानु॥ 6॥

लरत भालु कपि सुभट सब, निदरि निसाचर घोर।

सिर पर समरथ राम सो, साहिब, तुलसी तोर॥ 7॥

सप्तक 7

मेघनादु, अतिकाय भट, परे महोदर खेत।

रावन भाइ जगाइ तब, कहा प्रसंगु अचेत॥ 1॥

उठि बिसाल बिकराल बड़, कुंभकरन जमुहान।

लखि सुदेस कपि भालु दल, जनु दुकाल समुहान॥ 2॥

राम स्याम बारिद सघन, बसन सुदामिनि माल।

बरषत सर हरषत बिबुध, दला दुकालु दयाल॥ 3॥

राम रावनहिं परसपर, होति रारि रन घोर।

लरत पचारि पचारि भट, समर सोर दुहुँ ओर॥ 4॥

बीस बाहु, दस सीस दलि, खंड खंड तनु कीन्ह।

सुभट सिरोमनि लंकपति, पाछे पाउ न दीन्ह॥ 5॥

बिबुध बजावत दुंदुभी, हरषत बरषत फूल।

राम बिराजत जीति रन, सुत सेवक अनुकूल॥ 6॥

लंका थापि बिभीषनहि, बिबधु बसाइ सुबास।

तुलसी जय मंगल कुसल, सुभ पंचम उनचास॥ 7॥

षष्ठ सर्ग

सप्तक 1

रघुबर-आयसु अमरपति, अमिय सींचि कपि भालु।
सकल जिआये सगुन सुभ, सुमरहु राम कृपालु॥ 1॥
सादर आनी जानकी, हनूमान प्रभु पास।
प्रीति परस्पर समउ सुभ, सगुन सुमंगल बास॥ 2॥
सीता-सपथ प्रसंग सुभ, सीतल भयउ कृसानु।
नेम प्रेम ब्रत धरम हित, सगुन सुहावनु जानु॥ 3॥
सनमाने कपि भालु सब, सादर साजु बिमानु।
सीय सहित, सानुज, सदल, चले भानु-कुल-भानु॥ 4॥
हरषत सुर, बरषत सुमन, सगुन सुमंगल गान।
अवधनाथु गवने अवध, खेम कुसल कल्यान॥ 5॥
सिंधु, सरोवर, सरित, गिरि, कानन, भूमि-बिभाग।
राम दिखावत जानकिहि उमँगि उमँगि अनुराग॥ 6॥
तुलसी मंगल सगुन सुभ, कहत जोरि जुग हाथ।
हंस-बंस-अवतंस जय, जय जय जानकि-नाथ॥ 7॥

सप्तक 2

अवध अनंदित लोग सब, ब्योम बिलोकि बिमानु।
मनहूँ कोकनद कोक मद, मुदित उदित लखि भानु॥ 1॥

मिले गुरुहि, जन, परिजनहि, भेंटत भरत सप्रीति।
लषनु रामु सिय कुसल पुर, आए रिपु रन जीति॥ 2॥

उदबस अवध अनाथ सब, अंब-दसा दुख देखि।
रामु लषनु सीता सकल, बिकल बिषाद बिसेखि॥ 3॥

मिली मातु, हित, गुरु, सनमाने सब लोग।
सगुन समय बिसमय हरष, प्रिय संजोग बियोग॥ 4॥

अमर अनंदित, मुनि मुदित, मुदित भुवन दस-चारि।
घर घर अवध बधावने, मुदित नगर-नर-नारि॥ 5॥

सुदिन सोधि गुरु बेद-बिधि, कियो राज-अभिषेक।
सगुन सुमंगल सिद्धि सब, दायक दोहा एक॥ 6॥

भाँति भाँति उपहार लेइ, मिलत जुहारत भूप।
पहिराए सनमानि सब, तुलसी सगुन अनूप॥ 7॥

सप्तक 3

जय-धुनि गान निसान सुर, बरषत सुरतरु फूल।

भये रामु राजा अवध, सगुन सुमंगल मूल॥ 1॥

भालु, बिभीषन, कीसपति, पूजे सहित समाज।

भली भाँति सनमानि सब, बिदा किये रघुराज॥ 2॥

राम-राज संतोष सुख, घर, बन सकल सुपास।

तरु सुरतरु, सुरधेनु महि, अभिमत भोग बिलास॥ 3॥

राम-राज सब काम कहँ, नीक एक ही आँक।

सकल सगुन मंगल कुसल, होइहि बारु न बाँक॥ 4॥

कुंभकरन रावन सरिस, मेघनाद से बीर।

ढहे समूल बिसाल तरु, काल-नदी के तीर॥ 5॥

सकुल सदल रावन सरिस, कवलित काल कराल।

सोच पोच असगुन असुभ, जाय जीव जंजाल॥ 6॥

अबिचल राज बिभीषनहि दीन्ह राज रघुराज।

अजहुँ बिराजत लंक पुर, तुलसी सहित समाज॥ 7॥

सप्तक 4

मंजुल मंगल मोद-मय, मूरत मारुत-पूत।

सकल सिद्धि कर-कमल-तल, सुमिरत रघुबर-दूत॥ 1॥

सगुन समय सुमिरत सुखद, भरत-आचरनु चारु।

स्वामि-धरम ब्रत पेम हित, नेम निबाह निहारु॥ 2॥

ललित लषन-लघु-बंधु पद, सुखद सगुन सब काहु।

सुमिरत सुभ कीरति बिजय, भूमि ग्राम गृह लाहु॥ 3॥

रामचन्द्र-मुख-चंद्रमा, चित चकोर जब होइ।

राम-राज सब काज सुभ, समउ सुहावन सोइ॥ 4॥

भूमि-नंदिनी-पद-पदुम, सुमिरत सुभ सब काज।

बरषा भलि, खेती सुफल, प्रमुदित प्रजा सुराज॥ 5॥

सेवक, सखा, सुबंधु हित, नाइ लषनु-पद माथु।

कीजिय प्रीति प्रतीति सुभ, सगुन सुमंगल साथु॥ 6॥

राम-नाम रति, नागमति, राम नाम बिस्वास।

सुमिरत सुभ मंगल कुसल, तुलसी तुलसीदास॥ 7॥

सप्तक 5

बिप्र एक बालक मृतक, राखेउ राम दुआर।

दंपति बिलपत सोक अति, आरत करत पुकार॥ 1॥

राम सोच संकोच सब, सचिव बिकल संताप।

बालक-मीचु अकाल भइ, राम-राज केहि पाप॥ 2॥

बिबुध बिमल बानी गगन, हेतु प्रजा अपचारु।

राम-राज परिनाम भल, कीजिय बेगि बिचारु॥ 3॥

कोसल-पाल कृपाल चित, बालक दीन्ह जिआइ।

सगुन कुसल कल्यान सुभ, रोगी उठै नहाइ॥ 4॥

बालकु जिया बिलोकि सब, कहत उठा जनु सोइ।

सोच-बिमोचन सगुन सुभ, राम-कृपा भल होइ॥ 5॥

सिला सुतिया भइ, गिरि तरे, मृतक जिये जग जान।

राम अनुग्रह सगुन सुभ, सुलभ सकल कल्यान॥ 6॥

केवट निसिचर बिहँग मृग, किये साधु सनमानि।

तुलसी रघुबन की कृपा, सगुन सुमंमगल-खानि॥ 7॥

सप्तक 6

राम-राज राजत सकल, धरम निरत नर-नारि।

राग न रोष न दोष दुख, सुलभ पदारथ चारि॥ 1॥

खग उलूक झगरत गये, अवध जहाँ रघुराउ।

नीक सगुन बिबरिहि झगर, होइहि धरम निआउ॥ 2॥

जती-स्नान संबाद सुनि, सगुन कहब जिय जानि।

हंस-बंस-अवतंस-पुर बिलग होत पय पानि॥ 3॥

राम कुचरचा करहिं सब, सीतहि लाइ कलंका।

सदा अभागी लोग जग, कहत सकोचु न संक॥ 4॥

सती सिरोमनि सीय तजि, राखि लोग रुचि राम।

सहे दुसह दुख सगुन गत, प्रिय बियोगु परिनाम॥ 5॥

बरन-धरम आस्त्रम धरम, निरत सुखी सब लोग।

राम-राज मंगल सगुन, सुफल जाग जप जोग॥ 6॥

बाजिमेध अगनित किए, दिए दान बहु भाँति।

तुलसी राजा राम जग, सगुन सुमंगल पाँति॥ 7॥

सप्तक 7

असमंजसु बड़ सगुन गत, सीता-राम-बियोग।

गवन बिदेस कलेस कलि, हानि पराभव रोग॥ 1॥

मानिय सिय अपराध बिनु, प्रभु परिहरि पछितात।

रुचै समाज न राज-सुख, मन मलीन कृस गात॥ 2॥

पुत्र-लाभ लव-कुस-जनम, सगुन सुहावन होइ।

समाचार मंगल कुसल, सुखद सुनावइ कोइ॥ 3॥

राज-सभा लव-कुस-ललित, किए राम गुन गान।

राज-समाज सगुन सुभ, सुजस लाभ सनमान॥ 4॥

बालमीकि लव कुस सहित, आनी सिय सुनि राम।
हृदय हरषु जानब प्रथम, सगुन सोक परिनाम॥ 5॥
अनरथ असगुन अति असुभ, सीता-अवनि-प्रबेसु।
समय सोक संताप भय, कलह कलंक कलेसु॥ 6॥
सुभग सगुन उनचार रस, राम-चरित-मय चारु।
राम-भगत हित सफल सब, तुलसी बिमल बिचारु॥ 7॥

सप्तम सर्ग

सप्तक 1

राम लषनु सानुज भरत, सुमिरत सुभ सब काज।
सहित प्रीति परतीति हित, सगुन सकल सुभ काज॥ 1॥
सुख-मुद-मंगल-कुमुद बिधु, सगुन-सरोरुह-भानु।
करहु काज सब, सिद्धि सुभ, आनि हिये हनुमान॥ 2॥
राजकाज, मनि, हेम, हय, रामरूप रबिवार।
कहब नीक जयलाभ सुभ, सगुन समय अनुहार॥ 3॥

रस गोरस खेती सकल, बिप्रकाज सुभ साज।

राम-अनुग्रह सोमदिन, प्रमुदित प्रजा सुराज॥ 4॥

मंगल मंगल भूमि हित, नृपहित जय संग्राम।

सगुन बिचारब समय सम, करि गुरुचरन प्रनाम॥ 5॥

बिपुल, बनिज, बिद्या, वसन, बुध विसेषि गृहकाजु।

सगुन सुमंगल कहब सुभ, सुमिरि सीय रघुराजु॥ 6॥

गुरुप्रसाद मंगल सकल, रामराज सब काज।

जज्ञ, बिवाह-उछाह ब्रत, सुभ तुलसी सब साज॥ 7॥

सप्तक 2

सुक्र सुमंगल काज सब, कहब सगुन सुभ देखि।

जंत्र मंत्र मनि औषधि, सहसा सिद्धि बिसेषि॥ 1॥

रामकृपा थिर काज सुभ, सनि-बासर बिस्राम।

लोह, महिष, गज, बानज भल, सुख सुपास गृह ग्राम॥ 2॥

राहु केतु उलटे चलहिं, असुभ अमगंल मूल।

रुंड मुड पाषंड-प्रिय, असुर अमर प्रतिकूल॥ 3॥

समउ राहु रवि-गहनु-मत, राजहिं प्रजहिं कलेस।

सगुन सोच संकट बिकट, कलह कलुष दुख देस॥ 4॥

राहु सोम संगमु बिषमु, असगुन उदधि अगाधु।

ईति भीति खल दल प्रबल, सीदहि भूसुर साधु॥ 5॥

सात पाँच ग्रह एक थल, चलहिं बाम गति धाम।

राज विराजिय समउ गत, सुभहित सुमिरहु राम॥ 6॥

खेती बनि बिद्या बनिज, सेवा सिलिप सुकाज।

तुलसी सुरतरु सरिस सब, सुफल राम के राज॥ 7॥

सप्तक 3

सुधा, साधु, सुरतरु, सुमन, सुफल सुहावनि बात।

तुलसी सीतापति-भगति, सगुन सुमंगल सात॥ 1॥

सिद्ध समागम सपदा, सदन सरीर सुपास।

सीतानाथ-प्रसाद सुभ, सगुन सुमंगल बास॥ 2॥

कौसल्या कल्यानमय, मूरति करत प्रनामु।

सगुन सुमंगल काज सुभ, कृपा करहिं सियरामु॥ 3॥

सुमिरि सुमित्रा नाम जग, जे तिय लेहिं सुनेम।

सबन लखन रिपुदवनु से, पावहिं पति-पद-प्रेम॥ 4॥

दसरथ नाम सुकामतरु, फलइ सकल कल्यान।

धरनि धाम धन धरम सुख, सुत गुन-रूप-निधान॥ 5॥

कलह कपट कलि कैकई, सुमिरत काज नसाइ।

हानि मीचु दारिद दुरित, असगुन असुभ अघाइ॥ 6॥

राम बास दिसि जानकी, लषनु दाहिनी ओर।

ध्यान सकल कल्यानमय, सुरतरु तुलसी तोर॥ 7॥

सप्तक 4

मध्यम दिन, मध्यम दसा, मध्यम सकल समाज।

नाइ माथ रघुनाथपद, जानब मध्यम काज॥ 1॥

हित पर बढ़इ विरोधु जब, अनहित पर अनुराग।

रामबिमुख बिधि बामगत सगुन अघाइ अभाग॥ 2॥

कृपन देइ, पाइय परो, बिन साधन सिधि होइ।

सीतापति सनमुख समुझि, जो कीजिय सुभ सोइ॥ 3॥

पहिले हित परिनामगत, बीच बीच भल सोच।

सगुन कहब अस रामगति, कहिब समेत सँकोच॥ 4॥

रमा रमापति गौरि हरु, सीताराम सनेहु।

संपति-हित, संपति सकल, सगुन सुमंगल गेहु॥ 5॥

प्रीति प्रतीति न रामपद, बड़ी आस, बड़ लोभ।

नहिं सपनेहुँ संतोष सुख, जहाँ तहाँ मन छोभ॥ 6॥

पय नहाइ, फल खाइ, जपु, रामनाम षट मास।

सगुन सुमंगल सिद्धि सब, करतल तुलसीदास॥ 7॥

सप्तक 5

बड़ कलेस, कारज अलप, बड़ी आस, लहु लाहु।

उदासीन सीतारमन, समय सरिस निरबाहु॥ 1॥

दस दिसि दुख दारिद् दुरित, दुसह दसा दिन दोष।

फेरे लोचन राम अब, सनमुख साज सरोष॥ 2॥

खेती बनिज न, भीख भलि, अफल उपाय कदंब।

कुसमय जानब, बाम बिधि, रामनाम अवलंब॥ 3॥

पुरुषारथ स्वारथ सकल, परमारथ परिनाम।

सुलभ सिद्धि सब सगुन सुभ, सुमिरत सीताराम॥ 4॥

भागु भाग तजि भालथलु, आलस ग्रसे उपाउ।

असुभ अमंगल सगुन सुनि, सरन राम के आउ॥ 5॥

गइ बरषा करषक बिकल, सूखत सालि सुनाज।

कुसुमउ कुसगुन कलह कलि, प्रजहि कलेसु कुराज॥ 6॥

तुलसी तुलसी राम सिय, सुमिरहु लषन समेत।

दिन दिन उदउ अनंद अब, सगुन सुमंगल देत॥ 7॥

सप्तक 6

उदबस अवध नरेस बिनु, देस दुखी नर नारि।
राजभंग कुसमाज बड़, गत ग्रह-चालि बिचारि॥ 1॥
अवध-प्रवेस अनंदु बड़, सगुन सुमंगल माल।
राम-तिलक-अवसर कहब, सुख संतोष सुकाल॥ 2॥
राम-राज-बाधक बिबुध, कहब सगुन सति भाउ।
देखि देवकृत दोष दुख, कीजिय उचित उपाउ॥ 3॥
मंद मंथरा मोहबस, कुटिल कैकई कीन्ह।
ब्याधि बिपति सब देवकृत, समय सगुन कहि दीन्ह॥ 4॥
रामबिरह दसरथ दुखित, कहति कैकई काकु।
कुसमय जाय उपाय सब, केवल करमबिपाकु॥ 5॥
लखन राम सिय बसत बन, बिरह-बिकल पुरलोग।
समय सगुन कह करमबस, दुख सुख जोग बियोग॥ 6॥
तुलसी लाइ रसाल तरु निज कर सींचत सीय।
कृषी सफल भल सगुन सुभ, समउ कहब कमनीय॥ 7॥

सप्तक 7

सुदिन साँझ पोथी नेवति, पूजि प्रभात सप्रेम।
सगुन बिचारब चारुमति, सादर सत्य सनेम॥ 1॥
मुनि गनि, दिन गनि, धातु गनि, दोहा देखि बिचारि।
देस, करम, करता, बचन, सगुन समय अनुहारि॥ 2॥
सगुन सत्य ससि नयन गुन, अवधि अधिक नयवान।
होइ सुफल सभु जासु जसु, प्रीति प्रतीति प्रमान॥ 3॥
गुरु गनेस हरु गौरि सिय, रामु लषनु हनुमानु।
तुलसी सादर सुमिर सब, सगुन बिचार बिधानु॥ 4॥
हनूमान सानुज भरत, राम सीय उर आनि।
लषन सुमिरि तुलसी कहत, सगुन बिचारु बखानि॥ 5॥
जो जेहि काजहि अनुहरइ, सो दोहा जब होइ।
सगुन समय सब सत्य सब, कहब रामगति गोइ॥ 6॥
गुन विस्वास बिचित्र मनि, सगुन मनोहर हारु।
तुलसी रघुबर-भगत-उर, बिलसत बिमल बिचारू॥ 7॥

(इति)

गोस्वामी तुलसीदास

दोहावली

[हिन्दीकोश]

दोहावली

(दोहा)

राम बाम दिसि जानकी लषन दाहिनी ओर ।

ध्यान सकल कल्यानमय सुरतरू तुलसी तोर॥ 1॥

सीता लषनु समेत प्रभु, सोहत तुलसीदास।

हरषत सुर, बरषत सुमन सगुन सुमंगल-बास॥ 2॥

पंचवटी बट-बिटप-तर सीता-लषन-समेत।

सोहत तुलसीदास प्रभु सकल सुमंगल देत॥ 3॥

चित्रकूट सब दिन बसत प्रभु सिय-लषन-समेत।

राम-नाम-जप जापकहि तुलसी अभिमत देत॥ 4॥

पय अहार फल खाइ जपु राम-नाम षट मास।

सकल सुमंगल सिद्धि सब करतल तुलसीदास ॥ 5॥

रामनाम-मनि-दीप धरू जीह-देहरी द्वार।

तुलसी भीतर बाहिरौ जौ चाहसि उजियार॥ 6॥

हिय निर्गुन, नयनन्हि सगुन, रसना राम सुनाम।

मनहुँ पुरट [1] संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम॥ 7॥

सगुन ध्यान रूचि सरस नहिं, निर्गुन मन तें दूरि।

तुलसी सुमिरहु राम को नाम सजीवन-मूरि॥ 8॥

एक छत्र, इक मुकुटमनि, सब बरनन पर जोउ।

तुलसी रघुबर-नाम के बरन बिराजत दोउ॥ 9॥

रामनाम को अंक है सब साधन हैं सून।

अंक गये कछु हाथ नहिं अंक रहे दसगून॥ 10॥

नाम राम को कलपतरू कलि कल्यान-निवास।

जो सुमिरत भयो भाग तें तुलसी तुलसीदास॥ 11॥

रामनाम जपि जीह जन भए सुकृत सुखसालि।

तुलसी इहाँ जो आलसी गयो आजु की कालि॥ 12॥

नाम गरीबनिवाज को राज देत जन जानि।

तुलसी मन परिहरत नहिं घुरबिनिआ [2] की बानि॥ 13॥

कासी बिधि बसि तनु तजै हठि तनु तजै प्रयाग।

तुलसी जो फल सो सुलभ राम-नाम अनुराग॥ 14॥

मीठो अरू कठवति भरौ रौताई अरू खेम।

---

[^1] पुरट = सोना।

[^2] घुरबिनिआ = घुर (कूड़ाघर) में पड़े दाने चुननेवाली।

स्वारथ परमारथ सुलभ राम-नाम के प्रेम॥ 15॥

राम-नाम सुमिरत सुजस भाजन भए कुजाति।

कुतरू कुसरपुर-राजमग लहत भुवन-बिख्याति॥ 16॥

स्वारथ सुख सपनेहुँ अगम परमारथ न प्रबेस।

राम-नाम सुमिरत मिटहिं तुलसी कठिन कलेस॥ 17॥

'मोर मोर' सब कहँ कहिस तू को? कहु निज नाम।

कै चुप साधहि सुनि समुझि कै तुलसी जपु राम॥ 18॥

हम लखि, लखहि हमार, लखि हम हमार के बीच।

तुलसी अलखहि का लखहि? राम-नाम जपु नीच॥ 19॥

राम-नाम-अवलंब बिनु परमारथ की आस।

बरषत बारिद बूँद गहि चाहत चढ़न अकास॥ 20॥

तुलसी हठि हठि कहत नित चित सुनि हित करि मानि।

लाभ राम सुमिरन बड़ो बड़ी बिसारे हानि॥ 21॥

बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु।

होहि राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु॥ 22॥

प्रीति प्रतीति सुरीति सों राम-राम जपु राम।

तुलसी तेरो है भलो आदि मध्य परिनाम॥ 23॥

दंपति रस रसना, दसन परिजन, बदन सुगेह।

तुलसी हरहित बरन [1] सिसु संपति सहज सनेह॥ 24॥

बरषा-ऋतु रघुपति-भगति तुलसी सालि सुदास।

रामनाम बर बरन जुग सावन भादौ मास॥ 25॥

राम-नाम नर-केसरी कनककसिपु कलिकालु।

जापक-जन प्रहलाद जिमि पालहि दलि सुरसाल [2]॥ 26॥

राम-नाम कलि कामतरु सकल सुमंगल कंद।

सुमिरत करतल सिद्धि सब पग पग परमानंद॥ 27॥

रामनाम कलि कामतरु राम-भगति सुरधेनु।

सकल सुमंगल मूल जग गुरुपद-पंकज-रेनु॥ 28॥

जथा भूमि सब बीज मै नखत-निवास अकास।

रामनाम सब धरम मै जानत तुलसीदास॥ 29॥

सकल कामना हीन जे राम-भगति-रस-लीन।

नाम प्रेम-पीयुष-ह्रद तिनहुँ किए मन मीन॥ 30॥

ब्रह्म राम तें नाम बड़ बर-दायक बर-दानि।

राम-चरित [3] सत-कोटि महँ लिय महेस जिय जानि॥ 31॥

---

[^1] हरहित बरन = रामनाम।

[^2] सुरसाल = राक्षस

[^3] रामचरित = रामायण।

सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्ह रघुनाथ।

नामु उधारे अमित खल बेद-बिदित गुन-गाथ॥ 32॥

रामनाम पर नाम तें प्रीति प्रतिति भरोस।

सो तुलसी सुमिरत सकल सगुन-सुमंगल-कोस॥ 33॥

लंक बिभीसन, राज कपि, पति मारूति, खग मीच।

लही राम सों नाम-रति चाहत तुलसी नीच॥ 34॥

हरन अमंगल अघ अखिल करन सकल कल्यान ।

रामनाम नित कहत हर गावत बेद पुरान॥ 35॥

तुलसी प्रीति प्रतीति सों रामनाम-जप-जाग।

किए होय बिधि दाहिनो देइ अभागेहि भाग॥ 36॥

जल थल नभ गति अमित अति, अग जग जीव अनेक।

तुलसी तो से दीन कहँ रामनाम-गति एक॥ 37॥

राम भरोसो, राम बल, रामनाम बिस्वास।

सुमिरत सुभ मंगल कुसल माँगत तुलसीदास॥ 38॥

रामनाम रति, राम गति रामनाम बिस्वास।

सुमिरत सुभ मंगल कुसल, दुहुँ दिसि तुलसीदास॥ 39॥

रसना साँपिन, बदन बिल, जे न जपहिं हरिनाम।

तुलसी प्रेम न राम सों ताहि बिधाता बाम॥ 40॥

हिय फाटहू, फूटहु नयन, जरउ सो तन केहि काम।

द्रवहिं, स्रवहिं, पुलकहिं नहीं तुलसी सुमिरत राम॥ 41॥

रामहिं सुमिरत, रन भिरत, देत, परत गुरु पाय।

तुलसी जिनहि न पुलक तनु ते जग जीवत जाय॥ 42॥

(सोरठा)

हृदय से कुलिस समान जो न द्रवहि हरिगुन सुनत।

कर न रामगुन-गान जीह सो दादुर-जीह सम॥ 43॥

स्रवै न सलिल सनेह तुलसी सुनि रघुबीर-जस।

ते नयना जनि देहु राम करहु बरू आँधरो॥ 44॥

रहैं न जल भरि पूरि, राम! सुजस सुनि रावरो ।

तिन आँखिन में धूरि भरि भरि मूठी मेलिए॥ 45॥

बारक सुमिरत तोहि होहि तिनहिं सम्मुख सुखद ।

क्यौं न सँभारहि मोहि, दया-सिंधु दसरत्थ के?॥ 46॥

साहिब होत सरोष सेवक को अपराध सुनि।

अपने देखे दोष सपनेहु राम न उर धरेउ॥ 47॥

(दोहा)

तुलसी रामहि आपु तें सेवक की रूचि मीठि।

सीतापति से साहिबहि कैसे दीजै पीठि॥ 48॥

तुलसी जाके होयगी अंतर बाहिर दीठि।

सो कि कृपालुजि देइगो केवटपालहि पीठि ?॥ 49॥

प्रभु तरू-तर, कपि डार पर, ते किए आपु समान।

तुलसी कहूँ न राम सो साहिब सील-निधान॥ 50॥

रे मन! सब सों निरस ह्वै सरस राम सों होहि।

भलो सिखावन देत है निसि दिन तुलसी तोहि॥ 51॥

हरे चरहिं, तापहिं बरत, फरें पसारहिं हाथ।

तुलसी स्वारथ मीत सब, परमारथ रघुनाथ॥ 52॥

स्वारथ सीताराम सों, परमारथ सियराम।

तुलसी तेरो दूसरे द्वार कहा कहु काम। 53॥

स्वारथ परमारथ सकल सुलभ एक ही ओर।

द्वार दूसरे दीनता उचित न तुलसी तोर॥ 54॥

तुलसी स्वारथ राम हित परमारथ रघुबीर।

सेवक जाके लषन से पवनपूत रनधीर॥ 55॥

ज्यों जग बैरी मीन को, आपु सहित, बिनु बारि ।

त्यों तुलसी रघुबीर बिनु गति आपनी बिचारि॥ 56॥

रामप्रेम बिनु दूबरो, रामप्रेम ही पीन।

रघुबर कबहुँक करहुगे, तुलसी ज्यों जल मीन॥ 57॥

राम सनेही, राम गति, रामचरन रति जाहि।

तुलसी फल जग-जनम को दियो बिधाता ताहि॥ 58॥

आपु आपने तें अधिक जेहि प्रिय सीताराम।

तेहि के पग की पानहीं तुलसी-तनु को चाम॥ 59॥

स्वारथ परमारथ रहित सीताराम-सनेह ।

तुलसी सो फल चारि को फल हमार मत एह॥ 60॥

जे जन रूखे बिषय-रस, चिकने राम-सनेह।

तुलसी ते प्रिय राम को, कानन बसहिं कि गेह॥ 61॥

जथा लाभ संतोष सुख, रघुबर चरन-सनेह।

तुलसी जौ मन खूँद [1] सम कानन बसहु कि गेह॥ 62॥

तुलसी जोपै राम सो, नाहिन सहज सनेह ।

मूँड़ मुड़ायो बादि ही, भाँड़ भयो तजि गेह॥ 63॥

तुलसी श्रीरघुबीर तजि करै भरोसो और ।

सुख संपति की का चली नरकहु नाहीं ठौर॥ 64॥

तुलसी परिहरि हरि हरहि पाँवर पूजहिं भूत।

[^1] खूँद = घोड़े की उछल कूद की चाल।

अंत फजीहत होहिंगे गनिका के से पूत॥ 65॥

सेए सीताराम नहिं, भजे न संकर गौरि।

जनम गँवायो बादि हीं परत पराई पौरि॥ 66॥

तुलसी हरि अपमान तें होइ अकाज समाज।

राज करत रज मिलि गए सदल सकुल कुरूराज॥ 67॥

तुलसी रामहिं परिहरे निपट हानि सुनु ओझ [1]।

सुरसरि-गति सोई सलिल, सुरा सरिस गंगोझ [2]॥ 68॥

राम दूरि माया बढ़ति, घटति जानि मन माँह।

भूरि होति रबि दूरि लखि सिर पर पगतर छाँह॥ 69॥

साहिब दीनानाथ सों जब घटिहैं अनुराग।

तुलसी तबहीं भाल तें भभरि भागि हैं भाग॥ 70॥

करिहौं कोसलनाथ तजि जबहिं दूसरी आस।

जहाँ तहाँ दुख पाइहौं तब हीं तुलसीदास॥ 71॥

बिध न ईंधन पाइए सायर जुरै न नीर।

परै उपास कुबेर-घर जो बिपच्छ रघुबीर॥ 72॥

बरसा को गोबर भयो, को चहै, को करै प्रीति।

[^1] ओझ = ओझा

[^2] गंगोझ = गंगोदक, गंगाजल।

तुलसी तू अनुभवहि अब राम-बिमुख की रीति॥ 73॥

सबहि समरथहि सुखद प्रिय, अच्छम प्रिय हितकारिं।

कबहुँ न काहुहि राम प्रिय, तुलसी कहा बिचारि॥ 74॥

तुलसी उद्यम करम जग जब जेहि राम सुडीठि।

होइ सुफल सोइ, ताहि सब सनमुख, प्रभु तन पीठि॥ 75॥

प्रेम-कामतरु परिहरत, सेवत कलि-तरू ठूँठ।

स्वारथ परमारथ चहत, सकल मनोरथ झूँठ॥ 76॥

निज दूषनु, गुन राम के समुझे तुलसीदास।

होय भलो कलिकाल हू उभय लोक अनयास॥ 77॥

कै तोहि लागहिं राम प्रिय, कै तू प्रभु-प्रिय होहि।

दुइ महँ रूचै जो सुगम सो कीबे तुलसी तोहि॥ 78॥

तुलसी दुइ महँ एक ही खेल, छाँडि छल, खेलु।

कै करू ममता राम सों, कै ममता परहेलु [1]॥ 79॥

निगम अगम, साहेब सुगम, राम साँचिली चाह।

अंबु असन अवलोकिअत सुलभ सबै जग माह॥ 80॥

सनमुख आवत पथिक ज्यों दिए दाहिनो बाम।

तैसोइ होत सु आपकी, त्यों ही तुलसी राम॥ 81॥

---

[^1] परहेलु = तिरस्कार कर।

राम-प्रेम-पथ पेषिये दिये बिषय तनु पीठि।

तुलसी केंचुरि परिहरे होत साँपेहूँ डीठि॥ 82॥

तुलसी जौ लौं बिषय की, मुधी [1] माधुरी मीठि।

तौ लौं सुधा सहस्र सम राम भगति सुठि सीठि [^2]॥ 83॥

जैसों मेरो रावरो केवल कोसल पाल ।

तौ तुलसी को है भलो तिहूँ लोक तिहुँ काल॥ 84॥

है तुलसी के एक गुन अवगुन-निधि कहैं लोग।

भलो भरोसो रावरो राम रीझिबे जोग॥ 85॥

प्रीति राम सों, नीति-पथ चलिय राग रिस जीति।

तुलसी संतन के मते इहै भगति की रीति॥ 86॥

सत्य बचन, मानस बिमल, कपट-रहित करतूति।

तुलसी रघुबर सेवकहि, सकै न कलिजुग धूति [3]॥ 87॥

तुलसी सुखी जो राम सों, दुखी सो निज करतूति।

करम बचन मन ठीक जेहि तेहि न सकै कलि धूति॥ 88॥

नातो नाते राम के, राम-सनेह सनेहु।

---

[^1] मुधी = व्यर्थ।

[^2] सीठि = सीठी, नीरस।

[^3] धूति सकै = धोखा दे सकता है।

तुलसी माँगत जोरि कर जनम जनम सिव देहु॥ 89॥

सब साधन को एक फल, जेहिं जान्यो सोइ जान।

ज्यों त्यों मन-मंदिर बसहिं राम धरें धनु बान॥ 90॥

जौ जगदीस तौ अति भलो, जौ महीस तौ भाग।

तुलसी चाहत जनम भरि राम-चरन-अनुराग॥ 91॥

परहुँ नरक, फल-चारि-सिसु, मीच डाँकिनी खाउ।

तुलसी राम सनेह को, जो फल सो जरि जाउ॥ 92॥

हित सों हित, रति राम सों, रिपु सों बैर बिहाउ।

उदासीन सब सों सरल, तुलसी सहज सुभाउ॥ 93॥

तुलसी ममता राम सों, समता सब संसार।

राग न रोष न दोष दुख, दास भये भव-पार॥ 94॥

रामहिं डरू, करू, राम सों ममता, प्रीति, प्रतिति।

तुलसी निरूपधि राम को भये हारेहू जीति॥ 95॥

तुलसी राम कृपालु सों कहि सुनाउ गुन दोष।

होय दूबरी दीनता, परम पीन संतोष॥ 96॥

सुमिरन सेवा राम सों, साहब सो पहिचानि।

ऐसेहु लाभ न ललक जो तुलसी नित हित हानि॥ 97॥

जाने जानन जोइये, बिनु जाने को जान?।

तुलसी यह सुनि समुझि हिय आनु धरे धनु-बान॥ 98॥

करमठ कठमलिया कहैं, ज्ञानी ज्ञान-बिहीन।

तुलसी त्रिपथ [1] बिहाय गो, राम-दुआरे दीन॥ 99॥

बाधक सब सब के भए, साधक भए न कोइ।

तुलसी राम कृपालु तें भलो होइ सों होइ॥ 100॥

संकर-प्रिय मम द्रोही, सिव द्रोही मम दास।

ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महँ बास॥ 101॥

बिलग बिलग सुख संग दुख जनम मरन सोइ रीति।

रहियत राखे राम के, गए ते उचित अनीति॥ 102॥

जाय कहब करतूति बिनु, जाय जोग बिन छेम।

तुलसी जाय उपाय सब बिना राम-पद-प्रेम॥ 103॥

लोग मगन सब जोग ही, जोग जाय बिनु छेम

त्यों तुलसी के भावगतु राम-प्रेम बिनु नेम॥ 104॥

राम निकाई रावरी हैं सब ही को नीक।

जौ यह साँची है सदा तौ नीको तुलसीक॥ 105॥

तुलसी राम जो आदर्‌यो खोटो खरो खरोइ।

दीपक काजर सिर धर्‌यो धर्‌यो सु धर्‌यो धरोइ॥ 106॥

---

[^1] त्रिपथ = कर्म, ज्ञान और उपासना कांड।

तनु बिचित्र, कायर बचन, अहि अहार मन घोर।

तुलसी हरि भए पच्छधर, ताते कह सब मोर॥ 107॥

लहै न फूटी कौड़िहू, को चाहै, केहि काज?।

सो तुलसी महँगो कियो राम गरीब-निवाज॥ 108॥

घर घर माँगे टूक, पुनि भूपति पूजे पाय।

जे तुलसी तब राम बिनु, ते अब राम सहाय॥ 109॥

तुलसी राम सुदीठि तें निबल होत बलवान।

बैर बालि सुग्रीव के कहा कियो हनुमान?॥ 110॥

तुलसी रामहु तें अधिक राम-भगत जिय जान।

ऋनिया राजा राम भे, धनिक भए हनुमान॥ 111॥

कियो सुसेवक-धरम कपि, कृतज्ञ जिय जानि ।

जोरि हाथ ठाढ़े भए बरदायक बरदानि॥ 112॥

भगत-हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।

किए चरित पावन परम प्राकृत-नर-अनुरूप॥ 113॥

ज्ञान-गिरा-गोतीत, अज, माया-गुन-पार।

सोइ सच्चिदानंदघन करत चरित्र उदार॥ 114॥

हिरन्याक्ष भ्राता सहित, मधु-कैटभ बलवान।

जेहि मारे सोइ अवतरे कृपासिंधु भगवान॥ 115॥

सुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानु-कुल-केतु।

चरित करत नर अनुहरत संसृति-सागर-सेतु॥ 116॥

बाल-बिभूषन बसन बर, धूरि धूसरित अंग।

बालकेति रघुबर करत, बाल-बंधु सब संग॥ 117॥

अनुदित अवध बधावने, नित नव मंगल मोद।

मुदित मातु-पितु लोग लखि रघुबर बाल-बिनोद॥ 118॥

राज-अजिर राजत रूचिर कोसलपालक बाल।

जानु-पानि-चर चरित बर, सगुन-सुमंगल-माल॥ 119॥

नाम ललित, लीला ललित, ललित रूप रघुनाथ।

ललित बसन, भूषन ललित, ललित अनुज सिसु साथ॥ 120॥

राम, भरत, लछिमन ललित, सत्रु-समन सुभ-नाम।

सुमिरत दसरथ सुवन सब पूजहिं सब मन-काम॥ 121॥

बालक कोसलपाल के सेवकपाल कृपाल।

तुलसी मन-मानस बसत मंगल मंजु मराल॥ 122॥

भगत, भूमि, भूसुर, सुरभि, सुर हित लागि कृपाल।

करत चरित धरि मनुज-तनु, सुनत मिटहिं जगजाल॥ 123॥

निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर, महि, गो, द्विज लागि।

सगुन-उपासक संग तहँ रहे मोक्ष सब त्यागि॥ 124॥

परमानंद कृपायतन, मन परिपूरन-काम।

प्रेम-भगति अनपायनी देहु हमहि श्री-राम॥ 125॥

बारि मथे घृत होइ बरू सिकता ते बरू तेल।

बिनु हरि-भजन न भव तरिय, यह सिद्धांत अपेल॥ 126॥

हरि-माया-कृत दोष गुन बिनु हरि-भजन न जाहिं ।

भजिय राम सब काम तजि अस बिचारि मन-माहिं॥ 127॥

जो चेतन कहँ जड़ करइ, जड़हि करइ चैतन्य।

अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य॥ 128॥

श्री रघुबीर प्रताप ते सिंधु तरे पाषान।

ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन॥ 129॥

लव निमेष परमानु जुग, बरस कलप सर चंड।

भजसि न मम तेहि राम कहँ काल जासु कोदंड॥ 130॥

तब लगि कुसल न जीव कहँ, सपनेहुँ मन विस्राम।

जब लगि भजत न राम कहँ सोक-धाम तजि काम॥ 131॥

बिनु सतसंग न हरिकथा, तेहि बिनु मोह न भाग।

मोह गए बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग॥ 132॥

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न राम ।

राम-कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिस्राम॥ 133॥

(सोरठा)

अस बिचारि मतिधीर तजि कुतर्क संसय सकल।

भजहु राम रघुबीर करूनाकर सुंदर सुखद॥ 134॥

भाव-बस्य भगवान, सुख-निधान करूना-भवन।

तजि ममता, मद, मान, भजिय सदा सीता-रमन॥ 135॥

कहहिं बिमलमति संत, बेद पुरान बिचारि अस।

द्रवैं जानकी-कंत, तब छूटै संसार-दुख॥ 136॥

बिनु गुर होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ बिराग बिनु।

गावहिं बेद पुरान, सुख कि लहिय हरि भगति बिनु॥ 137॥

(दोहा)

रामचंद्र के भजन बिनु जो चह पद निर्बान।

ज्ञानवंत अपि सो नर पसु, बिनु पूँछ बिषान॥ 138॥

जरउ सो संपति, सदन, सुख, सुहृद मातु, पितु भाइ।

सनमुख होत जो रामपद करइ न सहज सहाइ॥ 139॥

सोइ साधु गुरु, समुझि, सिखि, राम-भगति थिरताई ।

लरिकाई को पैरिबो तुलसी बिसरि न जाई॥ 140॥

सबै कहावत राम के, सबहि राम की आस।

राम कहैं जेहि आपनो, तेहि भजु तुलसीदास॥ 141॥

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरैं सुजान।

रूद्रदेह तजि नेह-बस बानर भे हनुमान॥ 142॥

जानि राम-सेवा सरस, समुझि करब अनुमान।

पुरखा ते सेवक भए, हर ते भे हनुमान॥ 143॥

तुलसी रघुबर-सेवकहि खल डाँटत मन माखि।

बाजराज के बालकहि लवा दिखावत आँखि॥ 144॥

रावन रिपु के दास तें कायर करहिं कुचालि।

खर दूषन मारीच ज्यों, नीच जाहिगे कालि॥ 145॥

पुन्य, पाप, जस, अजस, के भावी भाजन भूरि।

संकट तुलसीदास को राम करहिंगे दूरि॥ 146॥

खेलत बालक ब्याल संग, मेलत पावक हाथ।

तुलसी सिसु पितु-मातु ज्यों राखत सिय रघुनाथ॥ 147॥

तुलसी दिन भल साहु कहँ, भली चोर कहँ राति।

निसि बासन ता कहँ भलो मानै राम-इताति [1]॥ 148॥

तुलसी जाने सुति समुझि कृपासिंधु रघुराज।

---

[^1] इताति = इताअत, अनुशासन, आज्ञा।

महँगे मनि कंचन किए, सौंधें [1] जग, जल नाज॥ 149॥

सेवा, सील, सनेह, बस करि, परिहरि प्रिय लोग ।

तुलसी ते सब राम सों सुखद सुजोग बियोग॥ 150॥

चारि चहत मानस अगम चनक चारि को लाहु।

चारि परिहरे चारि को दानि चारि चख चाहु॥ 151॥

सूधे मन, सूधे बचन सूधी सब करतूति।

तुलसी सूधी सकल बिधि रघुबर प्रेम प्रसूति॥ 152॥

बेष बिषद, बोलनि मधुर, मन कटु, करम मलीन।

तुलसी राम न पाइऐ भए बिषय-जल-मीन॥ 153॥

बषन-बेष तें जो बनै से बिगरै परिनाम।

तुलसी मन तें जो बनै बनी बनाई राम॥ 154॥

नीच मीचु लै जाइ जो राम-रजायसु पाइ।

तो तुलसी तेरो भलो, नतु अनभलो अघाइ॥ 155॥

जाति-हीन, अघ-जन्म महि, मुकुत कीन्हि असि नारि।

महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि?॥ 156॥

बंधु-बधू-रत कहि कियो बचन निरूत्तर बालि।

तुलसी प्रभु सुग्रीव की चितइ न कछू कुचालि॥ 157॥

---

[^1] सौंधे = स्वर्घ, सस्ते।

बालि बली बलसालि दलि सखा कीन्ह कपिराज।

तुलसी राम कृपालु को बिरद गरीब-निवाज॥ 158॥

कहा बिभीषन लै मिल्यो, कहा बिगार्‌यो बालि।

तुलसी प्रभु सरनागतहि, सब दिन आए पालि॥ 159॥

तुलसी कोसलपाल सो, को सरनागत-पाल?

भज्यो बिभीषन बंधु-भय, भांज्यो दारिद-काल॥ 160॥

कुलिसहु चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि [1]।

चित्त खगेस राम-कर, समुझि परै कहु काहि?॥ 161॥

बलकन भूषन, फल असन, तृन सज्या, द्रुम प्रीति।

तिन्ह समयन लंका दई, यह रघुबर की रीति॥ 162॥

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिए दस माथ।

सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥ 163॥

अबिचल राज बिभीषनहि दीन्ह राम रघुराज।

अजहुँ बिराजत लंक पर तुलसी सहित समाज॥ 164॥

कहा विभीषन लै मिल्यो कहा दियो रघुनाथ।

तुलसी यह जाने बिना मूढ़ मीजिहैं हाथ॥ 165॥

बैरि-बंधु निसिचर अधम, तज्यो न भरें कलंक।

---

[^1] चाहि = अपेक्षा। उससे (बढ़कर)।

झूठे अघ सिय परिहरी तुलसी साइँ ससंक॥ 166॥

तेहि समाज कियो कठिन पन जेहिं तौल्यो कैलास।

तुलसी प्रभु-महिमा कहौं, सेवक को बिस्वास॥ 167॥

सभा सभासद निरखि पट पकरि, उठायों हाथ।

तुलसी कियो इगारहो [1] बसन-बेष जदुनाथ॥ 168॥

त्राहि तीनि कह्यो द्रोपदी तुलसी राज-समाज।

प्रथम बढ़े पट, बिय [2] बिकल, चहत चकित निज काज॥ 169॥

सुख-जीवन सब कोउ चहत, सुख-जीवन हरि-हाथ।

तुलसी दाता माँगनेउ देखियत अबुध अनाथ॥ 170॥

कृपिन देइ पाइय परो, बिनु साधे सिधि होइ।

सीतापति सनमुख समुझि जो कीजै सुभ सोइ॥ 171॥

दंडक-बन-पावन-करन चरन-सरोज प्रभाउ।

ऊसर जामहि, खल तरहि, होइ रंक ते राउ॥ 172॥

बिन ही ऋतु तरूबर फरत, सिला द्रवति जल-जोर।

राम लषन सिय करि कृपा जब चितवत जेहि ओर॥ 173॥

सिला सु तिय भइं गिरि तरे, मृतक जिए जग जान।

---

[^1] इगारहों = दस अवतारों के अतिरिक्त ग्यारहवाँ वस्त्र का रूप।

[^2] बिय = दूसरा।

राम-अनुग्रह सगुन सुभ, सुलभ सकल कल्यान॥ 174॥

सिला-साप-मोचन चरन सुमिरहु तुलसीदास।

तजहु सोच, संकट मिटहिं, पूजहि मन की आस॥ 175॥

मुए जिआए भालु कपि, अवध बिप्र को पूत।

सुमिरहु तुलसी ताहि तू जाको मारूति दूत॥ 176॥

काल करम गुन दोष जग जीव तिहारे हाथ ।

तुलसी रघुबर राबरो, जान जानकीनाथ॥ 177॥

रोग-निकर तनु, जरठपनु तुलसी संग कुलोग।

राम-कृपा लै पालिये, दीन पालिबे जोग। 178॥

मो सम दीन न, दीनहितु तुम समान रघुबीर ।

अस बिचारि, रघुबंस-मनि, हरहु बिषम भव-भीर॥ 179॥

भव-भुअंग तुलसी नकुल, डसत ग्यान हरि लेत।

चित्रकूट एक औषधी, चितवत होइ सचेत॥ 180॥

हौंहुँ कहावत, सब कहत, राम सहत उपहास।

साहिब सीतानाथ से, सेवक तुलसीदास॥ 181॥

राम-राज राजत सकल धरम-निरत नर-नारि।

राग न रोष न दोष दुख, सुलभ पदारथ चारि॥ 182॥

राम-राज संतोष सुख, घर बन सकल सुपास ।

तरू सुरतरू, सुरधेनु महि, अभिमत भोग बिलास॥ 183॥

खेती, बनि बिद्या, बनिज, सेवा, सिलिपि सुकाज।

तुलसी सुरतरू सरिस सब सुफल राम के राज॥ 184॥

दंड जतिन कर, भेद जहँ नरतक नृत्य समाज।

जीतहु मनहि सुनिअ अस, रामचंद्र के राज॥ 185॥

कोपे सोच न पोच कर, करिय निहोर न काज।

तुलसी परमिति प्रीति की रीति राम के राज॥ 186

मुकर निरखि मुख रामभ्रू, गनत गुनहि दै दोष।

तुलसी से सठ सेवकन्हि लखि, जनि परहि सरोष॥ 187॥

सहसनाम मुनि-भनित सुनि, तुलसी बल्लभ नाम।

सकुचित हिय हँसि, निरखि सिय, धरम-धुरंधर राम॥ 188॥

गौतम-तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि।

हिय हरषे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि॥ 189॥

तुलसी बिलसत नखत निसि सरद-सुधाकर साथ।

मुकुता झालरि झलक जनु राम-सुजस-सिसु-हाथ॥ 190॥

रघुपति कीरति-कामिनी क्यों कहै तुलसि दासु?

सरद-अकास प्रकास ससि चारू चिबुक-तिल जासु॥ 191॥

प्रभु गुन-गन भूषन बसन, बिसद बिसेष सुदेस।

राम-सुकीरति-कामिनी, तुलसी करतब केस॥ 192॥

राम-चरित राकेस-कर सरिस सुखद सब काहु।

सज्ञन-कुमुद चकोर चित, हित बिसेष बड़ लाहु॥ 193॥

रघुबर कीरति सज्ञननि, सीतल खलनि सुताति।

ज्यों चकोर-चय चक्कवनि तुलसी चाँदनि राति॥ 194॥

राम-कथा मंदाकिनी, चित्रकूट चित चारू।

तुलसी सुभग सनेह बन, सिय-रघुबीर-बिहारू॥ 195॥

स्याम-सुरभि-पय बिषद अति, गुनद करहिं तेहि पान।

गिरा ग्राम्य सिय-राम जस गावहिं सुनहि सुजान॥ 196॥

हरि-हर-जस सुर-नर-गिरहुँ, बरनहिं सुकबि-समाज।

हाँडी हाटक घटित चरू राँधे स्वाद सुनाज॥ 197॥

तिल पर राखेउ सकल जग, बिदित, बिलोकत लोग।

तुलसी महिमा राम की कौन जानिबे जोग?॥ 198॥

(सोरठा)

राम! सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर।

अबिगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह॥ 199॥

(दोहा)

माया, जीव, सुभाव, गुन, काल, करम, महदादि।
ईस-अंक तें बढ़त सब ईस-अंक बिनु बादि॥ 200॥

हित उदास रघुबर-बिरह, बिकल सकल नर-नारि।
भरत-लषन-सिय-गति समुझि प्रभु-चख सदा सुबारि॥ 201॥

सीय-सुमित्रा-सुवन-गति, भरत-सनेह सुभाउ।
कहिबे को सारद सरस, जनिबे को रघुराउ॥ 202॥

जानी राम, न कहि सके भरत लषन सिय-प्रीति।
सो सुनि गुनि तुलसी कहत, हठ सठता की रीति॥ 203॥

सम बिधि समरथ सकल कह, सहि साँसति दिन राति ।
भलो निबाहेउ सुनि समुझि स्वामिधर्म सब भाँति॥ 204॥

भरतहि होइ न राजमद, बिधि-हरि-हर-पद पाइ।
कबहुँक काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ॥ 205॥

संपति चकई, भरत चक, मुनि आयसु खिलवार।
तेहि निसि आस्रम पींजरा राखे भा भिनुसार॥ 206॥

सघन चोर मग मुदित मन धनी गही ज्यों फेंट।
त्यों सुग्रीव बिभीषनहिं भई भरत की भेंट॥ 207॥

राम सराहे, भरत उठि मिले राम सम जानि।

तदपि बिभीषन कीसपति, तुलसी गरत गलानि॥ 208॥

भरत स्याम-तन राम-सम, सब गुन रूप निधान।

सेवक-सुखदायक सुलभ, सुमिरत सब कल्यान॥ 209॥

ललित लषन मुरति मधुर सुमिरहु सहित सनेह।

सुख-संपति-कीरति-बिजय-सगुन-सुमंगल गेह॥ 210॥

नाम सत्रुसूदन सुभग, सुषमा-सील-निकेत।

सेवत सुमिरत सुलभ सुख, सकल सुमंगल देत॥ 211॥

कौसल्या कल्यानमयि मूरति करत प्रनाम ।

सगुन सुमंगल काज सुभ, कृपा करहि सियराम॥ 212॥

सुमिरि सुमित्रा-नाम जग जे तिय लेहिं सनेम।

सुवन लषन रिपुदवन से, पावहिं पति-पद-प्रेम॥ 213॥

सीता-चरन प्रनाम करि सुमिरि सुनाम सुनेम।

होहिं तीय पतिदेवता प्राननाथ प्रिय प्रेम॥ 214॥

तुलसी केवल कामतरु रामचरित-आराम।

कलितरू कपि निसिचर कहत, हमहिं किए बिधि बाम॥ 215॥

मातु सकल, सानुज भरत, गुरु पुर-लोग सुभाउ।

देखत, देख न कैकइहि लंकापति कपिराउ॥ 216॥

सहज सरल रघुबर बचन, कुमति कुटिल करि जान।

चलै जोंक जल बक्रगति जद्यपि सलिल समान॥ 217॥

दसरथ नाम सुकामतरु, फलइ सकल कल्यान।

धरनि, धाम, धन, धरम-सुत, सदगुन रूप-निधान॥ 218॥

तुलसी जान्यो दसरथ हिं ‘धरमु न सत्य समान’।

रामु तजे जेहि लागि, बिनु राम परिहरे प्रान॥ 219॥

राम-बिरह दसरथ-मरन, मुनि-मन अगम सु मीचु ।

तुलसी मंगल-मरन-तरू, सुचि सनेह-जल सींचु॥ 220॥

(सोरठा)

जीवन मरन सुनाम जैसे दसरथ राय को।

जियत खिलाये राम, राम-बिरह तनु परिहरेउ॥ 221॥

(दोहा)

प्रभुहिं बिलोकत गोद-गत, सिय-हिय घायल नीचु।

तुलसी पाई गीधपति मुकुति मनोहर मीचु॥ 222॥

बिरत, करम-रत, भगत, मुनि, सिद्ध ऊँच अरू नीचु।

तुलसी सकल सिहात सुनि गीधराज की मीचु॥ 223॥

मुए, मरत, मरिहैं सकल घरी पहर के बीच।

लही न काहूँ आजु लौं गीधराज की मीच॥ 224॥

मुये मुकुत, जीवत मुकुत, मुकुत मुकुतहूँ बीचु।

तुलसी सबहे तें अधिक गीधराज की मीच॥ 225॥

रघुबर बिकल बिहंग लखि, सो बिलोकि दोउ बीर।

सिय-सुधि कहि, सिय-राम कहि, देह तजी मति-धीर॥ 226॥

दसरथ तें दसगुन भगति सहित तासु कर काजु।

सोचत बंधु समेत प्रभु कृपासिंधु रघुराजु॥ 227॥

केवट निसिचर बिहँग मृग किये साधु सनमानि।

तुलसी रघुबर की कृपा सकल सुमंगल-खानि॥ 228॥

मंजुल मंगल मोदमय मूरति मारूत-पूत।

सकल सिद्धि कर-कमल-तल सुमिरत रघुबर-दूत॥ 229॥

धीर, बीर, रघुबीर-प्रिय, सुमिरि समीर-कुमार।

अगम सुगम सब काज करू, करतल सिद्धि बिचार॥ 230॥

सुख-मुद-मंगल-कुमुद-बिधु, सुगुन-सरोरूह-भानु।

करहु काज सब सिद्धि सुभ आनि हिये हनुमानु॥ 231॥

सकल काज सुभ समउ भल, सगुन सुमंगल जानु।

कीरति बिजय बिभूति भलि, हिय हनुमानहि आनु॥ 232॥

सूर-सिरोमनि, साहसी, सुमति समीर-कुमार।

सुमिरत सब सुख-संपदा-मुद-मंगल-दातार॥ 233॥

तुलसी-तनु सर, सुख-जलज, भुज-रूज-गज बरजोर।

दलत दयानिधि देखिए कपि केसरी-किसोर॥ 234॥

भुज-तरू-कोटर रोग-अहि बरबस कियो प्रवेस।

बिहँगराज-बाहन तुरत काढ़िय, मिटइ कलेस॥ 235॥

बाहु-बिटप सुख-बिहँग-थलु लगी कुपीर कुआगि।

राम-कृपा जल सींचिये, बेगि दीन-हित लागि॥ 236॥

(सोरठा)

मुकुति जन्म महि जानि, ज्ञान-खानि, अघ-हानि-कर।

जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइय कस न॥ 237॥

जरत सकल सुर-बृंद, बिषम गरल जेहिं पान किय।

तेहि न भजसि मति-मंद, को कृपालु संकर सरिस॥ 238॥

(दोहा)

बासर ढासनि [1] के ढका, रजनी चहुँ दिसि चोर।

संकर निज पुर राखिऐ चितै सुलोचन-कोर॥ 239॥

---

[^1] ढासनि = डाकू।

अपनी बीसीं आपुहीं पुरिहिं लगाये हाथ।

केहि बिधि बिनती बिस्व की करौं बिस्व के नाथ॥ 240॥

और करै अपराध कोउ, और पाव फल-भोग।

अति बिचित्र भगवंत-गति, कोउ जानिबे जोग॥ 241॥

प्रेम-सरीर प्रपंच-रूज, उपजी अधिक उपाधि।

तुलसी भली सुबैदई बेगि बाँधिये ब्याधि॥ 242॥

हम हमार आचार बड़, भूरि भार धरि सीस।

हठि सठ परबस परत जिमि कीर, कोस-कृमि कीस॥ 243॥

केहिं मग प्रबिसति जाति केहिं कहु दर्पन में छाँह।

तुलसी ज्यों जग-जीव-गति करी जीव के नाँह॥ 244॥

सुखसागर सुख-नींद-बस, सपने सब करतार।

माया माया-नाथ की को जग जाननहार?॥ 245॥

जीव सीव सम सुख सयन, सपने कछु करतूति।

जागत दीन मलीन सोइ बिकल बिषाद बिभूति॥ 246॥

सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ।

जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ॥ 247॥

तुलसी देखत, अनुभवत, सुनत न समुझत नीचु।

चपरि चपेटे देत नित केस गहे कर मीचु॥ 248॥

करम खरी कर मोह थल, अंक चराचर-जाल।

हनत गुनत, गनि गुनि हनत जगत ज्यौतिषी-काल॥ 249॥

कहिबे कहँ रसना रची, सुनिबे कहँ किय कान ।

धरिबे कहँ चित हित सहित परमारथहि सुजान॥ 250॥

ज्ञान कहै अज्ञान बिनु, तम बिनु कहै प्रकास।

निरगुन कहै जो सगुन बिनु सो गुरु, तुलसीदास॥ 251॥

अंक अगुन, आखर सगुन, समुझि उभय प्रकार।

खोए राखे आपु भल, तुलसी चारू बिचार॥ 252॥

परमारथ-पहिचानि-मति लसति बिषय लपटानि।

निकसि चिता तें अधजरित, मानहुँ सती परानि॥ 253॥

सीस उघारन किन कहेउ, बरजि रहे प्रिय लोग।

घरहीं सती कहावती, जरती नाह-बियोग॥ 254॥

खरिया, खरी, कपूर सब, उचित न, पिय! तिय-त्याग।

कै खरिया मोहि मेलि, कै बिमल बिबेक बिराग॥ 255॥

घर कीन्हें घर जात है, घर छाँड़े घर जाइ।

तुलसी घर बन बीच ही राम-प्रेम-पुर छाइ॥ 256॥

दिये पीठि पाछे लगै, सनमुख होत पराय।

तुलसी संपति छाँह ज्यों, लखि दिन बैठि गँवाय॥ 257॥

तुलसी अदभुत देवता आसा-देवी नाम।

सेए सोक समर्पई, बिमुख भए अभिराम॥ 258॥

सोई सेंवर तेइ सुवा, सेवत सदा बसंत ।

तुलसी महिमा मोह की सुनत सराहत संत॥ 259॥

करतल समुझत झूठ-गुन, सुन होत मति-रंक।

पारद प्रकट प्रपंचमय, सिद्धिउ नाउँ कलंक [1]॥ 260॥

ज्ञानी, तापस, सूर, कबि, कोबिद गुन-आगार।

केहि कै लोभ बिडंबना कीन्हि न यहि संसार?॥ 261॥

श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि।

मृगलोचनि के नयन-सर, को अस लाग न जाहि?॥ 262॥

ब्यापि रहेउ संसार महँ, माया कटक प्रचंड।

सेनापति कामादि भट, दंभ, कपट पाषंड॥ 263॥

तात तीन अति प्रबल खल, काम क्रोध अरू लोभ।

मुनि बिज्ञान-धाम मन, करहिं निमिष महँ छोभ॥ 264॥

लोभ के इच्छा दंभ बल, काम के केवल नारि।

क्रोध के परूष बचन बल मुनिबर कहहिं बिचारि॥ 265॥

काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह के धारि।

---

[^1] कलंक = कजली जो पारा सिद्ध होने पर बैठ जाती है।

तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि॥ 266॥

काह न पावक जारि सक, का न समुद्र समाइ।

का न करै अबला प्रबल, केहि जग काल न खाइ?॥ 267॥

जनम-पत्रिका बरति कै देखहु मनहिं बिचारि।

दारून बैरी मीचु के बिच बिराजति नारि [1]॥ 268॥

दीपसिखा सम जुबति-तन, मन जनि होसि पतंग।

भजहि राम तजि काम-मद, करहि सदा सतसंग॥ 269॥

काम-क्रोध-मद-लोभ-रत, गृहासक्त दुखरूप।

ते किमि जानहिं रघुपतिहि, मूढ़ परे भवकूप॥ 270॥

ग्रह-ग्रहीत पुनि बात-बस, तेहि पुनि बीछी मार।

तेहि पिआई बारूनी कहहु कौन उपचार?॥ 271॥

ताहि की संपति सगुन सुभ, सपनेहु मन बिस्राम।

भूत द्रोह-रत, मोहबस, राम-बिमुख रत-काम॥ 272॥

कहत कठिन, समुझत कठिन, साधत कठिन बिबेक।

होइ घुनाक्षर-न्याय जौं, पुनि प्रत्यूह अनेक॥ 273॥

खल प्रबोध, जग-सोध, मन को निरोध, कुल सोध।

---

[^1] जन्मकुंजली में छठा, सातवाँ और आठवाँ स्थान क्रमशः शत्रु, स्त्री और मृत्यु का माना जाता है।

करहि ते फोकट पचि मरहिं, सपनेहु सुख न सुबोध॥ 274॥

(सोरठा)

कोउ बिस्राम कि पाव, तात, सहज संतोष बिनु?

चलै कि जल बिनु नाव, कोटि जतन पचि पचि मरिय॥ 275॥

सुर नर मुनि कोउ नाहि जेहि न मोह माया प्रबल।

अस बिचारि मन माहिं भजिय महा माया-पतिहि॥ 276॥

(दोहा)

एक भरोसो, एक बल, एक आस बिस्वास।

एक राम-घन-स्याम हित चातक तुलसीदास॥ 277॥

जौं घन बरषै समय सिर [1], जौं भरि जनम उदास।

तुलसी या चित चातकहि तऊ तिहारी आस॥ 278॥

चातक तुलसी के मते स्वातिहु पियै न पानि।

प्रेम-तृषा बाढ़ति भली, घटे घटैगी आनि॥ 279॥

रटत रटत रसना लटी, तृषा सूखि गे अंग ।

तुलसी चातक-प्रेम को नित नूतन रूचि-रंग॥ 280॥

---

[^1] समय सिर = ठीक समय पर।

चढ़त न चातक-चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोख ।

तुलसी प्रेम-प्योधि की ताते नाप न जोख॥ 281॥

बरषि परूष पाहन पयद पंख करौ टुक टूक।

तुलसी परी न चाहिये चतुर चातकहि चूक॥ 282॥

उपल बरषि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर।

चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर?॥ 283॥

पबि, पाहन, दामिनी, गरज, झरि झकोर खरि खीझि।

रोष न प्रीतम-दोष-लखि, तुलसी, रागहि रीझि॥ 284॥

मान राखिबो, माँगिबो, पिय सो नित नव नेहु।

तुलसी तीनिउ तब फबैं, जौं चातक मन लेहु॥ 285॥

तुलसी चातक की फबै मान राखिबो प्रेम।

बक्र बुंद लखि स्वातिहू निदरि निबाहत नेम॥ 286॥

तुलसी चातक माँगनो एक, सबै घन दानि।

देत जो भू-भाजन भरत, लेत जो घूँटक पानि॥ 287॥

तीनि लोक तिहुँ काल जस चातक ही के माथ।

तुलसी जासु न दीनता सुनी दूसरे नाथ॥ 288॥

प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि।

जाचक जगत कनाउड़ो, कियो कनौड़ो दानि॥ 289॥

नहिं जाचक, नहिं संग्रही, सीस नाइ नहिं लेइ।

ऐसे मानी माँगनेहि को बारिद बिन देइ॥ 290॥

को को न ज्यायो जगत में जीवन-दायक दानि।

भयो कनौड़ो जाचकहि पयद प्रेम पहिचानि॥ 291॥

साधन साँसति सब सहत, सबहि सुखद फल लाहु।

तुलसी चातक जलद की रिझि-बूझि बुध काहु॥ 292॥

चातक जीवन- दायकहि, जीउन समय सुरीति।

तुलसी अलख न लखि परै चातक प्रीति प्रतीति॥ 293॥

जीव चराचर जहँ लगे हैं सबको हित मेह ।

तुलसी चातक मन बस्यो घन सों सहत सनेह॥ 294॥

डोलत बिपुल बिहंग बन, पियत पोषरिन बारि।

सुजस-धवल चातक नवल! तुही भुवन दस-चारि॥ 295॥

मुख-मीठे, मानस-मलिन कोकिल मोर चकोर।

सुजस-धवल, चातक नबल! रह्यो भुवन भति तोर॥ 296॥

बास, बेष, बोलनि, चलनि मानस मंजु मराल।

तुलसी चातक-प्रेम की कीरति बिसद बिसाल॥ 297॥

प्रेम न परखिय परूषपन, पयद-सिखावन एह।

जग कह चातक पातकी, ऊसर बरसै मेह॥ 298॥

होइ न चातक पातकी, जीवन-दानि न मूढ़।

तुलसी गति प्रहलाद की समुझि प्रेम-पथ गूढ़॥ 299॥

गरज आपनी सबन को गरज करत उर आनि।

तुलसी चातक चतुर भो जाचक जानि सुदानि॥ 300॥

चरग चंगु-गत चातकहि नेम प्रेम की पीर ।

तुलसी परबस हाड़ पर परिहैं पुहुमी नीर॥ 301॥

बध्यो बधिक पर्‌यो पुन्य-जल, उलटि उठाई चोंच।

तुलसी चातक प्रेमपट मरतहु लगी न खोंच॥ 302॥

अंड फोरि कियो चेटुवा, तुष पर्‌यो नीर निहारि।

गहि चंगुल चातक चतुर डार्‌यो बाहिर बारि॥ 303॥

तुलसी चातक देति सिख सुतहि बार ही बार।

तात न तर्पन कीजिये बिना बारिधर-धार॥ 304॥

(सोरठा)

जियत न नाई नारि [1] चातक घन तजि दूसरहि।

सुरसरि हू को बारि मरत माँगेउ अरध जल॥ 305॥

सुनु रे तुलसीदास, प्यास पपीहहिं प्रेम की।

---

[^1] नार = नार, गरदन।

परिहरि चारिउ मास, जो अँचवै जल स्वाति को॥ 306॥

जाँचै बारह-मास, पियै पपीहा स्वाति-जल ।

जान्यों तुलसीदास, जोगवत नेही मेह-मन॥ 307॥

(दोहा)

तुलसी के मत चातकहि केवल प्रेम-पियास ।

पियत स्वाति-जल जान जग, जाचक बाारह मास॥ 308॥

आलबाल मुकुताहलनि, हिय सनेह-तरू-मूल।

होइ हेतु चित चातकहि, स्वाति-सलिल-अनुकूल॥ 309॥

बिबि रसना, तनु स्याम है, बंक चलनि, बिष-खानि।

तुलसी जस स्रवननि सुन्यो समरप्यो आनि॥ 310॥

उष्ण-काल अरू देह खिन, मग-पंथी, तन ऊख [1]।

चातक बतियाँ न रूचीं अन [2] जल सींचे रूख॥ 311॥

अन जल सींचे रूख की छाया तें बरू घाम।

तुलसी चातक बहुत हैं यह प्रबीन को काम॥ 312॥

एक अंग जो स्नेहता निसि-दिन चातक नेह।

---

[^1] ऊख = तपा हुआ। उष्ण।

[^2] अन = अन्य, दूसरा।

तुलसी जासों हित लगै वहि अहार, वहि देह॥ 313॥

आपु ब्याध को रूप धरि, कुहौ [1] कुरंगहि राग।

तुलसी जो मृग-मन मुरै परै प्रेम-पट दाग॥ 314॥

तुलसी मनि निज दुति फनिहि ब्याधहि देउ दिखाइ।

बिछुरत होइ न आँधरो ताते प्रेम न जाइ॥ 315॥

जरत तुहिन लखि बनज-बन रबि दै पीठि पराउ।

उदय बिकस, अथवत सकुच मिटै न सहज सुभाउ॥ 316॥

देउ आपने हाथ जल मीनहि माहुर घोरि।

तुलसी जियै जो बारि बिनु तौ तु देहि कबि खोरि॥ 317॥

मकर, उरग, दादुर, कमठ जल-जीवन जल-गेह।

तुलसी एकै मीन को है साँचिलो सनेह। 318॥

तुलसी मिटै न मरि मिटेहुँ साँचो सहज सनेह।

मोरसिखा [2] बिनु मूरि हूँ पलुहत [3] गरजत मेह॥ 319॥

कुलभ प्रीति प्रीतम सबै कहत, करत सब कोइ।

---

[^1] कुहो = (चाहे) मारे।

[^2] मोरसिखा = मयूरशिखा नाम की घास या बूटी जो बरसात आते ही पनप जाती है। इसमें जड़ नहीं होती।

[^3] पलुहना = पनपना।

तुलसी मीन पुनीत ते त्रिभुवन बड़ो न कोइ॥ 320॥

तुलसी जप तप नेम ब्रत सब सब ही तें होइ।

लहै बड़ाई देवता इष्टदेव जब होइ॥ 321॥

कुदिन हितू सो हित सुदिन, हित अनहित किन होइ।

ससि-छबि हर रबि-सदन तउ मित्र कहत सब कोइ॥ 322॥

कै लघु कै बड़ मीत भल, सम-सनेह दुख सोइ।

तुलसी ज्यों घृत मधु सरिस मिलें महाबिष होइ॥ 323॥

मान्य मीन सो सुख चहैं सो न छुबै छल-छाँह।

ससि, त्रिसंकु, कैकेइ गति लखि तुलसी मन माँह॥ 324॥

कहिय कठिन कृत कोमलहु हित हठि होइ सहाइ।

पलक पानि पर ओड़िअत समुझि कुघाइ सुघाइ॥ 325॥

तुलसी बैर सनेह दोउ रहित बिलोचन चारि।

सुरा सेवरा आदरहिं, निंदहिं सुरसरि-बारि॥ 326॥

रूचै माँगनेहि मागिबो तुलसी दानिहि दानु।

आलस, अनख न आचरज, प्रेम पिहानी [1] जानु॥ 327॥

अमिय गारि गारेउ गरल, गारि कीन्ह करतार।

प्रेम बैर की जननि जुग, जानहिं बुध, न गँवार॥ 328॥

---

[^1] पिहानी = ढक्कन, छिपाने की वस्तु।

सदा न जे सुमिरत रहहिं, मिलि न कहरिं प्रिय बैन।

तेपै तिन्हके जाहिं घर जिनके हिये न नैन॥ 329॥

हित पुनीत सब स्वारथहिं, अरि असुद्ध बिनु चाड़।

निज मुख मानिक सम दसन, भूमि परे ते हाड़॥ 330॥

माखी, काक, उलूक, बक, दादुर से भए लोग।

भले ते सुक, पिक, मोर से, कोउ न प्रेम-पथ जोग॥ 331॥

हृदय कपट, बर बेष धरि, बचन कहहिं गढ़ि छोलि।

अब के लोग मयूर ज्यों, क्यों मिलिए मन खोलि॥ 332॥

चरन चोंच लोचन रँगौ, चलौ मराली चाल।

छीर-नीर बिबरन समय बक उघरत तेहि काल॥ 333॥

मिलै जो सरलहि सरल ह्वै, कुटिल न सहज बिहाइ।

सो सहेतु, ज्यो बक्र-गति ब्याल न बिलै समाइ॥ 334॥

कृसधन सखहि न देत दुख मुयहु न माँगत नीच।

तुलसी सज्जन की रहनि पावक पानो बीच॥ 335॥

संग सरल कुटिलहि भए हरि हर करहिं निबाहु ।

ग्रह गनती गनि चतुर बिधि कियो उदर-बिनु राहु॥ 336॥

नीच निचाई नहिं तजै सज्जन हू के संग।

तुलसी चंदन-बिटप बसि बिनु बिष भये न भुअंग॥ 337॥

भलो भलाई पै लहै, लहै निचाई नीचु।

सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीचु॥ 338॥

मिथ्या माहुर सज्ञनहि, खलहिं गरल सल साँच।

तुलसी छुवत पराइ ज्यों पारद पावक-आँच॥ 339॥

संत-संग अपबर्ग-कर, कामी भव-कर पंथ।

कहहिं साधु, कबि, कोबिदस स्रुति, पुरान, सद्ग्रंथ॥ 340॥

सुकृत न सुकृती परिहरै, कपट न कपटी नीच।

मरत सिखावन देइ चले गीधराज मारीच॥ 341॥

सुजन सुतरू बन [1], ऊख सम, खल टंकिका रूखन।

परहित बनहित लागि सब साँसति सहज समान॥ 342॥

पिअहिं सुमन-रस अलि, बिटप काटि कोल फल खात।

तुलसी तरूजीवी जुगल, सुमति कुमति की बात॥ 343॥

अवसर कौड़ी जो चुकै बहुरि दिए का लाख?

दुइज न चंदा दखिये, उदौ कहा भरि पाख॥ 344॥

ज्ञान अनभले को सबहि, भले भलेहू काउ।

सींग, सूँड़, रद ,तूम, नख करत जीव जड़ घाउ॥ 345॥

तुलसी जग-जीवन अहित, कतहुँ कोउ हित जानि।

---

[^1] बन = कपास।

सोषक भानु कृसानु महि पवन, एक घन दानि॥ 346॥

सुतिय सुधा देखिय गरल, सब करतुति कराल।

जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत मराल॥ 347॥

जलचर, थलचर, गगनचर, देव, दनुज, नर, नाग।

उत्तम मध्यम अधम खल, दस गुन बढ़त बिभाग॥ 348॥

बलि मिस देखे देवता, कर मिस मानव-देव [1]।

मुए-मार सुबिचार हत स्वारथ-साधन एव॥ 349॥

सुजन कहत भल पोच पथ, पापि न परखै भेद।

करमनास सुरसरित मिस बिधि निषेध बद बेद॥ 350॥

मनि भाजन मधु [2], पारई [3] पूरन अमी निहारि।

का छाँड़िय का संग्रहिय कहहु बिबेक बिचारि॥ 351॥

उत्तम मध्यम नीच गति पाहन सिकता, पानि।

प्रीति परिच्छा तिहुँन की बैर बितिक्रम जानि [4]॥ 352॥

---

[^1] मानवदेव = राजा।

[^2] मधु = मद्य।

[^3] पारई = मिट्टी का कटोरा। परई।

[^4] पत्थर पर की, बालू पर की और पानी पर की लकीर की सी प्रीति क्रम से उत्तम, मध्यम और नीच हैं। बैर का क्रम इसका उलटा है।

पुन्य, प्रीति, पति, प्रापतिउ, परमारथ-पथ पाँच।

लहहिं सुजन, परिहरहिं खल, सुनहु सिखवन साँच॥ 353॥

नीच निरादर ही सुखद, आदर सुखद बिसाल [1]।

कदली बदली बिटप गति, पेखहु पनस रसाल। 354॥

तुलसी अपनो आचरन भलो न लागत कासु।

तेहि न बसात जो खात नित लहसुनहू को बासु॥ 355॥

बुध सो बिबेकी बिमलमति जिनके रोष न राग।

सुहृद सराहत साधु जेहि तुलसी ताको भाग॥ 356॥

आपु आपु कहँ सब भलो, अपने कहँ कोइ कोइ।

तुलसी सब कहँ जो भलो, सुजन सराहिय सोइ॥ 357॥

तुलसी भलो सुसंग तें, पोच कुसंगति होइ।

नाउ, किन्नरी, तीर, असि लोह बिलोकहु लोइ॥ 358॥

गुरु-संगति गुरु होइ सो, लघु-संगति लघु नाम ।

चार पदारथ में गनैं, नरक-द्वार हू काम॥ 359॥

तुलसी गुरु लघुता लहत लघु-संगति परिनाम ।

देवी देव पुकारिय नीच नारि-नर-नाम॥ 360॥

तुलसी किये कुसंग थिति होहिं दाहिने बाम।

---

[^1] बिसाल = बड़ा।

कहि सुनि सकुचिय सूम खल गत हरि-शंकर-नाम॥ 361॥

बसि कुसंग चह सुजनता ताकी आस निरास।

तीरथहू को नाम भे ‘गया’ मगह के पाद॥ 362॥

राम-कृपा तुलसी सुलभ गंग सुसंग समान।

जो जल परै जो जन मिलै कीजै आपु समान॥ 363॥

ग्रह, भेषज, जल, पवन, पट पाइ कुजोग सुजोग।

होइ कुबस्तु सुबस्तु जग, लखहि सुलच्छन लोग॥ 364॥

जनम जोग में जानियत, जग बिचित्र गति देखि।

तुलसी आखर, अंक, रस, रंग बिभेद बिसेखि॥ 365॥

आखर जोरि बिचार करू, सुमति अंक लिखि लेखु।

जोग-कुजोग सुजोग-मय जग-गति समुझि बिसेखु॥ 366॥

करू बिचारि, चलु सुपथ, भल आदि मध्य परिनाम।

उलटि जपे ‘जारा मरा’, सूधें ‘राजा राम’॥ 367॥

होइ भले के अनभलो, होइ दानि के सूम।

होइ कपूत सपूत के, ज्यों पावक में धूम॥ 368॥

जड़ चेतन गुन-दोष मय बिस्व कीन्ह करतार।

संत हंस गुन गहहि पय परिहरि बारि बिकार॥ 369॥

(सोरठा)

पाट कीट तें होइ, तातें पाटंबर रूचिर।

कृमि पालै सबु कोइ परम अपावन प्रान सम॥ 370॥

(दोहा)

जो जो जेहि जेहि रस-मगन तहँ सों मुदित मन मानि।

रसगुन दोष बिचारिबो रसिक-रीति पहिचानि॥ 371॥

सम प्रकास-तम पाख दुहुँ नाम-भेद बिधि कीन्ह।

ससि पोषक सोषक समुझि जग जस अपजस दीन्ह॥ 372॥

लोक बेद हूँ लौं दगो [1] नाम भले को पोच।

धर्मराज जम, गाज पबि कहत सकोच न सोच॥ 373॥

बिरूचि [2] परखिए सुजन जन, राखि परखिये मंद।

बड़वानल सोषत उदधि, हरष बढ़ावत चंद॥ 374॥

प्रभु सनमुख भए नीच नर निपट होत बिकराल।

रबि-रूख लखि दरपन फटिक उगिलत ज्वालाजाल॥ 375॥

प्रभु-समीप-गत सुजन जन होत सुखद सुबिचारि।

---

[^1] दगो = अंकित है, प्रसिद्ध है।

[^2] बिरूचि = अपनी रुचि या प्रसन्नता से जो देखते ही हो।

लवन-जलधि-जीवन जलद, बरषत सुधा सुबारि॥ 376॥

नीच निरावहि निरस तरू, तुलसी सींचहिं ऊख।

पोषद पयद समान सब बिष पियूष के रूख॥ 377॥

बरषि बिस्व हरषित कहत, हरत ताप अघ प्यास।

तुलसी दोष न जलद को जो जल जरै जवास॥ 378॥

अमर दानि जाचक मरहिं, मरि मरि फिरि फिरि लेहिं।

तुलसी जाचक पातकी दातहिं दूषन देहिं॥ 379॥

लखि गयंद लै चलत भजि स्वान सुखानो हाड़।

गज गुन, मोल, अहार, बल महिमा जान कि राड़?[1]॥ 380॥

कै निदरहु कै आदरहुँ सिंहहि स्वान सियार।

हरष बिषाद न केसरिहि कुंजर-गंजनिहार॥ 381॥

ठाढ़ो द्वार न दै सकैं तुलसी जे नर नीच।

निंदहिं बलि हरिचंद को ‘का कियो करन दधीच?’॥ 382॥

ईस-सीस बिलसत बिमल, तुलसी तरल तरंग।

स्वान सरावग के कहें लघुता लहै न गंग॥ 383॥

तुलसी देवल देव को लागे लाख करोरि।

काक अभागें हगि भर्‌यो महिमा भई कि थोरि?॥ 384॥

---

[^1] राड़ = जड़, दुष्ट।

निज गुन घटत नाग-नग परखि परिहरत कोल।

तुलसी प्रभु भूषन किए, गुंजा बढ़े न मोल॥ 385॥

राकापति षोड़स उवहिं, तारा-गन समुदाइ।

सकल गिरिन दव लाइए बिनु रबि राति न जाइ॥ 386॥

भलो कहै बिनु जानेहू, बिनु जानें अपबाद।

ते नर गादुर जानि जिय कहिय न हरष बिषाद॥ 387॥

पर-सुख-संपति देखि सुनि जरहिं जे बड़ बिनु आगि।

तुलसी तिनके भाग ते चलै भलाई भागि॥ 388॥

तुलसी जे कीरति चहहि पर की कीरति खोइ।

तिनके मुँह मसि लागिहैं, मिटहि न मरिहै धोइ॥ 389॥

तनु, गुन, धन, महिमा, धरम, तेहि बिनु जेहि अभिमान।

तुलसी जियत बिडंबना, हरिनामहु गत जान॥ 390॥

सासु, ससुर, गुरू, मातु, पितु, प्रभु भयो चह सब कोइ।

होनी दुजी ओर को, सुजन सराहिय सोइ॥ 391॥

सठ सहि साँसति पति लहत, सुजन कलेस न काय।

गढ़ि गुढ़ि पाहन पूजिए, गंडकि-सिला सुभाय॥ 392॥

बड़े बिबुध-दरबार तें भूमि-भूप-दरबार।

जापक पूजत पेखियत सहत निरादर भार॥ 393॥

बिनु प्रपंच छल भीख भलि, लहिय न दिए कलेस।

बावन बलि सों छल कियो, दियो उचित उपदेस॥ 394॥

भलो भले सों छल किए, जनम कनौड़ो होइ।

श्रीपति सिर तुलसी लसति, बलि-बावन-गति सोइ॥ 395॥

बिबुध-काज बावन बलिहि छलो भलो जिय जानि।

प्रभुता तजि बस भे, तदपि मन की गइ न गलानि॥ 396॥

सरल-बक्र-गति पंच-ग्रह, चपरि [1] न चितवत काहु।

तुलसी सूधे सूर ससि, समय बिडंबित राहु॥ 397॥

खल-उपकार बिकार-फल तुलसी जान जहान।

मेढुक मर्कट बनिक बक कथा सत्य-उपखान [2]॥ 398॥

तुलसी खल-बानी मधुर सुनि समुझिय हिय हेरि।

राम-राज बाधक भई मूढ़ मंथरा चेरि॥ 399॥

जोंक सूधि मन कुटिल गति, खल बिपरीत बिचारू।

अनहित सोनित सोष सो, सो हित सोषनहारू॥ 400॥

नीच गुड़ी ज्यों जानिबो, सुनि लखि तुलसीदास।

ढीलि दिये गिरि परत महि, खैंचत चढ़त अकास॥ 401॥

---

[^1] चपरि = तेजी से, सहसा।

[^2] सत्य उपखान = सत्योपाख्यान नाम का ग्रंथ।

भरदर बरसत कोस-सत बचैं जे बूँद बराइ।

तुलसी तेउ खल-बचन-सर हये, गए न पराइ॥ 402॥

पेरत कोल्हू मैलि तिल तिली सनेही जानि।

देखि प्रीति की रीति यह, अब देखिबी रिसान॥ 403॥

सहबासी काचो गिलहिं, पुरजन पाक-प्रबीन।

कालछेप केहि मिलि करहिं तुलसी खग मृग मीन?॥ 404॥

जासु भरोसे सोइए राखि गोद में सीस।

तुलसी तासु कुचाल तें रखवारो जगदीश॥ 405॥

मार [1] खोज लै सौंह करि, करि मत, लाज न त्रास।

मुए नीच ते मीच बिनु जे इनके बिस्वास॥ 406॥

परद्रोही, परदार-रत, परधन, पर-अपबाद।

ते नर पाँवर पापमय देह धरे मनुजाद॥ 407॥

बचन बेष क्यों जानिए मन मलीन नर नारि।

सूपनखा, मृग, पूतना, दसमुख प्रमुख बिचारि॥ 408॥

हँसनि, मिलनि, बोलनि, मधुर कटु करतब मन माँह।

छुवत जो सकुचै सुमति सो तुलसी तिन्हकी छाँह॥ 409॥

---

[^1] मार = मारते है।

कपट सार सूची सहस, बाँधि बचन-परबास [2]।

कियो दुराउ चहै चातुरी सो सठ तुलसीदास॥ 410॥

बचन बिचार अचार तन, मन, करतब छल छूति।

तुलसी क्यों सुख पाइये अंतरजामिहि धूति॥ 411॥

सारदूल को स्वाँग करि, कूकर की करतूति ।

तुलसी तापर चाहिए कीरति बिजय बिभूति॥ 412॥

बड़े पाप बाढ़ें किए, छोटे किए लजात।

तुलसी तापर सुख चहत, बिधि सों बहुत रिसात॥ 413॥

देस-काल-करता-करम-बचन-बिचार-बिहीन।

ते सुरतरू-तर दारिदी, सुरसरि-तीर मलीन॥ 414॥

साहस ही, कै कोप-बस किए कठिन परिपाक।

सठ संकट-भाजन भए हठि कुजाति कपि काक॥ 415॥

राज करत बिनु काजहीं करैं कुचालि कुसाज।

तुलसी ते दसकंध ज्यों जइहैं सहित समाज॥ 416॥

राज करत बिनु काज हीं ठटहिं जे कूर कुठाट।

तुलसी ते कुरूराज ज्यों जइहैं बारह-बाट॥ 417॥

सभा सुयोधन की सकुनि, सुमति सराहन जोग।

---

[^2] परबास = प्रवास, आच्छादन अर्थात् प्रबंध।

द्रोन बिदुर भीषम हरिहि कहैं प्रपंची लोग॥ 418॥

पांडु-सुवन की सदसि, नीको रिपु हित जानि।

हरि हर सम सब मानियत, ज्ञान मोह की बानि॥ 419 ।

हित पर बढ़ै बिरोध जब, अनहित पर अनुराग।

राम-बिमुख बिधि बाम-गति, सगुन अघाय अभाग॥ 420॥

सहज सुहृद गुर स्वामि सिख जो न करै सिर मानि।

सों पछिताइ अधाइ उर, अवसि होइ हित-हानि॥ 421॥

भरूहाए [1] नट भाट के चपरि चढ़े संग्राम।

कै वै भाजे आइहैं, कै बाँधे परिनाम॥ 422॥

लोक-रीति फूटी सहैं, आँजी सहै न कोइ।

तुलसी जो आँजी सहै सो आँधरो न होइ॥ 423॥

भागे भल ओड़ेहुँ भलो, भलो न घालें घाउ।

तुलसी सब के सीस पर रखवारो रघुराउ॥ 424॥

सुमति बिचारहिं, परिहरहिं दल-सुमनहु संग्राम।

सकुल गए, तनु बिनु भए, साखी जादौ काम॥ 425॥

कलह न जानब छोट करि, कलह कठिन परिनाम।

लगति अगिनि लघु नीच-गृह जरत धनिक-धन धाम॥ 426॥

---

[^1] भरुहाए = बढ़ावा देने से।

छमा रोष के दोष गुन सुनि मनु! मानहिं सीख।

अबिचल श्रीपति हरि भए, भूसुर लहै न भीख॥ 427॥

कौरव पांडव जानिए क्रोध छमा के सीम।

पाँचहि मारि न सौ सकै, सओ सँहारे भीम॥ 428॥

बोल न मोटे मारिये, मोटी रोटी मारू।

जीति सहस सम हारिबो, जीते हारि निहारू॥ 429॥

जो परि पाँय मनाइए तासों रूठि बिचारि।

तुलसी तहाँ न जीतिये जहँ जीतेहू हारि॥ 430॥

जूझे ते भल बूझिबो, भली जीति तें हारि।

डहकें तें डहकाइबो भलो, जो करिय बिचारि॥ 431॥

जा रिपु सों हारेहु हँसी, जीते पाप परितापु।

तासों रारि निवारिए, समय सँभारिय आपु॥ 432॥

जो मधु मरै न मारिये माहुर देव सो काउ।

जग जिति हारे परसुधर, हारि जिते रघुराउ॥ 433॥

बैर-मूल-हर हित-बचन प्रेम-मूल उपकार।

दो 'हा' [1] सुभ-संदोह सो तुलसी किये बिचार॥ 434॥

रोष न रसना खोलिए, बरू खोलिय तरवारि ।

---

[^1] दो 'हा' = 'हा हा' अर्थात् हा हा खाना; बिनती करना।

सुनत मधुर, परिनाम हित, बोलिय बचन बिचारि॥ 435॥
मधुर बचन कटु बोलिबो, बिनु स्रम भाग अभाग।
कुहू कुहू कलकंठ रव, काँ काँ कररत काग॥ 436॥
पेट न फूलत बिनु कहे, कहत न लागै ढेर।
सुमति बिचारे बोलिऐ समुझि कुफेर सुफेर॥ 437॥
छिद्यो न तरुनि-कटाछ सर, करेउ न कठिन सनेहु।
तुलसी तिनकी देह को जगत कवच करि लेहु॥ 438॥
सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु।
बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर करहिं प्रतापु॥ 439॥
बचन कहे अभिमान के पारथ पेषत सेतु।
प्रभु-तिय लूटत नीच भर जय न, मीचु तेहि हेतु [1]॥ 440॥
राम लषन बिजयी भए बनहु गरीब-निवाज।
मुखर बालि रावन गए घरहीं सहित समाज॥ 441॥
खग मृग मीत पुनीत किय, बनहु राम नयपाल।
कुमति बालि दसकंठ घर सुहृद बंधु कियो काल॥ 442॥

---

[^1] एक बार समुद्र में बँधे हुए सेतु को देख अर्जुन ने हनुमान से गर्व से कहा, “मैं तो बाणों का पुल बाँध सकता था।” अर्जुन ने पुल बाँधा, पर वह हनुमान जी के पैर रखते ही बैठ गया।

लखै अघानो भूख में, लखै जीति में हारि।

तुलसी सुमति सराहिए, मग पग धरै बिचारि॥ 443॥

लाभ समय को पालिबो, हानि समय की चूक ।

सदा बिचारहिं चारूमति सुदिन कुदिन दिन दूक [1]॥ 444॥

सिंधु-तरन कपि गिरि-हरन काज साइँ हित दोउ।

तुलसी समयहिं सब बड़ो, बूझत कहुँ कोउ कोउ॥ 445॥

तुलसी मीठी अमी तें माँगी मिलै जो मीच ।

सुधा सुधाकर समय बिनु कालकूट तें नीच॥ 446॥

तुलसी असमय के सखा धीरज, धर्म, बिबेक।

साहित, साहस, सत्यब्रत राम-भरोसो एक॥ 447॥

समरथ कोउ न राम सो, तीय-हरन अपराधु।

समयहिं साधे काज सब, समय सराहिहिं साधु॥ 448॥

तुलसी तीरहु के चलें समय पाइबी थाह।

धाइ न जाइ थहाइबी सर सरिता अवगाह॥ 449॥

तुलसी जसि भवितब्यता तैसी मिलै सहाय।

आपु न आवै ताहि पै, ताहि तहाँ लै जाय॥ 450॥

कै जूझिबो कै बूझिबो, दान कि काय-कलेस।

---

[^1] दूक = दोनो।

चारि चारू परलोक-पथ जथा-जोग उपदेस॥ 451॥

पात पात को सींचिबो न करू सरग-तरू हेत।

कुटिल कटुक फर फरैगो तुलसी करत अचेत॥ 452॥

गठिबँध ते परतीति बड़ि, जेहिं सबको सब काज।

कहब थोर समुझब बहुत, गाड़े बढ़त अनाज॥ 453॥

अपनो ऐपन निज-हथा, तिय पूजहिं निज भीति।

फलै सकल मन कामना, तुलसी प्रीति प्रतीति॥ 454॥

बरषत करषत आपु जल, हरषत अरघनि भानु।

तुलसी चाहत साधु सुर सब सनेह सनमानु॥ 455॥

स्रुति-गुन कर-गुन पु-जुग मृग हय, रेवती, सखाउ [1]।

देहि लेहि धन धरनि धरू, गएहु न जाइहि काउ॥ 456॥

ऊगुन पूगुन वि अज कृ म, आ भ अ मू गुनु साथ [2]।

---

[^1] स्रुति-गुन = श्रवण से तीन नक्षत्र अर्थात् श्रवण, घनिष्ठा और शतभिक्।

कर-गुन = हस्त से तीन नक्षत्र अर्थात् हस्त, चित्रा और स्वाती।

पु-जु = दोनों पु अर्थात् ‘पु’ से आरम्भ होनेवाले पुष्प और पुनर्वसु।

सखा = अनुराधा। स्वात्यादित्य मृदुद्विदैव गुरु में कर्णात्रयाश्वे चरे।

[^2] उ-गुन = उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्रपद।

पू-गुन = पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्वाभाद्रपद।

हरो धरो गाड़ो दियो धन फिर चढ़ै न हाथ॥ 457॥

रबि हर दिसि गुन रस नयन, मुनि प्रथमादिक बार [1]।

तिथि सब-काज नसावनी, होइ, कुजोग बिचार॥ 458॥

ससि सर नव दुइ छ दस गुन, मुनि फल बसु हर भानु।

मेषादिक क्रम तें गनहि घात चंद्र जिय जानु [2]॥ 459॥

नकुल सुदरसन [3] दरसनी [4], छेमकरी चक[5] चाष।

दस दिसि देखत सगुन सुभ, पुजहि मन अभिलाष॥ 460॥

सुधा साधु सुरतरू सुमन, सुफल सुहावनि बात।

वि = विशाखा। अज = रोहिणी। कृ = कृत्तिका। म = मघा। आ = आद्रा। भ = भरणी। अ = अश्लेषा। मू = मूल।

[^1] रवि = द्वादशी। हर = एकादशी। दिसि = दसमी। गुन = तीज। रस = षष्ठी। नयन = दूज। मुनि = सप्तमी — ये यदि क्रम से रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि को पड़े तो।

[^2] चंद्रमा को इन इन स्थानों पर घातक समझो — मेष का 1, वृष का 5, मिथुन का 9, कर्क का 2, सिंह का 6, कन्या का 10, तुला का 3, वृश्चिक का 7, धनु का 4, मकर का9, कुंभ का 11, मीन का 12।

[^3] सुदरसन = मछली।

[^4] दरसनी = दर्पण।

[^5] चक = चक्रवाक।

तुलसी सीतापति भगति सगुन सुमंगल सात॥ 461॥

भरत सत्रु-सुदन लषन सहित सुमिरि रधुनाथ ।

करहु काज सुभ साज सब, मिलिहि सुमंगल साथ॥ 462 ।

राम लषन कौसिक सहित सुमिरहु करहु पयान।

लच्छि-लाभ लै जगत जसु मंगल सगुन प्रमान॥ 463॥

अतुलित महिमा बेद की तुलसी किए बिचार।

जो निंदत निंदित भयो बिदित बुद्ध अवतार॥ 464॥

बुध किसान सर-बेद निज मते खेत सब सींच ।

तुलसी कृषि लखि जानिबो उत्तम, मध्यम, नीच॥ 465॥

सहि कुबोल, साँसति सकल, अँगइ अनट अपमान।

तुलसी धरम न परिहरिय, कहि करि गए सुजान॥ 466॥

अनहित भय परहित किये, पर-अनहित हित-हानि।

तुलसी चारू बिचार भल, करिय काज सुनि जानि॥ 467॥

पुरूषारथ, पूरब करम, परमेस्वर परधान।

तुलसी पैरत सरित ज्यों सबहिं काज अनुमान॥ 468॥

चलब नीति-मग, राम-पग नेह निबाहब नीक।

तुलसी पहिरिय सो बसन जो न पखारे फीक॥ 469॥

दो ‘हा’ चारू बिचारू चलु परिहरि बाद बिबाद।

सुकृत-सीवँ, स्वारथ-अवधि, परमारथ-मरजाद॥ 470॥

तुलसी सो समरथ सुमति, सुकृती, साधु, सयान।

जो बिचारि ब्यवहरइ जग, खरच लाभ अनुमान॥ 471॥

जाय [1] जोग जग छेम बिनु, तुलसी के हित राखि।

बिनुऽपराध भृगुपति, नहुष, बेनु, बृकासुर साखि॥ 472॥

बड़ि प्रतीति गठिबंध तें, बड़ो जोग तें छेम।

बड़ो सुसेवक साइँ तें, बड़ो नेम तें प्रेम॥ 473॥

सिष्य, सखा, सेवक, सचिव, सुतिय सिखावन साँच।

सुनि समुझिय पुनि परिहरिय पर-मन-रंजन पाँच॥ 474॥

नगर, नारि, भोजन, सचिव, सेवक, सखा, अगार।

सरस, परिहरे रंग-रस निरस बिषाद बिकार॥ 475॥

तूठहिं निज रूचि काज करि, रूठहिं काज बिगारि।

तीय, तनय, सेवक, सखा, मन के कंटक चारि॥ 476॥

दीरघ रोगी, दारिदी, कटुबच लोलुप लोग।

तुलसी प्रान समान तउ होहिं निरादर-जोग॥ 477॥

---

[^1] जाय = व्यर्थ।

पाही खेती [1], लगन-बट [2] ऋन कुब्याज, मग खेत।
बैर बड़े सों आपने, किए पाँच दुख हेत॥ 478॥

धाय लगै लोहा ललकि खैंचि लेइ नइ नीचु [3]।
समरथ पापी सों बयर, जानि बिसाही मीचु॥ 479॥

सोचिय गृही जो मोह-बस, करै कर्म-पथ-त्याग।
सोचिय जती प्रपंच रत, बिगत बिबेक बिराग॥ 480॥

तुलसी स्वारथ सामुहो, परमारथ तनु पीठि।
अंध कहै दुख पाइहौ, डिठिआरो केहि डीठि?॥ 481॥

बिन आँखिन की पानहीं पहिचानत लखि पाय।
चारि नयन के नारि नर सूझत मीचु न माय॥ 482॥

जुपै मूढ़ उपदेस के होते जोग जहान।
क्यों न सुजोधन बोध कै आए स्याम सुजान?॥ 483॥

(सोरठा)

फूलै फरै न बेत, जदपि सुधा बरषहिं जलद।

---

[^1] पाही खेती = जिस गाँव में बसे हो उससे दूर दूसरे गाँव में खेती।

[^2] लगन-वट = प्रेम।

[^3] मछली और कटिया का दृष्टांत।

मूरख हृदय न चेत, जो गुर मिलैं बिरंचि सिव॥ 484॥

(दोहा)

रीझि आपनी बेझि पर, खीझि बिचार बिहीन।

ते उपदेस न मानहीं मोह-महोदधि-मीन॥ 485॥

अनसमुझें अनुसोचनो, अवसि समुझिए आपु।

तुलसी आपु न समुझिऐ पल-पल पर परितापु॥ 486॥

कूप खनत मंदिर जरत, आए धारि बबूर [1]।

बवहिं नवहिं निज काज सिर कुमति-सिरोमनि कूर॥ 487॥

निडर ईस तें बीसकै [2] बीस-बाहु सो होइ।

गयो गयो कहैं सुमति सब, भयो कुमति कह कोइ॥ 488॥

जो सुनि समुझि अनीति रत, जागत रहै जु सोइ।

उपदेसिबो जगाइबो तुलसी उचित न होइ॥ 489॥

बहु मुख, बहु रूचि, बहु बचन, बहु अचार ब्यवहार।

इनको भलो मनाइबो यह अज्ञान अपार॥ 490॥

---

[^1] आए धारि बबूर बबहिं = कहावत अर्थात् जब सेना ने गढ़ घेर लिया तब चारों ओर रोक के लिए चले बबूल बोने।

[^2] बीसकै = बीस बिस्वे, निश्चय।

लोगनि भलौ मनाव जो भलो होन की आस।

करत गगन को गेंदुआ [1] सो सठ तुलसीदास॥ 491॥

अपजस-जोग कि जानकी, मन-चोरी की कान्ह?

तुलसी लोग रिझाइबो करषि कातिबो नान्ह [^2]॥ 492॥

तुलसी जुपै गुमान [3] को होतो कछू उपाउ।

तौ कि जानकिहि जानि जिय परिहरते रघुराउ॥ 493॥

माँगि मधुकरी खात ते [4], सोवत गोड़ पसारि।

पाप-प्रतिष्ठा बढ़ि परी, ताते बाढ़ी रारि॥ 494॥

तुलसी भेड़ी की धँसनि जड़-जनता-सनमान।

उपजत ही अभिमान भो, खोवत मूढ़ अपान॥ 495॥

लही आँख कब आँधरे, बाँझ पूत कब ल्याय।

कब कोढ़ी काया लही? जग बहराइच जाइ [5]॥ 496॥

---

[^1] गेंदुआ = तकिया।

[^2] नान्ह = महीन।

[^3] गुमान = बुरी धारणा, शंका, लोकापवाद।

[^4] खात ते = खाते थे।

[^5] बहराइच, में सालार मसऊद गाजी (गाजी मियाँ) की दरगाह है, जहाँ कई हजार यात्री जाया करते हैं। यह महमूद गजनबी का भांजा था, जो महमूद के कन्नौज से आगे न

तुलसी निरभय होत नर सुनियत सुरपुर जाइ।

सो गति देखियत अछत तनु, सुख संपति गति पाइ॥ 497॥

तुलसी तोरत तीर-तरू, बक-हित हंस बिडारि।

बिगत-नलिन-अलि, मलिन जल, सुरसरिहू बढ़िआरि॥ 498॥

अधिकारी बस औसरा भलेउ जानिबे मंद।

सुधा-सदन बसु, बारहें, चउथे, चउथिउ [1] चंद॥ 499॥

त्रिबिध एक बिधि प्रभु अनुग अवसर करहिं कुठाट।

सूधे टेढ़े, सम बिषम, सब महँ बारह-बाट॥ 500॥

प्रभु तें प्रभु-गन दुखद लखि प्रजहिं सँभारै राउ।

कर तें होत कृपान को कठिन घोर घन घाउ॥ 501॥

ब्यालहु तें बिकराल बड़ ब्यालफेन जिय जानु।

वहि के खाए [2] मरत है, वह खाये बिनु प्रानु॥ 502॥

कारन ते कारज कठिन, होइ दोष नहि मोर।

कुलिस अस्थि तें, उपल तें लोह कराल कठोर॥ 503॥

बढने पर भी गाजी होने के हौसले से अवध की ओर कुछ सेना लेकर आया। यहाँ श्रावस्ती के जैन राजा सुहृददेव के हाथ से मारा गया।

[^1] चउथिउ = भादो सुदी चौथ का चंद्रमा।

[^2] वहि के खाए = उसके काटने से।

काल बिलोकत ईस-रुख, भानु काल-अनुहारि।

रबिहि राउ, राजहि प्रजा, बुध ब्यवहरहिं बिचारि॥ 504॥

जथा अमल पावन पवन पाइ कुसंग सुसंग।

कहिय कुबास सुबास तिमि काल महीस-प्रसंग॥ 505॥

भलेहु चलत पथ पोच भय, नृप-नियोग-नय-नेम।

सुतिय सुभूपति भूषियत लोह-सँवाहित हेम॥ 506॥

माली भानु किसान सम, नीति निपुन नरपाल।

प्रजा-भाग-बस होहिंगे कबहुँ कबहुँ कलिकाल॥ 507॥

बरसत हरषत लोग सब, करषत लखै न कोइ।

तुलसी प्रजा-सुभाग ते भूप भानु सो होइ॥ 508॥

सुधा [1], सुनाज, कुनाज, फल, आम असन सम जानि।

सुप्रभु प्रजा-हित लेहिं कर सामादिक अनुमानि॥ 509॥

पाके, पकये, बिटप-दल उत्तम मध्यम नीच।

फल नर लहैं, नरेस त्यों करि बिचार मन बीच॥ 510॥

रीझि खीझि गुरु देत सिख, सखा सुसाहिब साधु।

तोरि खाइ फल होइ भल, तरू काटे अपराधु॥ 511॥

---

[^1] सुधा = दूध रस आदि पीने के उत्तम पदार्थ।

धरनि-धेनु चारितु [2] चरत, प्रजा सुबच्छ पेन्हाइ।

हाथ कछू नहिं लागिहै किए गोड़ की गाइ [2]॥ 512॥

चढे बधूरे चंग ज्यों. ज्ञान ज्यों सोक-समाज।

करम, धरम, सुख-संपदा त्यों जानिबे कुराज॥ 513॥

कंटक करि करि परत गिरि साखा सहस खजूरिं ।

मरहिं कुनृप करि कुनय सो कुचालि भव भूरि॥ 514॥

काल तोपची तुपक महि, दारू अनय कराल।

पाप पलीता, कठिन गुरु गोला पुहुमी-पाल॥ 515॥

भूमि रूचिर रावन-सभा अंगद-पद महिपाल।

धरम राम, नय सीय बल अचल होत सुभ काल॥ 516॥

प्रीति-राम-पद, नीति-रति, धरम प्रतीति सुभाइ।

प्रभुहिं न प्रभुता परिहरै कबहुँ बचन मन काइ॥ 517॥

कर के कर, मन के मनहिं, बचन बचन गुन जानि।

भूपहि भूलि न परिहरै बिजय बिभूति सयानि॥ 518॥

गोली बान [3] सुमंत्र सर समुझि उलटि मन देखु।

---

[^2] चारितु = चारा।

[^2] गोड़ की करना = दूध दुहते समय गाय के पैर बाँधना।

[^3] बान = बाना। फेंक कर मारा जाने वाला अस्त्र।

उत्तम मध्यम नीच प्रभु बचन बिचारि बिसेखु॥ 519॥

सत्रु सयानो सलिल ज्यों राख सीस रिपु-नाउ।

बूड़त लखि, पग डरत लखि, चपरि चहूँ दिसि धाउ॥ 520॥

रैयत, राज-समाज, घर, तन, धन, धरम, सुबाहु [1]।

सांत सुसचिवन सौंपि सुख बिलसइ नित नरनाहु ॥ 521॥

मुखिया मुख सो चाहिये, खान पान को एक।

पालै पोषै सकल अँग तुलसी सहित बिबेक॥ 522॥

सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिब होइ।

तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकबि सराहहिं सोइ॥ 523॥

मंत्री, गुरु अरु बैद जो प्रिय बोलहिं भय आस।

राज, धरम, तन तीनि कर होहि बेगिहीं नास॥ 524॥

रसना मंत्री, दसन जन, तोष पोष निज काज।

प्रभु-कर सेन पदादिका बालक राज समाज॥ 525॥

लकडी डौआ करछुली सरस काज अनुहारि।

सुप्रभु संग्रहहिं परिहरहिं सेवक सखा बिचारि॥

प्रभु समीप छोटे, बड़े, निबल, होत बलवान।

तुलसी प्रगट बिलोकिये कर अँगुली अनुमान॥ 527॥

---

[^1] सुबाहु = सेना ।

साहब तें सेवक बड़ो जो निज धरम सुजान।

राम बाँधि उतरे उदधि, लाँधि गए हनुमान॥ 528॥

तुलसी भल बरतरू बढ़त, निज मूलहिं अनुकूल।

सबहि भाँति सब कहँ सुखद दलनि-फलनि बिनु फूल॥ 529॥

सधन, सगुन, सधरम, सगन, सबल सुसाइँ महीप।

तुलसी जे अभिमान बिनु ते त्रिभुवन के दीप॥ 530॥

तुलसी निज करतूति बिनु मुकुत जात जब कोइ।

गयो अजामिल लोक-हरि नाम सक्यो नहिं धोइ॥ 531॥

बड़ो गहे ते होत बड़, ज्यों बावन-कर-दंड।

श्रीप्रभु के सँग सों बढ़ो, गयो अखिल ब्रह्मंड॥ 532॥

तुलसी दान जो देत हैं जल में हाथ उठाइ [1]।

प्रतिग्राही जीवै नहीं, दाता नरकै जाइ॥ 533॥

आपन छोड़ो साथ जब ता दिन हितू न कोइ।

तुलसी अंबुज अंबु-बिनु तरनि तासु रिपु होइ॥ 534॥

उरबी परि कलहीन होइ, ऊपर कलाप्रधान।

---

[^1] जल में हाथ उठाय = गंगा में खड़े होकर जो गंगापुत्र आदि को दान दिया जाता है, वह ऐसा ही है जैसा जल में मछली पकड़ने के लिए फेंका हुआ चारा जिसे लेनेवाला भी मर जाता है और देनेवाला भी नरक में जाता है।

तुलसी देखु कलाप-गति, साधन-धन पहिचान॥ 535॥

तुलसी संगति पोच की सुजनहि होत मदानि [1]।

ज्यो हरि रूप सुताहि तें कीन गोहारी आनि [2]॥ 536॥

कलि-कुचालि सुभ-मति-हरनि, सरलै दंडै चक्र [3]।

तुलसी यह निहचय भई, बाढ़ि लेति नव [4] बक्र [5]॥ 537॥

गो-खग खे-खग बारि-खग तीनों महिं बिसेक।

तुलसी पीवैं, फिरि चलैं, रहैं फिरैं सँग एक॥ 538॥

साधन, समय, सुसिद्धि लहि, उभय मूल अनुकूल।

तुलसी तीनिउ समय सम ते महि मंगल-मूल॥ 539॥

मातु पिता-गुरु-स्वामि-सिख सिर धरि करहिं सुभाय।

लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर, न तरू जनमु जग जाय॥ 540॥

---

[^1] मदानि = कल्याणदायिनी।

[^2] भक्तमाल में कथा है कि एक बढ़ई ने काठ के दो हाथ कर विष्णु का रूप बनाया और एक राजकन्या पर मोहित होकर उससे विवाह कर लिया। एक बार कन्या के पिता पर कोई आपत्ति आई। उसने अपनी कन्या से अपने पति विष्णु से सहायता माँगने के लिये कहा। अपने रूप की मर्यादा का ध्यान करके विष्णु ने सचमुच रक्षा की।

[^3] चक्र = राजचक्र, अर्थात् राजा अपने राजपुरुषों के सहित।

[^4] बाढ़ि लेत नव= नित नई नई बढ़ती है।

[^5] वक्र = वक्रता।

अनुचित उचित बिचार तजि, जे पालहिं पितु-बैन।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति-ऐन॥ 541॥

(सोरठा)

सहज अपावनि नारि, पति सेवत सुभ गति लहै।
जसु गावत स्रुति चारि, अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय॥ 542॥

(दोहा)

सरनागत कह जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पाँवर पापमय, तिनहिं बिलोकत हानि॥ 543॥
तुलसी तृन जल-कूल को निरधन, निपट निकाज।
कै राखै कै सँग चलै, बाँह गहे की लाज॥ 544॥
रामायन-अनुहरत सिख जग भयो भारत रीति।
तुलसी सठ की को सुनै? कलि-कुचालि पर प्रीति॥ 545॥
पात पात कै सींचिबो, बरी बरी कै लोन।
तुलसी खोटे चतुरपन कलि डहके कहु को न?॥ 546॥
प्रीति, सगाई, सकल गुन, बनिज, उपाय अनेक।
कल बल छल कलि-मल मलिन डहकत एकहि एक॥ 547॥

दंभ सहित कलि-धरम सब, छल समेत ब्यवहार।

स्वारथ सहित सनेह सब, रूचि-अनुहरत अचार॥ 548॥

चोर, चतुर,बटमार, नट, प्रभुप्रिय भैंडुआ भंड।

सब-भच्छक परमारथी, कलि सुपंथ पाषंड॥ 549॥

असुभ भेष भूषन धरें भच्छ अभच्छ जे खाहिं।

ते जोगी, ते सिद्ध नर, पूजित कलिजुग माहिं॥ 550॥

(सोरठा)

जे अपकारी चार, तिनकर गौरव, मान्य तेइ।

मन बच करम लबार ते बकता कलिकाल महँ॥ 551॥

(दोहा)

ब्रह्म-ज्ञान बिनु नारि-नर कहहिं न दूसरि बात।

कौड़ी लागि तो मोह-बस करहिं बिप्र-गुरु-घात॥ 552॥

बादहिं सूद्र द्विजन सन “हम तुम ते कछु घाटि?।

जानहिं ब्रह्म सो बिप्रबर” आँखि देखावहिं डाँटि॥ 553॥

साखी सबदी दोहरा, कहि कहनी उपखान।

भमति निरूपहिं भगत कलि, निंदहिं बेद पुरान॥ 554॥

स्रुति-संमत हरि-भक्ति-पथ, संजुत-बिरति-बिबेक।

तेहि परिहरहिं बिमोह-बस, कल्पहिं पंथ अनेक॥ 555॥

सकल धरम बिपरीत कलि, कल्पित कोटि कुपंथ।

पुन्य पराय पहार बन, दुरे पुरान सुभ ग्रंथ॥ 556॥

धातुवाद [1], निरूपाधि बर, सदगुरु-लाभ सुभीत।

देव-दरस कलि-काल में पोथिन दुरे सभीत॥ 557॥

सुर-सदननि, तीरथ, पुरिन, निपट कुचालि कुसाज।

मनहुँ मवासे मारि [2] कलि राजत सहित समाज॥ 558॥

गोंड गँवार नृपाल महि, यमन महा-महिपाल।

साम न दान न भेद कलि, केवल दंड कराल॥ 559॥

फोरहिं सिल लोढ़ा सदन लागें अढ़ुक पहार।

कायर कूर कुपूत कलि घर घर सहस डहार [3]॥ 560॥

प्रगट चारि पद धरम के, कलि महँ एक प्रधान।

येन केन बिधि दीन्हें दान करें कल्यान॥ 561॥

कलिजुग सम जुग आन नहिं, जो नर कर बिस्वास।

---

[^1] धातुवाद = रसायन।

[^2] मवासे मारि = किला बाँधकर।

[^3] डहार = डालनेवाले। तंग करनेवाले।

गाइ राम-गुन-गन बिमल भव तर बिनहि प्रयास॥ 562॥

स्रवन घटहु, पुनि दृग घटहु, घटहु सकल बल देह।

इते घटें घटिहै कहा जो न घटै हरि-नेह?॥ 563॥

तुलसी पावस के समय धरी कोकिलन मौन।

अब तौ दादुर बोलिहैं, हमैं पूछिहै कौन॥ 564॥

कुपथ कुतरक कुचालि कलि, कपट दंभ पाषंड।

दहन राम-गुन-ग्राम जिमि ईंधन अनल प्रचंड॥ 565॥

(सोरठा)

कलि पाषंड-प्रचार, प्रबल पाप पाँवर पतित।

तुलसी उभय अधार, राम-नाम, सुरसरि-सलिल॥ 566॥

(दोहा)

रामचंद्र-मुख-चंद्रमा चित चकोर जब होइ।

राम-राज सब काज सुभ समय सुहावन सोइ॥ 567॥

बीज राम-गुन-गन, नयन जल, अंकुर पुलकालि।

सुकृती-सुतन सुखेत बर, बिलसत तुलसी सालि॥ 568॥

तुलसी सहित सनेह नित सुमिरहु सीता-राम।

सगुन सुमंगल सुभ-सदा आदि मध्य परिनाम॥ 569॥

पुरूषारथ स्वारथ सकल, परमारथ परिनाम।

सुलभ सिद्धि सब साहिबी सुमिरत सीता राम॥ 570॥

मनिमय दोहा दीप जहँ, उर-घर प्रगट प्रकास।

तहँ न मोह भय-तम तभी, कलि कज्जली बिलास॥ 571॥

का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिये साँच।

काम जु आवै कामरी, का लै करै कुमाच [^1]॥ 572॥

मनि मानिक महँगे किए, सहँगे तृन जल नाज।

तुलसी एतो जानिये राम गरीब-नेवाज॥ 573॥

(इति गोस्वामी तुलसीदास रचित दोहावली)

[^1] कुमाच = एक प्रकार का रेशमी कपड़ा।

गोस्वामी तुलसीदास

कवितावली

[हिन्दीकोश]

कवितावली

गोस्वामी तुलसीदास

बाल कांड

अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकिहौं सोच-बिमोचन को ठगि-सी रही,जे न ठगे धिक-से॥
तुलसी मनरंजन रंजित-अंजन नयन सु खंजन-जातक-से।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे॥ 1॥

पग नूपुर औ पहुँची करकंजनि मंजु बनी मनिमाल हिये।
नवनील कलेवर पीत झँगा झलकै, पुलकैं नृपु गोद लिये॥
अरबिंदु सो आनन, रूप-मरंद अनंदित लोचन-भृंग पिये।
मनमों न बस्यौ अस बालकु जौं तुलसी जग में फल कौन जिये?॥ 2॥

तन की दुति स्याम सरोरुह, लोचन कंचकी मंजुलताई हरैं।

अति सुंदर सोहत धूरि भरे छबि भूरि अनंग की दूरि धरैं॥
दमकैं दतियाँ दुति दामिनि-ज्यौं, किलकैं कल बाल-बिनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी-मन-मंदिर में बिहरैं॥ 3॥

कबहूँ ससि माँगत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं ॥
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी-मन-मंदिर में बिहरैं ॥ 4॥

बर दंत की पंगति कुंदकली, अधराधर-पल्लव खोलन की ।
चपला चमकैं घन बीच जगैं छबि मोतिन माल अमोलन की॥
घुँघुरारि लटैं लटकैं मुख ऊपर, कुंडल लोल कपोलन की ।
नेवछावरि प्रान करै तुलसी, बलि जाउँ लला इन बोलन की॥ 5॥

पदकंजनि मंजु बनीं पनही, धनुही सर पंकज-पानि लिये।
लरिका संग खेलत डोलत हैं सरजूतट चौहट हाट हिये॥
तुलसी अस बालक-सों नहि नेह कहा जप जोग समाधि किये?।
नर वे खर सूकर स्वान समान, कहौ जग में फल कौन जिये?॥ 6॥

सरजू बर तीरहि तीर फिरैं रघुबीर, सखा अरु बीर सबै।
धनुहीं कर तीर, निषंग कसें कटि, पीत दुकूल नवीन फबै॥
तुलसी तेहि औसर लावनिता दस, चारि, नौ, तीनि, इकीस सबै [1]।
मति-भारति पंगु भई जो निहारि, बिचारि फिरी उपमा न पबै॥ 7॥

(कवित्त)

छोनी में के छोनीपति छाजै जिन्है छत्रछाया
छोनी छोनी छाये छिति आए निमिराज के।
प्रबल प्रचंड बरिबंड बर बेष बपु
बरिबे को बोले बयदेही बरकाज के॥
बोले बंदी बिरुद बजाइ बर बाजनेऊ,
बाजे बाजे बीर-बाहु धुनत समाज के।

---

[^1] दस, चारि ... सबै = दम गुण माधुर्य के (रूप, लावण्य, सौंदर्य, माधुर्य, सौकुमार्य, यौवन, सुगंध, सुवेश, भाग्य, स्वचछता, उज्ज्वला)। चार गुण प्रताप के (ऐश्वर्य, वीर्य, तेज, बल)। ऐश्वर्य के नौ गुण (अदभ्रता, नियतात्मता, वशीकरण, वाग्मित्व, सर्वज्ञता, संहनन, स्थिरता, वदान्यता)। सहज या प्रकृति के तीन गुण (सौम्यता, रमण, व्यापकता)। यश के 21 गुण (सुशीलता, वात्सल्य, सुलभता, गंभीरता, क्षमा, दया, करुणा, आर्द्रव, उदारता, आर्जव, शरणयत्व, सौहार्द्र, चातुर्य, प्रीतियलव, कृतज्ञता, ज्ञान, नीति, लोकप्रियता, कुलीनता, अनुराग, निर्वहणता।)

तुलसी मुदित मन पुर नर-नारि जेते

बार-बार हेरैं मुख औध-मृगराज के॥ 8॥

सीय के स्वयंबर समाजु जहाँ राजनि को

राजनि के राजा महाराजा जानै नाम को?

पवन, पुरंदर, कृसानु, भानु, धनद से,

गुण के निधान रूपधाम सोम काम को?

बान बलवान जातुधानप सरीखे सूर

जिन्हके गुमान सदा सालिम [1] संग्राम को।

तहाँ दसरत्थ के समर्थ नाथ तुलसी के

चपरि चढ़ायो चापु चंद्रमा-ललाम [2] को॥ 9॥

मयनमहन पुरदहन गहन जानि

आनि कै सबै को सारु धनुष गढ़ायो है।

जनक सदसि जेते भले-भले भूमिपाल

किए बलहीन, बल आपनो बढ़ायो है॥

कुलिस-कठोर कूर्म पीठ तें कठिन अति

---

[^1] सालिम = दृढ़, अविचिलत।

[^2] चंद्रमा ललाम = चंद्रभूषण, शिव।

हठि न पिनाक काहूँ चपरि चढ़ायो है।

तुलसी सो राम के सरोज-पानि परसत ही

टूट्यौ मानो बारे ते पुरारि ही पढ़ायो है॥ 10॥

(छप्पय)

डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्ब पब्बै समुद्र-सर।

ब्याल बधिर तेहि काल, बिल दिगपाल चराचर॥

दिग्गयंद लरखरत, परत दसकंधु मुक्ख-भर।

सुर-बिमान हिमभानु [1] भानु संघटत परस्पर॥

चौंके बिरंचि संकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यौ।

ब्रह्मांड खंड कियो चंड धुनि जबहिं राम सिवधनु दल्यौ॥ 11॥

(घनाक्षरी)

लोचनाभिराम घनस्याम रामरूप सिसु,

सखी कहैं सखी सों तू प्रेमपय पालि, री!

बालक नृ पालजू के ख्याल ही पिनाक तोर्‌यो,

मंडलीक-मंडली-प्रताप-दापु दालि री॥

---

[^1] हिमभानु = चंद्रमा।

जनक को, सिया को, हमारो, तेरो, तुलसी को,

सब को भावती ह्वैहै, मैं जो कह्यो कालि ,री।

कौसिला की कोखि पर तोषि तन वारिये री,

राय दशरत्थ की बलैया लीजै आलि री॥ 12

दूब दधि रोचनु कनक-थार भरि भरि

आरति सँवारि बर नारि चलीं गावती।

लीन्हें जयमाल करकंज सोहैं जानकी के

"पहिरावो राघोजू को" सखियाँ सिखावतीं॥

तुलसी मुदित मन जनक नगर-जन

झाँकतीं झरोखें लागीं सोभा रानी पावतीं।

मनहुँ चकोरीं चारु बैठीं निज निज नीड़

चंद की किरन पीवैं, पलकैं न लावतीं॥ 13॥

नगर निसान बर बाजैं, ब्योम दुंदुभीं

बिमान चढ़ि गान कै कै सुरनारि नाचहीं।

जय जय तिहूँ पुर, जयमाल राम उर,

बरषैं सुमन सुर, रूरे रूप राचहीं॥

जनक को पन जर्‌यो, सबको भावतो भयो

तुलसी मुदित रोम-रोम मोद माचहीं।

सावँरो किसोर, गोरी सौभापर तृन तोरि

“जोरी जियो जुग-जुग” सखीजन जाँचहीं॥ 14॥

भले भूप कहत भलें भदेस भूपनि सों

“लोक लखि बोलिये पुनीत रीति मारखी”।

जगदंबा जानकी, जगतपितु रामभद्र,

जानि जिय जोवो जो न लागै मुँह कारखी॥

देखे हैं अनेक ब्याह, सुने हैं पुरान बेद,

बूझे हैं सुजान साधु नर-नारि पारिखी।

ऐसे सम समधी समाज न बिराजमान,

राम से न बर, दुलही न सिय-सारखी॥ 15॥

बानी बिधि गौरी हर सेसहू गनेस कही,

सही भरी लोमस भुसुंडि बहुबारिखो ।

चारिदस भुवन निहारि नर-नारि सब,

नारद को परदा न नारद सो पारिखो।

तिन कही जग में जगमगति जोरी एक,

दूजो को कहैया औ सुनैया चषचारिखो।
रमा रमारमन, सुजान हनुमान कही,
“सीय-सी न तीय न पुरुष राम-सारिखो”॥ 16॥

(सवैया)

दूलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुंदर मंदिर माहीं।
गावति गीत सबै मिलि सुंदरि, बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं॥
राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई, करि टेकि रही पल टारति नाहीं॥ 17॥

(कवित्त)

भूपमंडली प्रचंड चंडीस-कोदंड खंड्यो,
चंड बाहुदंडु जाको ताही सों कहतु हौं।
कठिन कुठार-धार धरिबे की धीरताहि,
बीरता बिदित ताकी देखिये चहतु हौं॥
तुलसी समाज राज तजि सो बिराजै आजु,
गाज्यौ मृगराज गजराज ज्यों गहतु हौं।
छोनी में न छाड्यौ छप्यौ छोनिप को छोना छोटो,

छोनिप-छपन बाँको बिरुद बहतु हौं॥ 18॥

निपट निदरि बोले बचन कुठरपानि,

मानी त्रास औनिपन मानौ मौनता गही।

रोष माषे लखन अकनि [1] अनखौहीं बातैं,

तुलसी बिनीत बानी बिहँसि ऐसी कही॥

"सुजस तिहारो भरो भुवननि, भृगुनाथ!

प्रगट प्रताप आपु कहौ सो सबै सही।

टूट्यौ सो न जुरैगो सरासनु महेसजू को,

रावरी पिनाक मैं सरीकता [2] कहा रही"?॥ 19॥

(सवैया)

"गर्भ के अर्भक काटन को पटु धार कुठार कराल है जाको।

सोई हौं बूझत राजसभा 'धनु को दल्यौ'? हौं दलिहौ बलु ताको॥

लघु आनन उत्तर देत बड़े लरिहै मरिहै करिहै कछु साको [3]।

[^1] अकनि = सुनकर।

[^2] सरीकता = शिरकत, साझा, बराबरी ।

[^3] साका करना = अद्भुत कर्म करके स्थाई कीर्ति प्राप्त करना।

गोरो गरूर गुमान भरो कहौ कौसिक छोटो-सो ढोटो है काको”॥ 20॥

(घनाक्षरी)

“मख राखिबे के काज राजा मेरे संग दये,

जीते जातुधान जे जितैया बिबुधेस के।

गौतम की तीय तारी, मेटे अब भूरि भारी,

लोचन अतिथि भए जनक जनेस के॥

चंड बाहुदंड बल चंडीस-कोदंड खंड्यौ,

ब्याही जानकी, जीते नरेस देस देस के।

साँवरे-गोरे सरीर, धीर महा बीर दोऊ,

नाम राम लषन, कुमार कोसलेस के”॥ 21॥

(सवैया)

काल कराल नृपालन के धनुभंगु सुनै फरसा लिए धाए।

लक्खन रामु बिलोकि सप्रेम महा रिसि ते फिरि आँखि दिखाए॥

धीर-सिरोमनि बीर बड़े बिनयी, बिजयी रघुनाथ सुहाए।

लायक हे भृगुनायक सो धनुसायक सौंपि सुभाय सिधाए॥ 22॥

अयोध्या कांड

(सवैया)

कीर के कागर [1] ज्यों नृपचीर बिभूषन, उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मगबास के रूख ज्यों, पंथ के साथ ज्यों लोग-लुगाई॥
संग सुबंधु, पुनीत प्रिया, मनो धर्म क्रिया [2] धरि देह सुहाई।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाउ की नाईं॥ 1॥

कागर-कीर ज्यौं भूषन-चीर सरीर लस्यौ तजि नीरु ज्यौं काई।
मातु-पिता प्रिय लोग सबै सनमानि सुभाय सनेह सगाई॥
संग सुभामिनि भाइ भलो, दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई।
राजिवलोचन रामु चले तजि बापको राजु बटाउ की नाईं॥ 2॥

(घनाक्षरी)

---

[^1] कागर = पंख।

[^2] धर्म, क्रिया = धर्म और कर्म।

सिथिल सनेह कहैं कौसिला सुमित्राजू सों,

“मैं न लखी सौति, सखी ! भगिनी ज्यों सेई है।

कहै मोहि मैया कहौं ’मैं न मैया, भरत की,

बलैया लेहौं भैया! तेरी मैया कैकेयी है॥

तुलसी सरल भाय रघुराय माय मानी,

काय मन बानी हूँ न जानी कै मतेई [1] है।

बाम बिधि मेरो सुखु सिरिस-सुमन सम,

ताको छल-छुरी कोह-कुलिस लै टेई है”॥ 3॥

“कीजै कहा,जीजी जू!” सुमित्रा परि पायँ कहै,

“तुलसी सहावै बिधि, सोई सहियतु है।

रावरो सुभाव राम-जन्म ही तें जानियत,

भारत की मातु को कि ऐसो चहियतु है?॥

जाई राजघर, ब्याहि आई राजघर म’हँ,

राज-पूत पाए हूँ न सुखु लहियतु है।

देह सुधागेह [2], ताहि मृगहू मलीन कियो,

---

[^1] मतेई = विमाता, सौतली माँ।

[^2] सुधागोह = 1. चंद्रमा, 2. कहते है कि कैकेयी के मुख में अमृत था।

ताहू पर बाहु बिनु राहु गहियतु है”॥ 4॥

(सवैया)

नाम अजामिल-से खल कोटि अपार नदीं भव बूढ़त काढ़े।
जो सुमिरे गिरि-मेरु सिला-कन होत, अजाखुर बारिधि बाढ़े॥
तुलसी जेहि के पदपंकज तें प्रगटी तटिनी जो हरै अघ गाढ़े।
सो प्रभु स्वै [1] सरिता तरिबे कहुँ माँगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े॥ 5॥

एहि घाट तें थोरिक दूरि अहै कटि लौं जल थाह देखाइहौं जू।
परसे पगधूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू?॥
तुलसी अवलंबु न और कछू, लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू?।
बरु मारिए मोहि, बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू॥ 6॥

रावरे दोष न पायँन को, पगधूरि को भूरि प्रभाउ महा है।
पाहन तें बन-बाहन [2] काठ को कोमल है, जल खाइ रहा है ।
पावन पायँ पखारि कै नाव चढ़ाइहौं, आयस होत कहा है?।
तुलसी सुनि केवट के बर बैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है॥ 7॥

[^1] स्वै = सोई, वही।

[^2] बन बाहन = नाव।

(घनाक्षरी)

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे-बारे,

केवट की जाति, कछू बेद न पढ़ाइहौं।

सब परिवार मेरो याहि लागि, राजा जू!

हौं दीन बित्तहीन कैसें दूसरी गढ़ाइहौं?॥

गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,

प्रभु सों निषादु ह्वै कै बाद ना बढ़ाइहौं।

तुलसी के ईस राम, रावरे सों साँची कहौं,

बिना पग धोए नाथ नाव ना चढ़ाइहौं॥ 8॥

जिनको पुनीत वारि धारे सिय पैर पुरारि,

त्रिपथगामिनि जसु बेद कहैं गाइ कै।

जिनको जोगींन्द्र मुनिवृंद देव देह भरि,

करत विराग जप जोग मन लाइ कै॥

तुलसी जिनकी धूरि परसि अहिल्या तरी,

गौतम सिधारे गृह गौनो सो लिवाइ कै।

तेई पायँ पाइकै चढ़ाइ नाव धोए बिनु,

ख्वैहौं न पठावनी [1] कै ह्वैहौं न हँसाइ कै?॥ 9॥

प्रभुरुख पाइ कै, बोलाइ बालक घरनिहि,
बंदि कै चरन चहूँ दिसि बैठे घेरि-घेरि।
छोटे-सो कठौता भरि आनि पानी गंगाजू को,
धोइ पाँय पीयत पुनीत बारि फेरि-फेरि॥
तुलसी सराहैं ताको भाग सानुराग सुर,
बरषैं सुमन, जय-जय कहैं टेरि टेरि।
बिबुध-सनेह-सानी बानी असयानी सुनि,
हँसै राघौ जानकी-लषन तन हेरि-हेरि॥ 10॥

(सवैया)

पुर तें निकसी रघुबीर-वधू धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनीं जल की, पुट सूखि गए मधुराधर वै॥
फिरि बूझति है, “चलनो अब केतिक, पर्ण कुटी करिहौ कित ह्वै?”।
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै॥ 11॥

“जल को गए लक्खन हैं लरिका, परिखौ, पिय! छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।

[^1] पठावनी = मजदूरी ।

पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पाय पखारिहौं भूभुरि [1]-डाढ़े"॥

तुलसी रघुबीर प्रिया स्रम जानि कै बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े।

जानकी नाह को नेह लख्यौ, पुलको तनु, बारि बिलोचन बाढ़े॥ 12॥

ठाढ़े हैं नौ द्रुम डार गहें, धनु कांधे धरे , कर सायक लै।

बिकटी भ्रुकुटी, बड़री अँखियाँ, अनमोल कपोलन की छबि है॥

तुलसी असि मूरति आनि हिये जड डारिहौं प्रान निछावरि कै।

स्रम सीकर साँवरि देह लसै मनो रासि महा तम तारक मै॥ 13॥

(घनाक्षरी)

जलजनयन, जलजानन, जटा है सिर,

जोबन-उमंग अंग उदित उदार हैं

साँवरे गोरे के बीच भामिनी सुदामिनी सो,

मुनिपट धारे, उर फूलनि के हार हैं॥

करनि सरासन सिलीमुख, निषंग कटि,

अतिही अनूप काहू भूप के कुमार हैं।

तुलसी बिलोकि कै तिलोक के तिलक तीनि,

---

[^1] भूभुरी = गरम धूल।

रहे नरनारि ज्यों चितेरे [1] चित्रसार हैं॥ 14॥

आगे सोहै साँवरो कुँवर; गोरो पाछे पाछे,

आछे मुनि बेष धरे लाजत अनंग हैं।

बान बिसिषासन, बसन बन ही के कटि,

कसे हैं बनाइ [2], नीके राजत निषंग हैं॥

साथ निसिनाथ मुखी पाथनाथ-नंदिनी-सी,

तुलसी बिलोक चित लाइ लेत संग हैं।

आनँद उमंग मन,जोबन-उमंग तन,

रूप की उमंग उमगत अंग अंग है॥ 15॥

(कवित्त)

सुन्दर बदन, सरसीरुह सुहाए नैन,

मंजुल प्रसून माथे मुकुट जटनि के।

अंसनि सरासन लसत, सुचि सर कर,

[^1] चितेरा = चित्र।

[^2] बनाइ = अच्छी तरह, खूब।

तून कटि, मुनिपट लूटक पटनि के [3] ॥
नारि सुकुमारि संग, जाके अंग उबटि कै,
बिधि बिरचे बरूथ बिद्युत्-छटनि के।
गोरे को बरन देखें सोनो न सलोनो लागै,
साँवरे बिलोके गर्ब घटत घटनि [2] के॥ 16॥

बल्कल-बसन, धनु-बान पानि, तून कटि,
रूप के निधान घन-दामिनी-बरन हैं।
तुलसी सुतीय संग सहज सुहाए अंग,
नवल कवल हू ते कोमल चरन हैं॥
औरै सो बसंत, और रति, औरै रतिपति,
मूरति बिलोके तन-मनके हरन हैं।
तापस बेषै बना,इ पथिक पथै सुहाइ,
चले लोक-लोचननि सुफल करन हैं॥ 17॥

(सवैया)

---

[^3] लूटक पटनि के = वस्त्रों की शोभा को लूटने या हरने वाला।

[^2] घटनि = घटाओं।

बनिता बनी स्यामल गौर के बीच, बिलोकहु, री सखि! मोहि-सी ह्वै।
मग जोग न कोमल, क्यों चलिहै? सकुचाति मही पदपंकज छ्वै॥
तुलसी सुनि ग्रामबधू बिथकीं, पुलकीं तन, औ चले लोचन च्वै।
सब भाँति मनोहर मोहन रूप, अनूप हैं भूप के बालक द्वै॥ 18॥

साँवरे-गोरे सलोने सुभाय, मनोहरता जिति मैन लियो है।
बान-कमान निषंग कसे, सिर सोहैं जटा, मुनिबेष कियो है॥
संग लिये बिधु-बैनी [1] बधू रति को जेहि रंचक रूप दियो है।
पाँयन तौ पनहीं न, पयादेहिम क्यों चलिहैं? सकुचात हियो है॥ 19॥

रानी मैं जानी अयानी महा, पबि पाहन हूँ तें कठोर हियो है।
राज हुँ काजु अकाजु न जान्यो, कह्यो तिय को जिन कान कियो है॥
ऐसी मनोहर मूरति ये, बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है?।
आँखिन में सखि! राखिबे जोग, इन्हें किमि कै बनबास दियो है?॥ 20॥

सीस जटा, उर बाहु बिसाल, बिलोचन लाल, तिरीछी सी भौहैं।
तून सरासन-बान धरें तुलसी बन-मारग में सुठि सोहैं॥

---

[^1] बिधुबैनी = चंद्रवदनी।

सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यों [] [2]हमरो मन मोहैं।

पूछति ग्रामबधू सिय सों "कहौ साँवरे-से, सखि रावरे को हैं?"॥ 21॥

सुनि सुंदर बैन सुधारस-साने, सयानी हैं जानकी जानी भली।

तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं समुझाइ कछू मुसुकाइ चली॥

तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन-लाहु अली।

अनुराग-तड़ाग में भानु उदैं बिगसी मनो मंजुल कंज-कली॥ 22॥

धरि धीर कहैं, "चलु देखिय जाइ जहाँ सजनी रजनी रहिहैं।

कहिहै जगु पोच, न सोच कछू, फल लोचन आपन तौ लहिहैं

सुख पाइहैं कान सुने बतियाँ, कल आपुस में कछू पै कहिहैं"।

तुलसी अति प्रेम लगीं पलकैं, पुलकीं लखी राम हिये महि [2] हैं॥ 23॥

पद कोमल, स्यामल-गौर कलेवर, राजत कोटि मनोज लजाए।

कर बान-सरासन, सीस जटा, सरसीरुह-लोचन सोन [3] सुहाए॥

जिन देखे सखी! सत भायहु तें, तुलसी तिन तौ मन फेरि न पाए।

---

[^2]   त्यों = तन, ओर।

[^2]   महि = मह, में।

[^3]   सोन = शोण, लाल।

यहि मारग आजु किसोर बधू बिधुबैनी समेत सुभाय सिधाए॥ 24॥

मुखपंकज, कंज बिलोचन मंजु, मनोज-सरासन-सी बनी भौहैं।
कमनीय कलेवर, कोमल स्यामल गौर किसोर, जटा सिर सोहैं॥
तुलसी कटि तून, धरे धनु बान, अचानक दिठि परी तिरछौहैं।
केहि भाँति कहौं, सजनी! तेहि सों मृदु मूरति द्वै निवसीं मन मोहैं॥ 25॥

प्रेम सों पीछे तिरीछे प्रियाहि चितै चितु दै, चले लै चितु चोरे।
स्याम सरीर पसेऊ लसै, हुलसै तुलसी छबि सो मन मोरे॥
लोचन लोल चलै भ्रुकुटी, कल काम-कमानहु सो तृन तोरे।
राजत राम कुरंग के संग निषंग कसे धनु सों सर जोरे॥ 26॥

सर चारिक चारु बनाइ कसे कनि, पानि सरासन सायक लै।
बन खेलत राम फिरैं मृगया, तुलसी छबि सो बरनै किमि कै?॥
अवलोकि अलौकिक रूप मृगी मृग चौंकि चकैं चतवैं चित दै।
न डगैं, न भगैं जिय जानि सिलीमुख पंच [1] धरे रतिनायक है॥ 27॥

बिन्ध्य के बासी उदासी तपोब्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।

---

[^1] सिलीमुख पंच = चार तूनीर में और एक हाथ में।

गौतमतीय तरी, तुलसी, सो कथा सुनि भे मुनिबृंद सुखारे॥

ह्वैहैं सिला सब चंद मुखीं परसे पद-मंजुल-कंज तिहारे।

कीन्ही भली रघुनायकजू करुना करि कानन को पगु धारे॥ 28॥

अरण्य कांड

(सैवया)

पंचवटी बर पर्नकुटी तर बैठे हैं राम सुभाय सुहाए।

सोहै प्रिया, प्रिय बंधु लसै, तुलसी सब अंग घने छबिछाए॥

देखि मृगा मृगनैनी कहे प्रिय बैन, ते प्रीतम के मन भाए।

हेमकुरंग के संग सरासन सायक लै रघुनायक धाए॥ 1॥

किष्किंधा कांड

(कवित्त)

जब अंगदादिन की मति-गति मंद भई,

पवन के पूत को न कूदिबे को पलु गो।

साहसी ह्वै सैल पर सहसा सकेलि [1] आइ,

चितवत चहूँ ओर, औरन को कलु गो॥

तुलसी रसातल को निकसि सलिल आयो,

कोल कलमल्यो, अहि-कमठ को बलु गो।

चारिहू चरन के चपेट चाँपे चिपिट गो,

उचके उचकि चारि अंगुल अचलु गो॥ 1॥

सुन्दर कांड

(कवित्त)

बासव बरुन बिधि बन तें सुहावनो,

[^1] सकेलि = क्रीड़ा सहित, खेल ही खेल में।

दसानन को कानन बसंत को सिंगारु सो।
समय पुराने पात परत डरत बात,
पालत, लालत रति-मार को बिहारु सो॥
देखे बर बापिका तड़ाग बाग को बनाव,
रागबस भो बिरागी पवनकुमार सो।
सीय की दसा बिलोखि बिटप असोक तर,
तुलसी बिलोक्यो सो तिलोक-सोक-सारु सो॥ 1॥

माली मेघमाल बनपाल बिकराल भट,
नीके सब काल सींचैं सुधासार नीर को।
मेघनाद तें दुलारो प्रान तें पियारो बाग,
अति अनुराग जिय जातुधान धीर को॥
तुलसी सो जानि सुनि, सीय को दरस पाइ,
पैठो बाटिका बजाइ [1] बल रघुबीर को।
बिद्यमान देखत दसानन को कानन सो,
तहस-नहस कियो साहसी समीर को॥ 2॥

[^1] बजाइ = घोषित करके।

बसन बटोरि बोरि-बोरि तेल तमीचर,

खोरि खोरि धाइ आइ बाँधत लँगूर हैं।

तैसो कपि कौतुकी डरात ढीलो गात कै कै,

लात के अघात सहै जी में कहै ‘कूर हैं’॥

बाल किलकारी कै कै, तारी दै दै गारी देत,

पाछे लागे बाजत निसान ढोल तूर हैं।

बालधी [1] बढ़न लागी, ठौर ठौर दीन्ही आगि,

बिंध की दवारि कैधौ कोटिसत सूर हैं॥ 3॥

लाइ लाइ आगि भागे बाल-जाल जहाँ तहाँ,

लघु ह्वै निबुकि गिरि-मेरु ते बिसाल भो।

कौतुकी कपीस कूदि कनक-कँगूरा चढ़ि,

रावन भवन जाइ ठाढ़ो तेहि काल भो॥

तुलसी विराज्यो ब्योम बालधी पसारि भारी,

देखें हहरात भट, काल तें कराल भो।

तेज को निधान मानो कोटिक कृसानु-भानु,

नख बिकराल, मुख तेसो रिस-लाल भो॥ 4॥

---

[^1] बालधी = पूँछ।

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल-जाल मानौं

लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।

कैधौं ब्योमबीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,

बीररस बीर तरवारि सो उघारी है ॥

तुलसी सुरेस-चाप, कैधौं दामिनि कलाप,

कैधौं चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है।

देखे जातुधान-जातुधानी अकुलानी कहैं,

"काननु उजारयौ, अब नगर प्रजारी है" ॥ 5॥

जहाँ-तहाँ बुबुक बिलोकि बुबुकारी देत,

"जरत निकेत धाओ धाओ लागी आगि रे।

कहाँ तात,-मात, भ्रात, भगिनी, भामिनी, भाभी,

ढोटे छोटे छोहरा अभागे भोरे भागि रे॥

हाथी छोरो, घोरा छोरो, महिष बृषभ छोरो,

छेरी छोरो, सोवै सो जगावो, जागि, जागि रे"।

तुलसी बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं,

"बार-बार कह्यौं, पिय कपि सो न लागि रे!"॥ 6॥

देखि ज्वालजाल, हाहाकार दसकंध सुनि,

कह्यो, ‘धरो धरो’ धाए बीर बलवान हैं।

लिये सूल, सेल, पास, परिघ, प्रचंड दंड,

भाजन सनीर, धीर धरे धनु-बान हैं॥

तुलसी समिध सौंज [1] लंक जज्ञकुंड लखि,

जातुधान पुंगीफल, जव, तिल ,धान हैं।

स्रवा सो लँगूल बलमूल प्रतिकूल हबि [2],

स्वाहा महा हाँकि हाँकि हुनैं हनुमान हैं॥ 7॥

गाज्यो कपि गाज ज्यों, बिराज्यो ज्वालजाल-जुत,

भाजे बीर धीर, अकुलाइ उठ्यो रावनो।

‘धाओ धाओ धरौ’ सुनि धाए जातुधान-धारि,

बारिधारा उलदै जलद ज्यो न सावनो॥

लपट झपट झहराने, हहराने बात,

भहराने भट, पर्‌यो प्रबल परावनो।

ढकनि ढकेलि, पेलि सचिव चले लै ठेलि,

[^1] सौंज = सामग्री।

[^2] प्रतिकूल हवि = अद्भुत हवि।

“नाथ न चलैगो बल अनल भयावनो”॥ 8॥

बड़ो बिकराल बेष देखि, सुनि सिंघनाद,

उठ्यो मेघनाद, सबिषाद कहै रावनो।

बेग जीत्यो मारुत, प्रताप मारतंड कोटि,

कालऊ करालता, बड़ाईं जीतो बावनो॥

तुलसी सयाने जातुधान पछिताने मन,

“जाको ऐसो दूत सो तो साहेब अबै आवनो”।

काहे को कुसल रोषे राम बामदेवहू के,

बिषम बली सो बादि बैर को बढ़ावनो॥ 9॥

‘पानी पानी पानी’ सब रानि अकुलानी कहैं,

जाति हैं परानी, गति जानी गजचालि है।

बसन बिसारैं, मनि भूषन सँभारत न,

आनन सुखाने, कहैं, “क्योंहू कोऊ पालि है?”

तुलसी मँदोवै [1] मीजि हाथ, धुनि माथ कहै,

“काहूँ कान कियो न, मैं कह्यो केतो कालि है”।

---

[^1] मँदोवै = मंदोदरी।

बापुरो बिभीषन पुकारि बार-बार कह्यो,
"बानर बड़ी बलाइ घने घर घालिहै"॥ 10॥

"कानन उजार्‌यो तो उजार्‌यो न बिगार्‌यो कछु,
बानर बेचारो बाँधि आन्यो हठि हार [1] सों।
निपट निडर देखि काहू न लख्यो बिसेषि,
दीन्हों ना छुड़ाइ कहि कुल के कुठार सों॥
छोटे औ बड़ेरे मेरे पूतऊ अनेरे [2] सब,
साँपनि सों खेलैं, मेलैं गरे छुराधार सों"।
तुलसी मँदोवै रोइ-रोइ कै बिगोवै [3] आपु,
"बार-बार कह्यो मैं पुकारि दाढ़ीजार सों"॥ 11॥

रानी अकुलानी सब डाढ़त परानी जाहिं,
सकैं न बिलोकि बेषु केसरीकुमार को।
मीजि मीजि हाथ, धुनै माथ दसमाथ-तिय,
तुलसी तिलौ न भयो बाहिर अगार को॥

[^1] हार = बन।

[^2] अनेरे = व्यर्थ, निकम्मे।

[^3] बिगोवै = विहीन दशा करती है।

सब असबाब डाढ़ो, मैं न काढ़ो तैं न काढ़ो,

जिय की परी, सँभार, सहन भँडार को।

खीझति मँदोवै सबिषाद देखि मेघनाद,

"बयो लुनियत सब याही दाढ़ीजार को" ॥ 12॥

रावन की रानी जातुधानी बिलखानी कहै,

"हा हा! कोऊ कहै बीसबाहु दसमाथ सों।

काहे मेघनाद काहे काहे रे महोदर! तू

धीरज न देत, लाइ लेत क्यों न हाथ सों?॥

काहे अतिकाय, काहे काहे रे अकंपन!

अभागे तीय त्यागे भोंड़े भागे जात साथ सों।

तुलसी बढ़ाई बादि साल तें बिसाल बाहैं,

याहीं बल बालिसो [1] ! बिरोध रघुनाथ सो!" ॥ 13॥

हाट, बाट,कोट ओट, अट्टनि, अगार,पौरि,

खोरि खोरि दौरि दौरि दीन्ही अति आगि है।

आरत पुकारत, सँभारत न कोऊ काहू,

[^1] बालिस = बालिश, मूर्ख, छोकड़ा।

ब्याकुल जहाँ सो तहाँ लोक चले भागि हैं
बालधी फिरावै, बार-बार झहरावै, झरैं
बूँदिया सी लंक पघिलाइ पाग पागि है।
तुलसी बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं,
“चित्रहू के कपि सों निसाचर न लागि है”॥ 14॥

‘लागी लागी आगि’, भागि-भागि चले जहाँ तहाँ,
धीय को न माय, बाप पूत न सँभारहीं।
छूटे बार, बसन उघारे, धूम-धुंध-अंध,
कहैं बारे-बूढ़े 'बारि बारि' बार बार हीं॥
हय हिहिनात भागे जात, घहरात गज,
भारी भीर ठेलि-पेलि रौंदि-खौंदि डारहीं।
नाम लै चिलात, बिललात अकुलात अति,
'तात तात! तौंसियत [1], झौंसियत झारहीं॥ 15॥

लपट कराल ज्वालजालमाल दहूँ दिसि,
धूम अकुलाने, पहिचानै कौन काहि रे?

[^1] तौंसियत = तपे जाते है।

पानी को ललात, बिललात, जरे गात जात,

परे पाइमाल जात [1], भ्रात! तूँ निबाहि रे॥

प्रिया तू पराहि, नाथ नाथ! तू पराहि, बाप,

बाप! तूँ पराहि, पूत पूत! तू पराहि रे'॥

तुलसी बिलोकी लोग ब्याकुल बिहाल कहैं,

“लेहि दससीस अब बीस चख चाहि रे”॥ 16॥

बीथिका बजार प्रति, अटनि अगार प्रति,

पँवरि पगार प्रति बानर बिलोकिए।

अध-उर्द्ध बानर, बिदसि दिसि बानर है,

मानहु रह्यो है भरि बानरु तिलोकिए॥

मूँदैं आँखि हिय में, उघारे, आँखि आगे ठाढ़ो,

धाइ जाइ जहाँ-तहाँ और कोऊ को किए?।

“लेहु अब लेहु, तब कोऊ न सिखाओ मानो,

सोई सतराज जाइ [2] जाहि-जाहि रोकिए”॥ 17॥

---

[^1] पाइमाल जाइ = पामाल होते है, नष्ट हुए जाते है।

[^2] सतराइ जाइ = चिढ़ जाता था।

एक करैं धौंज [3] , एक कहैं,काढौ सौंज [4],

एक औंजि [3] पानी पीकै कै हैं, ‘बनत न आवनो’।

एक परे गाढ़े, एक डाढ़त हीं काढ़े, एक

देखत हैं ठाढ़े, कहैं, ‘पावक भयावनो’॥

तुलसी कहत एक “नीके हाथ लाए कपि,

अजहूँ न छाँड़ै बाल गाल को बजावनो'।

धाओ रे, बुझाओ रे, कि बावरे हौ रावरे, या

औरै आगि लागी, न बुझावै सिंधु सावनो”॥ 18॥

कोपि दसकंध तब प्रलय-पयोद बोले,

रावन-रजाइ धाए आइ जूथ जोरि कै।

कह्यो लंकपति ‘लंक बरत, बुताओ बेगि,

बानर बहाइ मारौ महाबीर बोरि कै’॥

‘भले नाथ!’ नाइ माथ चले पाथप्रदनाथ,

---

[^3] धौंज = दौड़ धूप।

[^4] सौंज = सामान।

[^3] औंजि = ऊमस से घबराकर।

बरषैं मुसलधार बार-बार घोरि कै [4]।
जीवन [2] तें जागी आगी, चपरि चौगुनी लागी
तुलसी भभरि मेघ भागे मुख मोरि कै॥ 19॥

इहाँ ज्वाल जरे जात, उहाँ ग्लानि गरे गात,
सूखे सकुचात सब कहत पुकार है॥
“जुग-षट भानु देखे, प्रलय-कृसानु देखे,
सेष-मुख-अनल बिलोके बार-बार हैं॥
तुलसी सुन्यो न कान सलिल सर्पी [3] समान,
अति अचरज कियो केसरीकुमार है।
बारिद बचन सुनि धुनैं सीस सचिवन्ह,
कहैं “दससीस ईसबामताबिकार हैं”॥ 20॥

“पावक, पवन, पानी, भानु, हिमवान [4], जम,
काल, लोकपाल मेरे डर डाँवाडोल हैं।

[^4] घोरी कै = गरज कर।

[^2] जीवन = जल।

[^3] सर्पी = घृत, घी।

[^4] हिमवान = चंद्रमा।

साहेब महेस सदा, संकित रमेस मोहिं

महातप-साहस बिरंचि लीन्हे मोल हैं॥

तुलसी तिलोक आजु दूजो न बिराजै राजा,

बाजे बाजे राजनि के बेटा बेटी कोल हैं।

को है ईस नाम? को जो बाम होत मोहू सो को?

मालवान? रावरे के बावरे से बोल हैं"॥ 21॥

"भूमि भूमिपाल, ब्यालपालक पताल, नाक-पाल,

लोकपाल जेते, सुभट समाज है।"

कहै मालवान "जातुधानपति रावरे कों

मनहूँ अकाज आनै ऐसो कौन आज है?॥

रामकोह-पावक, समीर-सिय-स्वास, कीस-

ईस-बामता बिलोकु, बानर को ब्याज है।

जारत प्रचारि फेरि-फेरि सो निसंक लंक,

जहाँ बाँको बीर तोसो सूर-सिरताज है"॥ 22॥

पान, पकवान बिधि नाना को, सँधानो [1], सीधो,

---

[^1] सँधाना = अचार, चटनी।

बिबिध बिधान धान बरत बखारहीं।

कनक किरीट कोट, पलँग, पेटारे, पीठ [1]

काढ़त कहार, सब जरे भरे भारहीं॥

प्रबल अनल बाढ़ै, जहाँ काढ़ै तहाँ डाढ़ै,

झपट लपट बरै भवन भँडारहीं।

तुलसी अगार न पगार न बजार बच्यो,

हाथी हथिसार जरे, घोरे घोरसारहीं॥ 23॥

हाट-बाट हाटक पिघिलि चलो घी सो घनो,

कनक-कराही लंक तलफति ताय सों॥

नाना पकवान जातुधान बलवान सब

पागि पागि ढेरी कीन्ही भली भाँति भाय सों॥

पाहुने कृसानु पवमान सों परोसो,

हनुमान सनमानि कै जेंवाये चित-चाय सों।

तुलसी निहारि अरिनारि दै दै गारि कहैं,

"बावरें सुरारि बैरु कीन्हौ रामराय सों"॥ 24॥

[^1] पीठ = पाठा, पीढ़ा, काष्ठासन।

रावन सों राजरोग बाढ़त बिराट-उर,

दिन दिन बिकल, सकल-सुख-राँक सो।

नाना उपचार करि हारे सुर सिद्ध मुनि,

होत न बिसोक, ओत [1] पावै न मनाक [2] सो॥

राम के रजाय ते रसायनी समीरसूनु,

उतरि पयोधि-पार सोधि सरवाक सो।

जातुधान बुट [3], पुटपाक लंक-जातरूप,

रतन जतन जारि कियो है मृगांक सो॥ 25॥

जारि-बारि, कै बिधूम, बारिधि बुताइ लूम,

नाइ माथो पगनि भो ठाढ़ो कर जोरि कै।

“मातु! कृपा कीजे, सहिदानि [4] दीजै”, सुनि सीय

दीन्ही है असीस चारु चूडामनि छोरि कै॥

“कहा कहौं तात! देखे जात ज्यों बिहात दिन,

---

[^1] ओत = बीमारी में कुछ आराम, चैन।

[^2] मनाक = थोड़ा।

[^3] बुट = बूटी।

[^4] सहदानी = पहचान का चिह्न, निशानी।

बड़ी अवलंब ही [1],सो चले तुम तोरि कै”।

तुलसी सनीर नैन, नेह सों सिथिल बैन,

बिकल बिलोकि कपि कहत निहोरि कै॥ 26॥

“दिवस छ सात जात जानिबे न, मातु! धरु

धीर, अरि-अंत की अवधि रहि थोरिकै।

बारिधि बँधाय सेतु ऐहैं भानुकुलकेतु

सानुज कुसल कपिकटकु बटोरि कै”॥

बचन बिनीत कहि, सीताको प्रबोध करि,

तुलसी त्रिकूट चढ़ि कहत डफोरि कै [2]।

“जै जै जानकीस दससीस-करि केसरी”

कपीस कूद्यो बात-घात उदधि हलोरि कै॥ 27॥

साहसी समीरसूनु नीरनिधि लंघि, लखि

लंक सिद्धपीठ निसि जागो है मसान सो।

तुलसी बिलोकि महा साहस प्रसन्न भई

दैबी सिया सारिषी, दियो है बरदान सो॥

---

[^1] अवलंब ही = अवलंब थी।

[^2] डफोरी कै = हाँक देकर, ललकार कर।

बाटिका उजारि, अच्छ-धारि [1] मारि, जारि गढ़,

भानुकुलभानु को प्रतापभानु भानु-सो।

करत बिसोक लोक-कोकनद, कोक कपि,

कहै जामवंत आयो आयो हनुमान सो॥ 28॥

गगन निहारि, किलकारी भारी सुनि,

हनुमान पहिचानि भये सानंद सचेत हैं

बूड़त जहाज बच्यो पथिकसमाज, मानो

आजु जाये जानि सब अंकमाल देत हैं॥

‘जै जै जानकीस, जै जै लषन कपीस’ कहि

कूदैं कपि कौतुकी, नटत रेत रेत हैं।

अंगद मयंद नल नील बलसील महा

बालधी [2] फिरावैं, मुख नाना गति लेत हैं॥ 29॥

आयो हनुमान प्रानहेतु अंकमाल देत,

लेत पगधूरि एक, चूमत लंगूल हैं।

एक बूझैं बार-बार सीय समाचार कहे,

[^1] धारि = समूह, सेना।

[^2] बालधी = पूँछ, दुम।

पवनकुमार भो बिगतस्रम-सूल हैं॥
एक भूखे जानि आगे जाने कंद मूल फल,
एक पूजे बाहु बलमूल तोरि मूल फूल हैं।
एक कहैं तुलसी सकल सिधि ताके जाके
कृपा-पाथनाथ सीतानाथ सानुकूल हैं॥ 30॥

सीय को सनेह सील, कथा तथा लंक की
कहत चले चाय सों, सिरानो पथ छन में।
कह्यो जुबराज बोलि बानर समाज, “आजु
खाहु फल”, सुनि पेलि पैठे मधुबन में।
मारे बागवान, ते पुकारत देवान गे,
‘उजारे बाग अंगद’, देखाए धाय तन में।
कहै कपिराज, ‘करि काजु आए कीस,
तुलसीस की सपथ महामोद मेरे मन में’॥ 31॥

नगर कुबेर को सुमेरु की बराबरी,
बिरंचि-बुद्धि को बिलासु लंक निरमान भो।
ईसहि चढ़ाय सीस बीसबाहु बीर तहाँ,

रावन सो राजा रज-तेज को निधान भो॥

तुलसी त्रिलोक की समृद्धि सौज संपदा

सकेलि चाकि राखी [1], रासि, जाँगर [2] जहान भो।

तीसरे उपास बनबास सिंधु-पास सो

समाज महाराजजू को एक दिन दान भो ॥ 32॥

लंका कांड

(कवित्त)

बड़े बिकराल भालु, बानर बिसाल बड़े,

तुलसी बड़े पहार लै पयोधि तोपिहैं।

प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड खंडि

मंडि मेदिनी को मंडलीक-लीक लोपिहैं॥

---

[^1] चाकि राखी = अन्न की राशि को जैसे किसान गोबर की रेखा से घेर देते है। (जिससे चुराने से पता लग जाय) उसी प्रकार उसने घेर रक्खा।

[^2] जाँगर = अन्न झाड़ा हुआ डंठल।

लंकदाहु देखें न उछाहु रह्यो काहुन को,

कहैं सब सचिव पुकारि पाँव रोपि हैं।

“बाँचिहै न पाछे तिपुरारि हू मुरारिहू के,

को है रन रारिको जौं कोसलेस कोपि हैं?”॥ 1॥

त्रिजटा कहति बार-बार तुलसीस्वरी सो,

“राघौ बान एक ही समुद्र सातौ सोषिहैं।”

”सकुल सँघारि जातुधान-धारि जम्बुकादि,

जोगिनी-जमाति कालिकाकलाप तोषिहैं॥

राज दै नेवाजिहैं बजाइ कै बिभीषनै,

बजैंगे ब्योम बाजने बिबुध प्रेम पोषिहैं॥

कौन दसकंध, कौन मेघनाद बापुरो,

कुंभकर्न कीट जब राम रन रोषिहैं”॥ 2॥

बिनय-सनेह सों कहति सीय त्रिजटा सों,

“पाये कछु समाचार आरजसुवन के?”।

“पाये जू! बँधायो सेतु, उतरे कटक कुलि,

आये देखि-देखि दूत दारुन दुवन के॥

बदन-मलीन बलहीन दीन देखि मानौ

मिटे घटे तमीचर-तिमिर भुवन के।

लोकपति-सोक-कोक [1] मूँदे कपि-कोकनद,

दंड द्वै रहे हैं रघु-आदिति-उवन के”॥ 3॥

(झूलना)

सुभुज मारीच खर त्रिसर दूषन बालि,

दलत जेहिं दूसरो सर न साँध्यो।

आनि परबाम बिधि बाम तेहि राम सों,

सकत संग्राम दसकंध काँध्यो॥

समुझि तुलसीस कपि-कर्म घर- घर घैरु,

बिकल सुनि सकल पाथोधि बाँध्यो।

बसत गढ़ लंक लंकेस नायक अछत,

लंक नहिं खात कोउ भात राँध्यो॥ 4॥

(सवैया)

बिस्वजयी भृगुनायक से बिनु हाथ भये हनि हाथ हजारी।

---

[^1] लोक पति-सोक-कोक = सशोक लोकपति-कोक।

बातुल मातुल की न सुनी सिख, का तुलसी कपि लंक न जारी?॥
अजहूँ तौ भलो रघुनाथ मिले, फिरि बूझिहै को गज कौन गजारी।
कीर्ति बड़ो [1], करतूति बड़ो जन, बात बड़ो, सो बड़ोई बजारी॥ 5॥

जब पाहन भे बनबाहन-से, उतरे बनरा 'जय राम' रढ़े [2]।
तुलसी लिये सैल-सिला सब सोहत, सागर ज्यों बल बारि बढ़े।
करि को कोप करैं रघुबीरको आयसु,कौतुक ही गढ़ कूदि चढ़े।
चतुरंग चमू पल में दलि कै रन रावन राढ़ के हाड़ गढ़े ॥ 6॥

(घनाक्षरी)

बिपुल बिसाल बिकराल कपि-भालु, मानो
कालु बहु बेष धरे धाये किये करषा ।
लिये सिला-सैल, साल ताल औ तमाल तोरि
तोपैं तोयनिधि, सुरको समाज हरषा॥
डगे दिगकुंजर, कमठ कोल कलमले,

[^1] कीर्ति बड़ो = कीर्ति से बड़ा।

[^2] रढ़े = रटा, बोले।

डोले धराधर-धारि, धराधर [3] घरषा [4]।
तुलसी तमकि चलैं, राघौ की सपथ करैं,
को करै अटक कपि-कटक अमरषा?॥ 7॥

आए सुक सारन बोलाए, ते कहन लागे,
पुलक सरीर सेना करत फहम हीं।
महाबली बानर बिसाल भालु काल-से
‘कराल हैं, रहे कहाँ, समाहिंगे कहाँ मही’॥
हँस्यो दसकंधु रघुनाथको प्रताप सुनि,
तुलसी दुरावे मुख सूखत सहम हीं।
राम के बिरोधे बुरो बिधि-हरि-हरहू को,
सबको भलो है राजा राम के रहम ही॥ 8॥

‘आयो आयो आयो सोई बानर बहोरि,’ भयो
सोर चहुँ ओर लंका आए जुबराज के।
एक काढ़ैं सौंज, एक धौंज करैं कहा ह्वैहै,
‘पोच भई महा’ सोचु सुभट समाज के॥

---

[^3] धराधर = 1. पर्वत, 2. शेष।

[^4] घरषा = घर्षित हुआ।

गाज्यो कपिराजु रघुराज की सपथ करि,

मूँदे कान जातुधान मानो गाजें गाज के।

सहमि सुखात बात जात [1] की सुरति करि,

लवा ज्यों लुकात तुलसी झपेटे बाज के॥ 9॥

तुलसीस-बल रघुबीर जू के बालिसुत

वाहि न गनत, बात कहत करेरी सी।

“बकसीस ईस जू की खीस [2] होत देखियत,

रिस काहें लागति, कहत हौं तो तरी-सी॥

चढ़ि गढ़ मढ़ [3] दृग कोट के कँगूर कोपि,

नेकु धका दैवे ढ़ैहैं ढेलन की ढ़ेरी-सी।

सुनु दसमाथ! नाथ-साथ के हमारे कपि

हाथ लंका लाइहैं तौ रहैगी हथेरी-सी॥ 10॥

दूषन बिराध खर त्रिसर कबंधु बधे

तालऊ बिसाल बेधे, कौतुक है कालि को।

---

[^1] बातजात = हनुमान्।

[^2] खीस होत = नष्ट होती।

[^3] मढ़ = मंडप।

एक हि बिसिष बस भयो बीर बाँकुरो सो,

तोहू है बिदित बल महाबली बालि को॥

तुलसी कहत हित, मानतो न नेकु संक,

मेरो कहा जैहै, फल पैहै तू कुचालि को।

बीर-करि-केसरी कुठारपानि [1] मानी हारि,

तेरी कहा चली, बिड़ [2] ! तोसे गनै घालि [3] को॥ 11॥

(सवैया)

तोसों कहौं दसकंधर रे, रघुनाथ-बिरोध न कीजिय बौरे।

बालि बली खर-दूषन और अनेक गिरे जे जे भीति में दौरे॥

ऐसिय हाल भई तोहि धौं [4],नतु लै मिलु सीय चहै सुखु जौं रे।

राम के रोष न राखि सकैं तुलसी बिधि श्रीपति,संकर सौ रे॥ 12॥

तू रजनीचरनाथ महा, रघुनाथ के सेवक को जनु हौं हौं।

---

[^1] कुठारपानि = परशुराम ।

[^2] बिड़ = विट, नीच, खल।

[^3] घालि गनै = घलुए या पसंगे बराबर समझता है। कुछ समझता है।

[^4] धौं = जोर देने के लिये प्रयुक्त शब्द, तो।

बलवान है स्वानु गलीं अपनी, तोहि लाज न गाल बजावत सौहौं।
बीस भुजा दस सीस हरौं न डरौं, प्रभु आयसु-भंग ते जौं हौं।
खेत में केहरि ज्यों गजराज दलौं दल, बालि को बालक तौं हौं॥ 13॥

कोसलराज के काल हौं आज त्रिकूट उपारि लै बारिधि बोरौं।
महाभुज-दंड द्वै अंडकटाह चपेट की चोट चटाक दै फोरौं॥
आयसु-भंग तें जौ न डरौं सब मींजि सभासद सोनित खोरौं [1]।
बालि को बालक जौं तुलसी दसहू-मुख के रन में रद तोरौं॥ 14॥

अति कोप सों रोप्यो है पाँव सभा, सब लंक ससंकित, सोर मचा।
तमके घननाद-से बीर पचारि कै, हारि निसाचर-सैन पचा॥
न टरै पग मेरुहु तें गरु भो, सो मनो महि संग बिरंचि रचा।
तुलसी सब सूर सराहत हैं, "जगमें बलसालि है बालि-बचा"॥ 15॥

रोप्यो पाँव पैज कै बिचारि रघुबीर-बल
लागे भट समिटि न नेकु टसकतु है॥
तज्यो धीर धरनि, धरनिधर धसकत,
धराधर धीर भार सहि न सकतु है॥

[^1] खोरौं = स्नान करूँ, नहाऊँ।

महाबली बालि को दबत दलकतु भूमि,

तुलसी उछलि सिंधु मेरु मसकतु है।

कमठ कठिन पीठि, घटा [1] परो मंदर को,

आयो सोई काम, पै करेजो कसकतु है॥ 16॥

(झूलना)

कनकगिरिसृंग चढ़ि देखि मर्कट कटक,

बदति मंदोदरी परम भीता।

“सहसभुज-मत्त-गजराज-रनकेसरी

परसुधर-गर्ब जेहि देखि बीता॥

दास तुलसी समरसूर कोसलधनी

ख्याल ही बालि बलसालि जीता।

कंत ! तृन दंत गहि सरन श्रीराम कहि,

अजहुँ एहि भाँति लै सौंपु सीता॥ 17॥

नीच मारीच बिचलाइ, हति ताड़का,

[^1] घठा = लगातार बहुत दिनों तक दाब पड़ते रहने से कड़ा पड़ा हुआ चमड़ा जिसमें वेदना कम होती है। घट्ठा।

भंजि सिवचाप सुख सबहि दीन्ह्यो।
सहस-दसचारि खल सहित खर-दूषनहि,
पठै [1] जमधाम, तैं तउ न चीन्ह्यो॥
मैं जु कहौं कंत सुनु मंतु भगवंत सों,
बिमुख ह्वै बालि फल कौन लीन्ह्यो।
बीस भूज दस सीस खीस गए तबहिं जब
ईस के ईस सो बैरु कीन्ह्यो॥ 18॥

बालि दलि काल्हि जलजान पाषान किये,
कंत ! भगवंतु तैं तउ न चीन्हें।
बिपुल बिकराल भट भालु-कपि काल से,
संग तरु तुंग गिरिसृंग लीन्हें॥
आइगे कोसलाधीस तुलसीस जेहि
छत्र मिस मौलि दस दूरि कीन्हें।
ईस-बकसीस जनि खीस करु, ईस! सुनु,
अजहुँ कुल कुसल बैदेहि दीन्हें॥ 19॥

---

[^1] पठै = पठए, भेजे।

सैन के कपिन को को गनै अर्बुदै,

महाबलबीर हनुमान जानी।

भूलिहै दस दिसा सेस पुनि डोलिहैं,

कोपि रघुनाथ जब बान तानी॥

बालिहू गर्ब जिय माहिं ऐसो कियो,

मारि दहपट कियो [1] जम की घानीं।

कहति मंदोदरी सुनहि, रावन! मतो,

बैगि लै देहि बैदेहि रानी॥ 20॥

गहनु उज्जारि, पुर जारि, सुत मारि तव,

कुसल गो कीस बरबेर [2] जाको।

दूसरो दूत पन रोपि कोप्यो सभा,

खर्ब कियो सर्ब को गर्ब थाको [3]॥

दास तुलसी सभय बदत मयनंदिनी,

[^1] दहपट कियो = ध्वस्त किया।

[^2] बरबेर = बड़े शरीरवाला।

[^3] थाको = 1. तुम्हारा, 2. ढीला पड़ा।

"मंदमति कंत, सुनु मंतु म्हाको [4]।
तौलौ मिलु बेगि नहि जौंलौं रन रोष भयो
दासरथि बीर बिरुदैत बाँको" ॥ 21॥

(घनाक्षरी)

कानन उजारि, अच्छ-मारि, धारि धूरि कीन्हीं,
नगर प्रचार्‌यो सो बिलोक्यो बलु कीस को।
तुम्हैं बिद्यमान जातुधान-मंडली में कपि
कोपि रोप्यो पाँउ,सो प्रभाउ तुलसीस को॥
कंत ! सुनु मंत कुल-अंत किये अंत हानि,
हातो कीजै [2] हीय तें भरोसो भुज बीस को।
तौलौं मिलु बेगि जौलौं चाप न चढ़ायो राम,
रोषि बान काढ्यो न दलैया दससीस को॥ 22॥

पवन को पूत देखौ दूत बीर बाँकुरो जो
बंक गढ़ लंक सो ढका ढकेलि ढाहिगो।

[^4] म्हाको = मेरा।

[^2] हातो कीजै = दूर दीजिए।

बालि बलसालि को, सो काल्हि दाप दलि कोपि,

रोप्यो पाँउ चपरि, चमु को चाउ चाहिगो॥

सोई रघुनाथ कपि साथ पाथनाथ बाँधि,

आयो नाथ! भागे तें खिरिरि [1] खेह खाहिगो।

तुलसी गरब तजि मिलिबे को साज सजि,

देहि सीय, नतौ पिय! पाइमाल जाहिगो॥ 23॥

उदधि अपार उतरत नहिं लागी बार,

केसरीकुमार सो अदंड-कैसो डाँड़िगो

बाटिका उजारि अच्छ रच्छकनि मारि भट

भारी भारी रावरे के चाउर-से काँड़िगो॥

तुलसी तिहारे बिद्यमान जुबराज आजु,

कोपि पाँव रोपि, बस कै छोहाइ छाँड़िगो।

कहे की न लाज, पिय! अजहूँ न पिय आए बाज,

सहित समाज गढ़ राँड़-कै सो भाँड़िगो॥ 24॥

जाके रोष-दुसह त्रिदोष दाह दूरि कीन्हे,

[^1] खिरिरि = खरोच कर।

पैयत न छत्री-खोज खोजत खलक [1] में।

माहिषमती को नाथ ! साहसी सहस-बाहु॥

समर-समर्थ, नाथ! हेरिए हलक [2] में॥

सहित समाज महाराज सो जहाजराज

बूड़ि गयो जाके बल-बारिधि-छलक में।

टूटत पिनाक के मनाक बाम राम से, ते

नाक [3] बिनु भये भृगुनायक पलक में॥ 25॥

कीन्ही छोनी छत्री बिनु, छोनिप-छपनिहार,

कठिन कुठार पानि बीर बानि जानि कै।

परम कृपाल जो नृपाल लोकपालन पै [4],

जब धनु हाई ह्वैहै [5] मन अनुमानि कै॥

नाक में पिनाक मिस बामता बिलोकि राम

---

[^1] खलक = संसार।

[^2] हलक = कंठ अर्थात् हृदय।

[^3] नाक = प्रतिष्ठा।

[^4] पै = अवश्य, निश्चय।

[^5] हाई ह्वैहै = टूटेगा।

रोक्यो परलोक, लोक, भारी भ्रम भानि कै।

नाइ दस माथ महि, जोरि बीस हाथ, पिय !

मिलिए पै नाथ रघुनाथ पहिचानि कै॥ 26॥

कह्यो मत मातुल, बिभीषनहु बार बार,

आँचरु पसार पिय पाँइ लै-लै हौं परी।

बिदित बिदेहपुर नाथ! भुगुनाथगति,

समय सयानी कीन्ही जैसी आइ गौं परी।

बायस, बिराध, खर, दूषन, कबंध, बालि,

बैर रघुबीर के न पूरी काहू की परी परी।

कंत बीस लोयन बिलोकिए कुमंत-फल,

ख्याल लंका लाई [1] कपि राँड़ की-सी झोपरी॥ 27॥

(सवैया)

राम सों सामु किये नित है हित, कोमल काज न कीजिए टाँठे।

आपनि सूझि कहौं, पिय ! बूझिए, झूझिबे जोग न ठाहरु, नाठे॥

---

[^1] लाई = जलाई।

नाथ! सुनी भृगुनाथकथा, बलि बालि गए चलि बातके साँठे[2] []।

भाइ बिभीषनु जाइ मिल्यो, प्रभु आइ परे सुनि सायर[2] काँठे [3]॥ 28॥

पालिबे को कपि-भालु-चमू जम-काल करालहु को पहरी है।

लंक से बंक महा-गढ़ दुर्गम ढ़ाहिबे दाहिबे कोक हरी है॥

तीतर-तोम तमीचर-सेन समीर को सूनु बड़ो बहरी [4] है।

नाथ! भलो रघुनाथ मिले, रजनीचर-सेन हिये हहरी है॥ 29॥

(घनाक्षरी)

रोष्यो रन रावन, बोलाए बीर बानइत,

जानत जे रीति सब संजुग समाज की।

चली चतुरंग चमू चपरि हने निसान,

सेना सराहन जोग रातिचर-राज की॥

तुलसी बिलोकि कपि-भालु किलकत

---

[^2] साँठे = पकड़े रहने से।

[^2] सायर = सागर

[^3] काँठे = किनारे, तट पर।

[^4] बहरी = एक प्रकार का शिकारी पक्षी।

ललकत लखि ज्यों कँगाल पातरी सुनाज की।

राम रूख निरखि हरषे हिय हनूमान,

मानो खेलवार खोली सीसताज बाज की॥ 30॥

साजिकै सनाह [1] गजगाह [2] सउछाह दल,

महाबली धाये बीर जातुधान धीर के।

इहाँ भालु-बंदर बिसाल मेरु-मंदर-से।

लिए सैल-साल तोरि नीरनिधि-तीर के॥

तुलसी तमकि ताकि भिरे भारी जुद्ध क्रुद्ध,

सेनप सराहैं निज निज भट भीर के।

रुंडन के झुंड झूमि-झूमि झुकरे से [3] नाचैं,

समर सुमार सूर [4] मारैं रघुबीर के॥ 31॥

(सवैया)

---

[^1] सनाह = कवच।

[^2] गजगाह = झूल, पाखर।

[^3] झुकरे से = झुँझलाए से।

[^4] सुमार सूर = चुने हुए वीर।

तीखे तुरंग कुरंग सुरंगनि साजि चढ़े छटि छैल छबीले।
भारी गुमान जिन्हैं मनमें, कबहूँ न भये रन में तनु ढीले॥
तुलसी गज से लखि केहरि लौं झपटे पटके सब सूर सलीले [1]।
भूमि परे भट घूमि कराहत, हाँकि हने हनुमान हठीले।32॥

सूर सँजोइल साजि सुबाजि, सुसेल धरे बगमेल चले हैं।
भारी भुजा भरी, भारी सरीर, बली बिजयी सब भाँति भले हैं॥
तुलसी जिन्हैं धाये धुकै धरनीधर, धौरि धकान सों मेरु हले हैं।
ते रन-तीर्थनि लक्खन लाखन-दानि ज्यों दारिद दाबि दले हैं॥ 33॥

गहि मंदर बंदर-भालु चले सो मनो उनये घन सावन के।
तुलसी उत झुंड प्रचंड झुके, झपटैं भट जे सुरदावन के॥
बिरुझे बिरुदैत जे खेत अरे, न टरे हठि बैरु बढ़ावन के।
रन मारि मची उपरी उपरा, भले बीर रघुप्पति रावन के॥ 34॥

सर तोमर सेल समूह पँवारत, मारत बीर निसाचर के।
इत तें तरु-ताल तमाल चले,खर खंड प्रचंड महीधर के॥

[^1] सलीले = लीला से, खेल में।

तुलसी करि केहरि-नाद भिरे, भट खग्ग खगे [2] खपुआ [3] खरके।
नख-दंतन सों भुजदंड बिहंडत, मुंड सों मुंड परे झर के॥ 35॥

रजनीचर-मत्तगयंद-घटा बिघटै मृगराज के साज [3] लरै।
झपटै, भट कोटि महीं पटकै, गरजै, रघुबीर की सौंह करै॥
तुलसी उत हाँक दसाननु देत, अचेत भे बीर, को धीर धरै?।
बिरुझो रन मारुत को बिरुदैत, जो कालहु काल सो बूझि परै॥ 36॥

जे रजनीचर बीर बिसाल कराल बिलोकत काल न खाए।
ते रन-रौर कपीस-किसोर बड़े बरजोर परे फँग [4] पाए॥
लूम लपेटि अकास निहारि कै हाँक हठी हनुमान चलाए
सूखि गे गात चले नभ जात, परे भ्रम-बातन [5] भूतल आए॥ 37॥

जो दससीस महीधर ईस को, बीस भुजा खुलि खेलनहारो।

---

[^2] खगे =धँसे।

[^3] खपुआ = भगोड़े भरती के, निकम्मे।

[^3] साज = समान, तरह।

[^4] फँग = फंदा, पंजा।

[^5] भ्रम-बातन = चक्कर में।

लोकप दिग्गज दानव देव सबै सहमै सुनि साहस भारो॥
बीर बड़ो बिरुदैत बली, अजहूँ जग जागत जासु पँवारो [1]।
सो हनुमान हनी मुठिका, गिरिगो गिरिराज ज्यों गाज को मारो॥ 38॥

दुर्गम दुर्ग, पहारतें भारे प्रचंड महा भुजदंड बने हैं ।
लक्ख में पक्खर [2] तिक्खन तेज जे सूर समाज में गाज गने हैं॥
ते बिरुदैत बली रन-बाँकुरे हाँकि हठी हनुमान हने हैं।
नाम लै राम दिखावत बंधु को, घूमत घायल घाय घने हैं॥ 39॥

(घनाक्षरी)

हाथिन सो हाथी मारे, घोड़े घोड़े सों सँहारे,
रथनि सों रथ बिदरनि बलवान की।
चंचल चपेट, चोट चरन चकोट चाहैं,
हहरानी फौजें भहरानी जातुधान की॥
बार-बार सेवक-सराहना करत राम,
तुलसी सराहै रीति साहेब सुजान की।

---

[^1] पँवारा = लंबी कथा, वीर गाथा।

[^2] पक्खर = लड़ाई की झूल, कवच।

लाँबी लूम लसत, लपेटि पटकत भट,

देखौ देखौ, लखन ! लरनि हनुमान की॥ 40॥

दबकि दबोरे एक, बारिधि में बोरे एक,

मगन मही में एक गगन उड़ात हैं।

पकरि पछारे कर चरन उखारे एक,

चीरी-फारि डारे, एक मीजि मारे लात हैं॥

तुलसी लखत, राम, रावन, बिबुध, बिधि,

चक्रपानि, चंडीपति, चंडिका सिहात हैं॥

बड़े-बड़े बानइत बीर बलवान बड़े,

जातुधान, जूथप निपाते बातजात हैं॥ 41॥

प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड बीर,

धाये जातुधान हनुमान लियो घेरि कै।

महाबल-पुंज कुंजरारि ज्यों गरजि भट,

जहाँ तहाँ पटके लँगूर फेरि फेरि कै।

मारे लात, तोरे गात, भागे जात, हाहा खात,

कहैं, ‘तुलसीस [1] राखि राम की सौं’ टरि कै।

ठहर-ठहर परे, कहरि कहरि उठैं,

हहरि-हहरि हर सिद्ध हँसे हेरिकै॥ 42॥

जाकी बाँकी बीरता सुनत सहमत सूर,

जाकी आँच अबहूँ लसत लंक लाह सी।

सोई हनुमान बलवान बाँको बानइत,

जोहि जातुधान-सेना चलै लेत थाह सी॥

कंपत अकंपन, सुखाय अतिकाय काय,

कुंभऊकरन आइ रह्यो पाइ आह सी।

देखे गजराज मृगराजु ज्यों गरजि धायो,

बीर रघुबीर को समीरसूनु साहसी॥ 43॥

(झूलना)

मत्त-भट-मुकुट-दसकंठ-साहस-सइल-

सृंग-बिद्दरनि जनु बज्र-टाँकी।

दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज कमठ,

[^1] तुलसीस = हनुमान्।

सेषु संकुचित, संकित पिनाकी॥

चलत महि-मेरु,उच्छलत सायर सकल,

बिकल बिधि बधिर दिसि-बिदसि झाँकी।

रजनिचर-घरनि घर गर्भ-अर्भक स्रवत,

सुनत हनुमान की हाँक बाँकी ॥ 44॥

कौन की हाँकपर चौंक चंडीस बिधि,

चंडकर थकित फिरि तुरग हाँके।

कौन के तेज बलसीम भट भीम-से

भीमता निरखि कर नयन ढाँके॥

दास-तुलसीस के बिरुद बरनत बिदुष,

बीर बिरुदैत बर बैरि धाँके [1]।

नाक नरलोक पाताल कोउ कहत किन

कहाँ हनुमान-से बीर बाँके॥ 45॥

जातुधानावली-मत्त-कुंजर-घटा

निरखि मृगराजु जनु गिरि तें टूट्यो।

[^1] धाँके = धाँक जमा दी।

बिकट चटकन चपट, चरन गहि पटक महि,

निघटि गए सुभट, सत सब को छूट्यो॥

दास तुलसी परत धरनि, धरकत झुकत

हाट सी उठति जंबुकनि लूट्यो।

धीर रघुबीर को भीर रन-बाँकुरो

हाँकि हनुमान कुलि, कटक कूट्यो ॥ 46॥

(छप्पय)

कतहुँ बिटप-भूधर उपारि परसेन बरक्खत।

कतहुँ बाजिसों बाजि, मर्दि, गजराज करक्खत॥

चरन चोट चटकन चकोट अरि उर सिर बज्ञत।

बिकट कटक बिद्दरत बीर बारिद जिमि गज्ञत॥

लंगूर लपेटत पटकि भट, 'जयति राम जय' उच्चरत।

तुलसीस पवननंदन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत॥ 47॥

(घनाक्षरी)

अंग-अंग दलित ललित फूले किंसुक-से

हने भट लाखन लषन जातुधान के।

मारि कै, पछारि कै उपारि भुजदंड चंड,

खंड खंड डारे ते बिदारे हनुमान के॥

कूदत कबंध के कदम्ब बंब सी करत,

धावत दिखावत हैं लाघौ राघौ बान के।

तुलसी महेस, बिधि, लोकपाल, देवगन,

देखत बिमान चढ़े कौतुक मसान के॥ 48॥

लोथिन सो लोहू के प्रबाह चले जहाँ तहाँ

मानहुँ गिरिन्ह गेरु-झरना झरत हैं।

सोनित सरित घोर, कुंजर-करारे भारे,

कूल तें समूल बाजि-बिटप परत हैं॥

सुभट-सरीर नीर-चारी भारी-भारी तहाँ,

सूरनि उछाह, कूर कादर डरत हैं।

फेकरि फेकरि फेरु [1] फारि-फारि पेट खात,

काक कंक-बालक कोलाहल करत हैं॥ 49॥

ओझरी की झोरी काँधे, आँतनि की सेल्ही बाँधें,

---

[^1] फेरु = गीदड़ ।

मूँड़ के कमंडलु, खपर किये कोरि कै [1]।
जोगिनी झुटुंग [2] झुंड-झुंड बनी तापसी-सी
तीर तीर बैठीं सो समर-सरि खौरि कै [3]॥
सोनित सों सानि सानि गूदा खात सतुआ से
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि-घोरि कै।
तुलसि बैताल भूत साथ लिए भूतनाथ
हेरि हेरि हँसत हैं हाथ हाथ जोरि कै॥ 50॥

(सवैया)

राम सरासन तें चले तीर, रहे न सरीर, हड़ावरि फूटी।
रावन धीर न पीर गनी, लखि लै कर खप्पर जोगिनि जूटी॥
सोनित छींटि छटानि जटे तुलसी प्रभु सोहैं महा-छबि छूटी।
मानौ मरक्कत-सैल बिसाल में फैलि चली बर बीरबहूटी॥ 51॥

(घनाक्षरी)

---

[^1] कोरिकै = खुरच कर गड्ढा करके।

[^2] झुटुंग = एक प्रकार की योगिनी।

[^3] खोरि कै = नहा करके।

मानी मेघनाद सों प्रचारि भिरे भारी भट,

आपने अपन पुरुषारथ न ढील की।

घायल लषनलाल लखी बिलखाने राम,

भई आस सिथिल जगन्निवास-दील [1] की॥

भाई को न मोह, छोह सीय को न, तुलसीस,

कहैं “मैं बिभीषन की कछु न सबील [2] की”।

लाज बाँह बोले की [3], नेवाजे की सँभार-सार,

साहेब न राम से बलाइ लेउँ सील की॥ 52॥

(सवैया)

कानन बास, दसानन सो रिपु, आननश्री ससि जीति लियो है।

बालि महा-बलसालि दल्यो, कपि पालि बिभीषन भूप कियो हैं॥

तीय हरी, रन बंधु पर्‍यो, पै भर्‍यो सरनागत-सोच हियो है।

बाँह-पगार उदार कृपालु, कहाँ रघुबीरु सो बीर बियो [4] है? ॥ 53॥

---

[^1] दील = दिल, मन।

[^2] सबील = प्रबंध।

[^3] बाँह बोले की = शरण में लेने की।

[^4] बियो = दूसरा।

लीन्हो उखारि पहार बिसाल, चल्यो तेहि काल बिलंब न लायो।
मारुतनंदन मारुत को, मन को, खगराज को बेग लजायो॥
तीखी तुरा तुलसी कहतो, पै हिये उपमा को समाउ न आयो।
मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपि यों धुकि[1] धायो॥ 54॥

(घनाक्षरी)

चल्यो हनुमान, सुनि जातुधान कालनेमि
पठयो, सो मुनि भयो, पायो फलु छलि कै।
सहसा उखारो है पहार बहु जोजन को,
रखवारे मारे भारे भूरि भट दलि कै॥
बेग बल साहस सराहत कृपानिधान,
भरत की कुसल अचल ल्यायो चलि कै।
हाथ हरिनाथ [2] के बिकाने रघुनाथ जनु,
सीलसिंधु तुलसीस भलो मान्यो भलि कै॥ 55॥

बाप दियो कानन, भो आनन सुभानन सो,

---

[^1] धुकि = झपट कर, झोंके से चलकर।

[^2] हरिनाथ = कपिपति, हनुमान।

बैरी भौ दसाननु सो, तीयको हरन भो।

बालि बलसालि दलि, पालि कपिराज को,

बिभीषन नेवाजि, सेतु-सागर-तरन भो॥

घोर रारि हेरि त्रिपुरारि-बिधि हारे हिये,

घायल लखन बीर बानर बरन भो।

ऐसे सोक में तिलोक कै बिसोक पलही में,

सबही को तुलसी को साहेब सरन भो॥ 56॥

(सवैया)

कुंभकरन्न हन्यो रन राम, दल्यो दसकंधर, कंधर तोरे।

पूषन-बंस बिभूषन-पूषन-तेज-प्रताप गरे अरि-ओरे [1]॥

देव निसान बजावत गावत, साँवत [2] गो, मनभावत भो रे!

नाचत-बानर-भालु सबै तुलसी कहि 'हा रे! हहा भइ, हो रे!'॥ 57॥

(घनाक्षरी)

मारे रन रातिचर, रावन सकुल दल,

---

[^1] ओरे = ओले।

[^2] साँवत = सामंतपना, अधीनता।

अनुकूल देव-मुनि फूल बरषतु है।

नाग नर किन्नर बिरंचि हरि हर हेरि,

पुलक सरीर हिये हेतु, हरषतु हैं॥

बाम ओर जानकी कृपानिधान के बिराजैं,

देखत बिषाद मिटे मोद करषतु हैं।

आयसु भो ,लोकनि सिधारे लोकपाल सबै,

तुलसी निहाल कै कै दिये सरखतु हैं॥ 58॥

उत्तर कांड

(सवैया)

बालि से बीर बिदारि सुकंठ थप्यो, हरषे सुर बाजने बाजे।

पल में दल्यो दासरथी दसकंधर, लंक बिभीषन राज बिराजे॥

राम सुभाव सुने तुलसी हुलसे अलसी, हम से गलगाजे।

कायर कूर कपूतन की हद तेउ गरीबनेवाज नेवाजे॥ 1॥

बेद पढ़ैं बिधिसंभु सभीत, पुजावन रावन सों नित आवैं।
दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरहि तें सिर नावैं॥
ऐसेउ भाग भगे दसभाल तें जो प्रभुता कबि कोबिद गावैं।
राम से बाम भए तेहि बामहि बाम सबै सुख संपति लावैं॥ 2॥

बेद बिरुद्ध मही, मुनि साधु ससोक किए, सुरलोक उजारो [1]।
और कहा कहौं तीय हरी, तबहूँ करुनाकर कोप न धारो॥
सेवक-छोह तें छाँड़ी छमा, तुलसी लख्यो राम सुभाव तिहारो।
तौलों न दाप दल्यौ दसकंधर जौलौ बिभीषन लात न मारो॥ 3॥

सोक-समुद्र निमज्जत काढ़ि कपीस कियो जग जानत जैसो।
नीच निसाचर बैरी को बंधु बिभीषन कीन्ह पुरंदर कैसो॥
नाम लिए अपनाइ लियो, तुलसी-सो कहौं जग कौन अनैसो।
आरत-आरति-भंजन राम, गरीबनेवाज न दूसरो ऐसो॥ 4॥

मीत पुनीत कियौ कपि भालु को ,पाल्यो ज्यों काहु न बाल तनूजो।
सज्जन-सींव बिभीषन भो, अजहू बिलसै बर बंधु-बधू जो॥
कोसलपाल बिना तुलसी सरनागतपाल कृपालु न दूजो।

---

[^1] उजारो = उजाड़ा।

कूर कुजाति कुपूत अघी सब की सुधरै जो करै नर पूजो॥ 5॥

तीय-सिरोमनि सीय तजी जेहिं पावक की कलुषाई दही है॥
धर्म-धुरंधर बंधु तज्यो, पुरलोगनि की बिधि बोलि कही है॥
कीस निसाचर की करनी न सुनी,न बिलोकी, न चित्त रही है।
राम सदा सरनागत की अनखौंहीं,अनैसी सुभाय सही है॥ 6॥

अपराध अगाध भए जन तें, अपने उर आनत नाहिन जू।
गनिका गज गीध अजामिल के गनि पातक-पुंज सिराहिं न जू॥
लिए बारक नामु सुधाम दियो जिहि धाम महामुनि जाहिं न जू
तुलसी भजु दीनदयालहि रे, रघुनाथ अनाथहि दाहिन जू॥ 7॥

प्रभु सत्य करी प्रहलाद-गिरा, प्रगटे नरकेहरि खंभ महाँ।
झषराज ग्रस्यो गजराज, कृपा ततकाल, बिलंब कियो न तहाँ॥
सुर साखी दै राखी है पांडुबधू पट लूटत, कोटिक भूप जहाँ।
तुलसी भजु सोच-बिमोचन को, जन को पन राम न राख्यो कहाँ॥ 8॥

नरनारि [1] उघारि सभा महँ होत दियो पट सोच हर्‌यो मन को।

[^1] नरनारि = अर्जुन की स्त्री द्रौपदी।

प्रहलाद-बिषाद-निवारन, बारन-तारन, मीत अकारन को॥
जो कहावत दीनदयालु सही, जेहि भारु सदा अपने पन को ।
तुलसी तजि आन भरोस भजे भगवान भलो करिहैं जन को॥ 9॥

ऋषिनारि उधारि, कियो सठ केवट मीत, पुनीत सुकीर्ति लही।
निज लोक दियो सबरी खग को, कपि थाप्यो, सो मालुम है सब ही॥
दससीस बिरोध, सभीत बिभीषन भूप कियो जग लीक रही।
करुनानिधि को भजु रे तुलसी, रघुनाथ अनाथ के नाथ सही॥ 10॥

कौसिक बिप्रबधू मिथिलाधिप के सब सोच दले पल माहैं।
बालि-दसानन-बंधु-कथा सुनि सत्रु सुसाहिब-सील सराहैं॥
ऐसी अनूप कहैं तुलसी रघुनायक की अगनी गुन-गाहैं [1]।
आरत दीन अनाथन को रघुनाथ करैं निज हाथ की छाहैं॥ 11॥

तेरे बेसाहे बेसाहत औरनि, और बेसाहि के बेचनिहारे।
ब्योम रसातल भूमि भरे नृप कूर कुसाहेब सें तिहुँ खारे॥
तुलसी तेहि सेवत कौन मरै? रज ते लघुको करैं मेरु तें भारे?
स्वामी सुसील समर्त्थ सुजान सो तोसों तुहीं दसरत्थ-दुलारे॥ 12॥

---

[^1] गुन-गाहैं = गुण गाथाएँ।

(घनाक्षरी)

जातुधान भालु कपि केवट, बिहंग जो जो
पाल्यो नाथ सद्य सो सो भयो काम-काज को।
आरत अनाथ दीन मलिन सरन आए
राखे अपनाइ, सो सुभाव महाराज को॥
नाम तुलसी पै भोंडे भग, सो कहायो दास,
किए अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज को।
साहेब समर्थ दसरत्थ के दयालु देव,
दूसरो न तोसों तुही आपने की लाज को॥ 13॥

महाबली बालि दलि, कायर सुकंठ कपि
सखा किये महाराज हौ न काहू काम को।
भ्रात-घात पातकी निसचर सरन आए,
कियो अंगीकार नाथ एते बड़े बाम को॥
राय दसरत्थ के समर्थ तेरे नाम लिए,
तुलसी के कूर को कहत जग राम को।
आपने निवाजे की तौ लाज महाराज को

सुभाव समुझत मनु मुदित गुलाम को॥ 14॥

रूप-सीलसिंधु, गुनसिंधु, बंधु दीन को,
दयानिधान जान-मनि, बीर बाहु-बोल को।
स्राद्ध कियो गीध को, सराहे फल सबरी के
सिला-साप-समन, निबाह्यो नेह कोल को॥
तुलसी उराउ [1] होत राम को सुभाव सुनि,
को न बलि जाइ, न बिकाइ बिन मोल को?।
ऐसेहु सुसाहेब सों जाको अनुरागन सो
बड़ोई अभागो, भाग भागो लोभ-लोल को॥ 15॥

सूर-सिरताज, महाराजनि के महाराज
जाको नाम लेत ही सुखेत होत ऊसरो।
साहब कहाँ जहान जानकीस सो सुजान,
सुमिरे कृपालु के मरालु होत खूसरो॥
केवट पषान जातुधान कपि भालु तारे,
अपनायो तुलसी सो धींग धमधूसरो।

---

[^1] उराउ = हौसला, उत्साह।

बोल को अटल, बाँह को पगार [1], दीनबंधु,

दूबरे को दानी, को दयानिधान दूसरो?॥ 16॥

कीबे को बिसोक लोक लोकपालहु तें सब,

कहूँ कोऊ भो न चरवाहो कपि भालु को।

पबि को पहार कियो ख्याल ही कृपालु रान,

बापुरो बिभीषन घरौंधा हुतो बाल को॥

नाम-ओट लेत ही निखोट होत खोटे खल,

चोट बिनु मोट पाइ [2] भयो न निहाल को?

तुलसी की बार बड़ी ढीलि होति, सीलसिंधु !

बिगरी सुधारिबे को दूसरो दयालु को?॥ 17॥

नाम लिये पूत को पुनीत कियो पातकीस,

आरति निवारी प्रभु पाहि कहे पील की।

छलिन को छोड़ी [3] सो निगोड़ी छोटी जाति पाँति

कीन्ही लीन आपुमें सुनारी भोंड़े भील की॥

---

[^1] पगार = प्रकार, कोट।

[^2] चोट बिनु मोट पाइ = बिना कष्ट वा श्रम के गठरी पाकर।

[^3] छोड़ी = लड़की।

तुलसी औ तोरिबो बिसारबो न अंत मोहि,
नीके हैं प्रतीत रावरे सुभाव सील की।
देव तो दयानिकेत, देत दादि दीमन की,
मेरी बार मेरे ही अभाग नाथ ढील की॥ 18॥

आगे परे पाहन कृपा, किरात, कोलनी,
कपीस, निसिचर अपनाए नाए माथ जू।
साँची सेवकाई हनुमान की सुजानराय,
ऋनियाँ कहाए हौ बिकाने ताके हाथ जू॥
तुलसी से खोटे खरे होत ओट नाम ही की,
तेजी [1] माटी मगहू की मृगमद साथ जू।
बात चलें बात को न मानिबो बिलग, बलि,
काकी सेवा रीझि कै नेवाजो रघुनाथ जू?॥ 19॥

कौसिक की चलत, पषान की परस पायँ,
टूटत धनुष बनि गई है जनक की।
कोल पसु सबरी बिहंग भालु रातिचर,

[^1] तेजी = महँगी।

रतिन के लालचिन प्रापति मनक [1] की॥
कोटि-कला-कुसल कृपालु नतपाल, बलि,
बातहू कितिक तिन [2] तुलसी तनक की।
राय दसरत्थ के समर्त्थ राम राजमनि,
तेरे हेरे लोपै लिपि बिधिहू गनक की॥ 20॥

सिला-स्राप-पाप, गुह गीध को मिलाप,
सबरी के पास आप चलि गए हौ सो सुनी मैं।
सेवक सराहे कपिनायक बिभीषन,
भरत सभा सादर सनेह सुरधुनी मैं [3]॥
आलसी अभागी 'अघी-आरत-अनाथपाल',
साहेब समर्त्थ एकु नीके मन गुनी मैं।
दोष दुख दारिद दलैया दीनबंधु राम,
तुलसी न दूसरो दयानिधान दुनी मैं॥ 21॥

मीतु बालि-बंधु, पूत,दूत, दसकंध-बंधु,

---

[^1] मनक = मन भर।

[^2] तिन = तृण।

[^3] सुरधुनी मैं = गंगामय, पवित्र।

सचिव, सराध कियो सबरी जटाइ को।

लंक जरी जोहें जिय सोच सो बिभीषन को,

कहौ ऐसे साहेब की सेवा न खटाइ को?॥

बड़े एक एक तें अनेक लोक लोकपाल,

अपने-अपने को तौ कहैगो घटाइ को?।

साँकरे के सेइबे, सराहिबे, सुमिरिबे को

राम सो न साहिब, न कुमति-कटाइ को [1]॥ 22॥

भूमिपाल, ब्यालपाल, नाकपाल, लोकपाल

कारन-कृपालु, मैं सबै के जी की थाह ली।

कादर को आदर नाहिं काहू के देखियत,

सबनि सोहात है सेवा-सुजानि टाहली [2]॥

तुलसी सुभाय कहै, नाहीं कछु पच्छपात,

कौनै ईस किये कीस भालु खास माहली [3]।

राम ही के द्वारे पै बोलाइ सनमानियत

---

[^1] कटाइ को = कटायक, कटाने वाला भी।

[^2] टाहली = टहलुवा, सेवक।

[^3] माहली = रनिवास का सेवक।

मोसे दीन दूबरे कपूत कूर काहली॥ 23॥

सेवा अनुरूप फल देत भूप कूप ज्यों,
बिहूने-गुन पथिक पियासे जात पथ के।
लेखे जोखे चोखे चित तुलसी स्वारथ-हित,
नीके देखे देवता देवैया घने गथ के॥
गीध मानो गुरु कपि भालु माने मीत कै,
पूनीत गीत साके सब साहेब समत्थ के।
और भूप परखि सुलाखि [1] तौलि ताइ लेत,
लसम [2] के खसम तुहीं पै दसरत्थ के॥ 24॥

रीति महाराज की नेवाजिए जो माँगनो,सो
दोष-दुख-दारिद-दरिद्र कै कै छोड़िये।
नाम जाको कामतरु देत फल चारि, ताहि,
तुलसी बिहाइ कै बबूर-रेड़ गोड़िये॥
जाँचै को नरेस, देस-देस को कलेस करै

[^1] सुलाखि = सूराख करके।

[^2] लसम = खोटा।

देहैं तौ प्रसन्न ह्वै बड़ी बड़ाई [1] बौड़िये [2]।

कृपा-पाथनाथ लोकनाथ नाथ सीतानाथ

तजि रघुनाथ हाथ और काहि औड़िये?॥ 25॥

(सवैया)

जाके बिलोकत लोकप होत बिसोक, लहैं, सुरलोग सुठौरहि।

सो कमला तजि चंचलता करि कोटि कला रिझवै सुरमौरहि॥

ताको कहाय, कहै तुलसी, तू लजाहि न माँगत कूकुर कौरहि।

जानकी-जीवन को जनु ह्वै जरि जाउ सो जीह जो जाँचत औरहि॥ 26॥

जड़ पंच मिलै जेहिं देह करी, करनी लखु धौं धरनीधर की।

जन की कहु क्यों करिहै न सँभार, जो सार करै [3] सचराचर की॥

तुलसी कहु राम समान को आन है सेवकि जासु रमा घर की।

जग में गति जाहि जगत्पति की, परवाह है ताहि कहा नर की॥ 27॥

---

[^1] बड़ी बड़ाई = बहुत बढ़कर।

[^2] बौड़िये = दमड़ी ही।

[^3] सार करना = सँभाल करना।

जग जाँचिये कोउ न, जाँचिये जौं जिय जाँचिये जानकी-जानहि [4] रे।
जेहि जाचत जाचकता जरि जाइ जो जारति जोर जहाननि रे॥
गति देखु बिचारि बिभीषन की, अरु आनु हिए हनुमानहि रे।
तुलसी भजु दारिद-दोष-दवानल, संकट-कोटि-कृपानहि रे॥ 28॥

सुनु कान दिए नित नेम लिये रघुनाथहि के गुनगाथहि रे।
सुख-मंदिर सुंदर रुप सुधा उर आनि धरे धनु-भाथहि रे॥
रसना निसि-बासर सादर सों तुलसी जपु जानकीनाथहि रे।
करु संग सुसील सुसंतन सों, तजि कूर कुपंथ कुसाथहि रे॥ 29॥

सुत, दार, अगार, सखा परिवार बिलोकु महा कुसमाजहि रे।
सबकी ममता तजि कै, समता सजि संतसभा न बिराजहि रे॥
नरदेह कहा, करि देखु बिचार, बिगारु गँवार न काजहि रे।
जनि डोलहि लोलुप कूकर ज्यों, तुलसी भजु कोसलराजहि रे॥ 30॥

बिषया पर नारि निसा-तरुनाई, सु पाइ पर्‌यो अनुरागहि रे।
जम के पहरु दुख रोग बियोग बिलोकतहू न बिरागहि रे॥
ममता-बस तैं सब भूलि गयो, भयो भोर महा-भय भागहि रे।

[^4] जानकी-जान = जानकी-जानि (स्त्री); अर्थात् जिनकी स्त्री जानकी है, रामचंद्र।

जरठाइ दिसा, रबिकाल उग्यो, अजहूँ जड़ जीव न जागहि रे॥ 31॥

जनम्यो जेहिं जोनि अनेक क्रिया सुख लागि करीं, न परैं बरनी।
जननी जनकादि हितू भये भूरि, बहोरि भई उर की जरनी॥
तुलसी अब राम को दास कहाइ हिये धरु चातक की धरनी [1]।
करि हंस को बेष बड़ो सब सों, तजि दे बक बायस की करनी॥ 32॥

भलि भारतभूमि भले कुल जन्मु, समाज सरीर भलो लहि कै।
करषा तजि कै परुषा बरषा, हिम मारुत घाम सदा सहि कै॥
जो भजै भगवान सयान सोई, तुलसी हठ चातक ज्यों गहि कै॥
नतु और सबै बिष बीज बये हर-हाटक कामदुहा [2] नहि कै [3]॥ 33॥

सो सुकृती सुचिमंत सुसंत सुजान सुसील-सिरोमनि स्वै।
सुर तीरथ तासु मनावत आवत ,पावन होत हैं ता तनु छ्वै॥
गुनगेह, सनेह को भाजन सो, सब ही सो उठाइ कहौं भुज द्वै।
सति भाय सदा छल छाड़ि सबै तुलसी जो रहै रघुबीर को ह्वै॥ 34॥

---

[^1] धरनी = धरन, टेक।

[^2] कामदुहा = कामधेनु।

[^3] नहि कै = नाघकर, जोतकर।

सो जननी, सो पिता, सोइ भाइ, सो भामिनि,सो सुत,सो हित मेरो।
सोई सगो, सो सखा,सोइ सेवक, सो गुरु, सो सुर,साहिब चेरो॥
सो तुलसी प्रिय प्रान-समान, कहाँ लौं बनाइ कहौं बहुतेरो।
जौ तजि देह को नेह सनेह सो राम को सेवक होइ सबेरो॥ 35॥

राम हैं मातु पिता गुरु बंधु औ संगी सखा सुत स्वामी सनेही।
राम की सौंह भरोसो है राम को, राम रँग्यो रुचि राच्यो न केही॥
जीयत राम, मुये पुनि राम, सदा रघुनाथहि की गति जेही।
सोई जियै जगमें तुलसी, नतु डोलत और मुये धरि देही॥ 36॥

सियराम-सरुप अगाध अनूप बिलोचन-मीनन को जलु है।
श्रुति रामकथा, मुख राम को नाम, हिये पुनि रामहि को थलु है
मति रामहि सों, गति रामहि सों, रति राम सों, रामहि को बलु है।
सबकी न कहै, तुलसी के मते इतनो जग जीवन को फलु है॥ 37॥

दसरत्थ के दानि-सिरोमनि राम, पुरान-प्रसिद्ध सुन्यो जसु मैं।
नर-नाग सुरासर जाचक जो तुम सों मन भावत पायो न कै॥
तुलसी कर जोरि करै बिनती जो कृपा करि दीनदयाल सुनैं।

जेहि देह सनेह न रावरे सों अस देह धराइ कै जाय जियैं॥ 38॥

‘झूठो है, झूठो है, झूठो सदा जग’ संत कहंत जे अंत लहा है॥
ताको सहै सठ संकट कोटिक, काढ़त दंत, करंत हहा है॥
जानपनी को गुमान बढ़ो, तुलसी के बिचार गँवार महा है।
जानकीजीवन जान न जान्यो तौ जान कहावत जान्यौ कहा है॥ 39॥

तिन्ह तें खर सूकर स्वान भले, जड़ाबस ते न कहैं कछु वै।
तुलसी जेहि राम सों नेह नहीं सौ सही पसु पूँछ बिखान न द्वै ।
जननी कत भार मुई दस मास, भई किन बाँझ,गई किन च्वै।
जरि जाउ सो जीवन,जानकीनाथ! जियै जग में तुम्हरो बिन ह्वै॥ 40॥

गज-बाजि-घटा, भले भूरि भटा, बनिता, सुत भौंह तकैं सब वै।
धरनी धन धाम सरीर भलो, सुरलोकहु चाहि [1] इहै सुख स्वै।
सब फोटक साटक है तुलसी,अपनो न कछू सपनो दिन द्वै।
जरि जाउ सो जीवन जानकीनाथ! जियै जग में तुम्हरो बिनु ह्वै॥ 41॥

सुरराज सो राज-समाज, समृद्धि बिरंचि, धनाधिप सो धनु भो।

---

[^1] चाहि = अपेक्षाकृत। बढ़कर।

पवमान सो, पावक सो, जम-सोम सो, पूषन सो भवभूषन भो॥
करि जोग, समीरन, साधि,समाधि कै धीर बड़ो, बसहू मन भो।
सब जाय सुभाय कहै तुलसी जो न जानकीजीवन को जन भो॥ 42॥

काम-से रूप, प्रताप दिनेस-से, सोम से सील, गनेस से माने।
हरिचंद्र से साँचे, बड़े बिधि से, मघवा से महीप बिषै-सुख-साने॥
सुक से मुनि, सादर से बकता, चिरजीवन लोमस तें अधिकाने।
ऐसे भए तौ कहा तुलसी जु पै राजिवलोचन राम न जाने॥ 43॥

झूमत द्वार अनेक मतंग जँजीर-जरे मद-अंबु चुचाते।
तीखे तुरंग मनोगति चंचल, पौन के गौनहुँ तें बढ़ि जाते॥
भीतर चंद्रमुखी अवलोकति बाहर भूप खरे न समाते।
ऐसे भए तौ कहा तुलसी जुपै जानकीनाथ के रंग न राते॥ 44॥

राज सुरेस पचासक को, बिधि के कर को जो पटो लिखि पाए।
पूत सुपूत, पुनीत प्रिया निज सुंदरता रति को मदु नाए॥
संपति-सिद्धि सबै तुलसी, मन की मनसा चतवैं चित लाए॥
जानकीजीवन जाने बिना जग ऐसेउ जीव न जीव कहाए॥ 45॥

कृसगात ललात जो रोटिन को, घरवात [1] घरे खुरपा-खरिया।
तिन सोने के मेरु-से ढेर लहे मन तौ न भरो, घरु पै भरिया॥
तुलसी दुख दूनो दसा दुहुँ देखि, कियो मुख दारिद को करिया।
तजि आस भो दास रघुप्पति को, दसरथ्त को दानि दया-दरिया॥46॥

को भरिहै हरि के रितये, रितवै पुनि को हरि जौं भरिहै।
उथपै तेहि को जेहि राम थपै? थपिहै तेहि को हरि जौं टरिहै?॥
तुलसी यह जानि हिये अपने सपने नहि कालहू तें डरिहै।
कुमया कछु हानि न औरन की जोपै जानकीनाथ मया करिहै॥47॥

ब्याल कराल, महाबिष, पावक मत्तगयंदहु के रद तोरे।
साँसति संकि चली, डरपे हुते किंकर, ते करनी मुख मोरे॥
नेकु बिषाद नहीं प्रहलादहि, कारन केहरि केबल हो रे।
कौन की त्रास करै तुलसी, जोपै राखिहै राम तौ मारिहै को रे?॥48॥

कृपा जिनकी कछु काज नहीं, न अकाज कछू जिनके मुख मोरे।
करैं तिनकी परवाहि ते जो बिनु पूँज बिषान फिरैं दिन दौरे॥
तुलसी जेहिके रघुनाथ से नाथ, समर्थ सु सेवत रीझत थोरे।

---

[^1] घरवात = घर का सामान।

कहा भव-भीर परी तेहि धौं, बिचरै धरनी तिन सों तिन तोरें [1]॥ 49॥

कानन, भूधर, बारि, बयारि, महाबिष, ब्याधि, दवा अरि घेरे।
संकट कोटि जहाँ तुलसी, सुत मातु पिता हित बंधु न नेरे॥
राखिहैं राम कृपालु तहाँ, हनुमान-से सेवक हैं जेहि केरे।
नाक, रसातल, भूतल में रघुनायक एक सहायक मेरे॥ 50॥

जबै जमराज रजायसु तें मोहि लै चलिहैं भट बाँधि नटैया।
तात न मात न स्वामि-सखा सुत बंधु बिसाल बिपत्ति बँटैया॥
साँसति घोर, पुकारत आरत, कौन सुनै चहुँ ओर डटैया।
एक कृपाल तहाँ तुलसी दसरथ को नंदन बंदि कटैया॥ 51॥

जहाँ जमजातना, घोर-नदी, भट कोटि जलच्चर दंत टैवेया।
जहँ धार भयंकर वार न पार, न बोहित नाव, न नीक खेवैया॥
तुलसी जहँ मातु-पिता न सखा, नहिं कोऊ कहूँ अवलंब देवैया।
तहाँ बिनु कारन राम कृपाल बिसाल भुजा गहि काढ़ि लेवैया॥ 52॥

जहाँ हित, स्वामि, न संग सखा, बनिता सुत बंधु न, बाप न मैया।

[^1] तिन तोरें = नाता तोड़े हुए।

काय गिरा मन के जन के अपराध सबै छल छाँड़ि छमैया॥
तुलसी तेहि काल कृपालु बिना दूजो कौन है दारुन दुःख दमैया॥
जहाँ सब संकट दुर्घट सोच तहाँ मेरो साहेब राखै रमैया॥ 53॥

तापस को बरदायक देव, सबै पुनि बैर बढ़ावत बाढ़ें।
थोरेहि कोप कृपा पुनि थोरेहि, बैठिकै जोरत तोरत ठाढ़ें॥
ठोंकि बजाय लखे गजराज, कहाँ लौं कहौं केहिसों रद काढ़ें?।
आरत के हित नाथ अनाथ के राम सहाय सही दिन गाढ़ें॥ 54॥

जप, जोग, बिराग, महा मख-साधन, दान, दया, दम कोटि करै।
मुनि सिद्ध, सुरेस, गनेस, महेस से सेवत जन्म अनेक मरै॥
निगमागम, ज्ञान पुरान पढ़ै, तपसानल में जुग-पुंज जरै।
मन सों पन रोपि कहै तुलसी रघुनाथ बिना दुख कौन हरै?॥ 55॥

पातक पीन, कुदारद दीन, मलीन धरे कथरी करवा है।
लोक कहै बिधिहू न लिख्यो सपनेहूँ नहीं अपने बर बाहै॥
राम को किंकर सो तुलसी समुझेहि भलो कहिबो न रवा [1]है।
ऐसे को ऐसो भयो कबहूँ न भजे बिन, बानर के चरवाहै॥ 56॥

[^1] रवा = [फा.] उचित।

मातु पिता जग जाय [1] तज्यो, बिधिहू न लिखी कछु भाल भलाई॥
नीच, निरादर-भाजन, कादर, कूकर टूकन लागि ललाई॥
राम-सुभाउ सुन्यो तुलसी, प्रभु सों कह्यो बारक पेट खलाई।
स्वारथ को परमारथ को रघुनाथ सो साहेब खोरि न लाई॥ 57॥

पाप हरे, परिताप हरे, तन पूजि भो सीतल सीतलताई।
हंस कियो बक तें बलि जाउँ, कहाँ लौं कहौं करुना अधिकाई॥
काल बिलोकि कहै तुलसी मन में प्रभु की परतीति अघाई।
जन्म जहाँ तहँ रावरे सों निबहै भरि देह सनेह सगाई॥ 58॥

लोग कहैं अरु हौं हूँ कहौं, 'जन खोटो खरो रघुनायक ही को'।
रावरी राम बड़ी लघुता जस मेरो भयो सुखदायक ही को॥
कै यह हानि सहौ बलि जाउँ कि मोहूँ करौ निज लायक ही को।
आनि हिये हित जानि करौ ज्यों हौं ध्यानु धरौं धनुसायक ही को॥59॥

आपु हौं आपुको नीके कै जानत, रावरो राम! भरायो गढ़ायो।
कीर ज्यौं नाम रटै तुलसी सो कहै जग जानकीनाथ पढ़ायो॥

---

[^1] जाय = उत्पन्न करके।

सोई है खेद जो बेद कहै, न घटै जन जो रघुबीर बढ़ायो।
हौं तो सदा खर को असवार, तिहारोई नाम गयंद चढ़ायो॥ 60॥

(घनाक्षरी)

छार ते सँवारिकै पहार हू तें भारी कियो,
गारो भयो पंच में पुनीत पच्छ पाइकै।
हौं तो जैसो तब तैसो अब अधमाई कै कै,
पेट भरौं राम रावरोई गुन गाईकै॥
आपने निवाजे की पै कीजै लाज, महाराज!
मेरी ओर हेरिकै न बैठिए रिसाइकै।
पालि कै कृपालु ब्याल बाल को न मारिये,
औ काटिए न नाथ ! बिषहू को रुख लाइकै॥ 61॥

बेद न पुरान-गान, जानौं न बिज्ञान ज्ञान,
ध्यान, धारना, समाधि, साधन प्रबीनता।
नाहिन बिराग, जोग, जाग भाग तुलसी के,
दया-दान दूबरो हौं, पाप ही की पीनता॥
लोभ-मोह-काम-कोह-दोष-कोष मोसो कौन?

कलि हू जो सीखि लई मेरियै मलीनता।

एक ही भरोसो राम रावरो कहावत हौं,

रावरे दयालु दीनबंधु, मेरी दीनता॥ 62॥

रावरो कहावौं, गुन गावौं राम रावरोई,

रोटी द्वै हौं पावौं राम रावरी ही कानि हौं।

जानत जहान, मन मेरे हू गुमान बड़ो,

मान्यो मैं न दूसरो, न मानत, न मानिहौं॥

पाँच की प्रतीति न, भरोसो मोहि आपनोई,

तुम्ह अपनायो हौं तबैहीं परि जानिहौं।

गढ़ि गुढ़ि छोलि छालि कुंद की सी भाई [1] बातैं

जैसी मुख कहौं तैसी जीय जब आनिहौं॥ 63॥

बचन बिकार,करतबऊ खुआर, मन,

बिगत-बिचार, कलि मल को निधानु है।

राम को कहाइ, नाम बेचि-बेचि खाइ, सेवा

संगति न जाइ, पाछिले को उपखानु है॥

---

[^1] कुंद की भाई = खराद चढ़ाई हुई।

तेहू तुलसी को लोग भलो भलो कहै, ताको

दूसरो न हेतु,एक नीके कै निदानु है।

लोकरीति बिदित बिलोकियत जहाँ तहाँ,

स्वामी के सनेह स्वान हू को सनमानु है॥ 64॥

स्वारथ को साज न समाज परमारथ को,

मोसों दगाबाज दूसरो न जगजाल है।

कै न आयों, करौं न करौगो करतूति भली,

लिखी न बिरंचि हू भलाई भूलि भाल है॥

रावरी सपथ, राम! नाम ही की गति मेरे,

इहाँ झूठो झूठो सो तिलोक तिहूँ काल है।

तुलसी को भलो पै तुम्हारे ही किये, कृपाल!

कीजै न बिलंब, बलि, पानी भरी खाल है॥ 65॥

राग को न साज, न बिराग, जोग जाग जिय,

काया नहिं छाड़ि देत ठाटिबो कुठाट को।

मनोराज करत अकाज भयो आज लगि,

चाहै चारु चीर पै लहै न टूक टाट को॥

भयो करतार बड़े कूर को कृपालु, पायो

नाम-प्रेम-पारस हौं लालची बराट [1] को।

तुलसी बनी है राम रावरे बनाए, ना तौ

धोबी कैसा कूकर न घर को न घाट को॥ 66॥

ऊँचो मन, ऊँची रुचि, भाग नीचो निपट ही,

लोकरीति-लायक न लंगर [2] लबारु है॥

स्वारथ अगम, परमारथ की कहा चली,

पेट की कठिन, जग जीव को जवारु [3] है॥

चाकरी न आकरी [4] न खेती न बनिज भीख,

जानत न कूर कछु कसब [5] कबारु [6] है।

तुलसी की बाजी राखि राम ही के नाम, नतु

---

[^1] बराट = कौड़ी।

[^2] लंगर = नटखट।

[^3] जवारु = [फा. जवाल] जंजाल, झंझट।

[^4] आकरी = खान खोदने का काम।

[^5] कसब = [अ.] कारीगरी।

[^6] कबारु = कबाड़, व्यवसाय, रोजगार।

भेंट पितरन को न मूड़ हू में बारु है॥ 67॥

अपत [1], उतार [2],अपकार को अगार जग,

जाकी छाँह छुए सहमत ब्याध बाघको।

पातक पुहुमि पालिबे को सहसानन सो,

कानन कपट को, पयोधि अपराध को॥

तुलसी से बाम को भी दाहिनो दयानिधान,

सुनत सिहात सब सिद्ध साधु साधको।

रामनाम ललित-ललाम [3] कियो लाखनि को,

बड़ो कूर कायर कपूत कौड़ी आध को॥ 68॥

सब-अंग-हीन, सब-साधन-बिहीन, मन

बचन मलीन, हीन कुल करतूति हौं।

बुद्धि-बल-हीन, भाव-भगति-बिहीन, हीन

गुन, ज्ञानहीन, हीन भाग हू बिभूति हौं॥

तुलसी गरीब की गई-बहोर रामनाम,

---

[^1] अपत = अपात्र, खोटा।

[^2] उतार = सबसे उतरा हुआ, अधम।

[^3] ललाम = भूषण।

जाहि जपि जीह राम हू को बैठो धूति हौं।

प्रीति रामनाम सों, प्रतीति रामनाम की,

प्रसाद रामनाम के पसारि पायँ सूतिहौं॥ 69॥

मेरे जान जब तें हौं जीव ह्वै जनम्यो जग,

तब तें बेसाह्यो दाम लोह [1] कोह काम को।

मन तिनहीं की सेवा, तिनहीं सों भाव नीको,

बचन बनाइ कहौं 'हौं गुलाम राम को'

नाथहू न अपनायो, लोक झूठी ह्वै परी, पै

प्रभु हू तें प्रबल प्रताप प्रभु नाम को।

आपनी भलाई भलो कीजै तौ भलोई, न तौ

तुलसी को खुलैगो खजानो खोटे दाम को॥ 70॥

जोग न बिराग जप जाग तप त्याग ब्रत,

तीरथ न धर्म जानौं बेदबिधि किमि है।

तुलसी सो पोच न भयो है, नहि ह्वैहै कहूँ,

सोचैं सब याके अघ कैसे प्रभु छमिहैं ॥

[^1] लोह = लोभ, लोहा।

मेरें तो न डर रघुबीर सुनौ साँची कहौं,

खल अनखैहैं, तुम्हैं,सज्ज्ञन न गमिहैं [1]।

भले सुकृती के संग मोहि तुला तौलिये तौ,

नाम के प्रसाद भार मेरी ओर नमिहैं॥ 71॥

जाति के, सुजाति के, कुजाति के, पेटागिबस

खाए टूक सबके बिदित बात दुनी सो।

मानस बचन-काय किए पाप सति भाय,

राम को कहाय दास दगाबाज पुनी [2] सो।

रामनाम को प्रभाउ, पाउ महिमा, प्रताप,

तुलसी से जग मनियत महामुनी सो।

अतिहीं अभागो, अनुरागत न रामपद,

मूढ़ एतो बड़ो अचरज देखि सुनी सो॥ 72॥

जायो कुल मंगन, बधावनो बजायो सुनि

भयो परिताप पाप जननी जनक को॥

बारे तें ललात बिललात द्वार द्वार दीन,

[^1] गमिहै = गम न करेंगे, परवा न करेंगे, ध्यान न देंगे।

[^2] पुनि = पुनः, फिर।

जानत हो [1] चारि फल चारि ही चनक को॥

तुलसी सो साहिब समर्थ को सुसेवक है,

सुनत सिहात सोच बिधिहू गनक को।

नाम, राम! रावरो सयानो किधौं बावरो,

जो करत गिरी तें गरु तृन तें तनक को॥ 73॥

बेद हू पुरान कही, लोक हू बिलोकियत,

रामनाम ही सों रीझें सकल भलाई है।

कासी हू मरत उपदेसत महेस सोई,

साधना अनेक चितई न चित लाई है॥

छाछी को ललात जे ते राम-नाम के प्रसाद

खात खुनसात सोंधे दूध की मलाई है।

रामराज सुनियत राजनीति की अवधि,

नाम राम! रावरो तौ चाम की चलाई है॥ 74॥

सोच संकटनि सोच संकट परत, जर

जरत, प्रभाव नाम ललित ललाम को।

---

[^1] जानत हो = जानता था।

बूड़ियौ तरति, बिगरीयौ सुधरति बात,

होत देखि दाहिनो सुभाव बिधि बाम को॥

भागत अभाग, अनुरागत बिराग, भाग

जागत, आलसि तुलसी हू से निकाम को।

धाई धारि [1] फिरि कै गोहारि हितकारी होति,

आई मीचु मिटति जपत रामनाम को॥ 75॥

आँधरो, अधम, ज़ड़, जाजरो [2] जरा जवन,

सूकर के सावक ढका ढकेल्यो मग मैं।

गिरो हिय हहरि, ‘हराम हो, हराम हन्यो’

हाय हाय करत परीगो कालफँग मैं॥

तुलसी बिसोक ह्वै त्रिलोकपति-लोक गयो

नाम के प्रताप, बात बिदित है जग मैं।

सोई रामनाम जो सनेह सों जपत जन,

ताकी महिमा क्यों कही है जाति अगमैं ॥ 76॥

---

[^1] छारि = झुंड (लुटेरों का)।

[^2] जाजरो = जर्जर।

जापकी न तप खप [3] कियो न तमाई [4] जोग,

जाग न, बिराग त्याग तीरथ न तन कौ।

भाई को भरोसो न खरो सो बैर बैरीहू सों,

बल अपनो न, हितू जननी न जन कौ॥

लोक को न डर, परलोक को न सोच,

देवसेवा न सहाय, गर्व धाम को न धन को।

रामही के नाम तें जो होई सोई नीको लागै,

ऐसोई सुभाव कछु तुलसी के मन को॥ 77॥

ईस न, गनेस न, दिनेस न, धनेस न,

सुरेस सुर गौरि गिरापति नहि जपने।

तुम्हरेई नाम को भरोसो भव तरिबे को,

बैठें-उठे जागत बागत सोए सपने॥

तुलसी है बावरो सो रावरोई, रावरी सौं,

रावरेऊ जानि जिय कीजिए जु अपने।

जानकी-रमन मेरे! रावरें बदन फेरे,

---

[^3] खप = खप कर, पच कर।

[^4] तमाइ = तमअ, लालच।

ठाउँ न समाउँ कहाँ सकल निरपने [1]॥ 68॥

जाहिर जहान में जमानो एक भाँति भयो,

बेंचिए बिबुधधेनु रासभी बेसाहिए।

ऐसेउ कराल कलिकाल में कृपालु तेरे

नाम के प्रताप न त्रिताप तन दाहिए॥

तुलसी तिहारो मन बचन करम, तेहि

नाते नेह-नेम निज ओर तें निबाहिए।

रंक के नेवाज रघुराज राजा राजनि के,

उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए॥ 79॥

स्वारथ सयानप, प्रपंच परमारथ,

कहायो राम रावरो हौं, जानत जहानु है।

नाम के प्रताप बाप! आजु लौं निबाही नीकें,

आगे को गोसाई स्वामी सबल सुजानु है॥

कलि की कुचालि देखि दिन-दिन दूनी, देव!

पाहरूई चोर हेरि हिय हहरानु है।

---

[^1] निरपने = अपने नहीं, बेगाने।

तुलसी की ,बलि, बार-बार ही सँभार कीबी,

जद्यपि कृपानिधान सदा सावधानु है॥ 80॥

दिन-दिन दूनो देखि दारिद दुकाल दुख

दुरित दुराज, सुख-सुकृत सकोचु है।

मागें पैंत [1] पावत पचारि पातकी प्रचंड,

काल की करालता भले को होत पोचु है॥

आपनें तौ एक अवलंब अंब डिंभ ज्यों,

समर्थ सीतानाथ सब संकट बिमोचु है।

तुलसी की साहसी सराहिये कृपालु, राम!

नाम के भरोसे परिनाम को निसोचु है॥ 81॥

मोह-मद मात्यो, रात्यो कुमति-कुनारि सो,

बिसारि बेद-लोक-लाज, आँकरो [2] अचेतु है।

भावै सो करत, मुँह आवै सो कहत कछु,

काहू की सहत नाहिं, सरकस [3] हेतु है॥

---

[^1] पैंत = दाँव, घात।

[^2] आँकरो = आँकरा। गहरा।

[^3] सरकस = सरकश, प्रबल।

तुलसी अधिक अधमाई हू अजामिल तें,

ताहू में सहाय कलि कपट-निकेतु है।

जैबे को अनेक टेक, एक टेक ह्वैबे की, जो

पेट-प्रिय-पूत हित रामनाम लेतु है॥ 82॥

जागिए न सोइए, बिगोइए जनमु जाय,

दुख रोग रोइए कलेस कोह काम को।

राजा, रंक, रागी ओ बिरागी, भूरि भागी ये

अभागी जीव जरत, प्रभाव कलि बाम को॥

तुलसी कबंध कैसो धाइबो बिचारु अंध !

धंध देखिअत जग सोच परिनाम को।

सोइबो जो राम के सनेह की समाधि-सुख,

जागिबो जो जीह जपै नीके रामनाम को॥ 83॥

बरन-धरम गयो,आस्त्रम निवास तज्यो,

त्रासन चकित सो परावनो परो सो है।

करम उपासना कुबासना बिनास्यो ज्ञान,

बचन, बिराग, बेष जगत हरी सो है॥

गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग,

निगम नियोग ते सो केलि ही छरो सो है।

काय मन-बचन सुभाय तुलसी है जाहि

रामनाम को भरोसो ताहि को भरोसो है॥ 84॥

बेद-पुरान बिहाइ सुपंथ कुमारग कोटि कुचालि चली है।

काल कराल नृपाल कृपालन राजसमाज बड़ोई छली है॥

बर्न-बिभाग न आस्रमधर्म, दुनी दुख-दोष-दरिद्र-दली है।

स्वारथ को परमारथ को कलि राम को नाम-प्रताप बली है॥ 85॥

न मिटै भवसंकट दुर्घट है तप तीरथ जन्म अनेक अटो।

कलि में न बिराग, न ज्ञान कहूँ,सब लागत फोकट झूँठ-जटो [1]॥

नट ज्यों जनि पेट-कुपेटक [2] कोटिक चेटक कौतुक ठाट ठटो।

तुलसी जो सदा सुखु चाहिअ तौ रसना निसि बासर राम रटो॥ 86॥

दम दुर्गम, दान दया मख कर्म सुधर्म अधीन सबै धन को।

तप तीरथ साधन जोग बिराग सो होइ नहीं दृढ़ता तन को॥

---

[^1] जटो = जटित, जड़ा हुआ।

[^2] कुपेटक = बुरे पिटारे से (जैसा बाजीगर रखते है)।

कलिकाल कराल मैं, राम कृपालु! यहै अवलंब बड़ो मन को।
तुलसी सब संजमहीन सबै,इक नाम अधार सदा जन को॥ 87॥

पाइ सुदेह बिमोह-नदी-तरनी न लही, करनी न कछू की।
राम कथा बरनी न बनाइ सुनी न कथा प्रह्लाद न ध्रू की॥
अब जोर जरा जरि गात गयो, मन मानि गलानि कुबानि न मूकी [1]।
नीके कै ठीक दई तुलसी, अवलंब बड़ी उर आखर दू की॥ 88॥

राम बिहाय 'मरा' जपते बिगरी सुधरी कबि कोकिल हू की।
नामहि तें गज की, गनिका की, अजामिल की चलि गै चल-चूकी॥
नाम प्रताप बड़े कुसमाज बजाइ रही पति [2] पांडुबधू की।
ताको भलो अजहूँ तुलसी जेहि प्रीति प्रतीति है आखर दू की॥ 89॥

नाम अजामिल से खल तारन, तारन बारन बारबधु को।
नाम हरे प्रहलाद बिषाद, पिता भय साँसति सागर सूको॥
नाम सों प्रीति-प्रतीति बिहीन गिल्यो कलिकाल कराल न चूको।
राखिहैं राम सो जासु हिये तुलसी हुलसै बल आखर दू को॥ 90॥

---

[^1] मूकी = छोड़ी।

[^2] बजाइ रही पति = इज़्ज़त बनी रही।

जीव जहान में जायो जहाँ सो तहाँ तुलसी तिहुँ दाह दहो है।
दोस न काहू,कियो अपनो, सपनेहू नहीं सुख-लेसु- लहो है॥
राम के नाम तें होउ सो होउ, न सोउ हिये, रसना ही कहो है।
कियो न कछू, करिबो न कछू, कहिबो न कछू, मरिबोई रहो है॥ 91॥

जी जै न ठाउँ, न आपन गाँउ, सुरालयहू को न संबल मेरे।
नामु रटो, जमबास क्यों जाउँ, को आइ सकै जम-किंकर नेरे॥
तुम्हरो सब भाँति, तुम्हारिय सौं, तुम्हही, बलि, हौ मोको ठाहरु हेरे।
बैरष [1] बाँह बसाइए पै, तुलसी घरु ब्याध अजामिल-खेरे॥ 92॥

का कियो जोग अजामिल जू, गनिका कबहीं मति पेम पगाई?।
ब्याध को साधुपनो कहिए, अपराध अगाधनि मैं ही जनाई॥
करुनाकर की करुना करुना-हित नाम-सुहेत जो देत दगाई।
काहे को खीझिय? रीझिय पै, तुलसीहु सो है बलि सोइ सगाई॥ 93॥

जे मद-मार-बिकार भरे, ते अचार-बिचार समीप न जाहीं।
है अभिमान तऊ मनमें, 'जनु भाषिहै दूसरे दीनन पाहीं?'॥

---

[^1] बैरष = [तु. बरक] पताका।

जौ कछु बात बनाइ कहौं तुलसी तुममें, तुमहूँ उर माहीं।
जानकी-जीवन जानत हौ हम हैं तुम्हरे, तुममें, सक नाहीं ॥94॥

दानव देव अहीस महीस महा मुनि तापस सिद्ध समाजी।
जग जाचक दानि दुतीय नहीं तुमही सबकी सब राखत बाजी॥
एते बड़े तुलसीस तऊ सबरी के दिए बिनु भूख न भाजी।
राम गरीबनेवाज! भये हौ गरीबनेवाज गरीब नेवाजी॥ 95॥

(घनाक्षरी)

किसबी, किसान-कुल, बनिक, भिखारी, भाँट,
चाकर, चपल नट, चोर, चार, चेटकी।
पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि,
अटत गहन-गन अहन अखेट की॥
ऊँचे-नीचे करम धरम अधरम करि,
पेट ही को पचत बेचत बेटा-बेटकी।
तुलसी बुझाइ एक राम घनस्याम ही ते,
आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की॥ 96॥

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,

बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।

जीविका-बिहीन लोग सीद्यमान सोच-बस,

कहैं एक एकन सों “कहाँ जाई, का करी?”॥

बेद हूँ पुरान कही,लोकहू बिलोकियत,

साँकरे सबै पै राम रावरे कृपा करी।

दारिद-दसानन दबाई दुनी, दीनबंधु!

दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी॥ 97॥

कुल, करतूति, भूति, कीरति, सुरूप गुन,

जोबन जरत जुर, परै न कल कहीं।

राजकाज कुपथ कुसाज, भोग रोगही के,

बेद-बुध बिद्या पाइ बिबस बलकहीं॥

गति तुलसीस की लखै न कोउ जो करत

पब्बइ तें छार, छारे पब्बइ पलक ही।

कासों कीजै रोष? दोष दीजै काही? पाहि राम!

कियो कलिकाल कुलि खलल खलक ही॥ 98॥

बबुर-बहेरे को बनाइ बाग लाइयत,

रूँधिबे को सोई सुरतरु काटियत है!

गारी देत नीच हरिचंद हू दधीचि हू को,

आपने चना चबाइ हाथ चाटियत है॥

आप महापातकी हँसत हरि हर हू को,

आप है अभागी भरिभागी डाटियत है।

कलि को कलुष मन मलिन किये महत,

मसक की पाँसुरी पयोधि पाटियत है॥ 99॥

सुनिये कराल कलिकाल भूमिपाल तुम!

जाहि घालो चाहिए कहौ धौं राखै ताहि को?

हौ तौ दीन दूबरो, बिगारो-ढारी रावरो न,

मैं हू तैं हू ताहि को सकल जग जाहि को॥

काम कोह लाइ कै देखाइयत आँखि मोहिं,

एते मान अकस कीबे को आपु आहि को?॥

साहिब सुजान जिन स्वानहू को पच्छ कियो,

रामबोला नाम, हौं गुलाम राम-साहि को॥ 100॥

(सवैया)

साँची कहौकलिकाल कराल मैं, ढारो बिगारो तिहारो कहा है?।
काम को, कोह को,लोभ को, मोह को, मोहि सो आनि प्रपंच रहा है॥
हौ जगनायक लायक आजु, पै मेरियौ टेव कुटेव महा है।
जानकीनाथ बिना, तुलसी, जग दूसरे सो करिहौं न हहा है॥ 101॥

भागीरथी जलपान करौं अरु नाम द्वै राम के लेत नितै हौं।
मोको न लेनो न देनो कछू, कलि ! भूली न रावरी ओर चितैहौ॥
जानिकै जोर करौ परिनाम, तुम्है पछितैहौ पै मैं न भितैहौं।
ब्राह्मन ज्यों उगिल्यो उरगारि हौं त्योंही तिहारे हिये न हितैहौं॥ 102॥

राजमराल के बालक पेलिकै, पालत लालत खूसर को।
सुचि सुंदर सालि सकेलि सुबारि कै बीज बटोरत ऊसर को॥
गुन-ज्ञान-गुमान भँभेरि बड़ी, कलपद्रुमु काटत मूसर को।
कलिकाल बिचार अचार हरो, नहिं सूझै कछू धमधूसर को॥ 103॥

कीबे कहा,पढ़िबे को कहा? फल बूझि न बेद को भेद बिचारैं।
स्वारथ को परमारथ को कलि कामद राम को नाम बिसारैं॥
बाद बिबाद बिषाद बढ़ाइ कै छाती पराई औ आपनी जारैं।

चारिहु को छहु को नव [1] को दस आठ [2] को पाठ कुकाठ ज्यों फारैं ॥104॥

आगम बेद पुरान बखानत, मारग कोटिन जाहिं न जाने।
जे मुनि ते पुनि आपुहि आपु को ईस कहावत सिद्ध सयाने॥
धर्म सबै कलिकाल ग्रसे, जप जोग बिराग लै जीव पराने।
को करि सोच मरै, तुलसी, हम जानकीनाथ के हाथ बिकाने॥105॥

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगार न सोऊ॥
तुलसी सरनाम गुलाम है राम को, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।
माँगि कै खैबौ मसीत [3] को सोइबो, लैबे को एक न दैबे को दोऊ ॥106॥

(घनाक्षरी)

[^1] नव = नौ व्याकरण – इंद्र, चंद्र, काशकृत्स्न, शाकटायन, पिशालि, पाणिनि, अमर, जैनेन्द्र, सरस्वती।

[^2] दस आठ = अष्टादश पुराण।

[^3] मसीत = मसजिद।

मेरे जाति-पाँति, न चहौं काहू की जाति पाँति,

मेरे कोऊ काम को, न हौं काहू के काम को

लोक परलोक रघुनाथ ही के हाथ सब,

भारी है भरोसो तुलसी के एक नाम को॥

अति ही अयाने उपखानो [1] नहि बूझैं लोग,

‘साह ही को गोत गोत होत है गुलाम को’॥

साधु कै असाधु, कै भलो कै पोच,सोचु कहा,

का काहू के द्वार परौं, जो हौं सो हौं राम को॥ 107॥

कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो,

कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है।

साधु जानैं महासाधु, खल जानैं महाखल,

बानी झूँठी साँची कोटि उठत हबूब [2] है॥

चहत न काहू सों, न कहत काहू की कछू,

सबकी सहत उर अंतर न ऊब है।

तुलसी को भलो पोच हाथ रघुनाथ ही के

[^1] उपखानो = उपाख्यान, कहावत।

[^2] हबूब = बुलबुलें।

राम की भगति भूमि, मेरी मति दूब है॥ 108॥

जागैं जोगी जंगम, जती जमाती ध्यान धरैं

डरैं उर भारी लोभ मोह कोह काम के।

जागैं राजा राजकाज, सेवक समाज साज,

सोचैं सुनि समाचार बड़े बैरी बाम के॥

जागैं बुध बिद्या-हित पंडित चकित चित,

जागैं लोभी लालच धरनि धन धाम के।

जागैं भोगी भोगही, बियोगी रोगी सोगबस,

सोवैं सुख तुलसी भरोसे एक राम के॥ 109॥

(छप्पय)

राम मातु पितु बंधु सुजन गुरु पूज्य परम हित।

साहेब सखा सहाय नेह नाते पुनीत चित॥

देस कोस कुल कर्म धर्म धन धाम धरनि गति।

जाति पाँति सब भाँति लागि रामहि हमारि पति॥

परमारथ स्वारथ सुजस सुलभ राम तें सकल फल।

कह तुलसिदास अब जब कबहूँ एक राम तें मोर भल ॥ 110॥

महाराज बलि जाउँ राम सेवक सुखदायक ।

महाराज बलि जाउँ राम सुन्दर सब लायक ॥

महाराज बलि जाउँ राम संकट-मोचन ॥

महाराज बलि जाउँ राम राजीव बिलोचन ॥

बलि जाउँ राम करुनायतन प्रनतपाल पातकहरन।

बलि जाउँ राम कलि-भय-बिकल तुलसिदास राखिय सरन॥111॥

जय ताड़का-सुबाहु-मथन, मारीच-मानहर!

मुनिमख-रच्छन-दच्छ, सिलातारन-करुनाकर !

नृपगन-बल-मद सहित संभु कोदंड-बिहंडन !

जय कुठारधर-दर्पदलन, दिनकरकुल-मंडन॥

जय जनकनगर-आनंद-प्रद, सुखसागर, सुखमाभवन।

कह तुलसिदास सुर मुकुटमनि जय जय जय जानकिरमन॥ 112॥

जय जयंत-जयकर, अनंत, सज्ञनजनरंजन!

जय बिराध-बध-बिदुष, बिबुध-मुनिगन-भय-भंजन

जय निसिचरी-बिरूप-करन रघुबंसबिभूषन!

सुभट चतुर्दस-सहस दलन त्रिसिरा खर-दूषन॥

जय दंडकबन-पावन-करन तुलसिदास संसय-समन!
जगबिदित जगतमनि जयति जय जय जय जय जानकिरमन॥113॥

जय मायामृगमथन गीध-सबरी-उद्धारन !
जय कबंधसूदन बिसाल-तरु-ताल-बिदारन !
दवन बालि बलसालि, थपन-सुग्रीव, संतहित !
कपि-कराल-भट भालुकटक-पालन, कृपालु-चित!
जय सिय-बियोग-दुख हेतु कृत सेतुबंध बारिधि-दमन !
दससीस बिभीषन-अभयप्रद, जय जय जय जानकिरमन ॥114॥

कनककुधर-केदार, बीज सुंदर सुरमनि-बर।
सींचि कामधुक धेनु सुधामय पय बिसुद्धतर॥
तीरथपति अंकुर-सरूप, यच्छेस रच्छ तेहि।
मरकतमय साखा, सुपुत्र मंजरिय लच्छ जेहि॥
कैवल्य सकल फल कलपतरु सुभ सुभाव सब सुख बरिस।
कह तुलसिदास रघुबंसमनि तौ कि होहि तुव कर सरिस ?॥115॥

जाय सो सुभट समर्थ पाइ रन रारि न मंडै।
जाय सो जती कहाय बिषय-बासना न छंडै॥

जाय धनिक बिनु दान, जाय निर्धन बिनु धर्महि।

जाय सो पंडित पढ़ि पुरान जो रत न सुकर्महि॥

सुत जाय मातु-पितु-भक्ति बिनु, तिय सो जाय जेहि पति न हित।

सब जाय दास तुलसी कहै जौं न रामपद नेह नित॥ 116॥

को न क्रोध निरदह्यो, काम बस केहि नहि कीन्हो?

को न लोभ दृढ़ फंद बाँधि त्रासन करि दीन्हो ?

कौन हृदय नहि लाग कठिन अति नारि-नयन-सर?

लोचनजुत नहि अंध भयो श्री पाइ कौन नर ?

सुर-नाग-लोक महिमंडलहु को जु मोह कीन्हो जय न ?

कह तुलसिदास सो ऊबरै जेहि राख राम राजिवनयन॥ 117॥

(सवैया)

भौंह-कमान सँधान सुठान जे नारि-बिलोकनि-बान तें बाँचे।

कोप-कृसानु गुमान-अवाँ घट ज्यों जिनके मन आँच न आँचे।

लोभ सबै नट के बस ह्वै कपि-ज्यों जग में बहु नाच न नाचे

नीके हैं साधु सबै तुलसी पै तेई रघुबीरके सेवक साँचे॥ 118॥

(कवित्त)

बेष सुबनाइ, सुचि बचन कहैं चुवाइ,
जाइ तौ न जरनि धरनि धन धाम की।
कोटिक उपाय करि लालि पालियत देह,
मुख कहियत गति राम ही के नाम की॥
प्रगटैं उपासना, दुरावैं दुरबासनाहि,
मानस निवास-भूमि लोभ मोह काम की।
राग रोष ईरषा कपट कुटिलाई भरे
तुलसी से भगत भगति चहैं राम की!॥ 119॥

काल्हिही तरुन तन, काल्हि ही धरनि धन,
काल्हिहीं जितौंगो रन कहत कुचालि है।
काल्हिहीं साधौंगो काज, काल्हि ही राजा समाज,
मसक ह्वै कहै 'भार मेरे मेरु हालि है'॥
तुलसी यही कुभाँति घने घर घालि आई,
घने घर घालति है, घने घर घालि है।
देखत सुनत समुझत हू न सूझै सोई,
कबहूँ कह्यो न 'कालहू को काल काल्हि है'॥ 120॥

भयो न तिकाल तिहूँ लोक तुलसी-सो मंद,

निंदैं सब साधु, सुनि मानौं न सकोचु हौं।

जानत न जोग हिय हानि मानौं, जानकीसु!

काहे को परेखो पातकी प्रपंची पोचु हौं॥

पेट भरिबे के काज महाराज को कहायों

महाराज हू कह्यो है प्रनत बिमोचु हौं।

निज अघ जाल, कलिकाल की करालता,

बिलोकि होत ब्याकुल, करत सोई सोचु हौं॥ 121॥

धर्म के सेतु जगमंगल के हेतु.

भूमि भार हरिबे को अवतार लियो नर को।

नीति औ प्रतीति-प्रीति-पाल चालि प्रभु मान,

लोक-बेद राखिबे को पन रघुबर को॥

बानर-बिभीषन की ओर के कनावड़े हैं,

सो प्रसंग सुनें अंग जरै अनुचर को।

राखे रीति आपनी जो होइ सोई कीजै, बलि,

तुलसी तिहारो घर-जायउ [1] है घर को॥ 122॥

नाम महाराज के निबाह नीको कीजै उर

सबही सोहात, मैं न लोगनि सोहात हौं।

कीजै राम बार यहि मेरी ओर चख-कोर

ताहि लगि रंक ज्यों सनेह को ललात हौं॥

तुलसी बिलोकि कलिकाल की करालता

कृपालु को सुभाव समुझत सकुचात हौं

लोक एक भाँति को, तिलोकनाथ लोकबस

आपनो न सोच, स्वामी सोच ही सुखात हौं॥ 123॥

तौलौं लोभ, लोलुप ललात लालची लबार,

बार-बार, लालच धरनि धन धाम को।

तब लौं बियोग रोग सोग भोग जातना को

जुग सम लागत जीवन जाम जाम को।

तौलौं दुख-दारिद दहत अति नित तनु,

तुलसी है किंकर बिमोह कोह काम को।

---

[^1] घरजायउ = घरजाया, गुलाम।

सब दुख आपने, निरापने सकल सुख,

जौलौं जन भयो न बजाइ [1] राजा राम को॥ 124॥

तब लौं मलीन हीन दीन, सुख सपने न,

जहाँ-तहाँ दुखी जन भाजन कलेस को।

तब लौं उबैने पायँ फिरत पेटै खलाय

बाये मुँह सहत पराभौ देस देस को।

तब लौं दयावनो दुसह दुख दारिद को,

साथरी को सोइबो, ओढ़िबो झूने खेस को॥

जब लौं न भजै जीह जानकी-जीवन राम,

राजन को राजा सो तौ साहेब महेस को॥ 125॥

ईसन के ईस, महाराजन के महाराज,

देवन के देव, देव! प्रानहूँ के प्रान हौ।

कालहूके काल, महाभूतन के महाभूत,

कर्म हू के करम, निदान के निदान [2] हौ।

निगम को अगम, सुगम तुलसीहू से को

[^1] बजाइ = डंके की चोट, खुल्लमखुला।

[^2] निदान = कारण।

एते मान [1] सीलसिंधु करुनानिधान हौ।

महिमा अपार, काहू बोल [2] को न वारापार,

बड़ी साहबीमें नाथ बड़े सावधान हौ॥ 126॥

(सवैया)

आरतपालु कृपालु जो राम, जेहीं सुमिरे तेहि को तहँ ठाढें।

नाम-प्रताप महा महिमा, अकरे [3] किये खोटेउ छोटेउ बाढ़े॥

सेवक एक तें एक अनेक भए तुलसी तिहुँ ताप न डाढ़े।

प्रेम बदौं प्रहलादहि को जिन पाहन तें परमेस्वर काढ़े॥ 127॥

काढ़ि कृपान, कृपा न कहूँ, पितु काल कराल बिलोकि न भागे।

‘राम कहाँ’ ‘सब ठाँउ हैं,’ ‘खंभ में?’ ‘हाँ’ सुनि हाँक नृकेहरि जागे॥

बैरि बिदारि भए बिकराल, कहे प्रलादहि के अनुरागे।

प्रीति-प्रतीति बड़ी तुलसी तब तें सब पाहन पूजन लागे॥ 128॥

---

[^1] एते मान = इतने।

[^2] बोल = वाक्य, वर्णन।

[^3] अकरा = महँगा, चोखा (अक्रय)।

अंतरजामिहु [4] तें बड़ बाहरजामि [5] हैं राम, जे नाम लिये तें।
धावत धेनु पन्हाइ लवाई ज्यों बालक बोलनि कान किये तें॥
आपनि बूझि कहै तुलसी, कहिबे की न बावरि बात बिये [3] तें।
पैज परें प्रहलादहु को प्रगटे प्रभु पाहन तें, न हिये तें॥ 129॥

बालक बोलि दिये बलि काल को, कायर कोटि कुचालि चलाई।
पापी है बाप बड़े परताप तें आपनि ओर तें खोरि न लाई॥
भूरि दईं बिषमूरि भई प्रहलाद सुधाईं सुधा की मलाई।
रामकृपा तुलसी जन को जग होत भले को भलाई भलाई॥ 130॥

कंस करी बृजबासिन सों करतूति कुभाँति, चली न चलाई।
पांडू के पूत सपूत, कपूत सुजोधन भो कलि छोटो [4] छलाई [5]॥
कान्ह कृपालु बड़े नतपालु, गए खल खेचर [6] खीस खलाई।

---

[^4] अंतर्जामी = अंतस् ही में जानने योग्य निर्गुण।

[^5] बाहरजामी = ब्राह्य जगत् में जानने योग्य सगुण रुप।

[^3] बिये = दूसरे।

[^4] कलि छोटो = कलि का छोटा भाई।

[^5] छलाई = छल में।

[^6] खेचर = राक्षस।

ठीक प्रतीति कहै तुलसी जग होई भले को भलाई भलाई॥ 131॥

अवनीस अनेक भए अवनी जिनके डर तें सुर सोच सुखाहीं।
मानव-दानव-देव सतावन रावन घाटि रच्यो [1] जग माहीं॥
ते मिलिये धरि धूरि सुजोधन जे चलते बहु छत्र की छाँहीं।
बेद पुरान कहैं जग जान, गुमान गोबिंदहि भावत नाहीं॥ 132॥

जब नयनन प्रीति ठई ठग स्याम सों, स्यानी सखी हठि हौं बरजी।
नहि जानो बियोग सो रोग है आगे झुकी तब हौं तेहि सों तरजी॥
अब देह भई पट नेह के घाले सों, ब्यौंत करै बिरहा दरजी।
ब्रजराज-कुमार बिना सुनु, भृंग! अनंग भयो जिय को गरजी॥ 133॥

जोग कथा पठई ब्रज को,सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी।
ऊधौ जू! क्यौं न कहै कुबरी जो बरी नटनागर हेरि हलाकी [2]॥
जाहि लगै परि जानै सोई, तुलसी सो सोहागिनि नंदलला की।

---

[^1] घाटि रच्यो = बुराई का आयोजन किया।

[^2] हलाकी = मार डालनेवाला, घातक।

जानी है जानपनी हरि की, अब बाँधियैगी कछु मोटि [1] कला की ॥

134॥

(कवित्त)

पठयो है छपद छबीले कान्ह कैहू कहूँ
खौजि कै खवासु खासो कूबरी सी बाल को।
ज्ञान को गढ़ैया, बिनु गिरा को पढ़ैया,बार
खाल को कढ़ैया सो बढ़ैया उर-साल को॥
प्रीति को बधीक,रस रीति को अधिक, नीति-
निपुन, बिबेक है, निदेस देस-काल को।
तुलसी कहे न बनै, सहेही बनैगी सब
जोग [2] भयो जोग को, बियोग नंदलाल को॥ 135॥

हनुमान है्व कृपालु, लाड़िले लषन लाल!
भावते भरत कीजै सेवक सहाय जू।
बिनती करत दीन दूबरो दयावनो सो

[^1] मोटि = गठरी।

[^2] जोग = अवसर, संयोग, नौबत।

बिगरे तें आपही सुधारि लीजै भाय जू॥

मेरी साहिबिनी सदा सीस पर बिलसति

देबि! क्यों न दास को देखाइयत पाय जू।

खीझहू में रीझिबे की बानि, सदा रीझत हैं,

रीझे ह्वैहैं, रामकी दोहाई रघुराय जू॥ 136॥

(सवैया)

बेष बिरागको, राग भरो मनु, माय! कहौं सतिभाव हौं तोसों।

तेरे ही नाथ को नाम लै बेचिहौं पातकी पामर प्राननि पोसों॥

एते बड़े अपराधी अघी कहँ, तैं कहु, अंब को मेरो तूँ मोसों।

स्वारथ को परमारथ को, परिपूरन भो फिरि घाटि न हो सों॥ 137॥

(घनाक्षरी)

जहाँ बालमीकि भए ब्याध तें मुनिंद्र साधु,

‘मरा मरा’ जपें सिख सुनि ऋषि सात की।

सीय को निवास, लव-कुस को जनमथल,

तुलसी छुवत छाँह ताप गरै गात की॥

बिटप महीप सुरसरित समीप सोहै,

सीताबट पेखत पुनीत होत पातकी।
बारिपुर दिगपुर बीच बिलसति भूमि,
अंकित जो जानकी चरन जलजात की॥ 138॥

मरकत बरन परन, फल मानिक से
लसै जटाजूट जनु रूख बेष हरु है।
सुखमा को ढेरु कैधौं सुकृत-सुमेरु कैधौं,
संपदा सकल मुद मंगल को घरु है॥
देत अभिमत जो समेत प्रीति सेइए,
प्रतीति मानि तुलसी बिचारि काको थरु है।
सुरसरि निकट सुहावनी अवनि सोहै
रामरमनी को बट कलि कामतरु है॥ 139॥

देवधुनि पास मुनिबासु श्रीनिवास जहाँ,
प्राकृत हूँ बट बूट बसत पुरारि हैं।
जोग जप जाग को बिराग को पुनीत पीठ,
रागिनि पै सीठि, डीठि बाहरी निहारि हैं॥

‘आयसु’, ‘आदेस’, ‘बाबा’ ‘भलो-भलो’ ‘भाव सिद्ध’ [1],

तुलसी बिचारि जोगी कहत पुकारि हैं।

राम-भगतन को तौ कामतरु तें अधिक,

सियबट सेए करतल फलचारि हैं॥ 140॥

जहाँ बनु पावनो सुहावने बिहंग-मृग,

देखि अति लागत अनंद खेत खूँट सो।

सीता-राम-लषन-निवास, बास मुनिन को,

सिद्ध साधु साधक सबै बिबेक-बूट-सो॥

झरना झरत झारि सीतल पुनीत बारि,

मंदाकिनि मंजुल महेस जटाजूट-सो।

तुलसी जौं राम सो सनेह साँचो चाहिये

तौ सेइए सनेह सो बिचित्र चित्रकूट सो॥ 141॥

मोह-बन-कलिमल-पल-पीन जानि जिय

साधु गाय बिप्रन के भय को नेवारिहै।

दीन्ही रजाइ राम पाइ सो सहाइ लाल

---

[^1] सायसु, ..., भावसिद्ध = साधु संतों की बोलचाल के वाक्य अर्थात् वहाँ के रहने वाले इसी प्रकार के शिष्ट और मधुर शब्दों का व्यवहार करते है।

लषन समर्थ बीर हेरि हेरि मारिहै॥

मंदाकिनी मंजुल कमान असि, बान जहाँ,

बारि-धार धीर धरि सुकर सुधारिहै।

चित्रकूट अचल अहेरि बैठ्यो घात मानों,

पातक के ब्रात घोर सावज सँहारिहै॥ 142॥

(सवैया)

लागि दवारि पहार ठही [1], लहकी [2] कपि-लंक जथा खर-खौकी [3]।

चारु चुवा [4] चहुँ ओर चलैं, लपटैं-झपटैं सो तमीचर तौंकी [5]॥

क्यौं कहि-जात महा सुखमा, उपमा तकि ताकत है कबि कौं की [6]।

मानो लसी तुलसी हनुमान हिये जगजीति जरायकी चौकी॥ 143॥

---

[^1] ठही = ठह कर, जम कर, अच्छी तरह।

[^2] लहकी = लहकाई।

[^3] खर खौकी = तृन खानेवाली अर्थात् आग।

[^4] चुवा = चौवा, चतुष्पद मृग।

[^5] तौंकी = तौंक कर, आँच से तप कर।

[^6] कौ की = कब की, बड़ी देर से।

देव कहैं अपनी अपना अवलोकन तीरथराज चलो रे।
देखि मिटैं अपराध अगाध, निमज्जत साधु समाज भलो रे॥
सोहै सितासित को मिलिबो, तुलसी हुलसै हिय हेरि हलोरे।
मानो हरे तृन चारु चरैं बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे [1]॥ 144॥

देवनदी कहँ जो जन जान किये मनसा कुल कोटि उधारे।
देखि चले झगरैं सुरनारि, सुरेस बनाइ बिमान सँवारे॥
पूजा को साज बिरंचि रचैं, तुलसी जे महातम जाननिहारे।
ओक की नीव परी हरिलोक बिलोकत गंग तरंग तिहारे॥ 145॥

ब्रह्म जो ब्यापक बेद कहैं, गम नाहिं गिरा गुन-ज्ञान गुनी को।
जो करता भरता हरता सुर साहिब, साहब दीन दुनी को॥
सोइ भयो द्रव रूप सही जो है नाथ बिरंचि महेस मुनी को।
मानि प्रतीति सदा तुलसी जल काहे न सेवत देवधुनी को?॥ 146॥

बारि तिहारो निहारि मुरारि भए परसे पद पाप लहौंगो॥
ईस ह्वै सीस धरौं पै डरौं, प्रभु की समता बड़े दोष दहौंगो॥
बरु बारहिं बार सरीर धरौं, रघुबीर को ह्वै तव तीर रहौंगो।

[^1] कलोरे = बछड़े।

भागीरथी! बिनवौं कर जोरि, बहोरि न खोरि लगै सो कहौंगो॥ 147॥

(कवित्त)

लालची ललात, बिललात द्वार द्वार दीन,

बदन मलीन, मन मिटै ना बिसूरना।

ताकत सराध कै बिबाह कै उछाह कछू,

डोलै लोल बूझत सबद ढोल तूरना॥

प्यासे हूँ न पावै बारि, भूखे न चनक चारि,

चाहत अहारन पहार दारि कूरना [1]।

सोक को अगार दुख-भार-भरो तौलौं जन

जौलों देबी द्रवै न भवानी अन्नपूरना॥ 148॥

(छप्पय)

भस्म अंग, मर्दन अनंग, संतत असंग हर।

सीस गंग, गिरिजा अधंग, भूषन भुजंगबर॥

मुंड माल, बिधु बाल भाल,डमरु कपाल कर।

बिबुध-बृंद-नवकुमुद-चंद, सुखकंद सूलधर॥

---

[^1] दारि कूरना = दाल के कूर भरे हुए अच्छे पकवानों का ढेर।

त्रिपुरारि त्रिलोचन दिग्बसन बिष-भोजन भव-भय-हरन।

कह तुलसिदास सेवत सुलभ सिव सिव सिव संकर सरन॥ 149॥

गरल-असन, दिग्बसन, ब्यसन-भंजन, जनरंजन।

कुंद-इंदु-कर्पर-गौर, सच्चिदानंदघन॥

बिकट बेष, उर सेष, सीस सुरसरित सहज सुचि।

सिव अकाम, अभिराम धाम, नित रामनाम रुचि॥

कंदर्पदर्प-दुर्गम-दमन, उमारवन गुनभवन हर।

तुलसीस त्रिलोचन, त्रिगुन-पर, त्रिपुरमथन, जय त्रिदसबर॥ 150॥

अर्ध-अंग अंगना, नाम जोगीस जोगपति।

बिषम असन, दिगबसन, नाम बिस्बेस बिस्वगति॥

कर कपाल, सिर माल ब्याल, बिष-भूति-बिभूषन।

नाम सुद्ध, अबिरुद्ध, अमर, अनवद्य, अदूषन॥

बिकराल भूत-बेताल-प्रिय, भीम नाम भवभय-दमन।

सब बिधि समर्थ महिमा अकथ तुलसिदास संसय-समन॥ 151॥

भूतनाथ भयहरन भीम, भय-भवन भूमिधर।

भानुमंत भगवंत, भूति भूषन भुजंगबर॥

भव्य-भाव-बल्लभ, भवेस, भव-भार-बिभंजन

भूरि भोग, भैरव, कुजोग-गंजन, जन-रंजन॥

भारती बदन, बिष-अदन सिव, ससि-पतंग-पावक-नयन।

कह तुलसिदास किन भजसि मन भद्रसदन मर्दनमय॥ 152॥

(सवैया)

नाँगो फिरै कहै मागनो देखि "न खाँगो कछू, जनि माँगिए थोरो"।

राँकनि नाकप रीझि करै, तुलसी जग जो जुरैं जाचक जोरो॥

"नाक सवाँरत आयौ हौं नाकहि, नाहिं पिनाकिहि नेकु निहोरो"।

ब्रह्मा कहै, "गिरिजा! सिखवो, पति रावरो दानि है बावरो भोरो"॥ 153॥

बिष-पावक, ब्याल कराल गरे, सरनागत तौ तिहुँ ताप न डाढ़े॥

भूत बेताल सखा, भव नाम, दलै पल में भव के भय गाढ़े॥

तुलसीस दरिद्र-सिरोमनि सो सुमिरे दुख-दारिद होहिं न ठाढ़े।

भौन में भाँग, धतुरोई आँगन, नाँगे के आगे हैं माँगने बाढ़े॥ 154॥

सीस बसै बरदा, बरदानि, चढ्यो बरदा, घरन्यौ बरदा है।

धाम धतूरो, बिभूति को कूरो,निवास तहाँ शब लै मरे दाहैं॥

ब्याली कपाली है ख्याली, चहूँ दिसि भाँग की टाटिन को परदा हैं।

राँकसिरोमनि काकिनिभाग बिलोकत लोकप को करदा है॥ 155॥

दानि जो चारि पदारथ को त्रिपुरारि तिहूँ पुर में सिर-टीको।

भोरो भलो भले भाय को भूखो, भलोई कियो सुमिरे तुलसी को॥

ता बिनु आस को दास भयो,कबहूँ न मिट्यो लघु लालच जी को।

साधो कहा करि साधन तैं जोपै राधो [1] नहीं पति पारबती को?॥ 156॥

जात जरे सब लोक बिलोकि त्रिलोचन सो बिष लोकि लियो है।

पान कियो बिष-भूषन भो, करुना-बरुनालय साइँ-हियो है।

मेरोइ फोरिबे जोगु कपार, किधौं कछु काहू लखाइ दियो है

काहे न कान करौं बिनती, तुलसी कलिकाल बिहाल कियो है॥ 157॥

(कवित्त)

खायो कालकूट भयो अजर अमर तनु,

भवन मसान, गथ गाँठरी गरद की।

डमरु कपाल कर,भूषन कराल ब्याल,

बावरे बड़े की रीझ बाहन-बरद की॥

---

[^1] राधो = आराधना।

तुलसी बिसाल गोरे गात बिलसति भूति,

मानो हिमगिरि चारु चाँदनी सरद की।

अर्थ धर्म काम मोच्छ बसत बिलोकनि में,

कासी करामाति जोगी जागति मरद की॥ 158॥

पिंगल जटा कलाप, माथे पै पुनीत आप,

पावक नयना, प्रताप भ्रू पर बरत है।

लोचन बिसाल लाल, सोहै बालचंद्र भाल,

खंठ कालकूट, ब्याल भूषन धरत है॥

सुंदर दिगंबर, बिभूति गात, भाँग खात,

रूरे सृंगी पुरे काल-कंटक हरत हैं।

देत न अघात रीझि, जात पात आक ही के

भोलानाथ जोगी जब औढर ढरत हैं॥ 159॥

देत संपदा समेत श्रीनिकेत जाचकनि,

भवन बिभूति-भाँग बृषभ बहनु है।

नाम बामदेव, दाहिनो सदा असंग रंग

अर्द्ध अंग अंगना, अनंग को महनु है॥

तुलसी महेस को प्रभाव भाव ही सुगम

निगम अगम हू को जानिबो गहनु है।

भेष तौ भिखारि को, भयंक [1] रूप संकर

दयाल दीनबंधु दानि दारिद-दहनु है॥ 160॥

चाहै न अनंग-अरि एकौ अंग मंगन को

देबोई पै जानिए सुभाव सिद्ध बानि सो।

बारि बुंद चारि त्रिपुरारि पर डारिए तौ

देत फल चारि, लेत सेवा साँची मानि सो॥

तुलसी भरोसो न भवेस भोलानाथ को तौ

कोटिक कलेस करौ मरौ छार छानि सो।

दारिद-दमन, दुख-दोष-दाह-दावानल

दुनी न दयालु दूजो दानि सूलपानि-सो॥ 161॥

काहे को अनेक देव सेवत जागै मसान

खोवत अपान, सठ होत हठि प्रेत रे!।

काहे को उपाय कोटि करत मरत धाय,

---

[^1] भयंक = भयंकर।

जाचत नरेस देस देस के अचेत रे!॥

तुलसी प्रतीति बिनु त्यागै तैं प्रयाग तनु,

धन ही के हेुत दान देत कुरुखेत रे।

पात द्वै धतूरै के दै भोरे कै, भवेस सों,

सुरेस हू की संपदा सुभाय सो न लेत रे॥ 162॥

स्यंदन, गयंद, बाजिराजि, भले भले भट,

धन-धाम-निकर, करनि हू न पूजै क्वै [1]।

बनिता बिनीत, पूत पावन सोहावन, औ

बिनय बिबेक बिद्या सुभग सरीर ज्वै [2]॥

इहाँ ऐसो सुख, परलोक सिवलोक ओक,

ताको फल तुलसी सों सुनौ सावधान ह्वै।

जानें, बिनु जानें, कै रिसाने, केलि कबहुँक

सिवहि चढ़ाए ह्वैहैं बेल के पतौवा द्वै॥ 163॥

रति-सी रवनि, सिंधु-मेखला-अवनिपति

औनिप अनेक ठाढ़े हाथ जोरि हारि कै।

---

[^1] क्वै = कोई।

[^2] ज्वै = जो कुछ।

संपदा समाज देखि लाज सुरराज हू के,
सुख सब बिधि बिधि दीन्हें हैं सवाँरि कै॥
इहाँ ऐसो सुख, सुरलोक सुरनाथ-पद,
जाको फल तुलसी सो कहैगो बिचारि कै।
आक के पतौवा चारि, फूल द्वै धतूरे के
दीन्हें ह्वैहैं बारक पुरारि पर डारि कै॥ 164॥

देवसरि सेवौं बामदेव गाउँ रावरे हीं
नाम राम ही के माँगि उदर भरत हौं।
दीबे जोग तुलसी न लेत काहू को कछुक,
लिखी न भलाई भाल, पोच न करत हौं॥
एते पर हूँ जो कोऊ रावरो ह्वै जोर करै,
ताको जोर, देव! दीन द्वारे गुदरत हौं।
पाइकै उराहनो उराहनो न दीजै मोहि ,
कला-कला कासीनाथ कहे निबरत हौं॥ 165॥

चेरा राम राय को सुजस सुनि तेरो, हर!
पाइँ तर आइ रह्यौं सुरसरि तीर हौं।

बामदेव, राम को सुभाव सील जानि जिय,

नातो नेह जानियत रघुबीर भीर हौं॥

अबिभूत बेदन बिषम होत, भूतनाथ!

तुलसी बिकल पाहि पचत कुपीर हौं।

मारिए तौ अनायास कासीबास खास फल,

ज्याइये तौ कृपा करि निरुज सरीर हौं॥ 166॥

जीबे की न लालसा, दयालु महादेव! मोहि,

मालुम है तोहि मरिबेई को रहतु हौं।

कामरिपु राम के गुलामनि को कामतरु,

अवलंब जगदंब सहित चहतु हौं॥

रोग भयो भूत सो, कुसूत [1] भयो तुलसी को,

भूतनाथ पाहि पदपंकज गहतु हौं।

ज्याइए तौ जानकी-रमन-जन जानि जिय,

मारिए तौ माँगी मीचु सूधियै कहतु हौं॥ 167॥

---

[^1] कुसूत = कुपास, सुभीता न रहना।

भूतभव! [1] भवत [2] पिसाच-भूत-प्रेत-प्रिय,

आपनो समाज, सिव! आपु नीके जानिए।

नाना बेष बाहन बिभूषन बसन, बास,

खान पान, बलि पूजा बिधि को बखानिए॥

राम के गुलामनि की रीति प्रीति सूधी सब,

सब सो सनेह सबही को सनमानिए।

तुलसी की सुधरै सुधारे भूतनाथ ही के

मेरे माय बाप गुरु संकर भवानिए॥ 168॥

गौरीनाथ भोलानाथ भवत भवानीनाथ।

बिस्वनाथ-पुर फिरी आन कलिकाल की।

संकर से नर, गिरिजा सी नारी कासीबासी,

बेद कही, सही ससिसेखर कृपाल की॥

समुख गनेस तें महेस के पियारे लोग,

बिकल बिलोकियत, नगरी बिहाल की।

पुरी-सुरबेलि केलि काटत किरात कलि,

[^1] भूतभव = पंचभूतों के कारणस्वरूप।

[^2] भवत = आप।

निठुर निहारिए उघारि डीठि भाल की॥ 169॥

ठाकुर महेस, ठकुराइनि उमा-सी जहाँ,

लोक बेद हूँ बिदित महिमा ठहर की।

भट रुद्रगन, भूत-गनपति, सेनापति,

कलिकाल की कुचाल काहू तौ न हर की [1]॥

बीसी [2] बिस्वनाथ की बिषाद बड़ो बारानसी,

बूझिए न ऐसी गति संकर-सहर की।

कैसे कहै तुलसी, बृषासुर के बरदानि!

बानि जानि सुधा तजि पियनि जहर की॥ 170॥

लोक-बेद हू बिदित बारानसी की बड़ाई,

बासी नर नारि ईस अंबिका-सरूप हैं।

कालनाथ कोतवाल, दंडकारि दंडपानि,

सभासद गनप-से अमित अनूप हैं॥

तहाँऊँ कुचालि कलिकाल की कुरीति, कैधौं

जानत न मूढ़, इहाँ भूतनाथ भूप हैं।

---

[^1] हर की = मना की।

[^2] बीसी = बिस्वनाथ की रुद्रबीसी जो संवत् 1665 से 1685 तक रही।

फलैं फूलैं फैलैं खल, सीदै साधु पल-पल

खाती दीपमालिका ठठाइयत सूप हैं॥ 171॥

पंचकोस पुन्यकोस स्वारथ परमारथ को

जानि आप आपने सुपास बास दियो है।

नीच नर नारि न सँभारि सकैं आदर,

लहत फल कादर बिचारि जो न कियो है॥

बारी बारानसी बिनु कहे चक्र [1] चक्रपानि,

मानि हित हानि सो मुरारि मन भियो है [2]।

रोष में भरोसो एक आसुतोष कहि जात

बिकल त्रिलोकि लोक कालकूट पियो है॥ 172॥

रचत बिरंचि, हरि पालत, हरत हर

तेरेही प्रसाद जग अग-जग-पालिके।

तोहि में बिकास बिस्व,तेहि में बिलास सब,

---

[^1] बारी बारानसी बिनु कहे चक्र = मिथ्या वासुदेव को दंड देने के लिए कृष्ण के चक्र ने उसकी सेना को तो संहार किया ही पर बिना आज्ञा के उसकी पुरी काशी को भी भस्म कर डाला।

[^2] भियो है = डरा है।

तोहि में समात मातु भूमिधर बालि के ॥

दीजै अवलंब जगदंब न बिलंब कीजै,

करुना-तरंगगिनी कृपा-तरंग-मालिके।

रोष महामारी परितोष, महतारी! दुनी,

देखिए दुखारी मुनि-मानस-मरालिके॥ 173॥

निपट बसेरे अघ औगुन घनेरे नर,

नारिऊँ अनेरे जगदंब चेरी चेरे हैं।

दारिद दुखारी देबि भूसुर भिखारी-भीरु

लोभ मोह काम कोह कलिमल घेरे हैं॥

लोकरीति राखी, राम साखि बामदेव जान,

जन की बिनति मानि मातु कहि ‘मेरे हैं’।

महामारी महेसानि महिमा की खानि,

मोद मंगल की रासि, दास कासी-बासी तेरे हैं॥ 174॥

लोगन के पाप, कैधौं सिद्ध-सुर-साप, कैधौं,

काल के प्रताप कासी तिहूँ-ताप-तई है।

ऊँचे ,नीचे, बीच के धनिक रंक राजा राय,

हठनि बजाय करि डीठि[1] [] पीठि दई [[2]] है॥

देवता निहोरे महामारिन्ह सो कर जोरे,

भोरानाथ जानि भोरे आपनी-सी ठई है।

करुनानिधान हनुमान बीर बलवान,

जसरासि जहाँ-तहाँ तैंहीं लूटि लई है॥ 175॥

संकर-सहर सर, नरनारि बारिचर

बिकल सकल महामारी माँजा भई है।

उछरत उतरात हहरात मरि जात,

भभरि भगत, जल-थल मीचु मई है॥

देव न दयालु, महिपाल न कृपालुचित,

बारानसी बाढति अनीति नित नई है ।

पाहि रघुराज, पाहि कपिराज रामदूत,

राम हू की बिगरी तुहीं सुधारि लई है॥ 176॥

एक तो कराल कलिकाल सूल-मूल तामें

---

[^1] करि डीठि = देख सुन कर।

[^2] पीठि दई = विमुख हुए।

कोढ़ में की खाजु-सी सनीचरी है मीन की [3]।

बेद धर्म दूरि गए भूमि चोर भूप भए,

साधु सीद्यमान जानि रीति पाप-पीन की॥

दूबरे को दूसरो न द्वार, राम दया-धाम!

रावरी ही गति बल-बिभव बिहीन की।

लागैगी पै लाज वा बिराजमान बिरुदहि,

महाराज आजु जौं न देत दादि दीन की॥ 177॥

रामनाम मातु-पितु, स्वामि समरथ हित,

आस रामनाम की, भरोसो रामनाम को।

प्रेम रामनाम ही सों, नेम रामनाम ही को,

जानौं न मरम पद दाहिनो न बाम को॥

स्वारथ सकल परमारथ को रामनाम,

रामनाम-हीन तुलसी न काहू काम को।

राम की सपथ सरबस मेरे रामनाम,

---

[^3] मीन की सनीचरी = मीन राशि पर शनैश्वर की स्थिति की दशा जिसका फल राजा प्रजा का नाश होता है। यह जोग संवत् 1669 के आरंभ से 1671 के मध्य तक पड़ा था। अतः यह कवित्त उसी समय के भीतर कहा गया होगा।

कामधेनु कामतरु मो से छीन छाम को॥ 178॥

(सवैया)

मारग मारि,महीसुर मारि, कुमारग कोटिक कै धन लीयो।

संकर कोप सों पाप को दाम परीच्छित [1] जाहिगो जारि कै हीयो॥

कासी में कंटक जेते भए ते गे पाइ अघाइ कै आपनो कीयो।

आजु कि काल्हि परौं कि नरौं जड़ जाहिंगे चाटि दिवारी को दीयो [2] ॥

179॥

कुंकुम रंग सुअंग जितो, मुखचंद सो चंद सों होड़ परी है [3]।

बोलत बोल समृद्धि चुवै, अवलोकत सोच-बिषाद हरी है॥

गौरी की गंग बिहंगिनि बेष, कि मंजुल मूरति मोद भरी है।

पेखि सप्रेम पयान समय सब सोच बिमोचन छेमकरी है॥ 180॥

---

[^1] परीच्छित = निश्चित, निश्चय रूप से।

[^2] चाटि दिवारी को दीयो = ऐसा कहते है कि सर्प आदि दीवाली का दीया चाट कर चले जाते है अर्थात् दीवाली के बाद नहीं रह जाते।

[^3] कुंकु रंग ... परी है = क्षेमकारी नाम की चील जो कत्थई या ललाई लिए पीले रंग की होती है। इसकी चोंच सफेद रंग की होती है। इसका दर्शन शुभ माना जाता है। यह दक्षिण में फारमंडल के किनारे अधिक होती है।

(घनाक्षरी)

मंगल की रासि, परमारथ की खानि जानि,

बिरचि बनाई बिधि, केसव बसाई है।

प्रलय हू काल राखी सूलपानि सूल पर,

मीचुबस नीच सोऊ चाहत खसाई है॥

छाँडि छितिपाल जो परीछित भए कृपालु,

भलो कियो खल को, निकाई सो नसाई है।

पाहि हनुमान! करुनानिधान राम पाहि!

कासी-कामधेनु कलि कुहत [1] कसाई है॥ 181॥

बिरची बिरंच की बसति बिस्वनाथ की जो,

प्रानहू तें प्यारी पुरी केसव कृपाल की।

ज्योतिरूप-लिंगमई, अगनित-लिंगमई

मोक्ष-बितरनि, बिदरनि जगजाल की॥

देवी देव देवसरि सिद्ध मुनिबर बास

लोपति बिलोकत कुलिपि भोंडे भाल की।

[^1] कुहत = मारता है।

हाहा करै तुलसी दयानिधान राम! ऐसी

कासी की कदर्थना [1] कराल कलिकाल की॥

182॥

आस्रम बरन कलि-बिबस बिकल भये,ए

निज-निज मरजाद मोटरी-सी डार दी।

संकर सरोष महामारि ही तें जानियत,

साहिब सरोष दुनी दिन दिन दारदी॥

नारि नर आरत पुकारत, सुनै न कोऊ,

काहू देवतनि मिलि मोटी मूठि मारि दी।

तुलसी सभीत-पाल सुमिरे कृपालु राम

समय सुकरुना सराहि सनकार दी [2]॥ 183॥

---

[^1] कदर्थना = दुर्दशा।

[^2] सनकार दी = इशारा कर दिया।

हनुमानबाहुक

(छप्पय)

सिंधु-तरन सिय-सोच-हरन रबि-बाल-बरन तनु ।
भुज बिसाल, मूरति कराल, कालहु को काल जनु ॥
गहन-दहन-निरदहन-लंक, निःसंक, बंक-भुव [1]।
जातुधान-बलवान-मान-मद-दवन पवनसुव ॥
कह तुलसिदास सेवत सुलभ, सेवक हित संतत निकट ।
गुन-गनत, नमत, सुमिरत, जपत समन सकल-संकट-विकट ॥ 1॥

स्वर्न-सैल-संकास [2] कोटि-रबि-तरुन-तेज-घन ।
उर बिसाल, भुज-दंड चंड नख-बज्र बज्र-तन ॥
पिंग नयन, भ्रुकुटी कराल, रसना दसनानन ।
कपिस केस, करकस लँगूर, खल-दल-बल-भानन [3]॥

---

[^1] भुव = भ्रू, भ्रुकुटी।

[^2] संकास = प्रकाश, चमक।

[^3] भानन = तोड़ना।

कह तुलसिदास बस जासु उर मारुतसुत मूरति बिकट ।

संताप पाप तेहि पुरुष पहिं सपनेहुँ नहिं आवत निकट ॥ 2॥

(झूलना)

पंचमुख छमुख भृगु-मुख्य [1] भट, असुर-सुर,

सर्व-सरि-समर समरत्थ सूरो ।

बाँकुरो बीर बिरुदैत बिरुदावली,

बेद बंदी बदत पैज पूरो ॥

जासु गुनगाथ रघुनाथ कह, जासु बल,

बिपुल-जल-भरित जग-जलधि झूरो ।

दुवन-दल-दमन को कौन तुलसीस है,

पवन को पूत रजपूत रुरो ॥ 3॥

(घनाक्षरी)

भानु सों पढ़न हनुमान गये भानु मन

अनुमानि सिसु-केलि कियो फेरफार सो ।

[^1] भृगु-मुख्य = परशुराम।

पाछिले पगनि गम [2] गगन मगन-मन,

क्रम को न भ्रम, कपि बालक बिहार सो ॥

कौतुक बिलोकि लोकपाल हरि हर बिधि,

लोचननि चकाचौंधी चित्तनि खँभार सो।

बल कैंधौं बीर-रस धीरज कै, साहस कै,

तुलसी सरीर धरे सबनि को सार सो ॥ 4॥

भरत में पारथ के रथ-केथू कपिराज,

गाज्यो सुनि कुरुराज-दल हल-बल भो ।

कह्यो द्रोण भीषम समीर-सुत महाबीर,

बीर-रस-बारि-निधि जाको बल जल भो ॥

बानर सुभाय बाल-केलि भूमि भानु लागि,

फलँग फलाँग हू तें घाटि नभतल भो ।

नाइ-नाइ माथ जोरि-जोरि हाथ जोधा जोहैं,

हनुमान देखे जगजीवन को फल भो ॥ 5॥

---

[^2] पाछिले पगनि गम = पीछे की ओर पैरों से चलते हुए। कथा है कि जब हनुमानजी सूर्य के पास पढ़ने गए तब उन्होंने कहा कि मैं एक जगह स्थिर नहीं रहता, इससे यदि पढ़ना हो तो मेरे रथ के सामने पीछे की ओर पैर रखते साथ-साथ भागते चलो। हनुमान् ने ऐसा ही किया।

गो-पद पयोधि करि, होलिका ज्यों लाय [1] लंक,

निपट निसंक परपुर गलबल भो ।

द्रोन सो पहार लियो ख्याल ही उखारि कर,

कंदुक-ज्यों कपि-खेल बेल [2] कैसो फल भो ॥

संकट-समाज असमंजस में रामराज,

काज जुग पूगनि को करतल पल भो [3]।

साहसी समत्थ तुलसी को नाह जाकी बाँह,

लोकपाल पालन को फिर थिर थल भो ॥ 6॥

कमठ की पीठि जाके गोड़नि की गाड़ैं मानौ,

नाप के भाजन भरि जल-निधि-जल भो ।

जातुधान-दावन, परावन को दुर्ग भयो,

महामीन-बास तिमि-तोमिन को थल भो ॥

कुम्भकरन-रावन पयोद-नाद ईंधन को,

तुलसी प्रताप जाको प्रबल अनल भो ।

---

[^1] लाय = जला कर।

[^2] कपि-खेल बेल = कपिकच्छु, केवाँच नाम की लता।

[^3] काज जुग ... पल भो = जुग भर मे पूरा होने का काम (हनुमान के) करतल में हो गया।

भीषम कहत मेरे अनुमान हनुमान,

सारिखो त्रिकाल न त्रिलोक महाबल भो ॥ 7॥

दूत रामराय को, सपूत पूत पौन को,

तू अंजनी को नन्दन प्रताप भूरि भानु सो ।

सीय-सोच-समन, दुरित-दोष-दमन, सरन

आये अवन [1], लखन प्रिय प्रान सो ॥

दसमुख दुसह दरिद्र दरिबे को भयो,

प्रकट त्रिलोक ओक तुलसी निधान सो ।

ज्ञान-गुनवान बलवान सेवा-सावधान,

साहेब सुजान उर आनु हनुमान सो ॥8॥

दवन-दुवन-दल भुवन-बिदित बल,

बेद जस गावत बिबुध-बंदी-छोर को ।

पाप-ताप-तिमिर तुहिन-विघटन-पटु,

सेवक-सरोरुह सुखद भानु भोर को ॥

लोक-परलोक तें बिसोक, सपने न सोक,

---

[^1] अवन = रक्षा।

तुलसी के हिए है भरोसो एक ओर को ।
राम को दुलारो दास बामदेव को निवास,
नाम कलि-कामतरु केसरी-किसोर को ॥ 9॥

महाबलसीव महा भीम महा बानइत,
महाबीर बिदित बरायो [1] रघुबीर को ।
कुलिस-कठोर तनु जोर परै रोर रन,
करुना-कलित मन धारमिक धीर को ॥
दुर्जन को कालसो कराल पाल सज्जन को,
सुमिरे हरनहार तुलसी की पीर को ।
सीय-सुख-दायक, दुलारो रघुनायक को,
सेवक सहायक है साहसी समीर को ॥ 10॥

रचिबे को बिधि जैसे, पालिबे को हरि हर,
मीच मारिबे को ज्याईबे को सुधापान भो ।
धरिबे को धरनि, तरनि तम दलिबे को,
सोखिबे कृसानु, पोषिबे को हिम-भानु भो ॥

[^1] बरायो = चुना हुआ।

खल-दुःख दोषिबे को, जन-परितोषिबे को,
माँगिबो मलीनता को मोदक सुदान भो ।
आरत की आरति निवारिबे को तिहूँ पुर,
तुलसी को साहेब हठीलो हनुमान भो ॥ 11॥

सेवक सेवकाई जानि जानकीस मानै कानि,
सानुकूल सूलपानि नवै नाथ नाक को ।
देवी देव दानव दयावने ह्वै जोरैं हाथ,
बापुरे बराक [1] और राजा राना राँक को ॥
जागत सोवत बैठे बागत [2] बिनोद मोद,
ताकै जो अनर्थ सो समर्थ एक आँक को ।
सब दिन रुरो परै पूरो जहाँ-तहाँ ताहि,
जाके है भरोसो हिये हनुमान हाँक को ॥ 12॥

सानुग सगौरि सानुकूल सूलपानि ताहि,
लोकपाल सकल लषन राम जानकी ।
लोक परलोक को बिसोक सो तिलोक ताहि,

[^1] बराक = बेचारा।

[^2] बागत = घूमते फिरते।

तुलसी तमाहि [1] ताहि काहू बीर आन की ॥
केसरी-किसोर, बन्दीछोर के निवाजे सब,
कीरति बिमल कपि करुनानिधान की ।
बालक ज्यौं पालिहैं कृपालु मुनि सिद्ध ताको,
जाके हिये हुलसति हाँक हनुमान की ॥ 13॥

करुनानिधान, बलबुद्धि के निधान, मोद
महिमा-निधान, गुन-ज्ञान के निधान हौ ।
बामदेव-रुप भूप राम के सनेही, नाम
लेत देत अर्थ धर्म काम निरबान हौ ॥
आपने प्रभाव, सीताराम के सुभाव सील,
लोक-बेद-बिधि के बिदूष हनुमान हौ ।
मन की, बचन की, करम की तिहूँ प्रकार,
तुलसी तिहारो तुम साहिब सुजान हौ ॥ 14॥

मन को अगम, तन सुगम किए कपीस,
काज महाराज के समाज साज साजे हैं ।

[^1] तमाहि = तमः ही, लालच ही।

देव बंदी-छोर रनरोर केसरी-किसोर,

जुग जुग जग तेरे बिरद बिराजे हैं ।

बीर बरजोर, घटि जोर तुलसी की ओर,

सुनि सकुचाने साधु, खल-गन गाजे हैं ।

बिगरी-सँवार अंजनी-कुमार कीजै मोहिं,

जैसे होत आए हनुमान के निवाजे हैं ॥ 15॥

(मत्तगयंद)

सुजान सिरोमनि हौ, हनुमान! सदा जन के मन बास तिहारो ।

ढ़ारो बिगारो मैं काको कहा? केहि कारन खीझत हौं तो तिहारो ॥

साहिब सेवक नाते तें हातो कियौ सो तहाँ तुलसी को न चारो ।

दोष सुनाए तें आगेहुँ को हुसियार ह्वैंहों, मन तौ हिय हारो ॥ 16॥

तेरे थपे उथपै न महेस, थपै थिर को कपि जे घर घाले? ।

तेरे निवाजे गरीब निवाज बिराजत बैरिन के उर साले ॥

संकट सोच सबै तुलसी लिये नाम फटै मकरी के से जाले ।

बूढ़ भये, बलि, मेरिहि बार, कि हारि परे बहुतै नत पाले ॥ 17॥

सिंधु तरे, बड़े बीर दले खल, जारे हैं लंक से बंक मवा से ।
तैं रन-केहरि केहरि के बिदले अरि-कुंजर छैल छवा से ॥
तोसों समत्थ सुसाहिब सेई सहै तुलसी दुख-दोष दवा से ।
बानर बाज ! बढ़े खल-खेचर, लीजत क्यों न लपेटि लवा से? ॥18॥

अच्छ-विमर्दन कानन-भान दसानन आनन भान तिहारो ।
बारिदनाद अकंपन कुंभकरन्न-से कुंजर केहरि-बारो ॥
राम-प्रताप हुतासन, कच्छ [1] बिपच्छ [2], समीर समीर-दुलारो ।
पाप-तें, साप-तें, ताप तिहूँ-तें सदा तुलसी कहँ सो रखवारो ॥19॥

(घनाक्षरी)

जानत जहान हनुमान को निवाज्यौ जन,
मन अनुमानि बलि, बोल न बिसारिए ।
सेवा-जोग तुलसी कबहुँ? कहा चूक परी,
साहेब सुभाय कपि साहेब सँभारिए ॥
अपराधी जानि कीजै सासति सहस भाँति,

[^1] कच्छ = तुन का पेड़ जो जल्दी जलता है।

[^2] बिपच्छ = शत्रु।

मोदक मरै जो ताहि माहुर न मारिए ।

साहसी समीर के दुलारे रघुबीरजू के,

बाँह-पीर महाबीर बेगि ही निवारिये ॥20॥

बालक बिलोकि, बलि, बारेतें आपनो कियो,

दीनबन्धु दया कीन्हीं निरुपाधि न्यारिये ।

रावरो भरोसो तुलसी के, रावरोई बल,

आस रावरीयै दास रावरो बिचारिए ॥

बड़ो बिकराल कलि, काको न बिहाल कियो?

माथे पगु बलि को, निहारि सो निवारिए ।

केसरी-किसोर, रन-रोर, बरजोर बीर,

बाहुपीर राहुमातु [1] ज्यौं पछारि मारिए ॥21॥

उथपे-थपन, थिर-थपे-उथपनहार,

केसरी कुमार बल आपनो सँभारिए ।

राम के गुलामनि को कामतरु रामदूत,

मोसे दीन दूबरे को तकिया [2] तिहारिए ॥

---

[^1] राहुमातु = छायाग्राहिणी सिंहिका।

[^2] तकिया = भरोसा।

साहिब समर्थ तोसो तुलसी के माथे पर,

सोऊ अपराध बिनु, बीर! बाँधि मारिए ।

पोखरी बिसाल बाँहु, बलि बारिचर पीर,

मकरी ज्यौं पकरि कै बदन बिदारिए ॥22॥

राम को सनेह, राम साहस, लखन सिय,

राम की भगति, सोच संकट निवारिए ।

मुद-मरकट रोग-बारिनिधि हेरि हारे,

जीव-जामवंत को भरोसो तेरो भारिये ॥

कूदिए कृपाल तुलसी सु प्रेम-पब्बइ तें,

सुथल सुबेल भालू बैठि कै बिचारिए ।

महाबीर बाँकुरे बराकी [1] बाँह-पीर क्यों न,

लंकिनी ज्यों लात-घात ही मरोरि मारिए ॥23॥

लोक-परलोक हूँ तिलोक न बिलोकियत,

तो सो समरथ चष चारिहूँ निहारिए ।

कर्म काल, लोकपाल, अग जग जीवजाल,

---

[^1] बराकी = बापुरी, तुच्छ।

नाथ-हाथ सब निज महिमा बिचारिए ॥
खास दास रावरो, निवास तेरो तासु उर,
तुलसी सो देव! दुखी देखियत भारिए ।
बात तरुमूल बाहुसूल कपिकच्छु बेलि [1],
उपजी, सकेलि, कपि, खेलही उखारिए ॥24॥

करम-कराल कंस भूमिपाल के भरोसे,
बकी बक भगिनी काहू ते कहा डरैगी?।
बड़ी बिकराल बाल-घातिनी न जात कहि,
बाहुबल बालक छबीले छोटे छरैगी ॥
आई है बनाइ बेष आप तू बिचारि देख,
पाप जाय सबको गुनी के पाले परैगी ।
पूतना पिसाचिनी ज्यौं कपिकान्ह तुलसी की,
बाहु-पीर महाबीर, तेरे मारे मरैगी ॥25॥

भाल की, कि काल की, कि रोष की, त्रिदोष की है,
बेदन बिषम, पाप-ताप छल-छाँह की ।

[^1] कपिकच्छु बेलि = केवाँच नाम की लता जो बंदरों को बहुत प्रिय होती है।

करमन कूट की कि जन्त्र मन्त्र बूट की,

पराहि जाहि, पापिनी! मलीन मन माँह की ॥

पैहहि सजाय, नतु कहत बजाय तोहि,

बाबरी न होहि बानि जानि कपि-नाह की ।

आन हनुमान की, दोहाई बलवान की,

सपथ महाबीर की जो रहै पीर बाहँ की ॥26॥

सिंहिका सँहारि, बलि, सुरसा सुधारि छल,

लंकिनी पछारि मारि बाटिका उजारी है ।

लंक परजारि, मकरी बिदारि, बार बार,

जातुधान धारि धूरिधानी करि डारी है ॥

तोरि जमकातरि मँदोदरी कढ़ोरि आनी,

रावन की रानी मेघनाद महतारी है ।

भीर बाँह-पीर की निपट राखी महाबीर,

कौन के सँकोच तुलसी के सोच भारी है ॥27॥

तेरी बाल-केलि, बीर! सुनि सहमत धीर,

भूलत सरीर-सुधि सक्र रबि राहु की ।

तेरी बाँह बसत बिसोक लोकपाल सब,

तेरो नाम लेत रहै आरति न काहु की ॥

साम दान भेद बिधि, बेदहू लबेद सिद्धि

हाथ कपिनाथ ही के चोटी चोर साहु की ।

आलस, अनख, परिहास की सिखावन है?

एते दिन रही पीर तुलसी के बाहु की! ॥28॥

टूकनि को घर घर डोलत कंगाल बोलि,

बाल ज्यों कृपाल नतपाल पालि पोसो है ।

कीन्ही है सँभार सार अँजनी-कुमार बीर,

आपनो बिसारि हैं न मेरे हूँ भरोसो है ॥

एतनो परेखो सब भाँति समरथ आजु,

कपिनाथ साँची कहौं को त्रिलोक तोसो है? ।

साँसति सहत दास कीजे पेषि परिहास,

चीरी को मरन खेल बालकनि को सो है ॥29॥

आपने ही पाप तें त्रिपात तें, कि साप तें,

बढ़ी है बाहु-बेदन कही न सहि जाति है ।

औषध अनेक जन्त्र मन्त्र टोटकादि किए,

बादि भए देवता, मनाए अधिकाति है ॥

करतार, भरतार, हरतार, कर्म, काल,

को है जगजाल जो न मानत इताति [1] है ।

चेरो तेरो तुलसी ‘तू मेरो’ कह्यो राम दूत,

ढील तेरी, बीर, मोहि पीर तें पिराति है ॥30॥

दूत राम राय को, सपूत पूत बाय को,

समत्थ हाथ पाय को, सहाय असहाय को ।

बाँकी बिरदावली बिदित बेद गाइयत,

रावन सो भट भयो मुठिका के घाय को ॥

एते बड़े साहेब समर्थ को निवाजो आजु,

सीदत सुसेवक बचन मन काय को ।

थोरी बाहु-पीर की बड़ी गलानि तुलसी को,

कौन पाप कोप, लोप प्रकट प्रभाय को? ॥31॥

देवी देव दनुज मनुज मुनि सिद्ध नाग,

---

[^1] इताति = इताअत, आज्ञापालन।

छोटे बड़े जीव जेते चेतन अचेत हैं ।

पूतना पिसाची जातुधानी जातुधान बाम

राम-दूत की रजाइ माथे मानि लेत हैं ॥

घोर जन्त्र मन्त्र कूट कपट कुजोग रोग,

हनुमान आन सुनि छाँड़त निकेत हैं ।

क्रोध कीजे कर्म को, प्रबोध कीजै तुलसी को,

सोध कीजै तिनको जो दोष दुख देत हैं ॥32॥

तेरे बल बानर जिताए रन रावन से,

तेरे घाले जातुधान भए घर घर के [1]।

तेरे बल रामराज किए सब सुर काज,

सकल समाज साज साजे रघुबर के ॥

तेरो गुनगान सुनि गीरबान [2] पुलकत,

सजल बिलोचन बिरंचि हरि हर के ।

तुलसी के माथे पर हाथ फेरौ कीसनाथ,

[^1] घर घर केभए = इधर उधर बेठिकाने हो गए।

[^2] गीरबान = गीर्वाण, देवता।

देखिए न दास दुखी तोसो कनिगर [3] के ॥33॥

पालो तेरे टूक को, परे हूँ चूक मूकिए [2] न,

कूर कौड़ी दू को हौं आपनी ओर हेरिए ।

भोरानाथ भोरे हौ, सरोष होत थोरे दोष,

पोषि तोषि थापि आपने न अवडेरिए [3]॥

अँबु तू हौं अँबुचर, अँबु तू हौं डिंभ [4], सो न,

बूझिए बिलंब अवलंब मेरे तेरिए ।

बालक बिकल जानि, पाहि, प्रेम पहिचानि,

तुलसी की बाँह पर लामी लूम फेरिए ॥34॥

घेरि लियो रोगनि, कुजोगनि, कुलोगनि ज्यौं,

बासर जलद घन-घटा धुकि धाई है ।

बरसत बारि पीर जानिए जवासे जस,

रोष बिनु दोष, धूम-मूल, मलिनाई है ॥

---

[^3] कनिगर = कानिवाला, जिसे अपनी मर्यादा की लज्ज़ा हो।

[^2] मूकिए = छोड़ना, त्याग करना।

[^3] अवडेरिए = उदास करना, बसने या रहने न देना।

[^4] डिंभ = छोटा बच्चा।

करुनानिधान हनुमान महा बलवान,

हेरि हँसि हाँकि फूँकि फौजें ते उड़ाई है ।

खायो हुतो तुलसी कुरोग राढ़ राकसनि,

केसरी किसोर राखे बीर बरियाई है ॥35॥

(मत्तगयंद)

राम-गुलाम तुही हनुमान गुसाई सुसाई सदा अनुकूलो ।

पाल्यो हौं बाल ज्यों आखर दू पितु-मातु ज्यों मंगल-मोद समूलो ॥

बाहुँ की बेदन, बाँह-पगार [1]! पुकारत आरत आनँद भूलो ।

श्रीरघुबीर निवारिए पीर, रहौं दरबार परो लटि लूलो ॥36॥

(घनाक्षरी)

काल की करालता करम कठिनाई कीधौं,

पाप के प्रभाव, की सुभाय बाय बावरे ।

बेदन कुभाँति सो सही न जाति राति-दिन,

सोई बाँह गही जो गही समीर डाबरे [2]॥

---

[^1] बाँह-पगार = हे दृढ़ कोट से समान बाहुवाले।

[^2] डाबरे = बच्चे, पुत्र।

लायो तरु तुलसी तिहारो, सो निहारि बारि,

सींचिये मलीन भो, तयो है तिहुँ ताव रे ।

भूतनि की, आपनी, पराई, हे कृपा-निधान!

जानियत सबही की रीति राम रावरे ॥37॥

पाँय-पीर, पेट-पीर बाहु-पीर, मुँह-पीर,

जरजर सकल पीर-मई है ।

देव, भूत, पितर, करम, खल, काल, ग्रह,

मोहि पर दवरि दमानक [1] सी दई है ॥

हौं तो बिन मोल के बिकानो, बलि, बारे ही तें,

ओट राम-नाम की ललाट लिखि लई है ।

कुँभज के किंकर बिकल बूढ़े गोखुरनि,

हाय रामराय! ऐसी हाल कहूँ भई है? ॥38॥

बाहुक-सुबाहु नीच, लीचर [2]-मरीच मिलि,

मुँहपीर-केतुजा, कुरोग जातुधान हैं ।

रामनाम जगजाप कियो चाहौं सानुराग,

---

[^1] दमानक = तोपों की बाढ़।

[^2] लीचर = लीचरपन, अशक्ति, शिथिलता।

काल कैसे दूत-भूत कहा मेरे मान हैं [1]॥
सुमिरे सहाय राम-लषन आखर दोऊ,
जिनके साके-समूह जागत जहान हैं ।
तुलसी सँभारि ताड़का सँहारि, भारि भट,
बेधे बरगद से बनाइ बानवान हैं ॥39॥

बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो,
रामनाम लेत, माँगि खात टूकटाक हौं ।
पर्‌यौ लोक-रीति में, पुनीत प्रीति रामराय,
मोह-बस बैठो तोरि तरकि तराक हौं ॥
खोटे-खोटे आचरन आचरत अपनायो,
अंजनी कुमार, सोध्यो रामपानि पाक [2] हौं ।
तुलसी गुसाई भयो, भोंढे दिन भूलि गयो,
ताको फल पावत निदान परिपाक हौं ॥40॥

असन-बसन हीन, बिषम-बिषाद-लीन,

[^1] कहा मेरे मान हैं = क्या मेरे मान के है? क्या मेरे इख्तियार में है? अर्थात् मेरी सामर्थ्य के बाहर है।

[^2] पाक = [फारसी] पवित्र।

देखि दीन दूबरो करै न हाय हाय को ?।

तुलसी अनाथ सो सनाथ रघुनाथ कियो,

दियो फल सील-सिंधु आपने सुभाय को ॥

नीच यहि बीच पति [1] पाइ भरुआई गो [2],

बिहाय प्रभु-भजन बचन मन काय को ।

तातें तनु पेषियत घोर बरतोर मिस,

फूटि फूटि निकसत लोन रामराय को ॥41॥

जीवों जग जानकी-जीवन को कहाय जन,

मरिबे को बारानसी, बारि सुरसरि को ।

तुलसी के दुहूँ हाथ मोदक हैं ऐसे ठाउँ,

जाके जिए मुए सोच करिहैं न लरिको ॥

मोको झूठो साँचो लोग राम को कहत सब,

मेरे मन मान है न हर को, न हरि को ।

भारी पीर दुसह सरीर तें बिहाल होत,

सोऊ रघुबीर बिनु सकै दूर करि को ॥42॥

---

[^1] पति = प्रतिष्ठा।

[^2] भरुआई गो = फूल उठा, इतरा गया, अपने को भारी समझने लगा।

सीतापति साहेब, सहाय हनुमान नित,

हित उपदेश को महेस मानो गुरु कै ।

मानस बचन काय सरन तिहारे पायँ,

तुम्हरे भरोसे सुर मैं न जाने सुर कै ॥

ब्याधि भूत-जनित उपाधि काहु खल की,

समाधि कीजै [1] तुलसी को जानि जन फुर कै ।

कपिनाथ, रघुनाथ, भोलानाथ, भूतनाथ!

रोग सिंधु क्यों न डारियत गाय-खुर कै? ॥43॥

कहों हनुमान सों सुजान रामराय सों,

कृपानिधान संकर सों, सावधान सुनिए ।

हरष-विषाद राग रोष-गुन-दोष-मई,

बिरची बिरंची सब देखियतु दुनिए ॥

माया जीव काल के, करम के, सुभाय के,

करैया राम, बेद कहैं, साँची मन गुनिए ।

तुमतें कहा न होय, हाहा! सो बुझैये मोहि,

[^1] समाधि कीजै = समाधान कीजिए।

हौंहूँ रहौं मौन ही, बयो सो जानि लुनिए ॥44॥

गोस्वामी तुलसीदास

गीतावली

[हिन्दीकोश]

गीतावली

बाल कांड

(राग आसावरी)

आजु सुदिन सुभ घरी सुहाई ।
रूप-सील-गुन-धाम राम नृप-भवन प्रगट भए आई ॥
अति पुनीत मधुमास, लगन ग्रह बार जोग समुदाई ।
हरषवन्त चर अचर भूमिसुर तनरुह पुलक जनाई ॥
बरषहिं बिबुध-निकर कुसुमावलि, नभ दुन्दुभी बजाई ।
कौसल्यादि मातु मन हरषित, यह सुख बरनि न जाई ॥
सुनि दसरथ सुत जनम लिए सब गुरु जन बिप्र बोलाई ।
बेद-बिहित करि क्रिया परम सुचि, आनँद उर न समाई ॥
सदन बेद-धुनि करत मधुर मुनि, बहु बिधि बाज बधाई ।
पुरबासिन्ह प्रिय नाथ हेतु निज निज सम्पदा लुटाई ॥

मनि, तोरन, बहु केतु पताकनि, पुरी रुचिर करि छाई ।

मागध-सूत द्वार बन्दीजन जहँ तहँ करत बड़ाई ॥

सहज सिंगार किए बनिता चलीं मंगल बिपुल बनाई ।

गावहिं देहिं असीस मुदित चिर-जिवौ तनय सुखदाई ॥

बीथिन्ह कुंकम कीच, अरगजा अगर अबीर उड़ाई ।

नाचहिं पुर-नर-नारि प्रेम भरि देहदसा बिसराई ॥

अमित धेनु गज तुरग बसन मनि जातरुप अधिकाई ।

देत भूप अनुरुप जाहि जोइ, सकल सिद्धि गृह आई ॥

सुखी भए सुर, सन्त, भूमिसुर, खलगन मन मलिनाई ।

सबइ सुमन बिकसत रबि निकसत, कुमुद-बिपिन बिलखाई ॥

जो सुख सिन्धु-सकृत [1]-सीकर तें सिव बिरंचि प्रभुताई ।

सोइ सुख अवध उमँगि रह्यो दस दिसि कौन जतन कहौं गाई ॥

जे रघुबीर चरन चिन्तक तिन्हकी गति प्रगट दिखाई ।

अबिरल अमल अनूप भगति दृढ़ तुलसिदास तब पाई ॥ 1॥

(राग जैतश्री)

सहेली सुनु सोहिलो रे!

---

[^1] सकृत = एक।

सोहिलो, सोहिलो, सोहिलो, सोहिलो सब जग आज ।
पूत सपूत कौसिला जायो, अचल भयो कुल-राज ॥
चैत चारु नौमी तिथि सितपख, मध्य-गगन-गत भानु ।
नखत जोग ग्रह लगन भले दिन मंगल मोद निधानु ॥
ब्योम पवन पावक जल थल दिसि दसहु सुमंगल मूल।
सुर दुन्दुभी बजावहिं, गावहिं, हरषहिं, बरषहिं फूल ॥
भूपति-सदन सोहिलो सुनि बाजैं गहगहे निसान ।
जहँ तहँ सजहिं कलस धुज चामर तोरन केतु बितान ॥
सींचि सुगन्ध रचैं चौकें गृह आँगन गली बजार ।
दल फल फूल दूब दधि रोचन घर घर मंगलचार ॥
सुनि सानन्द उठे दसस्यन्दन सकल समाज समेत ।
लिए बोलि गुरु सचिव भूमिसुर प्रमुदित चले निकेत ॥
जातकर्म करि, पूजि पितर-सुर दिए महिदेवन दान ।
तेहि औसर सुत तीनि प्रगट भए मंगल, मुद, कल्यान ॥
आनँद महँ आनन्द अवध, आनन्द बधावन होइ ।
उपमा कहौं चारि फल की, मोहिं भलो न कहै कबि कोइ ॥
सजि आरती बिचित्र थार कर जूथ जूथ बरनारि ।
गावत चलीं बधावन लै लै निज निज कुल अनुहारि ॥

असही दुसही [1] मरहु मनहि मन, बैरिन बढ़हु बिषाद ।
नृपसुत चारि चारु चिरजीवहु संकर-गौरि-प्रसाद ॥
लै लै ढोव [2] प्रजा प्रमुदित चले भाँति भाँति भरि भार ।
करहिं गान करि [3] आन राय की, नाचहिं राजदुवार ॥
गज, रथ, बाजि, बाहिनी, बाहन सबनि सँवारे साज।
जनु रतिपति ऋतुपति कोसलपुर बिहरत सहित समाज ॥
घंटा-घंटि पखाउज आउज [4] झाँझ बेनु डफ तार [5]।
नूपुर धुनि, मंजीर मनोहर, कर कंकन-झनकार ॥
नृत्य करहिं नट-नटी, नारि नर अपने अपने रंग ।
मनहुँ मदन-रति बिबिध बेष धरि नटत सुदेस सुढंग ॥
उघटहिं [6] छन्द प्रबन्ध गीत पद राग तान बन्धान ।
सुनि किन्नर गन्धर्ब सराहत, बिथके हैं बिबुध-बिमान ॥

---

[^1] असही दुसही = द्वेषी, बैरी (जिन्हें भलाई असह्य या दुःसह हो)।

[^2] ढोव = भेंट की वस्तु जो मंगल के अवसर पर भार में भर कर भेजते है।

[^3] गान करि = गीतों में नाम ले ले कर।

[^4] आउज = तासा।

[^5] तार = ताल, मंजीरा।

[^6] उघटहिं = बार बार एक ही पद को कहते है।

कुंकुम अगर अरगजा छिरकहिं भरहिं गुलाल अबीर ।
नभ प्रसून झरि, पुरी कोलाहल, भइ मनभावति भीर ॥
बड़ी बयस बिधि भयो दाहिनो सुर-गुरु आसिरबाद ।
दसरथ सुकृत-सुधासागर सब उमगे हैं तजि मरजाद ॥
ब्राह्मण बेद, बंदि बिरदावलि, जय धुनि, मंगल गान ।
निकसत पैठत लोग परसपर बोलत लगि लगि कान ॥
बारहिं मुकुत -रतन राजमहिषि पुर-सुमुखि समान ।
बगरे नगर निछावरि मनिगन जनु जुवारि जव धान ॥
कीन्हि बेदबिधि लोकरीति नृप, मन्दिर परम हुलास ।
कौसल्या कैकयी सुमित्रा रहस-बिबस रनिवास ॥
रानिन दिए बसन मनि भूषन, राजा सहन-भँडार [1] ।
मागध सूत भाट नट जाचक जहँ तहँ करहिं कबार [2] ॥
बिप्रबधू सनमानि सुआसिनि, जन पुरजन पहिराइ ।
सनमाने अवनीस, असीसत ईस रमेस मनाइ ॥
अष्टसिद्धि नवनिद्धि भूति सब भूपति भवन कमाहिं ।
समउ समाज राज दसरथ को लोकप सकल सिहाहिं ॥

---

[^1] सहन-भँडार = बाहरी खजाना।

[^2] कबार = लेन-देन।

को कहि सकै अवधबासिन को प्रेम प्रमोद उछाह ।

सारद सेस गनेस-गिरीसहिं अगम निगम अवगाह ॥

सिव बिरंचि मुनि सिद्ध प्रसंसत बड़े भूप के भाग ।

तुलसिदास प्रभु सोहिलो गावत उमगि उमगि अनुराग ॥ 2॥

(राग बिलावल)

आजु महामंगल कोसलपुर सुनि नृप के सुत चारि भए ।

सदन सदन सोहिलो सोहावनो नभ अरु नगर निसान हए ॥

सजि सजि जान अमर किन्नर मुनि जानि समय सुभ गान ठए ।

नाचहिं नभ अपसरा मुदित मन पुनि पुनि बरषहिं सुमन चए ॥

अति सुख बेगि बोलि गुरु भूसुर भूपति भीतर भवन गए ।

जातकरम करि कनक बसन, मनि-भूषित सुरभि समूह दए ॥

दल फल फूल दूब दधि रोचन जुबतिन्ह भरि भरि थार लए ।

गावत चलीं भीर भइ बीथिन्ह, बंदिन्ह बाँकुरे बिरद बए [1]॥

कनक-कलस चामर पताक धुज जहँ तहँ बन्दनवार नए ।

भरहिं अबीर, अरगजा छिरकहिं, सकल लोक एक रंग रए ॥

उमँगि चल्यौ आनन्द लोक तिहुँ, देत सबनि मन्दिर रितए ।

[^1] बए = कहे।

तुलसिदास पुनि भरेइ देखियत, रामकृपा चितवनि चितए॥ 3॥

(राग जैतश्री)

गावैं बिबुध बिमल बर बानी।

भुवन कोटि कल्यान कन्द जो जायो पूत कौसिला रानी॥

मास पाख तिथि बार नखत ग्रह जोग लगन सुभ ठानी।

जल थल गगन प्रसन्न साधु मन, दस-दिसि हिय हुलसानी॥

बरषत सुमन, बधाव नगर नभ, हरष न जात बखानी।

ज्यों हुलास रनिवास नरेसहि त्यों जनपद रजधानी॥

अमर नाग मुनि मनुज सपरिजन बिगतबिषाद-गलानी।

मिलेहि [1] माँझ रावन रजनीचर लंक-संक अकुलानी॥

देव पितर गुरु बिप्र पूजि नृप दिए दान रुचि जानी।

मुनि-बनिता, पुरनारि, सुआसिनि सहस भाँति सनमानी॥

पाइ अघाइ असीसत निकसत जाचक जन भए दानी।

'यों प्रसन्न कैकयी सुमित्रहि होहु महेस भवानी'॥

दिन दूसरे भूप-भामिनि दोउ भईं सुमंगल-खानी।

भयो सोहिलो सोहिले मो जनु सृष्टि सोहिले-सानी॥

---

[^1] मिलेहि = साथ ही।

गावत-नाचत, मो मन भावत सुख सो अवध अधिकानी ।
देत लेत पहिरत पहिरावत प्रजा प्रमोद-अघानी ॥
गान-निसान-कुलाहल-कौतुक देखत दुनी सिहानी ।
हरि बिरंचि-हर-पुर सोभा कुलि कोसलपुरी लोभानी ॥
आनँद अवनि, राजरानी सब माँगहु कोखि जुड़ानी ।
आसिष दै दै सराहहिं सादर उमा रमा ब्रह्मानी ॥
बिभव-बिलास-बाढ़ि दसरथ की देखि न जिनहिं सोहानी ।
कीरति, कुसल, भूति, जय, ऋधि सिधि तिन्ह पर सबै कोहानी ॥
छठी बारहौं लोक-बेद-बिधि करि सुबिधान बिधानी ।
राम लषन रिपुदवन भरत धरे नाम ललित गुरु ग्यानी ॥
सुकृत-सुमन तिल-मोद बासि बिधि जतन-जन्त्र भरि घानी ।
सुख सनेह सब दियो दसरथहि खरि खलेल [1] थिरथानी [2]॥
अनुदिन उदय उछाह उमग जग, घर-घर अवध कहानी ।
तुलसी राम-जनम-जस गावत सो समाज उर आनी ॥ 4॥

(राग केदारा)

---

[^1] खलेल = तेल की मैल या गाद।

[^2] थिरथानी = लोकपाल आदि स्थिर स्थानवाले।

घर घर अवध बधावने मंगल साज समाज ।
सगुन सोहावने मुदित मन कर सब निज निज काज ॥
(छंद) – निज काज सजत सँवारि पुर-नर-नारि रचना अनगनी ।
गृह, अजिर, अटनि, बजार, बीथिन्ह चारु चौकैं बिधि घनी ॥
चामर, पताक, बितान, तोरन, कलस, दीपावलि बनी ।
सुख-सुकृत-सोभामय पुरी बिधि सुमति जननी जनु जनी ॥

चैत चतुरदसि चाँदनी, अमल उदित निसिराज ।
उडुगन अवलि प्रकासहीं, उमगत आनँद आज ॥
(छंद) – आनन्द उमगत आजु, बिबुध बिमान बिपुल बनाइकै ।
गावत, बजावत, नटत, हरषत, सुमन बरषत आइ कै ॥
नर निरखि नभ, सुर पेखि पुरछबि परसपर सचु पाइकै ।
रघुराज-साज सराहि लोचन-लाहु लेत अघाइकै ॥

जागिय राम छठी सजनि रजनी रुचिर निहारि ।
मंगल मोद-मढ़ी मुरति नृप के बालक चारि ॥
(छंद) – मूरति मनोहर चारि बिरचि बिरंचि परमारथ मई ।
अनुरुप भूपति जानि पूजन-जोग बिधि संकर दई ॥

तिन्हकी छठी, मंजुलमठी, जग सरस जिन्हकी सरसई ।
किए नींद भामिनि जागरन, अभिरामिनी जामिनि भई ॥

सेवक सजग भए समय, साधन सचिव सुजान ।
मुनिबर सिखये लौकिकौ बैदिक बिबिध बिधान ॥
(छंद) – बैदिक बिधान अनेक लौकिक आचरत सुनि जानिकै ।
बलिदान पूजा मूलिकामनि साधि राखी आनिकै ॥
जे देव देवी सेइयत हित लागि चित सनमानिकै ।
ते जन्त्र मन्त्र सिखाइ राखत सबनि सों पहिचानिकै ॥

सकल सुआसिनि गुरजन पुरजन पाहुन-लोग ।
बिबुध बिलासिनि सुर मुनि जाचक जो जेहि जोग ॥
(छंद) – जेहि जोग जे तेहि भाँति ते पहिराइ परिपूरन किये ।
जय कहत देत असीस तुलसीदास ज्यों हुलसत हिये ॥
ज्यों आजु कालिहु परहुँ जागन होहिंगे नेवते दिये ।
ते धन्य पुन्य-पयोधि जे तेहि समै सुख-जीवन जिये ॥

भूप भाग बली सुर-बर नाग सराहि सिहाहिं ।

तिय-बरबेष अली रमा सिधि अनिमादि कमाहिं [1]॥

(छंद) – अनिमादि, सारद, सैलनन्दिनि बाल लालहि पालहीं ।

भरि जनम जे पाए न, ते परितोष उमा रमा लहीं ॥

निज लोक बिसरे लोकपति, घर की न चरचा चालहीं ।

तुलसी तपत तिहु ताप जग, जनु प्रभुछठी-छाया लहीं ॥ 5॥

(राग जैतश्री)

बाजत अवध गहागहे अनन्द-बधाए ।

नामकरन रघुबरनि के नृप सुदिन सोधाए ॥

पाय रजायसु रायको ऋषिराज बोलाए ।

सिष्य सचिव सेवक सखा सादर सिर नाए ॥

साधु सुमति समरथ सबै सानन्द सिखाए ।

जल दल फल मनि-मूलिका, कुलि काज लिखाए ॥

गनप गौरि-हर पूजिकै गोवृन्द दुहाए ।

घर घर मुद मंगल महा गुन-गान सुहाए ॥

तुरत मुदित जहँ तहँ चले मन के भए भाए ।

---

[^1] कमाहिं = सेवा या काम करती है।

सुरपति-सासनु घन मनो मारुत मिलि धाए ॥

गृह आँगन चौहट गली बाजार बनाए ।
कलस चँवर तोरन धुजा सुबितान तनाए ॥
चित्र चारु चौकैं रचीं लिखि नाम जनाए ।
भरि-भरि सरवर-बापिका अरगजा सनाए ॥

नर-नारिन्ह पल चारि में सब साज सजाए ।
दसरथ पुर छबि आपनी सुरनगर लजाए ॥
बिबुध बिमान बनाइ कै आनन्दित आए ।
हरषि सुमन बरसन लगे गय धन जानु पाए ॥

बरे [1] बिप्र चहुँ बेदके, रबिकुल-गुरु ज्ञानी ।
आपु बसिष्ठ अथर्बणी, महिमा जग जानी ॥
लोक-रीति बिधि बेद की करि कह्यो सुबानी –
’सिसु -समेत बेगि बोलिए कौसल्या रानी’ ॥

सुनत सुआसिनि लै चलीं गावत बड़भागीं ।

---

[^1] बरे = वरण किया।

उमा रमा सारद सची लखि सुनि अनुरागीं ॥
निज रुचि बेष बिरचि कै हिलि-मिलि सँग लागीं ।
तेहि अवसर तिहुँ लोक की सुदसा जनु जागीं ॥

चारु चौक बैठत भई भूप भामिनी सोहैं ।
गोद मोद-मूरति, लिए, सुकृती जन जोहैं ॥
सुखमा कौतुक कला देखि सुनि मुनि मोहैं ।
सो समाज कहैं बरनिकै, ऐसे कबि को हैं ? ॥

लगे पढ़न रच्छा ऋचा ऋषिराज बिराजे ।
गगन सुमन-झरि, जय-जय, बहु बाजन बाजे ॥
भए अमंगल लंक में, सब संकट गाजे ।
भुवन चारिदस के बड़े दुख दारिद भाजे ॥

बाल बिलोकि अथर्बणी हँसि हरहि जनायो ।
सुभ को सुभ, मोद मोद को 'राम' नाम सुनायो ॥
आलबाल कल कौसिला, दल बरन सोहायो ।
कन्द सकल आनन्द को जनु अंकुर आयो ॥

जोहि जानि जपि जोरि कै करपुट सिर राखे ।
‘जय जय जय करुनानिधे!’ सादर सुर भाषे ॥
सत्यसन्ध ! साँचे सदा जे आखर आषे [1]।
प्रनतपाल पाए सही जे फल अभिलाषे ॥

भूमिदेव देव देखिकै नरदेव [2] सुखारी ।
बोलि सचिव सेवक सखा पटधारि भँडारी ॥
देहु जाहि जोइ चाहिए सनमानि सँभारी ।
लगे देन हिय हरषि कै हेरि हेरि हँकारी ॥

राम-निछावरि लेन को हठि होत भिखारी ।
बहुरि देत तेहि देखिए मानहुँ धन-धारी [3]॥
भरत लखन रिपुदवनहूँ धरे नाम बिचारी ।
फलदायक फल चारि के दसरथ-सुत चारी ॥

भए भूप बालकनि के नाम निरूपन नीके ।

[^1] आषे = कहे।

[^2] नरदेव = राजा।

[^3] धन-धारी = कुबेर।

सबै सोच संकट मिटे तब तें पुर-ती के ॥
सुफल मनोरथ बिधि किए सब बिधि सबही के ।
अब होइहै गाए सुने सब के तुलसी के ॥ 6॥

(राग बिलावल)

सुभग-सेज सोभित कौसिल्या रुचिर राम-सिसु गोद लिये ।
बार बार बिधुबदन बिलोकति लोचन चारु चकोर किये ॥
कबहुँ पौढ़ि पयपान करावति, कबहूँ राखति लाइ हिये ।
बालकेलि गावति हलरावति, पुलकति प्रेम-पियूष पिये ॥
बिधि महेस मुनि सुर सिहात सब, देखत अंबुद ओट दिये ।
तुलसिदास ऐसो सुख रघुपति पै काहू तो पायो न बिये ॥ 7॥

(राग सोरठ)

ह्वै हौ लाल कबहिं बड़े बलि भैया।
राम लषन भावते भारत रिपुदवन चारु चार्‌यो भैया॥
बाल-बिभूषन-बसन मनोहर अँग नित बिरचि बनैहों।
सोभा निरखि निछावरि करि उर लाइ बारने जैहों॥
छगन-मगन अँगना खेलिहौ मिलि ठुमुकु ठुमुकु कब धैहौ।

कलवल वचन तोतरे मंजुल कहि “माँ” मोहिं बुलैहौ॥
पुरजन सचिव राउ राना सब सेवक सखा सहेली।
लैहैं लोचन-लाहु सुफल लखि ललित मनोरथ-बेली॥
जा सुख की लालसा लटू सिव, सुक, सनकादि उदासी।
तुलसी तेहि सुखसिंधु कौसिला मगन, पै प्रेम-पियासी॥ 8॥

पगनि कब चलिहौ चारौ भैया?
प्रेम-पुलकि उर लाइ सुवन सब कहति सुमित्रा मैया ॥
सुन्दर तनु सिसु-बसन-बिभुषन नखसिख निरखि निकैया ।
दलि तृन, प्रान निछावरि करि करि लैहैं मातु बलैया ॥
किलकनि नटनि चलनि चितवनि भजि मिलनि मनोहर-तैया ।
मनि-खम्भनि प्रतिबिम्ब-झलक, छबि छलकिहै भरि अँगनैया ॥
बालबिनोद, मोद मंजुल बिधु, लीला ललित जुन्हैया ।
भूपति पुन्य-पयोधि उमँग, घर-घर आनन्द-बधैया ॥
ह्वै हैं सकल सुकृत-सुख-भाजन लोचन, लाहु लुटैया ।
अनायास पाइहैं जनमफल तोतरे बचन सुनैया ॥
भरत, राम, रिपुदवन, लषन के चरित-सरित अन्हवैया ।
तुलसी तब के से अजहुँ जानिबे रघुबर-नगर-बसैया ॥ 9॥

(राग केदारा)

चुपरि उबटि अनाहवाइकै नयन आँजे,
रचि रुचि तिलक गोरोचन को कियो है ।
भ्रू पर अनूप मसिबिन्दु, बारे बारे बार
बिलसत सीस पर हेरि हरै हियो है ॥
मोद-भरी गोद लिये लालति सुमित्रा देखि
देव कहैं सबको सुकृत उपवियो है [1]।
मातु, पितु, प्रिय, परिजन, पुरजन धन्य,
पुन्यपुंज पेखि पेखि प्रेमरस पियो है ॥
लोहित ललित लघु चरन-कमल चारु,
चाल चाहि सो छबि सुकबि जिय जियो है ।
बालकेलि बातबस झलकि झलमलत
सोभा की दीयटि मानो रुप दीप [2] दियो है ॥
राम-सिसु सानुज चरित चारु गाइ सुनि,
सुजनन सादर जनम-लाहु लियो है ।

---

[^1] उपवियो है = उदय हुआ है।

[^2] दीप = दीप्त, चमकता हुआ।

तुलसी बिहाइ दसरथ दसचारिपुर,

ऐसे सुख-जोग बिधि बिरच्यो न बियो है ॥ 10॥

राम-सिसु गोद-महामोद भरे दसरथ,

कौसिलाहु ललकि लषन लाल लए हैं ।

भरत सुमित्रा लए, कैकयी सत्रुसमन,

तन प्रेम-पुलक, मगन मन भए हैं ॥

मेढ़ी [1] लटकन मनि-कनक-रचित, बाल-

भूषन बनाइ आछे अंग अंग ठए हैं ।

चाहि चुचुकारि चूमि लालत लावत उर,

तैसे फल पावत जैसे सुबीज बए हैं ॥

घन-ओट बिबुध बिलोकि बरषत फूल,

अनुकूल बचन कहत नेह नए हैं ।

ऐसे पितु, मातु, पूत, प्रिय, परिजन बिधि,

जानियत आयु भरि येई निरमए हैं ॥

“अजर अमर होहु” करौ हरिहर ‘छोहु’

---

[^1] मेढ़ी = आगे के बाल को दोनों ओर गूँथकर बीच में चोटी के साथ बाँध देते है, जिसे मेढ़ी कहते है।

जरठ जठेरिन्ह आसिरबाद दये हैं ।

तुलसी सराहैं भाग तिन्हके जिन्हके हिये

डिम्भ-राम-रुप-अनुराग रंग रए हैं ॥ 11॥

(राग आसावरी)

आजु अनरसे हैं भोर के, पय पियत न नीके ।

रहत न बैठे, ठाढ़े, पालने झुलावतहू, रोवत राम मेरो सो सोच सबही के ॥

देव, पितर, ग्रह पूजिये तुला तौलिए घी के ।

तदपि कबहुँ कबहुँक सखी ऐसेहि अरत जब परत दृष्टि दुष्ट ती के ॥

बेगि बोलि कुलगुर छुयो माथे हाथ अमी के ।

सुनत आइ ऋषि कुस हरे नरसिंह मन्त्र पढ़े, जो सुमिरत भय भी [1] के ॥

जासु नाम सरबस सदासिव पारबती के ।

ताहि झरावति कौसिला, यह रीति प्रीतिकी हिय हुलसति तुलसी के ॥

माथे हाथ ऋषि जब दियो राम किलकन लागे ।

महिमा समुझि, लीला बिलोकि गुरु सजल नयन, तनु पुलक, रोम रोम जागे॥

लिए गोद, धाए गोद तें मोद मुनि मन अनुरागे ।

निरखि मातु हरषी हिये आली-ओट कहति मृदु बचन प्रेम के से पागे ॥

[^1] भी = डर।

तुम्ह सुरतरु रघुबंस के, देत अभिमत माँगे ।

मेरे बिसेषि गति रावरी तुलसी प्रसाद जाके सकल अमंगल भागे ॥

अमिय-बिलोकनि करि कृपा मुनिबर जब जोए ।

तबतें राम अरु भरत लषन रिपुदवन, सुमुखि सखि! सकल सुवन सुख सोए ॥

सुमित्रा लाय हिये फनि मनि ज्यों गोए ।

तुलसी नेवछावरि करति मातु अति प्रेम मगन मन, सजल सुलोचन कोए ॥

मातु सकल, कुल-गुरु-बधू, प्रिय सखी सुहाई ।

सादर सब मंगल किए महि-मनि महेस पर सबनि सुधेनु दुहाई ॥

बोलि भूप भूसुर लिये अति बिनय बड़ाई ।

पूजि पायँ सनमानि,दान दिये लहि असीस सुनि बरषैं सुमन सुरसाईँ ॥

घर घर पुर बाजन लगीं आनन्द बधाई ।

सुख सनेह तेहि समय को तुलसी जानै जाको चोर्‌यो है चित चहुँ भाई ॥ 12॥

(राग धनाश्री)

या सिसु के गुन नाम बड़ाई ।

को कहि सकै सुनहु नरपति श्रीपति समान प्रभुताई ॥

जद्यपि बुधि, बय, रुप, सील, गुन समय चारु चार्‌यो भाई ।
तदपि लोक-लोचन-चकोर-ससि राम भगत-सुखदाई ॥
सुर, नर, मुनि करि अभय दनुज हति हरहि धरनि गरुआई ।
कीरति बिमल बिस्व-अघमोचनि रहिहि सकल जग छाई ॥
याके चरन-सरोज कपट तजि जे भजिहै मन लाई ।
ते कुल जुगल सहित तरिहैं भव, यह न कछू अधिकाई ॥
सुनि गुरबचन पुलक तन दम्पति, हरष न हृदय समाई ।
तुलसिदास अवलोकि मातु-मुख प्रभु मन में मुसुकाई ॥ 13॥

(राग बिलावल)

अवध आजु आगमी [1] एकु आयो ।
करतल निरखि कहत सब गुनगन, बहुतन्ह परिचौ पायो ॥
बूढ़ो बड़ो प्रमानिक ब्राह्मन संकर नाम सुहायो ।
सँग सिसुसिष्य, सुनत कौसल्या भीतर भवन बुलायो ॥
पाँय पखारि, पूजि दियो आसन, असन बसन पहिरायो ।
मेले चरन चारु चार्‌यो सुत, माथे हाथ दिवायो ॥
नखसिख बाल बिलोकि बिप्रतनु पुलक, नयन जल छायो ।

[^1] आगमी = दैवज्ञ, ज्योतिषी।

लै लै गोद कमल-कर निरखत, उर प्रमोद न अमायो ॥

जनम प्रसंग कह्यो कौसिक मिसि सीय स्वयम्बर गायो ।

राम, भरत, रिपुदवन, लखनको जय सुख सुजस सुनायो ॥

तुलसिदास रनिवास रहसबस, भयो सबको मन भायो ।

सनमान्यौ महिदेव असीसत सानँद सदन सिधायो ॥ 14॥

(राग केदारा)

पौढ़िये लालन, पालने हौं झुलावौं ।

कर, पद, मुख, चख कमल लसत लखि लोचन-भँवर भुलावौं ॥

बाल-बिनोद-मोद-मंजुलमनि किलकनि खानि खुलावौं ।

तेइ अनुराग ताग गुहिबे कहँ मति मृगनयनि बुलावौं ॥

तुलसी भनित भली भामिनि उर सो पहिराइ फुलावौं ।

चारु चरित रघुबर तेरे तेहि मिलि गाइ चरन चितु लावौं ॥ 15॥

सोइये लाल लाडिले रघुराई ।

मगन मोद लिये गोद सुमित्रा बार बार बलि जाई ॥

हँसे हँसत, अनरसे अनरसत प्रतिबिम्बनि ज्यों झाँई ।

तुम सबके जीवन के जीवन, सकल सुमंगलदाई ॥

मूल मूल सुरबीथि-बेलि, तम-तोम सुदल अधिकाई ।

नखत-सुमन, नभ-बिटप बौण्डि मानो छपा छिटकि छबि छाई ॥

हौ जँभात अलसात, तात! तेरी बानि जानि मैं पाई ।

गाइ गाइ हलराइ बोलिहौं सुख नींदरी सुहाई ॥

बछरु छबीलो छगनमगन मेरे कहति मल्हाइ मल्हाई ।

सानुज हिय हुलसति तुलसी के प्रभु की ललित लरिकाई ॥ 16॥

ललन लोने लेरुआ [1], बलि मैया ।

सुख सोइए नींद बेरिया भई, चारु-चरित चार्‌यौ भैया ॥

कहति मल्हाइ लाइ उर छिन-छिन, छगन छबीले छोटे छैया [2]।

मोद-कन्द कुल कुमुद-चन्द्र मेरे रामचन्द्र रघुरैया॥

रघुबर बालकेलि सन्तनकी सुभग सुभद सुरगैया ।

तुलसी दुहि पीवत सुख जीवत पय सप्रेम घनी घैया ॥ 17॥

सुखनींद कहति आलि आइहौं ।

राम, लखन, रिपुदवन, भरत सिसु करि सब सुमुख सोआइहौं ॥

---

[^1] लेरुआ = वछवा।

[^2] घैया = थन से निकलती हुई दूध की धार।

रोवनि, धोवनि, अनखानि, अनरसनि, डिठि-मुठि [1] निठुर नसाइहौं ।

हँसनि, खेलनि, किलकनि, आनन्दनि भूपति-भवन बसाइहौं ॥

गोद बिनोद-मोदमय मूरति हरषि हरषि हलराइहौं ।

तनु तिल तिल करि बारि राम पर लेहौं रोग बलाइहौं ॥

रानी-राउ सहित सुत परिजन निरखि नयन-फल पाइहौं ।

चारु चरित रघुबंस-तिलक के तहँ तुलसी मिलि गाइहौं ॥ 18॥

(राग आसावरी)

कनक-रतन मय पालनो रच्यो मनहुँ मार सुतहार [2] ।

बिबिध खेलौना किंकिनी, लागे मंजुल मुकुताहार ॥

रघुकुल-मंडन राम लला ॥

जननि उबटि अन्हवाइकै मनिभूषन सजि लिये गोद ।

पौढ़ाए पटु पालने, सिसु निरखि मगन मन मोद ॥

दसरथनन्दन राम लला ॥

मदन, मोर कै चन्द की झलकनि निदरति तनु-जोति ।

---

[^1] डिठि-मुठि = डीठ मूठ, नजर और टोना।

[^2] सुतहार = खाट बीननेवाला बढ़ई।

नील कमल, मनि जलद की उपमा कहे लघु मति होति ॥

मातु-सुकृत-फल राम लला ॥

लघु लघु लोहित ललिक हैं पद, पानि, अधर एक रंग ।

को कबि जो छबि कहि सकै नखसिख सुन्दर सब अंग ॥

परिजन-रंजन राम लला ॥

पग नूपुर, कटि किंकिनी, कर-कंजनि पहुँची मंजु ।

हिय हरि-नख अदभुत बन्यो मनो मनसिज मनि-गन-गंजु ॥

पुरजन-सिरमनि राम लला ॥

लोयन नील सरोज से, भ्रूपर मसि-बिन्दु [1] बिराज ।

जनु बिधु-मुख-छबि-अमिय को रच्छक राखे रसराज ॥

सोभासागर राम लला ॥

गभुआरी [2] अलकावली लसै, लटकन ललित ललाट ।

जनु उडुगन बिधु मिलन को चले तम बिदारि करि बाट ॥

सहज सोहावनो राम लला ॥

देखि खेलौना किलकहीं पद पानि बिलोचन लोल ।

बिचित्र बिहँग अलि जलज ज्यों सुखमा-सर करत कलोल ॥

---

[^1] मसिबिंदु = डिठौना।

[^2] गभुआरी = गर्भ अर्थात् पेट की।

भगत-कलपतरु राम लला ॥

बाल-बोल बिनु अरथ के सुनि देत पदारथ चारि ।

जनु इन्ह बचनन्हि तें भए सुरतरु तापस त्रिपुरारि ॥

नाम-कामधुक [1] राम लला ॥

सखी सुमित्रा वारहीं मनि भूषन बसन बिभाग ।

मधुर झुलाइ मल्हावहीं गावैं उमँगि उमँगि अनुराग ॥

हैं जग-मंगल राम लला ॥

मोती जायो सीप में अरु अदिति जन्यो जग-भानु ।

रघुपति जायो कौसिला गुन-मंगल-रूप-निधानु ॥

भुवन-बिभूषन राम लला ॥

राम प्रगट जब तें भए गए सकल अमंगल-मूल ।

मीत मुदित, हित उदित हैं, नित बैरिन के चित सूल ॥

भव भय-भंजन राम लला ॥

अनुज सखा सिसु संग लै खेलन जैहैं चौगान ।

लंका खरभर परैगी, सुरपुर बाजिहैं निसान ॥

रिपुगन-गंजन राम लला ॥

राम अहेरे चलहिंगे जब गज रथ बाजि सँवारि ।

---

[^1] कामधुक = कामधेनु।

दसकन्धर उर धकधकी अब जनि धावै धनु-धारि ॥

अरि-करि-केहरि राम लला ॥

गीत सुमित्रा सखिन्हकै सुनि सुनि सुर मुनि अनुकूल ।

दै असीस जय जय कहैं हरषैं बरषैं फूल ॥

सुर-सुखदायक राम लला ॥

बालचरित-मय चन्द्रमा यह सोरह-कला-निधान ।

चित-चकोर तुलसी कियो कर प्रेम-अमिय-रसपान ॥

तुलसी को जीवन राम लला ॥ 19॥

(राग कान्हरा)

पालने रघुपति झुलावै ।

लै लै नाम सप्रेम सरस स्वर कौसल्या कल कीरति गावै ॥

केकिकंठ दुति, स्यामबरन बपु, बाल-बिभूषन बिरचि बनाए ।

अलकैं कुटिल, ललित लटकन भ्रू, नील नलिन दोउ नयन सुहाए ॥

सिसु सुभाय सोहत जब कर गहि बदन निकट पदपल्लव लाए ।

मनहुँ सुभग जुग भुजग जलज भरि लेत सुधा ससि सों सचु पाए ॥

उपर अनूप बिलोकि खेलौना किलकत पुनि-पुनि पानि पसारत ।

मनहुँ उभय अंभोज अरुन सों बिधु-भय बिनय करत अति आरत ॥

तुलसिदास बहु बास बिबस अलि गुंजत सुछबि न जाति बखानी ।
मनहुँ सकल स्रुति ऋचा मधुप ह्वै बिसद सुजस बरनत बर बानी ॥ 20॥

(राग बिलावल)

झूलत राम पालने सोहैं ।
भूरि-भाग जननी जन जोहैं ॥
तन मृदु मंजुल मेचकताई ।
झलकति बाल बिभूषन झाँई ॥
अधर पानि पद लोहित लोने ।
कर-सिंगार-भव सारस सोने ॥
किलकत निरखि बिलोल खेलौना ।
मनहुँ बिनोद लरत छबि छौना॥
रंजित अंजन कंज-बिलोचन ।
भ्राजत भाल तिलक गोरोचन ॥
लस मसिबिन्दु बदन-बिधु नीको ।
चितवत चितचकोर तुलसीको ॥ 21॥

(राग कल्याण)

राजत सिसुरूप राम सकल गुन निकाय धाम,
कौतुकी कृपालु ब्रह्म जानु-पानि-चारी [1] ।
नीलकंज जलदपुंज मरकतमनि सरिस स्याम,
काम कोटि सोभा अंग अंग उपर बारी ॥
हाटक-मनि-रत्न-खचित रचित इंद्र-मन्दिराभ,
इंदिरानिवास सदन बिधि रच्यो सँवारी ।
बिहरत नृप-अजिर अनुज सहित बालकेलि कुशल,
नील-जलज-लोचन हरि मोचन भय-भारी ॥
अरुन चरन अंकुस धुज कंज कुलिस चिन्ह रुचिर,
भ्राजत अति नूपुर बर मधुर मुखरकारी ।
किंकिनी बिचित्र जाल, कम्बुकंठ ललित माल,
उर बिसाल केहरि नख, कंकन करधारी ॥
चारु चिबुक नासिका कपोल, भाल तिलक, भ्रुकुटि,
स्रवन अधर सुन्दर, द्विज-छबि अनूप न्यारी ।
मनहुँ अरुन कंज-कोस मंजुल जुगपाँति प्रसव,
कुन्दकली जुगल जुगल परम सुभ्रवारी ॥

[^1] जानु-पानि-चारी = घुटनों के बल चलने वाले।

चिक्कन चिकुरावली मनो षडंघ्रि [2]-मंडली,

बनी, बिसेषि गुंजत जनु बालक किलकारी ।

इकटक प्रतिबिम्ब निरखि पुलकत हरि हरषि हरषि,

लै उछंग जननी रसभंग जिय बिचारी ॥

जा कहँ सनकादि सम्भु नारदादि सुक मुनींद्र,

करत बिबिध जोग काम क्रोध लोभ जारी ।

दसरथ गृह सोइ उदार, भंजन संसार-भार,

लीला अवतार तुलसिदास त्रासहारी ॥ 22॥

(राग कान्हरा)

आँगन फिरत घुटुरुवनि धाए।

नील-जलद तनु-स्याम राम-सिसु जननि निरखि मुख निकट बोलाए ॥

बन्धुक-सुमन-अरुन पद-पंकज अंकुस प्रमुख चिन्ह बनि आए ।

नूपुर जनु मुनिबर-कलहंसनि रचे नीड़ [2], दै बाँह बसाए ॥

कटि मेखल, बर हार, ग्रीव-दर, रुचिर बाँह भूषन पहिराए ।

उर श्रीवत्स मनोहर हरिनख हेम मध्य मनिगन बहु लाए ॥

---

[^2] षडंघ्रि = षटपद्र, भौंरा।

[^2] नीड़ = घोंसला।

सुभग चिबुक द्विज अधर नासिका स्त्रवन कपोल मोहि अति भाए ।

भ्रू सुन्दर करुनारस-पूरन, लोचन मनहुँ जुगल जलजाए [1]॥

भाल बिसाल ललित लटकन बर, बालदसा के चिकुर सोहाए ।

मनु दोउ गुरु-सनि कुज आगे करि ससिहि मिलन तम के गन आए ॥

उपमा एक अभूत भई तब जब जननी पट पीत ओढ़ाए ।

नील जलद पर उडुगन निरखत तजि सुभाव मनों तड़ित छपाए ॥

अंग अंग पर मार-निकर मिलि छबि समूह लै-लै जनु छाए ।

तुलसिदास, रघुनाथ-रूप-गुन तौ कहौं जो बिधि होहिं बनाए ॥ 23॥

(राग केदारा)

रघुबर-बाल छबि कहौं बरनि ।

सकल सुख की सींव, कोटि मनोज-सोभाहरनि ॥

बसी मानहुँ चरन कमलनि अरुनता तजि तरनि ।

रुचिर नूपुर किंकिनी मन हरति रुनझुनु करनि ॥

मंजु मेचक मृदुल तनु अनुहरति भूषन भरनि ।

जनु सुभग सिंगार सिसु-तरु फर्‌यो है अदभुत फरनि ॥

भुजनि भुजग, सरोज नयननि, बदन बिधु जित्यो लरनि ।

[^1] जलजाए = जलजात, कमल।

रहे कुहरनि, सलिल नभ उपमा अपर दुरि डरनि ॥
लसत कर-प्रतिबिम्ब मनि-आँगन घुटुरुवनि चरनि ।
जलज-सम्पुट सुछबि भरि भरि धरति उर धरनि ॥
पुन्यफल अनुभवति सुतहि बिलोकि दसरथ-घरनि ।
बसति तुलसी-हृदय प्रभु किलकनि ललित लरखरनि ॥ 24॥

नेकु बिलोकि धौं रघुबरनि ।
चारि फल त्रिपुरारि तोको दिये कर नृप-घरनि ॥
बाल-भूषन-बसन, तन सुन्दर रुचिर रजभरनि ।
परसपर खेलनि अजिर, उठि चलनि, गिरि गिरि परनि ॥
झुकनि झाँकनि, छाँह सों किलकनि, नटनि, हठि लरनि ।
तोतरी बोलनि, बिलोकनि, मोहनी मनहरनि ॥
सखि बचन सुनि कौसिला लखि सुढर पासे ढरनि ।
लेति भरि भरि अंक सैन्तति [1] पैन्त [2] जनु दुहुँ करनि ॥
चरित निरखत बिबुध तुलसी ओट दै जलधरनि ।
चहत सुर सुरपति भयो सुरपति भये चहै तरनि ॥ 25॥

[^1] सैन्तति = संचय और रक्षा करना।

[^2] पैन्त = दाँव में रखा हुआ द्रव्य।

(राग जैतश्री)

भूमितल भूप के बड़े भाग ।

राम लषन रिपुदमन भरत सिसु निरखत अति अनुराग ॥

बाल-बिभूषन लसत पायँ मृदु मंजुल अंग-बिभाग ।

दसरथ सुकृत-मनोहर-बिरवनि रूप-करह [1] जनु लाग ॥

राजमराल बिराजत बिहरत जे हर-हृदय-तड़ाग ।

ते नृप-अजिर जानु कर धावत धरन चटक चल काग ॥

सिद्ध सिहात, सराहत मुनिगन, कहैं सुर किन्नर नाग ।

“ह्वै बरु बिहँग बिलोकिय बालक बसि पुर उपबन बाग” ॥

परिजन सहित राय रानिन्ह कियो मज्जन प्रेम-प्रयाग ।

तुलसी फल ताके चार्‍यो मनि मरकत पंकजराग [2]॥ 26॥

(राग आसावरी)

छँगन मँगन अँगना खेलत चारु चार्‍यो भाई ।

सानुज भरत लाल लषन राम लोने लोने

[^1] करह = नया कल्ला।

[^2] पंकजराज = पद्मराग, मानिक।

लरिका लखि मुदित मातु समुदाई ॥

बाल-बसन-भूषन धरे नख-सिख छबि छाई ।

नील पीत मनसिज-सरसिज मंजुल

मालनि मानो है देहनितें दुति पाई ॥

ठुमुकु ठुमुकु पग धरनि, नटनि, लरखरनि सुहाई ।

भजनि मिलनि रुठनि तूठनि किलकनि,

अवलोकनि बोलनि बरनि न जाई ॥

जननि सकल चहुँ ओर आलबाल मनि-अँगनाई ।

दसरथ सुकृत-बिबुध-बिरवा [1] बिलसत

बिलोकि जनु बिधि बर बारि बनाई ॥

हरि बिरंचि हर हेरि राम प्रेम-परबसताई ।

सुख-समाज रघुराज के बरनत

बिसुद्ध मन सुरनि सुमन झरि लाई ॥

सुमिरत श्रीरघुबरनि की लीला लरिकाई ।

तुलसिदास अनुराग अवध आनँद

अनुभवत तब को सो अजहुँ अघाई ॥ 27॥

---

[^1] बिबुध-बिरवा = कल्पवृक्ष।

(राग बिलावल)

आँगन खेलत आनँदकन्द । रघुकुल कुमुद सुखद चारु चन्द ॥

सानुज भरत लषन सँग सोहैं । सिसु-भूषन भूषित मन मोहैं ।

तन दुति मोरचन्द जिमि झलकैं । मनहुँ उमगि अँग-अँग छबि छलकैं ॥

कटि किंकिनि, पग पैजनि बाजैं । पंकज-पानि पहुँचियाँ राजैं ।

कठुला कंठ बघनहा नीके । नयन-सरोज मयन-सरसी के ॥

लटकन लसत ललाट लटूरीं । दमकति द्वै द्वै दँतुरियाँ रुरीं ।

मुनि-मन हरत मंजु मसि बुन्दा । ललित बदन बलि बाल मुकुन्दा ॥

कुलही चित्र बिचित्र झँगूलीं । निरखत मातु मुदित मन फूलीं ।

गहि मनि-खम्भ डिम्भ डगि डोलत । कल-बल बचन तोतरे बोलत ॥

किलकत झुकि झाँकत प्रतिबिम्बनि । देत परम सुख पितु अरु अंबनि ।

सुमिरत सुखमा हिय हुलसी है । गावत प्रेम पुलकि तुलसी है ॥ 28॥

(राग कान्हरा)

ललित सुतहि लालति सचु पाए ।

कौसल्या कल कनक अजिर महँ सिखवति चलन अँगुरियाँ लाए॥

कटि किंकिनी, पैजनी पायनि बाजति रुनझुन मधुर रेंगाए ।

पहुँची करनि, कंठ कठुला बन्यो केहरि -नख-मनि-जरित जराए ॥

पीत पुनीत बिचित्र झँगुलिया सोहति स्याम सरीर सोहाए ।
दँतियाँ द्वै-द्वै मनोहर मुख छबि, अरुन अधर चित लेत चोराए ॥
चिबुक कपोल नासिका सुन्दर, भाल तिलक मसिबिन्दु बनाए ।
राजत नयन मंजु अंजनजुत खंजन कंज मीन मद नाए ॥
लटकन चारु भ्रुकुटिया टेढ़ी, मेढ़ी सुभग सुदेस सुभाए ।
किलकि किलकि नाचत चुटकी सुनि, डरपति जननि पानि छुटकाए ॥
गिरि घुटुरुवनि टेकि उठि अनुजनि तोतरि बोलत पूप देखाए।
बाल-केलि अवलोकि मातु सब मुदित मगन आनँद न अमाए ॥
देखत नभ घन-ओट चरित मुनि जोग समाधि बिरति बिसराए ।
तुलसिदास जे रसिक न यहि रस ते जन जड़ जीवत जग जाए॥ 29

(राग ललित)

छोटी छोटी गोड़ियाँ अँगुरियाँ छबीलीं छोटी
नख-जोति मोती मानो कमल-दलनि पर ।
ललित आँगन खेलैं, ठुमुकु ठुमुकु चलैं,
झुँझुनु झुँझुनु पाँय पैजनी मृदु मुखर ॥
किंकिनी कलित कटि हाटक-जटित मनि,
मंजु कर कंजनि पहुँचियाँ रुचिरतर ।

पियरी झीनी झँगुली साँवरे सरीर खुली,
बालक दामिनि ओढ़ी मानो बारे बारिधर ॥
उर बघनहा, कंठ कठुला, झँडूले केश,
मेढ़ी लटकन मसिबिन्दु मुनि मन-हर ।
अंजन-रंजित नैन, चित चोरै चितवनि,
मुख-सोभा पर वारौं अमित असमसर ॥
चुटकी बजावती नचावती कौसल्या माता,
बालकेलि गावती मल्हावती सुप्रेम-भर ।
किलकि किलकि हँसैं, द्वै-द्वै दँतुरियाँ लसैं,
तुलसी के मन बसैं तोतरे बचन बर ॥ 30॥

सादर सुमुखि बिलोकि राम-सिसुरूप, अनूप भूप लिए कनियाँ ।
सुदंर स्याम-सरोज-बरन तनु, नखसिख सुभग सकल सुखदनियाँ ॥
अरुन चरन नखजोति जगमगति, रुनझुनु करति पाँय पैंजनियाँ ।
कनक-रतन-मनि जटित रटति कटि किंकिनि कलित पीतपट-तनियाँ ॥
पहुँची करनि, पदिक हरिनख उर, कठुला कंठ, मंजु गजमनियाँ ।
रुचिर चिबुक, रद अधर मनोहर, ललित नासिका लसति नथुनियाँ ॥
बिकट भ्रुकुटि सुखमानिधि आनन कल कपोल काननि नगफनियाँ ।

भाल तिलक मसिबिन्दु बिराजत, सोहति सीस लाल चौतनियाँ ॥

मनमोहनी तोतरी बोलनि, मुनि-मन-हरनि हँसनि किलकनियाँ ।

बाल सुभाय बिलोल बिलोचन, चोरति चितहि चारु चितवनियाँ ॥

सुनि कुलबधू झरोखनि झाँकति रामचन्द्र-छबि चन्दबदनियाँ ।

तुलसिदास प्रभु देखि मगन भईं प्रेमबिबस कछु सुधि न अपनियाँ ॥ 31॥

(राग बिलावल)

सोहत सहज सुहाये नैन ।

खंजन मीन कमल सकुचत तब जब उपमा चाहत कबि दैन ॥

सुन्दर सब अंगनि सिसु-भूषन राजत जनु सोभा आए लैन ।

बड़ो लाभ, लालची लोभ बस रहि गयो लखि सुखमा बहु मैन ॥

भोर भूप लिये गोद मोद भरे, निरखत बदन, सुनत कल बैन ।

बालक-रूप अनूप राम-छबि निवसति तुलसिदास-उर-ऐन ॥ 32॥

(राग बिभास)

भोर भयो जागहु, रघुनन्दन ! गत-व्यलीक [1] भगतनि उर-चन्दन ॥

ससि करहीन, छीन दुति तारे । तमचुर मुखर, सुनहु मेरे प्यारे !॥

---

[^1] व्यलीक = कपट।

बिकसित कंज, कुमुद बिलखाने । लै पराग रस मधुप उड़ाने ॥
अनुज सखा सब बोलनि आए । बंदिन्ह अति पुनीत गुन गाए ॥
मनभावतो कलेऊ कीजै । तुलसिदास कहँ जूठनि दीजै ॥ 33॥

प्रात भयो तात, बलि, मातु, बिधु बदन पर
मदन वारौं कोटि, उठो प्रान-प्यारे !
सूत मागध बंदि बदत बिरुदावली,
द्वार सिसु-अनुज प्रियतम तिहारे ॥
कोक गतसोक अवलोकि ससि छीनछबि,
अरुनमय गगन राजत रुचिर तारे ।
मनहुँ रबि-बाल मृगराज तमनिकर-करि
दलित, अति ललित मनिगन बिथारे ॥
सुनहु तमचुर मुखर, कीर कलहंस पिक,
केकि रव कलित, बोलत बिहँग बारे ॥ 34॥

मनहुँ मुनिबृन्द रघुबंसमनि! रावरे
गुनत गुन आस्रमनि सपरिवारे ॥
सरनि बिकसित कंजपुंज मकरन्द वर,

मंजुतर मधुर मधुकर गुँजारे ।

मनहुँ प्रभुजन्म सुनि चैन अमरावती,

इन्दिरानन्द मन्दिर सँवारे ॥

प्रेम-सम्मिलित बर बचन-रचना अकनि,

राम राजीव-लोचन उघारे ।

दास तुलसी मुदित, जननि करै आरती,

सहज सुन्दर अजिर पाँव धारे ॥ 35॥

जागिए कृपानिधान जानराय रामचन्द्र!

जननी कहै बार बार भोर भयो प्यारे ।

राजिवलोचन बिसाल, प्रीति-बापिका मराल,

ललित कमल-बदन ऊपर, मदन कोटि बारे ॥

अरुन उदित, बिगत सर्बरी, ससांक किरनिहीन,

दीन दीपजोति, मलिन-दुति समूह तारे ।

मनहुँ ज्ञान घन प्रकास, बीते सब भव-बिलास

आस-त्रास तिमिर तोष-तरनि-तेज जारे ॥

बोलत खगनिकर मुखर मधुर-करि प्रतीति

सुनहु स्रवन, प्रानजीवन धन, मेरे तुम बारे ।

मनहुँ बेद बन्दी मुनिबृन्द सूत मागधादि बिरुद
बदत ‘जय जय जय जयति कैटभारे’॥
बिकसित कमलावली, चले प्रपुंज चंचरीक,
गुंजत कल कोमल धुनि त्यागि कंज न्यारे ।
जनु बिराग पाइ सकल सोक-कूप-गृह बिहाइ
भृत्य प्रेममत्त फिरत गुनत गुन तिहारे ॥
सुनत बचन प्रिय रसाल जागे अतिसय दयाल,
भागे जंजाल बिपुल, दुख-कदम्ब [1] दारे ।
तुलसिदास अति अनन्द देखिकै मुखारबिन्द,
छूटे भ्रमफन्द परम मन्द द्वन्द भारे ॥ 36॥

बोलत अवनिप-कुमार ठाढ़े नृपभवन-द्वार,
रुप-सील-गुन उदार जागहु मेरे प्यारे ।
बिलखित कुमुदनि, चकोर, चक्रवाक हरष भोर,
करत सोर तमचुर खग, गुंजत अलि न्यारे ॥
रुचिर मधुर भोजन करि, भूषन सजि सकल अंग,
संग अनुज बालक सब बिबिध बिधि सँवारे ।

---

[^1] कदम्ब = समूह।

करतल गहि ललित चाप भंजन रिपु-निकर-दाप,

कटितट पटपीत, तून सायक अनियारे ॥

उपबन मृगया-बिहार-कारन गवने कृपाल,

जननी मुख निरखि पुन्यपुंज निज बिचारे ।

तुलसिदास संग लीजै, जानि दीन अभय कीजै

दीजै मति बिमल गावै चरित बर तिहारे ॥ 37॥

(राग नट)

खेलन चलिये आनँदकन्द ।

सखा प्रिय नृपद्वार ठाढ़े बिपुल बालक-बृन्द ॥

तृषित तुम्हरे दरस कारन चतुर चातक-दास ।

बपुष-बारिद बरषि छबि-जल हरहु लोचन-प्यास ॥

बन्धु-बचन बिनीत सुनि उठे मनहुँ केहरि-बाल ।

ललित लघु सर चाप कर, उर नयन बाहु बिसाल ॥

चलत पद प्रतिबिम्ब राजत अजिर सुखमा-पुंज ।

प्रेमबस प्रति चरन महि मानो देति आसन कंज ॥

निरखि परम बिचित्र सोभा चकित चितवहिं मात ।

हरष-बिबस न जात कहि, 'निज भवन बिहरहु, तात' ॥

देखि तुलसीदास प्रभु-छबि रहे सब पल रोकि ।
थकित निकर चकोर मानहुँ सरद-इंदु बिलोकि ॥ 38॥

बिहरत अवध-बीथिन राम ।
संग अनुज अनेक सिसु नव-नील-नीरद स्याम ॥
तरुन अरुन-सरोज-पद बनी कनकमय पदत्रान ।
पीत-पट कटि तून बर, कर ललित लघु धनु-बान ॥
लोचननि को लहत फल छबि निरखि पुर-नर-नारि ।
बसत तुलसीदास उर अवधेस के सुत चारि ॥ 39॥

जैसे राम ललित तैसे लोने लषन लालु ।
तैसेई भरत सील-सुखमा-सनेह-निधि, तैसेई सुभग सँग सत्रुसालु ॥
धरे धनु सर कर, कसे कटि तरकसी, पीरे पट ओढ़े चले चारु चालु ।
अंग अंग भूषन जराय के जगमगत, हरत जन के जीको तिमिरजालु ॥
खेलत चौहट घाट बीथी बाटिकनि प्रभु सिव सुप्रेम-मानस-मरालु ।
सोभा-दान दै दै सनमानत जाचकजन करत लोक-लोचन निहालु ॥
रावन-दुरित-दुख दलैं सुर कहैं आजु ‘अवध सकल सुख को सुकालु’।
तुलसी सराहैं सिद्ध सुकृत कौसल्या जूके, भूरि भाग-भाजन भुवालु ॥ 40॥

(राग ललित)

ललित-ललित लघु लघु धनु सर कर,
तैसी तरकसी, कटि कसे पट पियरे ।
ललित पनही पाँय पैंजनी-किंकिनि-धुनि,
सुनि सुख लहै मनु रहै नित नियरे ॥
पहुँची अंगद चारु, हृदय पदिक हारु,
कुंडल-तिलक-छबि गड़ी कबि जियरे ।
सिरसि टिपारो [1] लाल, नीरज-नयन बिसाल,
सुन्दर बदन ठाढ़े सुरतरु सियरे ॥
सुभग सकल अंग, अनुज बालक संग,
देखि नर-नारि रहैं ज्यों कुरंग दियरे [2]।
खेलत अवध खोरि, गोली भौंरा चक डोरि,
मूरति मधुर बसै तुलसीके हियरे ॥ 41॥

छोटिऐ धनुहियाँ, पनहियाँ पगनि छोटी,
छोटिऐ कछौटी कटि, छोटिऐ तरकसी ।

[^1] टिपारा = ऊँची दीवार की टोपी के आकार का मुकुट।

[^2] दियरा = बड़ा सा लुक जो शिकारी हिरनों को आकर्षित करने के लिए जलाते है।

लसत झँगूली झीनी, दामिनि की छबि छीनी,

सुन्दर बदन, सिर पगिया जरकसी ॥

बय-अनुहरत बिभूषन बिचित्र अंग,

जोहे जिय आवति सनेह की सरक [1] सी ।

मूरति की सूरति कही न परै तुलसी पै,

जानै सोई जाके उर कसकै करक सी ॥ 42॥

(राग टोड़ी)

राम-लषन इक ओर, भरत रिपुदवन लाल इक ओर भये ।

सरजुतीर सम सुखद भूमि-थल, गनि-गनि गोइयाँ बाँटि लये ॥

कन्दुक-केलि-कुसल हय चढ़ि-चढ़ि, मन कसि-कसि ठोंकि-ठोंकि खये[2]।

कर-कमलनि बिचित्र चौगानैं, खेलन लगे खेल रिझये ॥

ब्योम बिमाननि बिबुध बिलोकत खेलक पेखक छाँह छये ।

सहित समाज सराहि दसरथहि बरषत निज तरु कुसुम चये ॥

एक लै बढ़त, एक फेरत, सब प्रेम-प्रमोद-बिनोद-मये ।

एक कहत भइ हार राम जू की, एक कहत भैया भरत जये ॥

---

[^1] सरक = शराब या शराब का खुमार।

[^2] खये = बाहुमूल।

प्रभु बकसत गज बाजि बसन मनि, जय धुनि गगन निसान हये ।
पाइ सखा-सेवक जाचक भरि जनम न दुसरे द्वार गये ॥
नभ-पुर परति निछावरि जहँ तहँ, सुर-सिद्धनि बरदान दये ।
भूरि-भाग अनुराग उमँगि जे गावत-सुनत चरित नित ये ॥
हारे हरष होत हिय भरतहि, जिते सकुच सिर नयन नए ।
तुलसी सुमिरि सुभाव-सील सुकृती तेइ जे एहि रंग रए ॥ 43॥

खेलि खेल सुखेलनिहारे ।
उतरि उतरि चुचुकारि तुरंगनि सादर जाइ जोहारे ॥
बन्धु-सखा-सेवक सराहि सनमानि सनेह सँभारे ।
दिए बसन गज बाजि साजि सुभ साज सुभाँति सँवारे ॥
मुदित नयन-फल पाइ, गाइ गुन सुर सानन्द सिधारे ।
सहित समाज राजमन्दिर कहँ राम राउ पगु धारे ॥
भूप-भवन घर-घर घमंड कल्यान कोलाहल भारे ।
निरखि हरषि आरती-निछावरि करत सरीर बिसारे ॥
नित नए मंगल-मोद अवध सब, सब बिधि लोग सुखारे ।
तुलसी तिन्ह सम तेउ जिन्हके प्रभु तें प्रभु-चरित पियारे ॥ 44॥

(राग सारंग)

चहत महामुनि जाग जयो [1]।

नीच निसाचर देत दुसह दुख, कृस तनु ताप तयो ॥

सापे पाप, नये निदरत खल, तब यह मन्त्र ठयो ।

बिप्र-साधु-सुर-धेनु-धरनि-हित हरि अवतार लयो ॥

सुमिरत श्रीसारंगपानि छन में सब सोच गयो ।

चले मुदित कौसिक कोसलपुर, सगुननि साथ दयो ॥

करत मनोरथ जात पुलकि, प्रगटत आनन्द नयो ।

तुलसी प्रभु-अनुराग उमगि मग मंगल मूल भयो ॥ 45॥

आजु सकल सुकृत फलु पाइहौं ।

सुखकी सींव, अवधि आनँद की, अवध बिलोकि हौं पाइहौं ॥

सुतनि सहित दसरथहि देखिहौं, प्रेम पुलकि उर लाइहौं ।

रामचन्द्र-मुखचन्द्र-सुधा-छबि नयन-चकोरनि प्याइहौं ॥

सादर समाचार नृप बुझिहैं हौं सब कथा सुनाइहौं ।

तुलसी ह्वै कृतकृत्य आस्रमहिं राम लषन लै आइहौं ॥ 46॥

---

[^1] जयो = यजन किया।

(राग नट)

देखि मुनि! रावरे पद आज ।
भयो प्रथम गनती में अब तें हौं जहँ लौं साधु-समाज ॥
चरन बंदि कर जोरि निहोरत, “कहिय कृपा करि काज ।
मेरे कछु न अदेय राम बिनु, देह-गेह सब राज”॥
भली कही भूपति त्रिभुवन में को सुकृती सिरताज? ।
तुलसि राम-जनमहि तें जनियत सकल सुकृत को साज ॥ 47॥

राजन! राम-लषन जौं दीजै ।
जस रावरो, लाभ ढोटनिहूँ, मुनि सनाथ सब कीजै ॥
डरपत हौ साँचे सनेह-बस सुत-प्रभाव बिनु जाने ।
बूझिय बामदेव अरु कुलगुरु, तुम पुनि परम सयाने ॥
रिपु रन दलि, मख राखि, कुसल अति अलप दिननि घर ऐहैं ।
तुलसिदास रघुबंस-तिलक की कबिकुल कीरति गैहैं ॥ 48॥

रहे ठगिसे नृपति सुनि मुनिबर के बयन ।
कहि न सकत कछु, राम-प्रेमबस पुलक गात भरे नीर नयन ॥
गुरु बसिष्ठ समुझाय कह्यो तब हिय हरषाने सेष-सयन ।

सौंपे सुत गहि पानि पाँय परि, भूसुर उर चले उमँगि चयन ॥
तुलसी प्रभु जोहत पोहत चित, सोहत मोहत कोटि मयन ।
मधु माधव मूरति दोउ सँग मानो दिनमनि गवन कियो उतर अयन ॥ 49॥

(राग सारंग)

ऋषि सँग हरषि चले दोउ भाई ।
पितु-पद बंदि सीस लियो आयसु सुनि सिष आसिष पाई ॥
नील पीत पाथोज बरन बपु, बय किसोर बनि आई ।
सर धनु पानि, पीत पट कटितट कसे निखंग बनाई ॥
कलित कंठ मनि-माल, कलेवर चन्दन खौरि सुहाई ।
सुन्दर बदन, सरोरुह-लोचन, मुखछबि बरनि न जाई ॥
पल्लव पंख सुमन सिर सोहत, क्यों कहौं बेष लुनाई ?
मनु मूरति धरि उभय भाग भइ त्रिभुवन सुन्दरताई ॥
पैठत सरनि, सिलनि चढ़ि चितवत खग-मृग-बन रुचराई ।
सादर सभय सप्रेम पुलकि मुनि पुनि-पुनि लेत बुलाई ॥
एक तीर तकि हती ताडका, बिद्या बिप्र पढ़ाई ।
राख्यो जज्ञ जीति रजनीचर, भइ जग-बिदित बड़ाई ॥
चरन-कमल-रज-परस अहल्या निज पति-लोक पठाई ।

तुलसिदास प्रभु के बूझे मुनि सुरसरि कथा सुनाई ॥ 50॥

(राग नट)

दोउ राजसुवन राजत मुनिके संग ।
नखसिख लोने, लोने बदन, लोने लोने लोयन, दामिनि-बारिद-बरबरन अंग॥
सिरनि सिखा सुहाइ, उपबीत पीत पट, धनु-सर कर, कसे कटि निखंग ।
मानो मख-रुज निसिचर हरिबेको सुत पावक के साथ पठये पतंग [1]॥
करत छाँह घन, बरषैं सुमन सुर, छबि बरनत अतुलित अनंग ।
तुलसी प्रभु बिलोकि मग, लोग, खग-मृग प्रेम मगन रँगे रुप-रंग॥ 51॥

(राग कल्याण)

मुनि के संग बिराजत बीर
काकपच्छ धर, कर कोदंड-सर, सुभग पीतपट कटि तूनीर ॥
बदन इंदु, अंभोरुह लोचन, स्याम गौर सोभा-सदन सरीर ।
पुलकत ऋषि अवलोकि अमित छबि, उर न समाति प्रेम की भीर ॥
खेलत, चलत करत मग कौतुक बिलँबत सरित-सरोबर-तीर ।
तोरत लता सुमन सरसीरुह, पियत सुधासम सीतल नीर ॥

---

[^1] पतंगसुत = सूर्य के पुत्र अश्विवनी कुमार।

बैठत बिमल सिलनि बिटपनि तर, पुनि पुनि बरनत छाँह समीर ।

देखत नटत [1] केकि, कल गावत मधुप मराल कोकिला कीर ॥

नयननि को फल लेत निरखि खग मृग सुरभी ब्रज [2] बधू अहीर ।

तुलसी प्रभुहि देत सब आसन निज निज मन मृदु कमल कुटीर ॥ 52॥

(राग कान्हरा)

सोहत मग मुनि सँग दोउ भाई ।

तरुन तमाल चारु चम्पक-छबि कबि-सुभाय कहि जाई ॥

भूषन बसन अनुहरत अंगनि, उमगति सुन्दरताई ।

बदन-मनोज सरोज लोचननि रही है लुभाइ लुनाई ॥

अंसनि [3] धनु, सर कर-कमलनि, कटि कसे हैं निखंग बनाई ।

सकल-भुवन-सोभा-सरबसु लघु लागति निरखि निकाई ॥

महि मृदु पथ, घन छाँह, सुमन सुर बरषि, पवन सुखदाई ।

जल-थल-रुह फल फूल सलिल सब करत प्रेम पहुनाई ॥

सकुच सभीत बिनीत साथ गुरु बोलनि-चलनि सुहाई ।

---

[^1] नटत = नाचते है।

[^2] ब्रज = अहीरों का टोल या बाड़ा।

[^3] अंसनि = कंधों पर।

खग मृग-चित्र [1] बिलोकत बिच-बिच लसति ललित लरिकाई ॥
बिद्या दई जानि बिद्यानिधि, बिद्यहु लही बड़ाई ।
ख्याल दली ताड़ुका, देखि ऋषि देत असीस अघाई ॥
बूझत प्रभु सुरसरि प्रसंग कहि निज-कुल कथा सुनाई ।
गाधिसुवन-सनेह-सुख-सम्पति उर-आस्रम न समाई ॥
बनबासी बट, जती जोगि-जन साधु-सिद्ध-समुदाई ।
पूजत पेखि प्रीति पुलकत तनु, नयन लाभ लुटि पाई ॥
मख राख्यो खलदल दलि भुजबल, बाजत बिबुध बधाई ।
नित पथ-चरित-सहित तुलसी-चित बसत लखन रघुराई ॥ 53॥

(राग कान्हरा)

मंजुल मंगलमय नृप-ढोटा ।
मुनि, मुनितिय, मुनिसिसु बिलोकि कहैं मधुर मनोहर जोटा ॥
नाम-रुप-अनुरुप बेष बय, राम लखन लाल लोने ।
इन्हतें लही है मानो घन दामिनि दुति मनसिज मरकत सोने ॥
चरन-सरोज, पीतपट कटितट, तून-तीर-धनुधारी ।
केहरिकन्ध, काम-करि-करवर बिपुल बाहु, बल भारी ॥

[^1] चित्र = रंग बिरंग।

दूषन-रहित समय सम भूषन पाइ सुअंगनि सोहैं ।

नव-राजीव-नयन, पुरन बिधुबदन मदन मन मोहैं ॥

सिरनि सिखंड [1], सुमन-दल-मंडन बाल सुभाय बनाए ।

केलि-अंक तनु-रेनु पंक जनु प्रगटत चरित चोराए [2]॥

मख राखिबे लागि दसरथ सों माँगि आस्रमहिं आने ।

प्रेम पूजि पाहुने प्रानप्रिय गाधिसुवन सनमाने ॥

साधन-फल साधक सिद्धनि के, लोचन-फल सबही के ।

सकल सुकृत-फल मातु-पिता के, जीवनधन तुलसी के ॥ 54॥

(राग सूहो)

रामपद-पदुम-पराग परी ।

ऋषितिय तुरत त्यागि पाहन-तनु छबिमय देह धरी ॥

प्रबल पाप पति-साप-दुसह-दव दारुन जरनि जरी ।

कृपा-सुधा सिंचि बिबुध-बेलि ज्यौं फिरि सुख-फरनि फरी ॥

निगम-अगम मूरति महेस-मति-जुबति बराय बरी ।

---

[^1] सिखंड = मोरपक्ष।

[^2] केलिअकं... ... चुराए = खेल के चिह्न स्वरूप जो धूल और कीचड़ शरीर में लगा है वह मानो उस चरित्र को प्रकट करता है जो विश्वामित्र से चुरा कर किया गया।

सोइ मूरति भइ जानि नयनपथ इकटक तें न टरी ॥
बरनति हृदय सरुप सील गुन प्रेम-प्रमोद-भरी ।
तुलसिदास अस केहि आरतकी आरति प्रभु न हरी? ॥ 55॥

परत पद-पंकज-रज ऋषि-रवनी ।
भई है प्रगट अति दिब्य देह धरि मानो त्रिभुवन-छबि-छवनी ॥
देखि बड़ो आचरज पुलकि तनु कहति मुदित मुनि-भवनी ।
जो चलिहैं रघुनाथ पयादेहि सिला न रहिहि अवनी ॥
परसि जो पाँय पुनीत सिव-सिर सोहै तीनि-पथ-गवनी ।
तुलसिदास तेहि चरन-रेनु की महिमा कहै मति कवनी ॥ 56॥

भूरिभाग-भाजनु भई ।
रुपरासि अवलोकि बन्धु दोउ प्रेम-सुरंग रई ॥
कहा कहैं, केहि भाँति सराहैं नहि करतूति नई ।
बिनु कारन करुनाकर रघुबर केहि केहि गति न दई ?॥
करि बहु बिनय, राखि उर मूरति मंगल-मोदिमई ।
तुलसी ह्वै बिसोक पति-लोकहि प्रभुगुन गनत गई ॥ 57॥

(राग कान्हरा)

कौसिक के मख के रखवारे ।
नाम राम अरु लखन ललित अति दसरथ-राज-दुलारे ॥
मेचक पीत कमल कोमल कल काकपच्छ-धर बारे ।
सोभा सकल सकेलि मदन-बिधि सुकर सरोज सँवारे ॥
सहस समूह सुबाहु सरिस खल समर सूर भट भारे ।
केलि-तून-धनु-बान-पानि रन निदरि निसाचर मारे ॥
ऋषितिय तारि स्वयम्बर पेखन जनक-नगर पगु धारे ।
मग नर-नारि निहारत सादर कहैं बड़ भाग हमारे ॥
तुलसी सुनत एक-एकनि सो चलत बिलोकनिहारे ।
मूकनि बचन-लाहु, मानो अंधनि लहे हैं बिलोचन-तारे ॥ 58॥

(राग टोड़ी)

आए सुनि कौसिक जनक हरषाने हैं ।
बोलि गुर भूसुर समाज सों मिलन चले,
जानि बड़े भाग अनुराग अकुलाने हैं ॥

नाइ सीस पगनि, असीस पाइ प्रमुदित,
पाँवड़े अरघ देत आदर सों आने हैं ।

असन बसन बास कै सुपास सब बिधि,

पूजि प्रिय पाहुने, सुभाय सनमाने हैं ॥

बिनय बड़ाई ऋषि-राजउ परसपर

करत पुलकि प्रेम आनँद अघाने हैं ।

देखे राम-लखन निमेषै बिथकित भईं

प्रानहुँ ते प्यारे लागे बिनु पहिचाने हैं ॥

ब्रह्मानन्द हृदय, दरस-सुख लोयननि

अनभए उभय, सरस [1] राम जाने हैं ।

तुलसी बिदेह की सनेह की दसा सुमिरि

मेरे मन माने राउ निपट सयाने हैं ॥ 59॥

(राग मलार)

कोसलराय के कुअँरोटा ।

राजत रुचिर जनक-पुर पैठत स्याम गौर नीके जोटा ॥

चौतनि सिरनि, कनक-कली काननि, कटि पट पीत सोहाए ।

उर मनि-माल, बिसाल बिलोचन, सीय-स्वयम्बर आए ॥

[^1] सरस = बढ़कर।

बरनि न जात, मनहिं मन भावत, सुभग अबहिं बय थोरी ।

भई हैं मगन बिधुबदन बिलोकत बनिता चतुर चकोरी ॥

कहँ सिवचाप लरिकवनि बूझत बिहँसि चितै तिरछौंहैं ।

तुलसी गलिन भीर, दरसन लगि लोग अटनि आरोहैं ॥ 60॥

ये अवधेस के सुत दोऊ ।

चढ़ि मन्दिरनि बिलोकत सादर जनकनगर सब कोऊ ॥

स्याम गौर सुन्दर किसोर-तनु, तून-बान-धनुधारी ।

कटि पट पीत, कंठ मुकुतामनि, भुज बिसाल, बल-भारी ॥

मुख-मयंक, सरसीरुह-लोचन, तिलक भाल, टेढ़ी भौंहैं ।

कल कुंडल, चौतनी चारु अति, चलत मत्त-गज-गौं [1] हैं ॥

बिस्वामित्र हेतु पठये नृप, इनहि ताड़ुका मारी ।

मख राख्यो रिपु जीति, जान जग, मग मुनिबधू उधारी ॥

प्रिय पाहुने जानि नर-नारिन नयननि अयन दए ।

तुलसिदास प्रभु देखि लोग सब जनक समान [2] भए ॥ 61॥

---

[^1] गौं = ढब, चाल।

[^2] जनक समान = विदेह।

(राग टोड़ी)

बूझत जनक 'नाथ ढोटा दोउ काके हैं' ?

तरुन तमाल-चारु-चम्पक-बरन-तनु
कौन बड़े भागी के सुकृत परिपाके हैं ॥

सुख के निधान पाए, हिय के पिधान लाए,
ठग के से लाडू खाये, प्रेम मधु छाके हैं ।
स्वारथ-रहित परमारथी कहावत हैं,
भे सनेह-बिबस बिदेहता बिबाके [1] हैं ॥

सील-सुधा के अगार, सुखमा के पारावार,
पावत न पैरि पार पैरि पैरि थाके हैं ।
लोचन ललकि लागे, मन अति अनुरागे,
एक रसरुप चित सकल सभा के हैं ॥

जिय जिय जोरत सगाई राम लषन सों
आपने आपने भाय जैसे भाय जाके हैं ।
प्रीति को, प्रतीति को, सुमिरिबे को,

---

[^1] बिबाके = बेबाक किया, छोड़ा।

सेइबे को, सरन को समरथ तुलसिहु ताके हैं ॥ 62॥

ए कौन, कहाँ तें आए ?

नील-पीत पाथोज-बरन, मन-हरन सुभाय सुहाए ॥

मुनि-सुत किधौं भूप-बालक, किधौं ब्रह्म-जीव जग जाए ।

रुप जलधि के रतन सुछबि-तिय लोचन ललित ललाए ॥

किधौं रबि-सुवन, मदन-ऋतुपति, किधौं हरि-हर बेष बनाए ।

किधौं आपने सुकृत-सुरतरु के सुफल रावरेहि पाए ॥

भए बिदेह बिदेह नेहबस देहदसा बिसराए ।

पुलक गात, न समात हरष हिय, सलिल सुलोचन छाए ॥

जनक-बचन मृदु मंजु मधु-भरे भगति कौसिकहि भाए ।

तुलसी अति आनन्द उमगि उर राम लषन गुन गाए ॥ 63॥

कौसिक कृपाल हू को पुलकित तनु भो ।

उमँगत अनुराग, सभाके सराहे भाग,

देखि दसा जनक की कहिबे को मनु भो ॥

प्रीति के न पातकी [1], दिएहूँ साप पाप बड़ो,

---

[^1] प्रीति के न पातकी = यज्ञ में विघ्न करनेवाले पातकी राक्षस प्रीति के पात्र नहीं थे।

मख-मिस मेरो तब अवध-गवनु भो ।
प्रानहू ते प्यारे सुत माँगे दिए दसरथ,
सत्यसिन्धु सोच सहे, सूनो सो भवनु भो ॥

काकसिखा सिर, कर केलि-तून-धनु-सर,
बालक-बिनोद जातुधाननि सों रनु भो ।
बूझत बिदेह अनुराग-आचरज-बस,
ऋषिराज जाग भयो, महाराज अनुभो ॥

भूमिदेव नरदेव सचिव परसपर
कहत हमहिं सुरतरु सिवधनु भो ।
सुनत राजा की रीति उपजी प्रतीति-प्रीति,
भाग तुलसी के, भले साहेब को जनु भो ॥ 64॥

चार्‍यो भले बेटा देव दसरथ राय के ।
जैसे राम-लषन, भरत-रिपुहन तैसे,
सील-सोभा-सागर प्रभाकर प्रभाय के ॥

ताड़का सँहारि मख राखे, नीके पाले ब्रत,

कोटि-कोटि भट किए एक एक घाय के ।
एक बान बेगही उड़ाने जातुधान जात,
सूखि गये गात हैं पतौआ भए बाय के ॥

सिलाछोर छुवत अहल्या भई दिब्य देह,
गुन पेखे पारसके पंकरुह पाय के ।
राम के प्रसाद गुर गौतम खसम भये,
रावरेहु सतानन्द पूत भयो माय के ॥

प्रेम-परिहास-पोख बचन परसपर
कहत सुनत सुख सब ही सुभाय के ।
तुलसी सराहैं भाग कौसिक जनक जू के,
बिधि के सुढर होत सुढर सुदाय के ॥ 65॥

ये दोऊ दसरथ के बारे ।
नाम राम घनस्याम, लषन लघु नखसिख अँग उजियारे ॥
निज हित लागि माँगि आने मैं धर्मसेतु-रखवारे ।
धीर बीर बिरुदैत बाँकुरे महाबाहु बल भारे ॥
एक तीर तकि हती ताड़ुका, किए सुर-साधु सुखारे ।

जज्ञ राखि जग साखि, तोषि ऋषि, निदरि निसाचर मारे ॥

मुनितिय तारि स्वयम्बर पेखन आए सुनि बचन तिहारे ।

एक देखिहैं पिनाकु नेकु, जेहि नृपति लाज-ज्वर जारे ॥

सुनि सानन्द सराहि सपरिजन, बारहि बार निहारे ।

पूजि सप्रेम, प्रसंसि कौसिकहि भूपति सदन सिधारे ॥

सोचत सत्य-सनेह-बिबस निसि नृपहि गनत गए तारे ।

पठए बोलि भोर गुरु के सँग रंगभूमि पगु धारे ॥

नगर लोग सुधि पाइ मुदित सबही सब काज बिसारे ।

मनहुँ मघा-जल उमगि उदधि-रुख चले नदी-नद-नारे ॥

ए किसोर, धनु घोर बहुत, बिलखात बिलोकनिहारे ।

टर्‌यो न चाप तिन्हते जिन्ह सुभटनि कौतुक कुधर उखारे ॥

ए जाने बिनु जनक जानियत करि पन भूप हँकारे ।

नतरु सुधासागर परिहरि कत कूप खनावत खारे ॥

सुखमा सील सनेह सानि मनो रुप बिरंचि सँवारे ।

रोम रोम पर सोम काम सत कोटि बारि फेरि डारे ॥

कोउ कहै तेज प्रताप पुंज चितए नहिं जात, भिया रे [1] !

छुअत सरासन-सलभ जरैगो ये दिनकर-बंस-दिया रे ॥

---

[^1] भिया रे = भैया रे।

एक कहै कछु होउ, सुफल भए जीवन जनम हमारे ।
अवलोके भरि नयन आजु तुलसी के प्रानपियारे ॥ 66॥

जनक बिलोकि बार बार रघुबर को ।
मुनिपद सीस नाय आयसु असीस पाई,
एई बातैं कहत गवन कियो घर को ॥

नींद न परति राति, प्रेम पन एक भाँति,
सोचत सकोचत बिरंचि हरि हर को ।
तुम्हतें सुगम सब देव देखिबे को अब,
जस हंस किए जोगवत जुग पर को ॥

ल्याये संग कौसिक, सुनाए कहि गुनगन,
आए देखि दिनकर कुल-दिनकर को ।
तुलसी तेऊ सनेह को सुभाउ बाउ मानो
चलदल [1] को सो पात करै चित चर को ॥ 67॥

(राग केदारा)

[^1] चलदल = पीपल का वृक्ष।

रंग-भूमि भोरे ही जाइकै ।

राम लषन लखि लोग लूटिहैं लोचन-लाभ अघाइकै ॥

भूप-भवन घर घर, पुर बाहर इहै चरचा रही छाइकै ।

मगन मनोरथ मोद नारि-नर प्रेम-बिबस उठैं गाइकै ॥

सोचत बिधि-गति समुझि परसपर कहत बचन बिलखाइकै ।

कुँवर किसोर कठोर सरासन, असमंजस भयो आइकै ॥

सुकृत सँभारि मनाइ पितर सुर सीस ईसपद नाइकै ।

रघुबर-कर धनु-भंग चहत सब अपनो सो हितु चितु लाइकै ॥

लेत फिरत कनसुई [1] सगुन, सुभ बूझत गनक बोलाइकै ।

सुनि अनुकूल, मुदित मन मानहु धरत धीरजहि धाइकै ॥

कौसिक-कथा एक एकनि सों कहत प्रभाउ जनाइकै ।

सीय-राम संजोग जानियत रच्यो बिरंचि बनाइकै ॥

एक सराहि सुबाहु-मथन बर बाहु उछाह बढ़ाइकै ।

सानुज राज-समाज बिराजिहैं राम पिनाक चढ़ाइकै ॥

बड़ी सभा, बड़ो लाहु जस, बड़ी बड़ाई पाइकै ।

को सोहिहै और को लायक रघुनायकहि बिहाइकै?॥

---

[^1] कनसुई लेना = गोबर की गौर चलनी में रखकर स्त्रियाँ पृथ्वी पर फेंकती है। यदि वह गौर सीधी गिरती है तो सगुन और उलटी या आड़ी गिरती है तो अपसगुन मानती है।

गवनिहैं गँवहिं गँवाइ गरब गृह नृपकुल बलहि लजाइकै ।

भलीभाँति साहब तुलसी के चलिहैं ब्याहि बजाइकै ॥ 68॥

(राग टोड़ी)

भोर फूल बीनबे को गए फुलवाई हैं ।

सीसनि टिपारे, उपबीत, पीत पट कटि,

दोना बाम करनि सलोने भे सवाई हैं ॥

रुप के अगार भूप के कुमार सुकुमार,

गुरु के प्रानअधार संग सेवकाई हैं ।

नीच ज्यों टहल करैं, राखैं रुख अनुसरैं,

कौसिक से कोही बस किये दुहुँ भाई हैं ॥

सखिन सहित तेहि औसर बिधि के सँजोग

गिरिजाजू पूजिबे को जानकी जू आई हैं ।

निरखि लषन राम जाने ऋतुपति काम,

मोहि मानो मदन मोहनी मूड़ नाई हैं ॥

राघौजू-श्रीजानकी-लोचन मिलिबे को मोद

कहिबे को जोगु न, मैं बातैं सी बनाई हैं ।
स्वामी सीय सखिन्ह लषन तुलसी को तैसो
तैसो मन भयो जाकी जैसिये सगाई हैं ॥ 69॥

पूजि पारबती भले भाय पाँय परिकै ।
सजल सुलोचन सिथिल तनु पुलकित,
आवै न बचन मन रह्यो प्रेम भरिकै ॥

अंतरजामिनि भवभामिनि स्वामिनि सों हौं,
कही चाहौं बात, मातु अंत तौ हौं लरिकै ।
मूरति कृपालु मंजु माल दै बोलत भई,
पूजो मन कामना भावतो बरु बरिकै ॥

राम कामतरु पाइ, बेलि ज्यों बौंड़ी बनाइ,
माँग कोषि तोषि पोषि फैलि फूलि फरिकै ।
रहौगी कहौगी तब साँची कही अंबा सिय,
गहे पाँय द्वै उठाय माथे हाथ धरिकै ॥

मुदित असीस सुनि सीस नाइ पुनि पुनि,

बिदा भई देवी सों जननि डर डरिकै ।
हरषीं सहेली, भयो भावतो, गावतीं गीत,
गवनी भवन तुलसीस-हियो हरिकै ॥ 70॥

रंगभूमि आए दसरथ के किसोर हैं ।
पेखनो [1] सो पेखन चले हैं पुर-नर-नारि,
बारे बूढ़े अंध पंगु करत निहोर हैं ॥

नील-पीत-नीरज कनक-मरकत-घन-
दामिनी-बरन तनु रुप के निचोर हैं ।
सहज सलोने, राम लषन ललित नाम,
जैसे सुने तैसेई कुँवर सिरमौर हैं ॥

चरन-सरोज, चारु जंघा जानु ऊरु कटि,
कन्धर बिसाल, बाहु बड़े बरजोर हैं ।
नीके कै निषंग कसे, कर कमलनि लसै
बान बिसिषासन मनोहर कठोर हैं ॥

---

[^1] पेखनो = तमाशा।

काननि कनकफूल, उपबीत अनुकूल,
पियरे दुकूल बिलसत आछे छोर हैं ।
राजिव-नयन बिधुबदन टिपारे सिर,
नख सिख अंगनि ठगौरी ठौर ठौर हैं ॥

सभा-सरवर लोक-कोक-नद-कोकगन
प्रमुदित मन देखि दिनमनि भोर हैं ।
अबुध असैले मन-मैले महिपाल भए,
कछुक उलूक कछु कुमुद चकोर हैं ॥

भाई सों कहत बात, कौसिकहि सकुचात,
बोल घन घोर से बोलत थोर थोर हैं ।
सनमुख सबहि बिलोकत सबहि नीके,
कृपा सों हेरत हँसि तुलसी की ओर हैं ॥ 71॥

एई राम लषन जे मुनि सँग आए हैं ।
चौतनी-चोलना काछे, सखि! सोहैं आगे पाछे,
आछेहु तें आछे आछे आछे भाय भाए हैं ॥

साँवरे गोरे सरीर, महाबाहु, महाबीर,
कटि तून तीर धरे, धनुष सुहाए हैं ।
देखत कोमल कल, अतुल बिपुल बल,
कौसिक कोदंड-कला कलित सिखाए हैं ॥

इन्हहीं ताड़ुका मारी, गौतम की तिय तारी,
भारी भारी भूरि भट रन बिचलाए हैं ।
ऋषि मख रखवारे, दसरथ के दुलारे,
रंगभूमि पगु धारे, जनक बुलाए हैं ॥

इन्हके बिमल गुन गनत पुलकि तनु
सतनन्द कौसिक नरेसहि सुनाये हैं ।
प्रभु पद मन दिये, सो समाज चित किए
हुलसि हुलसि हिये तुलसिहुँ गाए हैं ॥ 72॥

(राग कान्हरा)

सीय स्वयम्बरु, माई, दोउ भाई आए देखन ।
सुनत चलीं प्रमदा प्रमुदित मन,
प्रेम पुलकि तनु मनहुँ मदन मंजुल पेखन ॥

निरखि मनोहरताई सुख पाई कहैं एक एक सों,
‘भूरि भाग हम धन्य, आलि ! ए दिन, ए खन।’
तुलसी सहज सनेह सुरँग सब,
सो समाज चित-चित्रसार लागी लेखन ॥ 73॥

(राग गौरी)

राम-लषन जब दृष्टि परे, री !
अवलोकत सब लोग जनकपुर मानो बिधि बिबिध बिदेह करे, री ॥
धनुषजज्ञ कमनीय अवनि-तल कौतुकही भए आय खरे, री ।
छबि-सुरसभा मनहु मनसिजके कलित कलपतरु रुख फरे, री ॥
सकल काम बरषत मुख निरखत, करषत चित हित हरष भरे, री ।
तुलसी सबै सराहत भूपहि भले पैत पासे सुढर ढरे, री ॥ 74॥

नेकु, सुमुखि, चित लाइ चितौ, री ।
राजकुँवर-मूरति रचिबे की रुचि सुबिरंचि स्रम कियो है कितौ, री ॥
नख सिख सुदंरता अवलोकत कह्यो न परत सुख होत जितौ, री ।
साँवर रुप-सुधा भरिबे कहँ नयन-कमल-कल-कलस रितौ, री ॥
मेरे जान इन्हैं बोलिबे कारन चतुर जनक ठयो ठाट इतौ, री ।

तुलसी प्रभु भंजिहैं सम्भु-धनु, भूरि भाग सिय मातु पितौ, री ॥ 75॥

(राग सारंग)

जबतें राम-लषन चितए, री ।
रहे इकटक नर-नारि जनकपुर, लागत पलक कलप बितए, री ॥
प्रेम-बिबस माँगत महेस सों देखत ही रहिए नित ए, री ।
कै ए सदा बसहु इन्ह नयनन्हि, कै ए नयन जाहु जित ए, री ॥
कोऊ समुझाइ कहै किन भूपहि, बड़े भाग आए इत ए री ।
कुलिस कठोर कहाँ संकर-धनु, मृदु मूरति किसोर कित ए, री ॥
बिरचत इन्हहिं बिरंचि भुवन सब सुन्दरता खोजत रित ए, री ।
तुलसिदास ते धन्य जनम जन, मन-क्रम-बच जिन्हके हित ए, री ॥ 76॥

सुनु सखि भूपति भलोइ कियो, री ।
जेहि प्रसाद अवधेस-कुवँर दोउ नगर-लोग अवलोकि जियो, री ॥
मानि प्रतीति कहे मेरे तैं कत सँदेह-बस करति हियो, री ।
तौलौं है यह सम्भु सरासन श्रीरघुबर जौलौं न लियो, री ॥
जेहि बिंरचि रचि सीय सँवारी, औ रामहि एसो रुप दियो, री ।

तुलसिदास तेहि चतुर बिधाता निज कर यह संजोग सियो [1], री ॥ 77॥

अनुकूल नृपहि सूलपानि हैं ।
नीलकंठ कारुन्यसिन्धु हर दीनबन्धु दिनदानि हैं ।
जो पहिले ही पिनाक जनक कहँ गए सौम्पि जिय जानि हैं ।
बहुरि त्रिलोचन लोचनके फल सबहि सुलभ किए आनि हैं॥
सुनियत भव-भावते राम हैं, सिय भावती-भवानि हैं ।
परखत प्रीति प्रतीति पयज पनु रहे काज ठट्ठ ठानि हैं ॥
भए बिलोकि बिदेह नेहबस बालक बिनु पहिचानि हैं ।
होत हरे होने बिरवनि दल सुमति कहति अनुमानि हैं ॥
देखियत भूप भोर के से उडुगन, गरत गरीब गलानि हैं ।
तेज प्रताप बढ़त कुँवरन को जदपि सँकोची बानि हैं ॥
बय किसोर बरजोर बाहुबल मेरु मेलि गुन तानिहैं ।
अवसि राम राजीव-बिलोचन सम्भु सरासन भानिहैं ॥
देखिहैं ब्याह-उछाह नारि-नर सकल सुमंगल-खानि हैं ।
भूरि भाग तुलसी तेऊ जे सुनिहैं, गाइहैं, बखानिहैं ॥ 78॥

---

[^1] सियो = सच्यो, उत्पन्न किया।

(राग केदारा)

रामहि नीके कै निरखि, सुनैनी !

मनसहुँ अगम समुझि यह अवसरु कत सकुचति पिकबैनी ॥

बड़े भाग मख-भूमि प्रगट भई सीय सुमंगल-ऐनी ।

जा कारन लोचन-गोचर भइ मूरति सब सुखदैनी ॥

कुलगुरि-तिय के मधुर बचन सुनि जनक-जुबति मति-पैनी ।

तुलसी सिथिल देह सुधि बुधि करि सहज-सनेह-बिषैनी ॥ 79॥

मिलो बरु सुन्दर सुन्दरि सीतहि लायकु,

साँवरो सुभग, शोभाहूँको परम सिंगारु ।

मनहूँ को मन मोहै, उपमा को को है?

सोहै सुखमासागर संग अनुज राजकुमारु ॥

ललित सकल अंग, तनु धरे कै अनंग,

नैननि को फल कैन्धौं, सिय को सुकृत-सारु ।

सरद-सुधा-सदन-छबिहि निन्दै बदन,

अरुन आयत नवनलिन-लोचन चारु ॥

जनक-मन की रीति जानि बिरहित प्रीति,

ऐसी औ मूरति देखे रह्यो पहिलो बिचारु ।

तुलसी नृपहि ऐसो कहि न बुझावै कोउ,

‘पन औ कुँअर दोऊ प्रेम की तुला धौं तारु’ [1]॥ 80॥

देखि देखि री! दोउ राजसुवन ।

गौर स्याम सलोने लोने, लोने लोयननि,

जिन्हकी सोभा तें सोहै सकल भुवन ॥

इन्हहीं ताड़ुका मारी, मग मुनि-तिय तारी,

ऋषिमख राख्यो, रन दले हैं दुवन ।

तुलसी प्रभु को अब जनकनगर-नभ,

सुजस-बिमल-बिधु चहत उवन ॥ 81॥

(राग टोड़ी)

राजा रंगभूमि आज बैठे जाइ जाइकै ।

आपने आपने थल, आपने आपने साज,

आपनी आपनी बर बानिक बनाइकै ॥

[^1] तारु = तौल।

कौसिक सहित राम-लषन ललित नाम,
लरिका ललाम लोने पठए बुलाइकै ।
दरसलालसा-बस लोग चले भाय भले,
बिकसित-मुख निकसत धाइ धाइ कै ॥

सानुज सानन्द हिये आगे ह्वै जनक लिए,
रचना रुचिर सब सादर देखाइ कै ।
दिये दिब्य आसन सुपास सा वकास अति,
आछे आछे बीछे बीछे बिछौना बिछाइकै ॥

भूपतिकिसोर दुहुँ ओर, बीच मुनिराउ
देखिबे को दाउँ, देखौ देखिबो बिहाइ कै ।
उदय-सैल सोहैं सुन्दर कुँवर, जोहैं,
मानौ भानु भोर भूरि किरनि छिपाइ कै ॥

कौतुक कोलाहल निसान गान पुर, नभ
बरषत सुमन बिमान रहे छाइकै ।
हित अनहित, रत बिरत बिलोकि बाल,

प्रेम-मोद-मगन जनम-फल पाइकै ॥

राजा की रजाइ पाइ सचिव सहेली धाइ,
सतानन्द ल्याए सिय सिबिका चढ़ाइ कै ।
रुप-दीपिका निहारि मृग-मृगी नर-नारि,
बिथके बिलोचन निमेषै बिसराइ कै ॥

हानि लाहु अनख उछाहु, बाहुबल कहि
बंदि बोले बिरद अकस उपजाइ कै ।
दीप दीप के महीप आए सुनि पैज पन,
कीजै पुरुषारथ को अवसर भो आइ कै ॥

आनाकानी, कंठ, हँसी मुँहा-चाही होन लगी,
देखि दसा कहत बिदेह बिलखाइ कै ।
घरनि सिधारिए सुधारिए आगिलो काज,
पूजि पूजि धनु कीजै बिजय बजाई कै॥

जनक-बचन छुए बिरबा लजारू के से
बीर रहे सकल सकुचि सिर नाइ कै।

तुलसी लषन माषे, रोषे, राखे रामरुख,
भाषे मृदु परुष सुभायन रिसाइ कै ॥ 82॥

भूपति बिदेह कही नीकियै जो भई है।
बड़े ही समाज आजु राजनिकी लाज-पति,
हाँकि आँक एक ही पिनाक छीनि लई है।

मेरो अनुचित न कहत लरिकाई-बस,
मन परमिति और भाँति सुनि गई है।
नतरू प्रभु -प्रताप उतरू चढ़ाय चाप,
देतो पै देखाइ बल, फल पापमई है।

भूमि के हरैया उखरैया भूमि-धरनि के,
बिधि बिरचे प्रभाउ जाको जग-जई है।
बिहँसि हिये हरषि हटके लषन राम,
सोहत सकोच सील नेह नारि नई [1] है।

सहमी सभा सकल, जनक भये बिकल,

[^1] नारि नई = नार या गरदन नीची हुई है।

राम लखि कौसिक असीस-आज्ञा दई है।

तुलसी सुभाय गुरुपाँय लागि रघुराज,

ऋषिराज की रजाइ माथे मानि लई है॥ 83॥

सोचत जनक पोच पेच परि गई है।

जोरि कर कमल निहोरि कहैं कौसिक सों,

‘आयसु भौ राम को सो मेरे दुचितई है॥

बान जातुधानपति भूप दीप सातहूँ के,

लोकप बिलोकत पिनाक भूमि लई है।

जोतिलिंग [1] कथा सुनि जाको अंत पाए बिनु

आए बिधि हरि हारि सोई हाल भई है॥

आपुही बिचारिए, निहारिए सभा की गति,

बेद -मरजाद मानौ हेतुबाद [2] हई है।

इन्हके जितौहैं मन, सोभा अधिकानी तन,

---

[^1] जोतिलिंग = शैव पुराणों की कथा है कि जब शिव का ज्योतिर्लिंग प्रकट हुआ तब ब्रह्मा और विष्णु उस पर घूमते ही रह गए किसी को उसका अंत न मिला।

[^2] हेतुबाद = तर्क शास्त्र।

मुखन की सुखमा सुखद सरसई है॥

रावरो भरोसो बल, कै है कोऊ कियो छल,
कैंधों कुल को प्रभाव, कैंधों लरिकाई है?
कन्या, कल कीरति, बिजय बिस्वकी बटोरि,
कैंधों करतार इन्हहीं को निरमई है॥

पन को न मोह, न बिसेष चिंता सीता हू की,
लुनिहै पै सोई सोई जोई जेहि बई है।
रहै रघुनाथ की निकाई नीकी नीके नाथ,
हाथ सो तिहारे करतुति जाकी नई है’॥

कहि ‘साधु साधु’ गाधि-सुवन सराहे राउ,
‘महराज! जानि जिय ठीक भली दई है’।
हरषे लखन, हरषाने बिलखाने लोग,
तुलसी मुदित जाको राजाराम जई है॥ 84॥

सुजन सराहैं जो जनक बात कही है।
रामहि सोहानी जानि, मुनिमन-मानी सुनि,

नीच महिपावली दहन बिनु दही है॥

कहैं गाधिनंदन मुदित रघुनंदन सों,
नृपगति अगह, गिरा न जाति गही है।
देखे सुने भूपति अनेक झूँठे झूँठे नाम,
साँचे तिरहुतिनाथ, साखि देति मही है॥

रागऊ बिराग, भोग जोग जोगवत मन,
जोगी जागबलिक प्रसाद सिद्धि लही है।
ताते न तरनि तें न सीरे सुधाकरहू तें,
सहज समाधि निरूपाधि निरबही है॥

ऐसेउ अगाध बोध रावरे सनेह-बस,
बिकल बिलोकति दुचितई सही है।
कामधेनु-कृपा हुलसानी तुलसीस उर,
पन-सिसु हेरि, मरजाद बाँधी रही है॥ 85॥

ऋषिराज राजा आजु जनक समान को?
आपु यहि भाँति प्रीति सहित सराहियत,

रागी औ बिरागी बड़भागी ऐसो आन को?॥

भूमि भोग करत अनुभवत जोग-सुख,
मुनि-मन-अगम अलख गति जान को?
गुरु हर-पद-नेहु गेह बसि भो बिदेह,
अगुन सगुन-प्रभु-भजन-सयान को?॥

कहनि रहनि एक, बिरति बिबेक नीति,
बेद-बुध-संमत पथी न निरबान को?
गाँठि बिनु गुन की कठिन जड़-चेतन की,
छोरी अनायास, साधु सोधक अपान को॥

सुनि रघुबीर की बचन-रचना की रीति,
भयो मिथिलेस मानो दीपक बिहान को।
मिट्यो महामोह जी को, छूट्यो पोच सोच सी को,
जान्यो अवतार भयो पुरूष पुरान को॥

सभा नृप गुरु, नर-नारि पुर, नभ सुर,
सब चितवन मुख करूनानिधान को।

एकै एक कहत प्रगट एक प्रेम-बस,

तुलसीस तोरिए सरासन इसान को॥ 86॥

(राग मारू)

सुनो भैया भूप सकल दै कान ।

बज्ररेख गजदसन जनक-पन बेद-बिदित, जग जान ॥

घोर कठोर पुरारि-सरासन, नाम प्रसिद्ध पिनाकु ।

जो दसकंठ दियो बाँवों, जेहि हर-गिरि कियो है मनाकु ॥

भूमि-भाल भ्राजत न चलत सो ज्यों बिरंचि को आँकु ।

धनु तोरै सोई बरै जानकी राउ होइ कि राकु ॥

सुनि आमरषि उठे अवनीपति, लगे बचन जनु तीर ।

टरै न चाप, करैं अपनी सी महा महा बलधीर ॥

नमित-सीस सोचहिं सलज्ज सब श्रीहत भए सरीर।

बोले जनक बिलोकि सीय तन दुखित सरोष अधीर ॥

सप्त दीप नव खंड भूमि के भूपति बृन्द जुरे ।

बड़ो लाभ कन्या-कीरति को जहँ तहँ महिप मुरे ॥

डग्यौ न धनु, जनु बीर-बिगत महि, किधौं कहुँ सुभट दुरे ।

रोषे लषन बिकट भृकुटी करि, भुज अरु अधर फुरे ॥

सुनहु भानुकुल-कमल-भानु ! जो तव अनुसासन पावौं ।
का बापुरो पिनाकु मेलि गुन मन्दर मेरु नवावौं ॥
देखौ निज किंकर को कौतुक क्यों कोदंड चढ़ावौं ।
लै धावौं, भंजौं मृनाल ज्यों तौ प्रभु अनुग कहावौं ॥
हरषै पुर-नर-नारि सचिव नृप कुँवर कहे बर बैन ।
मृदु मुसुकाइ राम बरज्यौ प्रिय बन्धु नयन की सैन ॥
कौसिक कह्यो उठहु रघुनन्दन जगबन्दन बलऐन ।
तुलसिदास प्रभु चले मृगपति ज्यौं निज भगतनि सुखदैन ॥ 87॥

जबहिं सब नृपति निरास भए ।
गुरुपद-कमल बंदि रघुपति तब चाप-समीप गए ॥
स्याम-तामरस-दाम-बरन बपु उर भुज नयन बिसाल ।
पीत बसन कटि, कलित कंठ सुन्दर सिन्धुर-मनि-माल ॥
कल कुंडल, पल्लव प्रसून सिर चारु चौतनी लाल ।
कोटि-मदन-छबि-सदन बदन-बिधु, तिलक मनोहर भाल ॥
रुप अनूप बिलोकत सादर पुरजन राजसमाज ।
लषन कह्यो थिर होहु धरनिधरु धरनि, धरनिधर आज ॥
कमठ, कोल, दिग-दन्ति सकल अँग सजग करहु प्रभु-काज ।

चहत चपरि सिव-चाप चढ़ावन दसरथ को जुबराज ॥

गहि करतल, मुनि-पुलक सहित, कौतुकहि उठाइ लियो ।

नृपगन-मुखनि समेत नमित करि सजि सुख सबहि जियो ॥

आकरष्यो सिय-मन समेत हरि, हरष्यो जनक-हियो ।

भंज्यो भृगुपति-गर्ब सहित, तिहुँ लोक बिमोह कियो ॥

भयो कठिन कोदंड-कोलाहल प्रलय-पयोद समान ।

चौंके सिव, बिरंचि, दिसिनायक, रहे मूँदि कर कान ॥

सावधान ह्वै चढ़े बिमाननि चले बजाइ निसान ।

उमगि चल्यौ आनन्द नगर, नभ जयधुनि मंगलगान ॥

बिप्र-बचन सुनि सुखी सुआसिनि चलीं जानकिहि ल्याइ ।

कुँवर निरखि जयमाल मेलि उर कुँवरि रही सकुचाइ ॥

बरषहिं सुमन असीसहिं सुर मुनि, प्रेम न हृदय समाइ ।

सीय राम की सुन्दरता पर तुलसिदास बलि जाइ ॥ 88॥

(राग मलार)

जब दोउ दसरथ-कुँवर बिलोके ।

जनक नगर नर-नारि मुदित मन निरखि नयन पल रोके ॥

बय किसोर, घन-तड़ित-बरन तनु नखसिख अंग लोभारे [1]।

दै चित, कै हित, लै सब छबि-बित बिधि निज हाथ सँवारे ॥

संकट नृपहि, सोच अति सीतहि, भूप सकुचि सिर नाए ।

उठे राम रघुकुल-कुल-केहरि, गुर-अनुसासन पाए ॥

कौतुक ही कोदंड खंडि प्रभु जय अरु जानकि पाई ।

तुलसिदास कीरति रघुपतिकी मुनिन्ह तिहूँ पुर गाई ॥ 89॥

(राग टोड़ी)

मुनि-पदरेनु रघुनाथ माथे धरी है ।

रामरुख निरखि, लषन की रजाइ पाइ,

धरा धरा धरनि सुसावधान करी है ॥

सुमिरि गनेस-गुर, गौरि-हर भूमिसुर,

सोचत सकोचत सकोची बानि धरी है ।

दीनबन्धु, कृपसिन्धु, साहसिक, सीलसिन्धु,

सभा को सकोच कुलहू की लाज परी है ॥

पेषि पुरुषारथ, परखि पन, पेम नेम,

---

[^1] लोमारे = लुभावने।

सिय-हिय की बिसेषि बड़ी खरभरी है ।

दाहिनो दियो पिनाकु, सहमि भयो मनाकु,

महाब्याल बिकल बिलोकि जनु जरी [1] है ॥

सुर हरषत बरषत फूल बार बार,

सिद्ध मुनि कहत सगुन सुभ घरी है ।

राम-बाहु-बिटप बिसाल बौंड़ी देखियत,

जनक-मनोरथ कलपबेलि फरी है ॥

लख्यो न चढ़ावत, न तानत, न तोरत हू,

घोर धुनि सुनि सिवकी समाधि टरी है ।

प्रभु के चरित चारु तुलसी सुनत सुख,

एक ही सुलाभ सबही की हानि हरी है ॥ 90॥

(राग सारंग)

राम कामरिपु-चाप चढ़ायो ।

मुनिहि पुलक, आनन्द नगर, नभ निरखि निसान बजायो ॥

जेहि पिनाक बिनु नाक किए नृप, सबहि बिषाद बढ़ायो ।

---

[^1] जरी = जड़ी।

सोइ प्रभु कर परसत टूट्यो जनु हुतो पुरारि पढ़ायो ॥
पहिराई जयमाल जानकी जुबतिन्ह मंगल गायो ।
तुलसी सुमन बरषि हरषे सुर, सुजस तिहूँ पुर छायो ॥ 91॥

(राग टोड़ी)

जनक मुदित मन टूटत पिनाक के ।
बाजे हैं बधावने सुहावने मंगल-गान,
भयो सुख एकरस रानी राजा राँक के ॥

दुन्दुभी बजाइ, गाइ हरषि बरषि फूल,
सुरगन नाचैं नाच नायकहू नाक के ।
तुलसी महीस देखे दिन रजनीस जैसे,
सूने परे सून-से मनो मोटाए आँक के ॥ 92॥

लाज तोरि, साजि साज राजा राढ़ रोषे हैं ।
कहा भौ चढ़ाए चाप, ब्याह ह्वै है बड़े खाए [1],
बोलैं खोलैं सेल असि चमकत चोखे हैं ॥

[^1] बड़े खाए = (मुहावरा) बड़ी कठिनता से।

जानि पुरजन त्रसे, धीर दै लषन हँसे,
बल इनको पिनाक नीके नापे जोखे हैं ।
कुलहि लजावैं बाल, बालिस बजावैं गाल,
कैधौं कूर काल बस तमकि त्रिदोषे हैं ॥

कुँवर चढ़ाई भौंहैं, अब को बिलोकै सोहैं,
जहँ तहँ भे अचेत, खेत के से धोखे [1] हैं ।
देखे नर-नारि कहैं, साग खाइ जाए माइ,
बाहु पीन पाँवरनि पीना [2] खाइ पोखे हैं ॥

प्रमुदित-मन लोक-कोक-नद कोकगन,
राम के प्रताप-रबि सोच-सर सोखे हैं ।
तब के देखैया तोषे, तब के लोगनि भले,
अब के सुनैया साधु तुलसिहु तोषे हैं ॥ 93॥

जयमाल जानकी जलजकर लई है ।
सुमन सुमंगल सगुन की बनाइ मंजु,

[^1] धोखे = खेत में पशु पक्षियों को डराने के लिए खड़ा किया हुआ चीथड़ों का पुतला।

[^2] पीना = तिल की खली अर्थात् निःसार भोजन।

मानहुँ मदनमाली आपु निरमई है ॥

राज-रुख लखि गुर भूसुर सुआसिनिन्ह,
समय-समाज की ठवनि भली ठई है ।
चलीं गान करत, निसान बाजे गहगहे,
लहलहे लोयन सनेह सरसई है ॥

हनि देव दुन्दुभी हरषि बरषत फूल,
सफल मनोरथ भो, सुख-सुचितई है ।
पुरजन परिजन रानी राउ प्रमुदित,
मनसा अनूप राम-रुप-रंग रई है ॥

सतानन्द सिष सुनि पाँय परि पहिराई,
माल सिय पिय-हिय सोहत सो भई है ।
मानस तें निकसि बिसाल सु तमाल पर,
मानहुँ मरालपाँति बैठी बनि गई है ॥

हितनि के लाह की, उछाह की, बिनोद मोद,
सोभा की अवधि नहि अब अधिकई है ।

याते बिपरीत अनहितन की जानि लीबी
गति, कहै प्रगट खुनिस खासी खई [1] है ॥

निज निज बेद की सप्रेम जोग-छेम-मई,
मुदित असीस बिप्र बिदुषनि दई है ।
छबि तेहि काल की कृपालु सीतादूलह की
हुलसति हिए तुलसी के नित नई है ॥ 94॥

(राग केदारा)

लेहु री! लोचननि को लाहु ।
कुँवर सुन्दर साँवरो, सखि सुमुखि ! सादर चाहु ॥
खंडि हर-कोदंड ठाढ़े, जानु-लम्बित-बाहु ।
रुचिर उर जयमाल राजित, देत सुख सब काहु ॥
चितै चित-हित-सहित नख-सिख अंग-अंग निबाहु ।
सुकृत निज, सियराम-रुप, बिरंचि-मतिहि सराहु ॥
मुदित मन बरबदन-सोभा उदित अधिक उछाहु ।

[^1] खई = झगड़ा, लड़ाई।

मनहु दूरि कलंक करि ससि समर सूद्यो [2] राहु ॥

नयन सुखमा-अयन हरत सरोज-सुन्दरताहु ।

बसत तुलसीदास-उरपुर जानकी को नाहु ॥ 95॥

(राग सारंग)

भूप के भाग की अधिकाई ।

टूट्यो धनुष, मनोरथ पूज्यौ, बिधि सब बात बनाई ॥

तब तें दिन-दिन उदय जनक को जब तें जानकी जाई ।

अब यहि ब्याह सफल भयो जीवन, त्रिभुवन बिदित बड़ाई ॥

बारहि बार पहुनई ऐहैं राम लषन दोउ भाई ।

एहि आनन्द मगन पुरबासिन्ह देहदसा बिसराई ॥

सादर सकल बिलोकत रामहि काम-कोटि छबि छाई ।

यह सुख-समउ समाज एक मुख क्यों तुलसी कहै गाई? ॥ 96॥

(राग सोरठ)

मेरे बावक कैसे धौं मग निबहहिंगे?

भूख, पियास ,सीत, स्रम सकुचनि क्यों कौसिकहि कहहिंगे?॥

---

[^2] सूद्यो = सूदन किया। नाश किया।

को भोर ही उबटि अन्हवैहै, काढ़ि कलेऊ दैहैं?

को भूषन पहिराइ निछावरि करि लोचन-सुख लैहै?॥

नयन निरेषनि ज्यों जोगवैं नित पितु परिजन महतारी।

ते पठए ऋषि साथ निसाचर मारन, मख रखवारी॥

सुंदर सुठि सुकुमार सुकोमल काकपच्छ-धर दोऊ।

तुलसी निरखि हरषि उर लैहौं बिधि ह्वैहै दिन सोऊ?॥ 97॥

ऋषि नृप-सीस ठगौरी सी डारी।

कुलगुरु, सचिव, निपुन नेवनि [1] अवरेब [2] न समुझि सुधारी॥

सिरिस-सुमन-सुकुमार कुँवर दोउ, सूर सरोष सुरारी।

पठए बिनहि सहाय पयादेहि केलि-बान-धनुधारी॥

अति सनेह-कातर माता कहै, सुनि सखि! बचन दुखारी।

बादि बीर-जननी-जीवन जग, छत्रि-जाति-गति भारी॥

जो कहिहै फिरे राम-लषन घर करि मुनिमख-रखवारी।

सो तुलसी प्रिय मोहिं लागिहै ज्यों सुभाय सुत चारी।॥ 98॥

जब तें लै मुनि संग सिधाए ।

[^1] नेव = नायब, मंत्री।

[^2] अवरेब = टेढ़ी स्थिति, कठिनाई।

राम लखन के समाचार, सखि! तब तें कछुअ न पाए ॥
बिनु पानही गमन, फल भोजन, भूमि सयन तरुछाहीं ।
सर-सरिता जलपान, सिसुन के सँग सुसेवक नाहीं ॥
कौसिक परम कृपालु परमहित, समरथ, सुखद, सुचाली ।
बालक सुठि सुकुमार सकोची, समुझि सोच मोहि, आली! ॥
बचन सप्रेम सुमित्राके सुनि सब सनेह-बस रानी ।
तुलसी आइ भरत तेहि औसर कही सुमंगल बानी ॥ 99॥

सानुज भरत भवन उठि धाए ।
पितु-समीप सब समाचार सुनि, मुदित मातु पहँ आए ॥
सजल नयन, तनु पुलक, अधर फरकत लखि प्रीति सुहाई ।
कौसल्या लिए लाइ हृदय, 'बलि' कहौ, कछु है सुधि पाई? ॥
सतानन्द उपरोहित अपने तिरहुति-नाथ पठाए ।
खेम कुसल रघुबीर-लषन की ललित पत्रिका ल्याए ॥
दलि ताड़ुका, मारि निसिचर, मख राखि, बिप्र-तिय तारी ।
दै बिद्या, लै गए जनकपुर, हैं गुरु-संग सुखारी ॥
करि पिनाक-पन, सुता-स्वयम्बर सजि, नृप-कटक बटोर्‌यो ।
राजसभा रघुबर मृनाल ज्यों सम्भु-सरासन तोर्‌यो ॥

यों कहि सिथिल सनेह बन्धु दोउ, अंब अंक भरि लीन्हें ।

बार बार मुख चूमि, चारु मनि-बसन निछावरि कीन्हें ॥

सुनत सुहावनि चाह [1] अवध घर घर आनन्द बधाई ।

तुलसिदास रनिवास रहस-बस, सखी सुमंगल गाई ॥ 100॥

(राग कान्हरा)

राम-लषन सुधि आई बाजै अवध बधाई ।

ललित लगन लिखि पत्रिका,

उपरोहित के कर जनक-जनेस पठाई ॥

कन्या भूप बिदेह की रुप की अधिकाई,

तासु स्वयम्बर सुनि सब आए

देस देस के नृप चतुरंग बनाई ॥

पन पिनाक, पबि मेरु तें गुरुता कठिनाई ।

लोकपाल महिपाल बान बानइत,

दसानन सके न चाप चढ़ाई ॥

---

[^1] चाह = खबर।

तेहि समाज रघुराज के मृगराज जगाई ।

भंजि सरासन सम्भु को जग जय कल कीरति,

तिय तियमनि सिय पाई ॥

पुर घर घर आनन्द महा सुनि चाह सुहाई ।

मातु मुदित मंगल सजैं, कहैं मुनि

प्रसाद भए सकल सुमंगल, माई ॥

गुरु आयसु मंडप रच्यो, सब साज सजाई ।

तुलसिदास दसरथ बरात सजि,

पूजि गनेसहि चले निसान बजाई ॥ 101॥

(राग केदारा)

मन में मंजु मनोरथ हो [1], री !

सो हर-गौरि-प्रसाद एक तें, कौसिक-कृपा चौगुनो भो, री !॥

पन-परिताप, चाँप-चिन्ता निसि, सोच-सकोच-तिमिर नहिं थोरी ।

रबिकुल-रबि अवलोकि सभा-सर हितचित-बारिज-बन बिकसो री ॥

कुँवर-कुँवरि सब मंगल मूरति नृप दोउ धरम धुरधर धोरी ।

---

[^1] हो = था।

राजसमाज भूरि-भागी जिन लोचन-लाहु लह्यो एक ठौरी ॥
ब्याह-उछाह राम-सीता को सुकृत सकेलि बिरंचि रच्यो, री ।
तुलसिदास जानै सोइ यह सुख जेहि उर बसति मनोहर जोरी ॥102॥

राजति राम जानकी जोरी ।
स्याम-सरोज जलद-सुन्दर बर, दुलहिनि तड़ित-बरन तनु गोरी ॥
ब्याह-समय सोहति बितानतर, उपमा कहुँ न लहति मति मोरी ।
मनहुँ मदन-मंजुल-मंडप महँ छबि-सिंगार सोभा इक ठौरी
मंगलमय दोउ, अंग मनोहर ग्रथित चूनरी पीत पिछोरी ।
कनककलस कह देत भाँवरी, निरखि रुप सारद भइ भोरी ॥
इत बसिष्ठ मुनि उतहि सतानँद, बंस बखान करैं दोउ ओरी ।
इत अवधेस उतहि मिथिलापति, भरत अंक सुख-सिन्धु हिलोरी ॥
मुदित जनक, रनिवास रहसबस, चतुर नारि चितवहिं तृन तोरी ।
गान निसान बेद-धुनि सुनि सुर बरसत सुमन, हरष कहै को री?॥
नयनन को फल पाइ प्रेमबस सकल असीसत ईस निहोरी ।
तुलसी जेहि आनन्द-मगन मन क्यों रसना बरनै सुख सो री ॥ 103॥

दूलह राम, सीय दुलही री!

घन-दामिनि-बर बरन, हरन-मन सुन्दरता नखसिख निबही, री ॥
ब्याह-बिभूषन-बसन-बिभूषित, सखि-अवली लखि ठगि सी रही, री।
जीवन-जनम-लाहु लोचन-फल है इतनोइ, लह्यो आजु सही, री ॥
सुखमा-सुरभि सिंगार-छीर दुहि मयन अमिय-मय कियो है दही, री।
मथि माखन सिय राम सँवारे, सकल भुवन छबि मनहुँ मही, री ॥
तुलसिदास जोरी देखत सुख सोभा अतुल न जाति कही, री ।
रुप-रासि बिरची बिरंचि मनो, सिला [1] लवनि [2] रति-काम लही, री ॥
104॥

जैसे ललित लषन लाल लोने ।
तैसिये ललित उरमिला, परसपर लषत सुलोचन-कोने ॥
सुखमासार सिंगारसार करि कनक रचे हैं तिहि सोने ।
रुपप्रेम-परमिति न परत कहि, बिथकि रही मति मौने ॥
सोभा सील-सनेह सोहावनो, समउ केलिगृह गौने ।
देखि तियनि के नयन सफल भए, तुलसीदास हू के होने ॥ 105॥

---

[^1] सिला = शीला, जो दाने खेत काटते समय खेत में गिर जाते है।

[^2] लवनि = लवनी, अनाज की फसल का वह थोड़ा-सा बोझ जो मजदूरों को दिया जाता है।

(राग बिलावल)

जानकी-बर सुन्दर, माई ।

इन्द्रनील-मनि-स्याम सुभग अँग अंग मनोजनि बहु छबि छाई ॥

अरुन चरन, अंगुली मनोहर, नख दुतिवन्त, कछुक अरुनाई ।

कंजदलनि पर मनहु भौम दस बैठे अचल सु-सदसि बनाई ॥

पीन जानु उर चारु जटित मनि नूपुर पद कल मुखर सोहाई ।

पीत-पराग भरे अलिगन जनु जुगल जलज लखि रहे लोभाई ॥

किंकिनि कनक-कंज-अवली मृदु मरकत सिखर मध्य जनु जाई।

गई न उपर, सभीत नमित-मुख, बिकसि चहूँ दिसि रही लोनाई ॥

नाभि गँभीर, उदर रेखा बर, उर भृगु-चरन-चिह्न सुखदाई ।

भुज प्रलम्ब भूषन अनेक जुत, बसन पीत सोभा अधिकाई ॥

जज्ञोपबीत बिचित्र हेममय, मुक्तामाल उरसि मोहि भाई ।

कन्द [1]-तड़ित बिच जनु सुरपति-धनु निकट बलाक-पाँति चलि आई॥

कम्बु कंठ चिबुकाधर सुन्दर, क्यों कहौं दसनन की रुचिराई ?।

पदुमकोस महँ बसे बज्र मनो निज सँग तड़ित-अरुन-रुचि लाई ॥

नासिक चारु, ललित लोचन, भ्रू कुटिल, कचनि अनुपम छबि पाई ।

रहे घेरि राजीव उभय मनो चंचरीक कछु हृदय डेराई ॥

---

[^1] कंद = बादल।

भाल तिलक, कंचन किरीट सिर, कुंडल लोल कपोलनि झाँई ।

निरखहिं नारि-निकर बिदेहपुर निमि नृप की मरजाद मिटाई ॥

सारद-सेस-सम्भु निसि-बासर चिन्तत रुप न हृदय समाई ।

तुलसिदास सठ क्यों करि बरनै यह छबि, निगम नेति कह गाई ॥ 106॥

(राग कान्हरा)

भुजनि पर जननी वारि फेरि डारी ।

क्यों तोर्‌यो कोमल कर-कमलनि सम्भु-सरासन भारी? ॥

क्यों मारीच सुबाहु महाबल प्रबल ताड़ुका मारी ?

मुनि-प्रसाद मेरे राम-लषन की बिधि बड़ि करवर [1] टारी ॥

चरनरेनु लै नयननि लावति, क्यों मुनिबधू उधारी ।

कहौधौं तात! क्यों जीति सकल नृप बरी है बिदेहकुमारी ॥

दुसह रोष-मूरति भृगुपति अति नृपति-निकर खयकारी ।

क्यों सौम्प्यो सारंग हारि हिय, करी है बहुत मनुहारी ॥

उमगि-उमँगि आनन्द बिलोकति बधुन-सहित सुत चारी ।

तुलसिदास आरती उतारति प्रेम-मगन महतारी ॥ 107॥

---

[^1] करवर = संकट, कठिनाई।

मुदित-मन आरती करैं माता ।

कनक-बसन-मनि वारि वारि करि पुलक प्रफुल्लित गाता ॥

पाँलागनि दुलहियन सिखावति सरिस सासु सत-साता ।

देहिं असीस ते ‘बरिस कोटि लगि अचल होउ अहिबाता’ ॥

राम सीय-छबि देखि जुबतिजन करहिं परसपर बाता ।

अब जान्यो साँचहू सुनहु, सखि! कोबिद बड़ो बिधाता ॥

मंगल-गान निसान नगर नभ आनँद कह्यो न जाता ।

चिरजीवहु अवधेस-सुवन सब तुलसिदास-सुखदाता ॥ 108॥

अयोध्या कांड

(राग सोरठ

नृप कर जोरि कह्यो गुरु पाहीं।

तुम्हरी कृपा असीस, नाथ! मेरी सबै महेस निबाहीं॥

राम होहिं जुबराज जियत मेरे, यह लालच मन माहीं।

बहुरि मोहिं जियबे मरिबे की चित चिंता कहु नाहीं॥

महाराज, भलो काज बिचार्‌यो बेगि बिलंब न कीजै।

बिधि दाहिनो होइ तौ सब मिलि जनम-लाहु लुटि लीजै॥

सुनत नगर आनंद बधावन, कैकेयी बिलखानी।

तुलसिदास देवमायाबस कठिन कुटिलता ठानी॥ 1॥

(राग गौरी)

स्नहु राम मेरे प्रानपियारे!

बारौं सत्य बचन स्रुति-सम्मत जाते हौं बिछुरत चरन तिहारे॥

बिनु प्रयास सब साधन को फल प्रभु पायो सो तो नाहिं सँभारे।

हरि तजि धरमसील भयो चाहत, नृपति नारिबस सरबस हारे॥

रूचिर काँचमनि देखि मूढ ज्यों करतल तें चिंतामनि डारे।

मुनि-लोचन-चकोर, ससि-राघव, सिव-जीवनधन सोउ न बिचारे॥

जद्यपि नाथ तात! मायाबस सुखनिधान सुत तुम्हहिं बिसारे।

तदपि हमहिं त्यागहु जनि रघुपति दीनबंधु दयालु मेरे बारे॥

अतिसय प्रीति बिनीत बचन सुनि प्रभु कोमल चित चलत न पारे।

तुलसिदास जौ रहौं मातु-हित को सुर बिप्र भूमि भय टारे?॥ 2॥

रहि चलिए सुंदर रघुनायक।

जो सुत! तात-बचन-पालन-रत जननिउ तात! मानिबे लायक॥
बेद-बिदित यह बानि तुम्हारी रघुपति सदा संत-सुखदायक।
राखहु निज मरजाद निगम की, हौं बलि जाउँ धरहु धनुसायक।
सोक-कूप पुर परिहि, मरिहि नृप, सुनि सँदेस रघुनाथ-सिधायक [1]।
यह दूषन बिधि तोहि होत अब रामचरन-बियोग-उपजायक॥
मातु-बचन सुनि स्रवत नयत जल, कछु सुभाउ जनु नरतनु-पायक [2]।
तुलसिदास सुर-काज न साध्यौ तौ तो दोष होय मोहि महि आयक [3]॥
3॥

(राग सोरठ)

राम! हौं कौन जतन घर रहिहौं?
बार बार भरि अंक गोद लै ललन कौन सों कहिहौं॥
इहि आँगन बिहरत मेरे बारे! तुम जो संग सिसु लीन्हें।
कैसे प्रान रहत सुमिरत सुत बहु बिनोद तुम्ह कीन्हें॥
जिन्ह स्रवननि कल बचन तिहारे सुनि सुनि हौं अनुरागी।

---

[^1] रघुनाथ-सिधायक = रघुनाथ के सिधारने का।

[^2] नरतनुपायक = नरशरीर पाने का।

[^3] महि आयक = पृथ्वी पर आने का।

तिन्ह स्रवननि बनगवन सुनिति हौं मो ते कौन अभागी?॥
जुग सम निमिष जाहिं रघुनंदन-बदनकमल बिनु देखे।
जौ तनु रहै बरष बीते, बलि, कहा प्रीति इहि लेखे? ॥
तुलसिदास प्रेमबस श्रीहरि देखि बिकल महतारी।
गदगद कंठ, नयन जल, फिरि फिरि आवन कह्यो मुरारी॥ 4॥

(राग बिलावल)

रहहु भवन हमरे कहे, कामिनि!
सादर सासु-चरन सेवहु नित जो तुम्हरे अति हित गृह-स्वामिनि ॥
राजकुमारि कठिन कंटक मग, क्यों चलिहौ मृदु पद गजगामिनि ।
दुसह बात बरषा, हिम, आतप कैसे सहिहौ अगनित दिन जामिनि ॥
हौं पुनि पितु-आज्ञा प्रमान करि ऐहौं बेगि सुनहु दुति-दामिनि ।
तुलसिदास प्रभु-बिरह-बचन सुनि सहि न सकी, मुरछित भइ भामिनि ॥ 5॥

कृपानिधान सुजान प्रानपति संग बिपिन ह्वै आवोगी ।
गृह ते कोटि-गुनित सुख मारग चलत, साथ सचु पावोंगी ॥
थाके चरन कमल चापौंगी, स्रम भए बाउ डोलावोंगी ।
नयन-चकोरनि मुखमयंक-छबि सादर पान करावोंगी ॥

जौ हठि नाथ राखिहौ मो कहँ तौ सँग प्रान पठावोंगी ।

तुलसिदास प्रभु-बिनु जीवत रहि क्यों फिरि बदन देखावोंगी?॥ 6॥

कहौ तुम्ह बिनु गृह मेरो कौन काजु ?

बिपिन कोटि सुरपुर समान मोको जो पै पिय परिहर्‌यो राजु ॥

बलकल बिमल दुकूल मनोहर, कन्द मूल फल अमिय नाजु ।

प्रभुपद कमल बिलोकिहैं छिन-छिन, इहि तें अधिक कहा सुख-समाजु ॥

हौं रहौं भवन भोग-लोलुप ह्वै पति कानन कियो मुनि को साजु ।

तुलसिदास ऐसे बिरह-बचन सुनि कठिन हियो बिदरो न आजु ॥ 7॥

पिय निठुर बचन कहे कारन कवन ?

जानत हौ सबके मन की गति, मृदुचित परम-कृपालु, रवन !॥

प्राननाथ सुन्दर सुजानमनि, दीनबन्धु, जग-आरति-दवन ।

तुलसिदास प्रभु-पदसरोज तजि रहिहौं कहा करौंगी भवन ?॥ 8॥

मैं तुम सों सतिभाव कही है ।

बूझति और भाँति भामिनि कत, कानन कठिन कलेस सही है ॥

जौ चलिहौ तौ चलो चलि कै बन, सुनि सिय मन अवलम्ब लही है ।

बूड़त बिरह-बारिनिधि मानहुँ नाह बचनमिस बाँह गही है ॥

प्राननाथ के साथ चलीं उठि अवध सोकसरि उमँगि बही है ।

तुलसी सुनी न कबहुँ काहु कहुँ, तनु परिहरि परिछाँहि रही है ॥ 9॥

जबहि रघुपति-सँग सीय चली ।

बिकल-बियोग लोग-पुरतिय कहैं अति अन्याउ, अली ॥

कोउ कहै मनिगन तजत काँच लगि, करत न भूप भली ।

कोउ कहै कुल-कुबेलि कैकेयी दुख-बिष-फलनि फली ॥

एक कहैं बन जोग जानकी! बिधि बड़ बिषम बली ।

तुलसी कुलिसहु की कठोरता तेहि दिन दलकि दली ॥ 10॥

ठाढ़े हैं लषन कमलकर जोरे ।

उर धकधकी न कहत कछु सकुचनि, प्रभु परिहरत सबनि तृन तोरे ॥

कृपासिन्धु अवलोकि बन्धु तन, प्रान-कृपान बीर सी छोरे ।

तात बिदा माँगिए मातु सों, बनिहै बात उपाइ न औरे ॥

जाइ चरन गहि आयसु जाँची, जननि कहत बहुभाँति निहोरे ।

सिय-रघुबर-सेवा सुचि ह्वैहौ तौ जानिहौं सही सुत मोरे ॥

कीजहु इहै बिचार निरन्तर राम समीप सुकृत नहिं थोरे ।

तुलसी सुनि सिष चले चकित-चित, उड्यो मानो बिहग बधिक भए भोरे॥11

(राग सोरठ)

मोको बिधुबदन बिलोकन दीजै ।

राम लषन मेरी यहैं भेंट, बलि, जाउ, जहाँ मोहि मिलि लीजै ॥

सुनि पितु-बचन चरन गहे रघुपति, भूप अंक भरि लीन्हें ।

अजहुँ अवनि बिदरत दरार मिस सो अवसर-सुधि कीन्हें ॥

पुनि सिर नाइ गवन कियो प्रभु, मुरछित भयो भूप न जाग्यो ।

करम-चोर नृप-पथिक मारि मानो राम-रतन लै भाग्यो ॥

तुलसी रबिकुल-रबि रथ चढ़ि चले तकि दिसि दखिन सुहाई ।

लोग नलिन भए मलिन अवध-सर, बिरह-बिषम-हिम पाई ॥ 12॥

कहौ सो बिपिन है धौं केतिक दूरि ।

जहाँ गवन कियो, कुवर कोसलपति, बूझति सिय पिय-पतिहि बिसूरि ॥

प्राननाथ परदेस पयादेहि चले सुख सकल तजे तृन तूरि ।

करौं बयारि बिलम्बिय बिटपतर, झारौं हौं चरन-सरोरुह-धूरि ॥

तुलसिदास प्रभु प्रियाबचन सुनि नीरजनयन नीर आए पूरि ।

कानन कहाँ अबहिं, सुनु, सुन्दरि, रघुपति फिरि चितए हित भूरि ॥ 13॥

फिरि फिरि राम सीय-तनु हेरत ।

तृषित जानि जल लेन लषन गए, भुज उठाइ ऊँचे चढ़ि टेरत ॥

अवनि कुरंग, बिहँग द्रुम-डारन रुप निहारत पलक न प्रेरत ।

मगन न डरत निरखि कर-कमलनि सुभग सरासन सायक फेरत ॥

अवलोकत मग-लोग चहूँ दिसि मनहु चकोर चन्द्रमहि घेरत ।

ते जन भूरिभाग भूतलपर तुलसी राम-पथिक-पद जे रत ॥ 14॥

नृपति-कुँवर राजत मग जात ।

सुन्दर बदन, सरोरुह-लोचन, मरकत-कनकबरन मृदु-गात ॥

अंसनि चाप, तून कटि मुनि पट, जटा मुकुट बिच नूतन पात ।

फेरत पानि-सरोजनि सायक, चोरत चितहि सहज मुसुकात ॥

संग नारि सुकुमारि सुभग सुठि, राजति बिन भूषन नव-सात [1]।

सुखमा निरखि ग्राम-बनितनि के नलिन-नयन बिकसित मनो प्रात ॥

अंग-अंग अगनित अनंग-छबि, उपमा कहत सुकबि सकुचात ।

सिय समेत नित तुलसिदास चित, बसत किसोर पथिक दोउ भ्रात ॥ 15॥

तू देखि देखि री! पथिक परम सुन्दर दोऊ ।

मरकत-कलधौत-बरन काम-कोटि-कान्तिहरन,

---

[^1] नवसात = सोलह श्रृंगार।

चरन-कमल कोमल अति, राजकुँवर कोऊ ॥

कर सर धनु, कटि निषंग, मुनिपट सोहैं सुभग अंग,
संग चन्द्रबदनि बधू, सुन्दरि सुठि सोऊ ।
तापस बर बेष किए, सोभा सब लूटि लिए,
चितके चोर, बय किसोर, लोचन भरि जोऊ ॥

दिनकर-कुलमनि निहारि प्रेम-मगन ग्राम-नारि,
परसपर कहैं, सखि ! अनुराग ताग पोऊ ।
तुलसी यह ध्यान-सुधन जानि मानि लाभ सघन,
कृपिन ज्यों सनेह सो हिये-सुगेह गोऊ ॥ 16॥

कुँवर साँवरो, री सजनी! सुन्दर सब अंग ।
रोम रोम छबि निहारि आलि बारि फेरि डारि,
कोटि भानु-सुवन सरद-सोम, कोटि अनंग ॥

बाम अंग लसत चाप, मौलि मंजु जटा कलाप,
सुचि सर कर, मुनिपट कटि-तट कसे निषंग ।
आयत उर-बाहु नैन, मुख-सुखमा को लहै न,

उपमा अवलोकि लोक, गिरामति-गति भंग ॥

योंं कहि भईं मगन बाल, बिथकीं सुनि जुबति जाल,
चितवत चले जात संग, मधुप-मृग-बिहंग ।
बरनौं किमि तिनकी दसहि, निगम-अगम प्रेम-रसहि,
तुलसी मन-बसन रँगे रुचिर रुपरंग ॥ 17॥

(राग कल्याण)

देखु कोऊ परम सुन्दर सखि! बटोही ।
चलत महि मृदु चरन अरुन-बारिज-बरन,
भूपसुत, रुपनिधि निरखि हौं मोही ॥

अमल मरकत स्याम, सील-सुखमा-धाम,
गौरतनु सुभग सोभा सुमुखि जोही ।
जुगल बिच नारि सुकुमारि सुठि सुन्दरी,
इंदिरा इंदु-हरि मध्य जनु सोही ॥

करनि बर धनु तीर, रुचिर कटि तूनीर,
धीर, सुर-सुखद, मरदन अवनि-द्रोही ।

अंबुजायत नयन, बदन-छबि बहु मयन,

चारु चितवनि चतुर लेति चित पोही ॥

बचन प्रिय सुनि स्रवन राम करुनाभवन,

चितए सब अधिक हित सहित कछु ओही ।

दास तुलसी नेह-बिबस बिसरी देह,

जान नहि आपु तेहि काल धौं कोही ॥ 18॥

(राग केदारा)

सखि! नीके कै निरखि, कोऊ सुठि सुन्दर बटोही ।

मधुर मूरति मदनमोहन जोहन-जोग,

बदन सोभासदन देखि हौं मोही ॥

साँवरे गोरे किसोर, सुर मुनि चित चोर,

उभय-अंतर एक नारि सोही ।

मनहुँ बारिद बिधु बीच ललित अति,

राजति तड़ित निज सहज बिछोही [1]॥

---

[^1] निज सहज बिछोही = अपना चंचल स्वभाव छोड़कर।

उर धीरजहि धरि, जनम सफल करि,
सुनहि सुमुखि! जनि बिकल होही ।
को जानै कौने सुकृत लह्यो है लोचन-लाहु,
तारि तें बारहि बार कहति तोही ॥

सखिहि सुसिख दई, प्रेम-मगन भई,
सुरति बिसरि गई आपनी ओही ।
तुलसी रही है ठाढ़ी पाहन गढ़ी सी काढ़ी,
न जानै कहाँ तें आई, कौन की को ही ॥ 19॥

माई ! मन के मोहन जोहन-जोग जोही ।
थोरी ही बयस गोरे साँवरे सलोने लोने,
लोयन ललित, बिधुबदन बटोही ॥

सिरनि जटा मुकुट मंजुल सुमनजुत,
जैसियै लसति नव पल्लव खोही [1]।
किए मुनि-बेष बीर, धरे धनु-तून-तीर,
सोहैं मग, को हैं, लखि परै न मोही ॥

[^1] खोही = पत्तों का बना हुआ छाता।

सोभा को साँचो साँवरि रुप जातरुप,
ढारि नारि बिरची बिरंचि, संग सोही ।
राजत रुचिर तनु सुन्दर स्रम के कन,
चाहे चकचौंधी लागै, कहौं का तोही ॥

सनेह-सिथिल सुनि बचन सकल सिय,
चितइ अधिक हित सहित ओही ।
तुलसी मनहुँ प्रभु कृपा की मूरति फिरि
हेरि कै हरषि हिये लियौ है पोही ॥ 20॥

सखि! सरद-बिमल बिधुबदनि बधूटी ।
ऐसी ललना सलोनी न भई, न है, न होनी,
रत्यो रची बिधि जो छोलत छबि छूटी ॥
साँवरे गोरे पथिक बीच सोहति अधिक,
तिहुँ त्रिभुवन-सोभा मनहुX लूटी ।
तुलसी निरखि सिय प्रेमबस कहैं तिय,
लोचन-सिसुन्ह देहु अमिय घूटी ॥ 21॥

सोहैं साँवरे पथिक, पाछे ललना लोनी ।

दामिनि-बरन गोरी, लखि सखि तृन तोरी,

बीती हैं बय किसोरी, जोबन होनी ॥

नीके कै निकाई देखि, जनम सफल लेखि,

हम सी भूरि-भागिनि नभ न छोनी ।

तुलसी-स्वामी-स्वामिनि जोहे मोही हैं भामिनि,

सोभा-सुधा पिए करि अँखिया दोनी ॥ 22॥

पथिक गोरे-साँवरे सुठि लोने ।

संग सुतिय, जाके तनुतें लही है दुति सो सरोरुह सोने [1]॥

बय किसोर-सरि-पार मनोहर बयस-सिरोमनि [2] होने ।

सोभा-सुधा अलि! अँचवहु करि नयन मंजु मृदु दोने ॥

हेरत हृदय हरत, नहि फेरत चारु बिलोचन कोने ।

तुलसी प्रभु किधौं प्रभुको प्रेम पढ़े प्रगट कपट बिनु टोने ॥ 23॥

मनोहरता के मानो ऐन।

---

[^1] सोन = लाल।

[^2] बयस सिरोमनि = युवावस्था।

स्यामल गौर किसोर पथिक दोउ, सुमुखि! निरखि भरि नैन॥

बीच वधू बिधुवदनि बिराजति उपमा कहुँ कोऊ है न।

मानहुँ रति ऋतुनाथ सहित मुनि-बेष बनाए है मैन॥

किधौं सिंगार-सुखमा सुप्रेम मिलि चले जग-चित बित लैन।

अद्‌भुत त्रयी किधौं पठई है बिधि मग-लोगन्हि सुख दैन॥

सुनि सुचि सरल सनेह सुहावने ग्रामबंधुन्ह के बैन।

तुलसी प्रभु तरु तर बिलँबे किए प्रेम कनौडे कै न? ॥24॥

बय किसोर गोरे साँवरे धनुबान धरे हैं।

सब अंग सहज सोहावने, राजीव जिते नैननि, बदननि बिधु निदरे हैं॥

तून सुमुनिपट कटि कसे, जटा मुकुट करे हैं।

मंजु मधुर मृदु मूरति, पानह्यो न पायनि, कैसे धौं पथ बिचरे हैं॥

उभय बीच बनिता बनी लखि मोहि परे हैं।

मदन सप्रिया सख मुनि बेष बनाए लिए मन जात हरे हैं॥

सुनि जहँ तहँ देखन चले अनुराग भर हैं।

राम-पथिक छबि निरखि कै, तुलसी, मग-लोगनि धाम-काम बिसरे हैं॥25॥

कैसे पितु-मातु, कैसे ते प्रिय-परिजन हैं ?

जगजलधि ललाम, लोने लोने गोरे-स्याम,
जोन पठए हैं ऐसे बालकनि बन हैं ॥

रुप के न पारावार, भूप के कुमार मुनि-बेष,
देखत लोनाई लघु लागत मदन हैं ।
सुखमा की मूरति सी साथ निसिनाथ-मुखी,
नखसिख अंग सब सोभा के सदन हैं ॥

पंकज-करनि चाप, तीर तरकस कटि,
सरद-सरोजहु तें सुन्दर चरन हैं ।
सीता राम-लषन निहारि ग्रामनारि कहैं,
हेरि, हेरि, हेरि! हेली हिय के हरन हैं ॥

प्रानहूँ के प्रान से, सुजीवन के जीवन से,
प्रेमहू के प्रेम, रंक कृपिन के धन हैं ।
तुलसी के लोचन-चकोरनी के चन्द्रमा से,
आछे मन-मोर चित-चातक के घन हैं ॥ 26॥

(राग भैरव)

देखि! द्वै पथिक गोरे-साँवरे सुभग हैं ।
सुतिय सलोनी संग सोहत सुभग हैं ॥
सोभासिन्धु-सम्भव-से नीके नीके नग हैं ।
मातु-पितु-भाग बस गए परि फँग हैं ॥
पाइँ पनह्यो न, मृदु पंकज-से पग हैं
रुप की मोहनी मेलि मोहे अग-जग हैं ॥
मुनि-बेष धरे धनु सायक सुलग [1] हैं ।
तुलसी हिये लसत लोने लोने डग हैं ॥ 27॥

पथिक पयादे जात पंकज से पाय हैं ।
मारग कठिन, कुस-कण्टक-निकाय हैं ॥
सखी! भूखे-प्यासे पै चलत चित चाय हैं ।
इन्हके सुकृत सुर संकर सहाय हैं ॥
रुप सोभा प्रेम के से कमनीय काय हैं ।
मुनिबेष किए किधौं ब्रह्म जीव माय हैं ॥
बीर बरियार धीर धनुधर-राय हैं ।

---

[^1] सुलग = पास।

दसचारि-पुर-पाल आली उरगाय [2] हैं ॥

मग-लोग देखत करत हाय हाय हैं ।

बन इनको तो बाम बिधि कै बनाय हैं [2]॥

धन्य ते जे मीन से अवधि-अंबु आय [3] हैं ।

तुलसी प्रभु सों जिन्हहूँ के भले भाय हैं ॥ 28॥

(राग आसावरी)

सजनी! हैं कोउ राजकुमार ।

पन्थ चलत मृदु पद कमलनि दोउ सील-रुप-आगार ॥

आगे राजिवनैन स्याम-तनु सोभा अमित अपार ।

डारौं वारि अंग-अंगनि पर कोटि कोटि सत मार ॥

पाछैं गौर किसोर मनोहर, लोचन बदन उदार ।

कटि तूनीर कसे, कर सर-धनु, चले हरन छिति-भार ॥

जुगुल बीच सुकुमारि नारि इक राजति बिनहि सिंगार ।

इंद्रनील, हाटक, मुकुतामनि जनु पहिरे महि हार ॥

---

[^2] उरगाय = उरूगाय, विष्णु।

[^2] कै बनाय है = बनाय कै है, बहुत अधिक है।

[^3] अवधि-अंबु-आय = जिनकी आयु अवधि रूपी जल ही तक है।

अवलोकहु भरि नैन, बिकल जनि होहु, करहु सुबिचार ।
पुनि कह यह सोभा, कह लोचन, देह गेह-संसार? ॥
सुनि प्रिय बचन चितै हित कै रघुनाथ कृपा सुखसार ।
तुलसिदास प्रभु हरे सबन्हि के मन, तन रही न सँभार ॥ 29॥

(राग टोड़ी)

देखु री सखी! पथिक नख-सिख नीके हैं ।
नीले पीले कमल-से कोमल कलेवरनि,
तापस हुँ बेष किये काम कोटि फीके हैं ॥

सुकृत सनेह सील सुषमा सुख सकेलि,
बिरचे बिरंचि किधौं अमिय अमी के हैं ।
रुप की सी दामिनी सुभामिनी सोहति संग,
उमहुँ रमा तें आछे अंग अंग ती के हैं ॥

बन-पट कसे कटि, तून तीर धनु धरे,
धीर बीर पालक कृपालु सबही के हैं ।
पानही न, चरन-सरोजनि चलत मग,
कानन पठाए पितु-मातु कैसे ही के हैं ॥

आली अवलोकि लेहु, नयननि के फलु येहु,
लाभ के सुलाभ, सुखजीवन से जी के हैं ।
धन्य नर-नारि जे निहारि बिनु गाहक हूँ,
आपने आपने मन मोल बिनु बीके हैं ॥

बिबुध बरषि फूल हरषि हिये कहत,
ग्राम-लोग मगन सनेह सिय-पी के हैं ।
जोगीजन-अगम दरस पायो पाँवरनि,
प्रमुदित मन सुनि सुरप सची के हैं ॥

प्रीति के सुबालक से लालत सुजन मुनि,
मग चारु चरित लषन राम सी के हैं ।
जोग न बिराग-जाग तप न तीरथ त्याग,
एही अनुराग भाग खुले तुलसी के हैं ॥ 30॥

रीति चलिबे की चाहि प्रीति पहिचानि कै ।
आपनी आपनी कहैं प्रेम परबस अहैं,
मंजु मृदु बचन सनेह-सुधा सानि कै ॥

साँवरे कुँवर के बराइ कै चरन के चिह्न,

बधू पग धरति कहा धौं जिय जानि कै ।

जुगल कमल-पद-अंग जोगवत जात,

गोरे गात कुँवर महिमा महा मानि कै ॥

उनकी कहनि नीकी, रहनि लषन सी की,

तिनकी गहनि जे पथिक उर आनि कै ।

लोचन सजल, तन पुलक, मगन मन,

होत भूरिभागी जस तुलसी बखनि कै ॥ 31॥

(राग केदारा)

जेहि जेहि मग सिय राम लषन गए,

तहँ तहँ नर नारि बिनु छर छरिगे [1] ।

निरखि निकाई-अधिकाई बिथकित भए

बच, बिय-नैन-सर सोभा-सुधा भरिगे ॥

[^1] बिनु छर थरिगे = बिना छाँटे हुए छँट कर साफ हो गए। (चावल के समान), कना अलग करने के लिए चावल को फिर फटक कर साफ करने को ‘छरना’ कहते है।

जोते बिनु, बए बिनु निफन [1] निराए बिनु,

सुकृत-सुखेत सुख-सालि फूलि फरिगे ।

मुनिहु मनोरथ को अगम अलभ्य लाभ,

सुगम सो राम लघु लोगनि को करिगे ॥

लालची, कौड़ी के कूर पारस परे हैं पाले,

जानत न को हैं, कहा कीबो सो बिसरिगे ।

बुधि न बिचार, न बिगार, न सुधार सुधि

देह गेह नेह नाते मन से निसरिगे ॥

बरषि सुमन सुर हरषि हरषि कहैं,

‘अनायास भवनिधि नीच नीके तरिगे’।

सो सनेह-समउ सुमिरि तुलसीहू के से

भली भाँति भले पैन्त, भले पाँसे परिगे ॥ 32॥

बोले राज देन को, रजायसु भो कानन को,

आनन प्रसन्न, मन मोद, बड़ो काज भो ।

मातु-पिता-बन्धु-हित आपनो परम हित,

[^1] निफन = अच्छी तरह।

मोको बीसहू कै [1] ईस अनुकूल आजु भो ॥

असन अजीरन को समुझि तिलक तज्यो,
बिपिन-गवनु भले भूखे को सुनाजु भो ।
धरम-धुरीन धीर बीर रघुबीरजू को,
कोटि राज सरिस भरत जू को राजु भो ॥

ऐसी बातैं कहत सुनत मग-लोगन की,
चले जात बन्धु दोउ मुनि को सो साज भो ।
ध्याइबे को, गाइबे को, सेइबे सुमिरिबे को,
तुलसी को सब भाँति सुखद समाज भो ॥ 33॥

सिरिस-सुमन-सुकुमारि, सुखमा की सींव,
सीय, राम बड़े ही सकोच संग लई है ।
भाई के प्रान समान, प्रिया के प्रान के प्रान,
जानि बानि प्रीति रीति कृपासील मई है ॥

आलबाल-अवध सुकामतरु कामबेलि,

---

[^1] बीसहू कै = बीसो बिस्वे, पूरी तरह से।

दूरि करि केकई बिपत्ति-बेलि बई है ।

आप, पति, पूत, गुरुजन, प्रिय परिजन,

प्रजाहू को कुटिल दुसह दसा दई है ॥

पंकज से पगनि पानह्यौं न, परुष पन्थ,

कैसे निबहे हैं निबहैंगे गति नई है ।

ऐही सोची संकट मगन मग-नर-नारि,

सबकी सुमति राम-राग-रँग-रई है ॥

एक कहैं बाम बिधि दाहिनो हमको भयो,

उत कीन्हीं पीठि, इत को सुडीठि भई है।

तुलसी सहित बनबासी मुनि हमरिऔ,

अनायास अधिक अघाइ बनि गई है ॥ 34॥

(राग गौरी)

नीके कै मैं न बिलोकन पाए ।

सखि! यह मग जुग पथिक मनोहर, बिधु-बिध-बदनि समेत सिधाए ॥

नयन सरोज, किसोर ऊयस बर, सीस जटा रचि मुकुट बनाए ।

कटि मुनि बसन तून, धनु सर कर, स्यामल गौर, सुभाय सोहाए ॥

सुन्दर बदन, बिसाल बाहु उर, तनु-छबि कोटि मनोज लजाए ।
चितवत मोहि लगी चौंधी-सी जानौं न कौन कहाँ तें धौं आए ॥
मनु गयो संग, सोचबस लोचन मोचत बारि, कितौ समुझाए ।
तुलसिदास लालसा दरस की सोइ पुरवै, जेहि आनि देखाए ॥ 35॥

पुनि न फिरे दोउ बीर बटाऊ ।
स्यामल गौर, सहज सुदंर, सखि! बारक बहुरि बिलोकिबे काऊ ॥
कर-कमलनि सर सुभग सरासन, कटि मुनि बसन निषंग सोहाए ।
भुज प्रलम्ब, सब अंग मनोहर, धन्य सो जनक जननि जेहि जाए ॥
सरद-बिमल बिधु बदन, जटा सिर, मंजुल अरुन-सरोरुह-लोचन ।
तुलसिदास मनमय मारगमें राजत कोटि-मदन-मदमोचन ॥ 36॥

(राग केदारा)

आली! काहू तौ बूझौ न, पथिक कहाँ धौं सिधैहैं ।
कहाँ तें आए हैं, को हैं, कहा नाम स्याम गोरे,
काज कै कुसल फिरि एहि मग ऐहैं ?॥

उठति बयस, मसि भींजति, सलोने सुठि,
सोभा-देखवैया बिनु बित्त ही बिकैहैं ।

हिये हेरि हरि लेत लोनी ललना समेत,
लोयननि लाहु देत जहाँ जहाँ जैहैं ॥

राम-लषन-सिय-पन्थि की कथा पृथुल,
प्रेम बिथकीं कहति सुमुखि सबै हैं ।
तुलसी तिन्ह सरिस तेऊ भूरिभाग जेऊ
सुनि कै सुचित तेहि समै समैहैं [1] ॥ 37॥

बहुत दिन बीते सुधि कछु न लही ।
गए जो पथिक गोरे साँवरे सलोने,
सखि! संग नारि सुकुमारि रही ॥

जानि पहिचानि बिनु आपु तै आपुनेहु तें,
प्रानहु तें प्यारे प्रियतम उपही [2]।
सुधा के सनेह हू के सार लै सँवारे बिधि,
जैसे भावते हैं भाँति जाति न कही ॥

---

[^1] सुचित समै है = चित में समवाएँगे अर्थात् धारण करेंगे।

[^2] उपही = ऊपरी, वायबी।

बहुरि बिलोकिबे कबहुक, कहत

तनु पुलक, नयन जलधार बही ।

तुलसी प्रभु सुमिरि ग्रामजुबती सिथिल,

बिनु प्रयास परीं प्रेम सही ॥ 38॥

आली री! पथिक जे एहि पथ परौं सिधाए ।

ते तौ राम लषन अवध तें आए ॥

संग सिय सब अंग सहज सोहाए ।

रति, काम, ऋतुपति कोटिक लजाए ॥

राजा दसरथ रानी कौसिला जाए ।

कैकेयी कुचाल करि कानन पठाए ॥

बचन कुभामिनी के भूपहि क्यों भाए?

हाय हाय राय बाम बिधि भरमाए ॥

कुलगुरु सचिव काहू न समुझाए ।

काँच मनि लै अमोल मानिक गवाँए ॥

भाग मग-लोगनि के देखन जे पाए ।

तुलसी सहित जिन गुन-गन गाए ॥ 39॥

सखि! जबतें सीता समेत देखे दोउ भाई ।

तब तें परै न कल, कछू न सोहाई ॥

नखसिख नीके, नीके निरखि निकाई ।

तन सुधि गई, मन अनत न जाई ॥

हेरनि हँसनि हिय लिये हैं चोराई ।

पावन-प्रेम-बिबस भई हौं पराई ॥

कैसे पितु मातु प्रिय परिजन भाई

जीवत जीव के जीवन बनहि पठाई ॥

समउ सो चित करि हित अधिकाई ।

प्रीति ग्रामबधुन की तुलसिहुँ गाई ॥ 40॥

(राग केदारा)

जब तें सिधारे यहि मारग लषन राम,

जानकी सहित तब तें न सुधि लही है ।

अवध गए धौं फिरि, कैधौं चढ़े बिन्ध्यगिरि,

कैधौं कहुँ रहे, सो कछू न काहू कही है ॥

एक कहै चित्रकूट निकट नदी के तीर,

परनकुटीर करि बसे बात सही है ।
सुनियत भरत मनाइबे को आवत हैं,
होइगी पै सोई जो बिधाता चित्त चही है ॥

सत्य संघ धरम-धुरीन रघुनाथजू को,
आपनी निबारिबे नृप की निरबही है ।
दस-चारि बरिस बिहार बन पदचार,
करिबे पुनीत सैल सर सरि मही है ॥

मुनि सुर सुजन समाज के सुधारि काज,
बिगरि बिगरि जहाँ जहाँ जाकी रही है ।
पुर पाँव धारिहैं उधारिहैं तुलसी हूँ से जन,
जिन जानि कै गरीबी गाढ़ी गही है ॥ 41॥

ये उपही कोउ कुँवर अहेरी ।
स्याम गौर धनु-बान-तूनधर चित्रकूट अब आइ रहे, री ॥
इन्हहि बहुत आदरता महामुनि समाचार मेरे नाह कहे, री ।
बनिता बन्धु समेत बसे, बन, पितु हित कठिन कलेस सहे, री ॥
बचन परसपर कहति किरातिनि पुलक गात, जल नयन बहे, री ।

तुलसी प्रभुहि बिलेकति एकटक लोचनु जनु बिनु पलक लहें, री ॥ 42॥

(राग चंचरी)

चित्रकूट अति बिचित्र, सुन्दर बन, महि पबित्र,
पावनि पय-सरित सकल मल-निकन्दिनी ।
सानुज जहँ बसत राम, लोक-लोचनाभिराम,
बाम अंग बामाबर बिस्व-बंदिनी ॥

(टी. बैजनाथ वाली प्रति में तथा एक हस्तलिखित प्रति में इसके आगे ये चार चरण और है –)

ऋषिबर तहँ छन्द बास, गावत कलकंठ हास,
कीर्तन उनमाय काय क्रोध-कन्दिनी ।
बर बिधान करत गान, वारत धन-मान-प्रान,
झरना झर झिंग झिंगझिंगजल तरंगिनी ॥

बर बिहारु चरन चारु पाँड़र चम्पक चनार
करनहार बार पार पुर-पुरंगिनी ।
जोबन नव ढरत ढार दुत्त मत्त मृग मराल

मन्द मन्द गुंजत हैं अलि अलिंगिनी ॥

चितवत मुनिगन चकोर, बैठे निज ठौर ठौर,
अक्षय अकलंक सरद-चंद-चंदिनी ।
उदित सदा बन-अकास, मुदित बदत तुलसिदास,
जय जय रघुनन्दन जय जनकनंदिनी ॥ 43॥

फटिकसिला मृदु बिसाल, संकुल सुरतरु तमाल
ललित-लता-जाल हरति छबि बितान की ।
मन्दाकिनि तटिनि तीर मंजुल मृग-बिहग भीर
धीर मुनिगिरा गभीर सामगान की ॥

मधुकर पिक बरहि मुखर, सुन्दर गिरि निरझर झर,
जल-कन घन-छाँह, छन प्रभा न भान की ।
सब ऋतु ऋतुपति प्रभाउ, संतत बहै त्रिबिध बाउ,
जनु बिहार-बाटिका नृप पंचबान की ॥

बिरचित तहँ पर्नसाल, अति बिचित्र लषन लाल,
निवसत जहँ नित कृपालु राम जानकी ।

निजकर राजीवनयन पल्लव-दल रचित सयन [1],

प्यास परसपर पीयूष प्रेम-पान की ॥

सिय अँग लिखैं धातुराग, सुमननि भूषन-बिभाग,

तिलक करनि का कहौं कलानिधान की ।

माधुरी-बिलास-हास, गावत जस तुलसिदास,

बसति हृदय जोरी प्रिय परम प्रान की ॥ 44॥

(राग केदारा)

लोने लाल लषन, सलोने राम, लोनी सिय,

चारु चित्रकूट बैठे सुरतरु-तर हैं ।

गोरे साँवरे सरीर पीत नील नीरज-से

प्रेम-रुप सुखमा के मनसिज-सर हैं ॥

लोने नख-सिख, निरुपम निरखन जोग,

बड़े उर कन्धर बिसाल भुज बर हैं ।

लोने लोने लोचन जटनि के मुकुट लोने,

लोने बदननि जीते कोटि सुधाकर हैं ॥

---

[^1] सयन = शयनासन, बिस्तर।

लोने लोने धनुष, बिसिष कर-कमलनि,

लोने मुनिपट, कटि लोने सरघर [1] हैं ।

प्रिया प्रिय बन्धु को दिखावत बिटप, बेलि,

मंजु, कुंज सिलातल, दल, फूल, फर हैं ॥

ऋषिन के आश्रम सराहैं, मृग-नाम कहैं,

लागी मधु, सरित, झरत निर्झर हैं ।

नाचत बरहि नीके, गावत मधुप-पिक,

बोलत बिहंग, नभ-जल-थल-चर हैं ॥

प्रभुहि बिलोकि मुनिगन पुलके कहत

भूरिभाग भये सब नीच नारि-नर हैं ।

तुलसी सो सुख-लाहु लूटत किरात कोल

जाको सिसकत सुर बिधि-हरि-हर हैं ॥ 45॥

(रागसारंग)

आइ रहे जबतें दोउ भाई ।

---

[^1] सरघर = तरकश, तूणीर।

तब तें चित्रकूट-कानन-छबि दिन दिन अधिक अधिक अधिकाई ॥

सीता-राम-लषन-पद-अंकित अवनि सोहावनि बरनि न जाई ।

मन्दाकिनि मज्ञत अवलोकत त्रिबिध पाप त्रयताप नसाई ॥

उकठेउ हरित भए जल-थलरुह, नित नूतन राजीव सुहाई ।

फूलत फलत पल्लवत पलुहत बिटप बेलि अभिमत सुखदाई ॥

सरित सरनि सरसीरुह संकुल सदन सँवारि रमा जनु छाई ।

कूजत बिहँग, मंजु गुंजत अलि, जात पथिक जनु लेत बुलाई ॥

त्रिबिध समीर नीर झर झरननि जहँ तहँ रहे ऋषि कुटी बनाई ।

सीतल सुभग सिलनि पर तापस करत जोग जप तप मन लाई ॥

भए सब साधु किरात किरातिनि, राम-दरस मिटि गइ कलुषाई ।

खग मृग मुदित एक सँग बिहरत सहज बिषम बड़ बैर बिहाई ॥

कामकेलि बाटिका बिबुध-बन, लघु उपमा कबि कहत लजाई ।

सकल भुवन सोभा सकेलि मनौ राम बिपिन बिधि आनि बसाई ॥

बन मिस मुनि, मुनितिय, मुनि बालक बरनत रघुबर-बिमल-बड़ाई ।

पुलक सिथिल तनु, सजल सुलोचनु प्रमुदित मन जीवन फलु पाई ॥

क्यों कहौं चित्रकूट-गिरि, सम्पत महिमा मोद मनोहरहताई ।

तुलसी जहँ बसि लषन राम सिय आनँद-अवधि अवध बिसराई ॥ 46॥

(राग गौरी)

देखत चित्रकूट बन मन अति होत हुलास ।
सीता-राम लषन प्रिय, तापस-बृन्द-निवास ॥
सरित सोहावनि पावनि, पापहरनि पय नाम ।
सिद्ध-साधु-सुर-सेबित देति सकल मन काम ॥
बिटप बेलि नव किसलय, कुसुमित सघन सुजाति ।
कन्दमूल, जल-थलरुह, अगनित अनबन [1] भाँति ॥
बंजुल मंजु, बकुल कुल सुरतरु, ताल, तमाल ।
कदलि, कदम्ब, सुचम्पक, पाटल, पनस, रसाल ॥
भूरुह भूरि भरे जनु छबि अनुराग सभाग ।
बन बिलोकि लघु लागहिं बिपुल बिबुध-बन-बाग ॥
जाइ न बरनि राम-बन चितवत चित हरि लेत ।
ललित-लता-द्रुम-संकुल मनहुँ मनोज-निकेत ॥
सरित-सरनि सरसीरुह फूले नाना रंग ।
गुंजत मंजु मधुप गन कूजत बिबिध बिहंग ॥
लषन कहेउ रघुनन्दन देखिय बिपिन-समाज ।
मानहुँ चयन मयन-पुर आयउ प्रिय ऋतुराज ॥

---

[^1] अनबन = भिन्न भिन्न, नाना।

चित्रकूट पर राउर जानि अधिक अनुरागु ।

सखा सहित जनु रतिपति आयउ खेलन फागु ॥

झिल्लि, झाँझ, झरना, डफ, नव मृदँग निसान ।

भेरि, उपंग, भृंग रव ताल, कीर कलगान ॥

हंस कपोत कबूतर बोलत चक्क चकोर ।

गावत मनहुँ नारिनर मुदित नगर चहुँ ओर ॥

चित्र बिचित्र बिबिध मृग डोलत डोंगर [1] डाँग [2]।

जनु पुरबीथिन बिहरत छैल सँवारे स्वाँग ॥

नाचहिं मोर, पिक गावहिंस सुर बर राग बँधान ।

निलज तरुन-तरुनी जनु खेलहिं समय समान ॥

भरि भरि सुंड करिनि-करि जहँ तहँ डारहिं बारि ।

भरत परसपर पिचकनि मनहु मुदित नर-नारि ॥

पीठि चढ़ाइ सिसुन्ह कपि कूदत डारहि डार ।

जनु मुँह लाइ गेरु मसि भए खरनि असवार ॥

लिए पराग सुमनरस डोलत मलय समीर ।

मनहु अरगजा छिरकत, भरत गुलाल अबीर ॥

---

[^1] डोंगर = ऊँची जमीन या टीला।

[^2] डाँग = घना वनखंड।

काम कौतुकी यहि बिधि प्रभुहित कौतुक कीन्ह ।

रीझि राम रतिनाथहिं जग बिजयी बर दीन्ह ॥

दुखवहु मोरे दास जनि, मानेहु मोरि रजाइ ।

‘भलेहि नाथ’ माथे धरि आयसु चलेउ बजाइ ॥

मुदित किरात-किरातिनि रघुबर-रुप निहारि ।

प्रभुगुन गावत नाचत चले जोहारि जोहारि ॥

देहि असीस प्रसंसहिं मुनि, सुर बरषहिं फूल ।

गवने भवन राखि उर मूरति मंगलमूल ॥

चित्रकूट कानन-छबि को बरनै पार ।

जहँ सिय-लषन सहित नित रघुबर करहिं बिहार ॥

तुलसिदास चाँचरि मिस कहे राम-गुन-ग्राम ।

गावहिं सुनहिं नारि नर पावहिं सब अभिराम ॥ 47॥

(राग बसन्त)

आजु बन्यो है बिपिन देखो, राम धीर । मानो खेलत फागु मुद मदन बीर ॥

बट बकुल कदम्ब पनस रसाल । कुसुमित तरु-निकर कुरव [1]-तमाल ।

मानो बिबिध बेष धरे छैल-जूथ । बिच बीच लता ललना बरुथ ॥

---

[^1] कुरव = कुरवक, कटसैरया।

पनवानक निर्झर, अलि उपंग । बोलत पारावत मानो डफ मृदंग ।
गायक शुक कोकिल, झिल्लि ताल । नाचत बहु भाँति बरहि मराल ॥
मलयानिल सीतल सुरभि, मन्द । बह सहित सुमन-रस रेनु बृन्द ।
मनु छिरकत फिरत सबनि सुरंग । भ्राजत उदार लीला अनंग ॥
क्रीड़त जीते सुर असुर नाग । हठि सिद्ध मुनिन के पन्थ लाग ।
कह तुलसिदास, तेहि छाँड़ मैन । जेहि राख राम राजीव नैन ॥ 48॥

ऋतु-पति आए भलो बन्यो बन समाज । मानो भए हैं मदन महाराज आज ॥
मनो प्रथम फागु मिस करि अनीति । होरी मिस अरिपुर जारि जीति।
मारुत मिस पत्र-प्रजा उजारि । नय नगर बसाए बिपिन झारि ॥
सिंहासन सैल-सिला सुरंग । काननं छबि रति परिजन कुरंग ।
सित छत्र सुमन, बल्ली बितान । चामर समीर, निर्झर निसान ॥
मनो मधु माधव दोउ अनिप धीर । बर बिपुल बिटप बानैत बीर ।
मधुकर सुक कोकिल बंदि-बृन्द । बरनहिं बिसुद्ध जस बिबिध छन्द॥
महि परत सुमन-रस फल पराग । जनु देत इतर नृप कर-बिभाग ।
कलि सचिव सहित नय-निपुन मार । कियो बिस्व बिबस चारिहु प्रकार ॥
बिरहिन पर नित नै परै मारि । डाँड़ियत सिद्ध साधक प्रचारि ।
तिनकी न काम सकै चापि छाँह । तुलसी जे बसहिं रघुबीर-बाँह ॥ 49॥

(राग मलार)

सब दिन चित्रकूट नीको लागत ।
बरषाऋतु प्रबेस बिसेष गिरि देखन मन अनुरागत ॥
चहुँदिसि बन सम्पन्न, बिहँग मृग बोलत सोभा पावत ।
जनु सुनरेस देस-पुर प्रमुदित प्रजा सकल सुख छावत ॥
सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रँगमगे सृंगनि ।
मनहु आदि अंभोज बिराजत सेवित सुर-मुनि-भृंगनि ॥
सिखर परस घन घटहि, मिलति बग पाँति सो छबि कबि बरनी ।
आदि बराह बिहरि बारिधि मनो उठ्यो है दसन धरि धरनी ॥
जल-जुत बिमल सिलनि झलकत नभ, बन-प्रतिबिम्ब तरंग ।
मानहुँ जग-रचना बिचित्र बिलसति बिराट अँग अंग ॥
मन्दाकिनिहि मिलत झरना झरि झरि भरि भरि जल आछे ।
तुलसी सकल सुकृत-सुख लागे मानौ राम-भगति के पाछे ॥ 50॥

(राग सोरठ)

आजु को भोर और सो, माई ।
सुनौं न द्वार बेद बन्दी-धुनि गुनिगन-गिरा सोहाई ॥

निज निज सुन्दर पति सदननि तें रुप-सील-छबि छाईं ।

लेन असीस सीय आगे करि मोपै सुतबधू न आईं ॥

बूझी हौं न बिहँसि मेरे रघुबर 'कहाँ री! सुमित्रा माता?/।

तुलसी मनहुँ महासुख मेरो देखि न सकेउ बिधाता ॥ 51॥

जननी निरखति बान धनुहियाँ ।

बार-बार उर नैननि लावति प्रभुजू की ललित पनहियाँ ॥

कबहूँ प्रथम ज्यों जाइ जगावति कहि प्रिय बचन सवारे ।

"उठहु तात! बलि मातु बदन पर, अनुज सखा सब द्वारे" ॥

कबहूँ कहति यों, "बड़ी बार भइ, जाहु भूप पहँ, भैया ।

बन्धु बोलि जेंइय जो भावै गई निछावरि मैया" ॥

कबहूँ समुझि बन-गवन राम को रहि चकि चित्र लिखी सी ।

तुलसिदास वह समय कहे ते लागति प्रीति सिखी सी ॥ 52॥

माई री! मोहि कोउ न समुझावै ।

राम-गवन साँचो किधौं सपनो, मन परतीति न आवै ॥

लगेइ रहत मेरे नैननि आगे राम लषन अरु सीता ।

तदपि न मिटत दाह या उर को, बिधि जो भयो बिपरीता ॥

दुख न रहै रघुपतिहि बिलोकत, तनु न रहै बिनु देखे ।
करत न प्रान पयान सुनहु, सखि! अरुझि परी यहि लेखे ॥
कौसल्या के बिरह-बचन सुनि रोइ उठीं सब रानी ।
तुलसिदास रघुबीर-बिरह की पीर न जाति बखानी ॥ 53॥

जब जब भवन बिलोकति सूनो ।
तब तब बिकल होति कौसल्या दिन दिन प्रति दुख दूनो ॥
सुमिरत बाल-बिनोद राम के सुन्दर मुनि-मन-हारी ।
होत हृदय अति सूल समुझि पदपंकज अजिर-बिहारी ॥
को अब प्रात कलेऊ माँगत रुठि चलैगो, माई !।
स्याम-तामरस-नैन स्रवत जल काहि लेउँ उर लाई ॥
जीवौं तौ बिपति सहौं निसिबासर मरौं तौ मन पछितायो ।
चलत बिपिन भरि नयन राम को बदन न देखन पायो ॥
तुलसिदास यह दुसह दसा अति, दारुन बिरह घनेरो ।
दूरि करै को भूरि कृपा बिनु सोकजनित रुज मेरो ?॥ 54॥

मेरो यह अभिलाषु बिधाता ।
कब पुरवै सखि सानुकूल ह्वै हरि सेवक-सुख दाता ॥

सीता सहित कुसल कोसलपुर आवत हैं सुत दोऊ ।
स्रवन-सुधा-सम बचन सखी कब आइ कहैगो कोऊ? ॥
सुनि सन्देस प्रेम-परिपूरन सम्भ्रम उठि धावोंगी ।
बदन बिलोकि रोकि लोचन-जल हरषि हिये लावोंगी ॥
जनकसुता कब सासु कहैं मोहि, राम लषन कहैं मैया ।
बाहु जोरि कब अजिर चलहिंगे स्याम-गौर दोउ भैया ॥
तुलसिदास यहि भाँति मनोरथ करत प्रीति अति बाढ़ी ।
थकित भई उर आनि राम-छबि मनहुँ चित्र लिख काढ़ी ॥ 55॥

सुन्यौ जब फिरि सुमन्त पुर आयो ।
कहिहै कहा प्रानपति की गति, नृपति बिकल उठि धायो ॥
पाँय परत मन्त्री अति ब्याकुल, नृप उठाय उर लायो ।
दसरथ-दसा देखि न कह्यो कछु हरि जो सँदेस पठायो ॥
बूझि न सकत कुसल प्रीतम की हृदय यहै पछितायो ।
साँचेहु सुत-बियोग सुनिबे कहँ धिग बिधि मोहि जिआयो ॥
तुलसिदास प्रभु जानि निठुर हौं न्याय नाथ बिसरायो ।
हा! रघुपति कहि पर्‍यो अवनि जनु जल तें मीन बिलगायो ॥ 56॥

मुएहु न मिटैगो मेरो मानसिक पछिताउ ।
नारिबस न बिचारि कीन्हौं काज, सोचत राउ ॥
तिलक को बोल्यौ, दिये बन, चौगुनो चित चाउ ।
हृदय दाड़िम ज्यौं न बिदर्‌यो समुझि सील सुभाउ ॥
सीय रघुबर लषन बिनु, भय भभरि भगी न आउ ।
मोहि बूझि न परत यातें कौन कठिन कुघाउ ॥
सुनि सुमन्त! कि आनि सुन्दर सुवन सहित जिआउ ।
दास तुलसी नतरु मोको मरन-अमिय पिआउ ॥ 57॥

अवध बिलोकि हौं जीवत रामभद्र-बिहीन!
कहा करिहैं आइ सानुज भरत धरमधुरीन ॥
राम-सोक-सनेह-संकुल, तनु बिकल, मनु लीन ।
टूटि तारो गगन-मग ज्यों होत छिन छिन छीन ॥
हृदय समुझि सनेह सादर प्रेम-पावन-मीन ।
करी तुलसीदास दसरथ प्रीति-परमिति पीन ॥ 58॥

(राग गौरी)

करत राउ मन मों अनुमान ।

सोक-बिकल मुख बचन न आवै बिछुरै कृपानिधान ॥
राज देन कहि बोलि नारि-बस मैं जो कह्यो बन जान ।
आयसु सिर धरि चले हरषि हिय कानन भवन समान ॥
ऐसे सुत के बिरह-अवधि लौं जौ राखौं यह प्रान ।
तौ मिटि जाइ प्रीति की परिमिति अजस सुनौं निज कान ॥
राम गए अजहूँ हौं जीवत समुझत हिय अकुलान ।
तुलसिदास तनु तजि रघुपति हित कियो प्रेम परवान ॥ 59॥

ऐसे तैं क्यों कटु बचन कह्यो, री ?
'राम जाहु कानन' कठोर तेरो कैसे धौं हृदय रह्यो, री ॥
दिनकर-बंस, पिता दसरथ-से, राम लषन से भाई ।
जननी ! तू जननी ? तौ कहा कहौं बिधि केहि खोरि न लाई ?॥
हौं लहिहौं सुख राजमातु ह्वै, सुत सिर छत्र धरैगो ।
कुल-कलंक मल-मूल मनोरथ तव बिनु कौन करैगो ?॥
ऐहैं राम, सुखी सब ह्वैहैं, ईस अजस मेरो हरि हैं ।
तुलसिदास मोको बड़ो सोच है तू जनम कौनि बिधि भरि है ॥ 60॥

ताते हौं देत न दूषन तोहू ।

रामबिरोधी उर कठोर तें प्रगट कियो है बिधि मोहू ॥
सुन्दर सुखद सुसील सुधानिधि, जरनि जाइ जिहि जोए ।
बिष-बारुनी-बन्धु कहियत बिधु! नातो मिटत न धोए ॥
होते जौ न सुजान-सिरोमनि राम सब के मन माहीं ।
तौ तोरी करतूति, मातु! सुनि, प्रीति प्रतीति कहा हीं ?॥
मृदु मंजुल सींची-सनेह सुचि सुनत भरत-बर-बानी ।
तुलसी 'साधु-साधु' सुर नर मुनि कहत प्रेम पहिचानी ॥ 61॥

जो पै हौं मातु मते महँ ह्वैहौं ।
तौ जननी ! जग में या मुख की कहाँ कालिमा ध्वैहौं ?॥
क्यों हौं आजु हौत सुचि सपथनि ? कौन मानिहै साँची? ।
महिमा-मृगी कौन सुकृती की खल-बच-बिसिषन बाँची ?॥
गहि न जाति रसना काहू की, कहौ जाही जोइ सूझै ।
दीनबन्धु कारुण्य-सिन्धु बिनु कौन हिये की बूझै ?॥
तुलसी रामबियोग-बिषम-बिष-बिकल नारि-नर भारी ।
भरत-सनेह-सुधा सींचे सब भए तेहि समय सुखारी ॥ 62॥

काहे को खोरि कैकयिहि लावौं?

धरहु धीर, बलि जाउँ तात! मोको आज विधाता बावौं ॥
सुनिबे जोग बियोग राम को हौं न होउँ मेरे प्यारे ।
सो मेरे नयननि आगे तें रघुपति बनहिं सिधारे ॥
तुलसिदास समुझाइ भरत कहँ आँसू पोंछि उर लाए ।
उपजी प्रीति जानि प्रभु के हित, मनहुँ राम फिरि आए ॥ 63॥

मेरो अवध धौं कहहु कहा है ।
करहु राज रघुराज-चरन तजि, लै लटि लोगु रहा है [1]॥
धन्य मातु, हौं धन्य लागि जेहि राज-समाज ढहा है ।
तापर मोकों प्रभु करि काहत, सब बिनु दहन दहा है ॥
राम-सपथ कोउ कछू कहै जनि, मैं दुख दुसह सहा है ।
चित्रकूट चलिए सब मिलि, बलि, छमिए मोहि हहा है ॥
यो कहि भोर भरत गिरिवर को मारग बूझि गहा है ।
सकल सराहत एक भरत जग जनमि सुलाहु लहा है ॥
जानहिं सिय रघुनाथ भरत को सील सनेह महा है ।
कै तुलसी जाको राम-नाम सों प्रेम-नेम निबहा है ॥ 64॥

[^1] लै लटि लोग रहा है = इसी धुन में लोग हैरान हो रहे है।

भाई! हौं अवध कहा रहि लैहौं ।
राम-लषन-सिय-चरन बिलोकन काल्हि काननहि जैहौं ॥
जद्यपि मोतें, कै कुमात तें, ह्वै आई अति पोची ।
सनमुख गए सरन राखहिंगे रघुपति परम सँकोची ॥
तुलसी यों कहि चले भोरहीं, लोग बिकल सँग लागे ।
जनु बन जरत देखि दारुन दव निकसि बिहँग मृग भागे ॥ 65॥

सुक सों गहवर हिये कहै सारो [1]।
बीर कीर! सिय राम लषन बिनु लागत जग अँधियारो ॥
पापिनि चेरि, अयानि रानि, नृप हित अनहित न बिचारो ।
कुलगुरु सचिव साधु सोचतु बिधि को न बसाइ उजारो ?॥
अवलोके न चलत भरि लोचन, नगर कोलाहल भारो ।
सुने न बचन करुनाकर के जब पुर परिवार सँभारो ॥
भैया भरत भावते के सँग बन सब लोग सिधारो ।
हम पँख पाइ पींजरनि तरसत, अधिक अभाग हमारो ॥
सुनि खग कहत अंब! मौंगी रहि [2] समुझि प्रेमपथ न्यारो ।

---

[^1] सारो = शारिका, मैना।

[^2] मौंगी रहि = चुपचाप रह।

गए ते प्रभुहि पहुँचाइ फिरे पुनि करत करम-गुन गारो ॥

जीवन जग जानकी लखन को मरन महीप सँवारो ।

तुलसी और प्रीति की चरचा करत कहा कछु चारो ॥ 66॥

कहै सुक सुनहि सिखावन, सारो !

बिधि करतब बिपरीत बाम गति, रामप्रेम-पथ न्यारो ॥

को नर-नारि अवध खग मृग जेहि जीवन राम तें प्यारो ।

बिद्यमान सब के गवने बन, बदन करम को कारो ॥

अंब अनुज प्रिय सखा सुसेवक देखि बिषाद बिसारो ।

पंछी परबस परे पींजरनि लेखो कौन हमारो ॥

रही नृप की, बिगरी है सब की, अब एक सँवार निहारो ।

तुलसी प्रभु निज चरन-पीठ मिस भरत-प्रान रखबारो ॥ 67॥

ता दिन सृंगबेरपुर आए ।

राम सखा ते समाचार सुनि बारि बिलोचन छाए ॥

कुस साथरी देखि रघुपति की हेतु अपनपौ जानी ।

कहत कथा सिय राम लषन की बैठेहि रैनि बिहानी ॥

भोरहिं भरद्वाज आश्रम ह्वै करि निषादपति आगे ।

चले जनु तक्यो तड़ाग तृषित गज घोर घाम के लागे ॥

बूझत 'चित्रकूट कहँ', जेहि तेहि मुनि बालकनि बतायो ।

तुलसी मनहुँ फनिक मनि ढूँढ़त निरखि हरषि हिय धायो ॥ 68॥

(राग केदारा)

बिलोके दूरि तें दोउ बीर ।

उर आयत, आजानु सुभग भुज, स्यामल गौर सरीर ॥

सीस जटा, सरसीरुह लोचन, बने परिधन मुनिचीर ।

निकट निषंग, संग सिय सोभित, करनि धुनत [1] धनु तीर ॥

मन अगहुँड़, तनु पुलक सिथिल भयो, नलिन नयन भरे नीर ।

गड़त गोड़ मानो सकुच-पंक महँ, कढ़त प्रेम-बल धीर ॥

तुलसिदास दसा देखि भरत की उठि धाए अतिहि अधीर ।

लिये उठाइ उर लाइ कृपानिधि बिरह-जनित हरि पीर ॥ 69॥

भरत भए ठाढ़े कर जोरि ।

है न सकत सामुहें सकुचबस समुझि मातुकृत खोरि ॥

फिरिहैं किधौं फिरन कहिहैं प्रभु कलपि कुटिलता मोरि ।

---

[^1] धुनत = क्रीड़ावश धनुष की डोरी पर मारते है।

हृदय सोच, जल भरे बिलोचन, नेह देह भै भोरि ॥

बनबासी, पुरलोग, महामुनि किये हैं काठ के से कोरि [1]।

दै दै स्रवन सुनिबे को जहँ तहँ रहे प्रेम मन बोरि ॥

तुलसी राम-सुभाव सुमिरि उर धरि धीरजहि बहोरि ।

बोले बचन बिनीत उचित हित करुना-रसहि निचोरि ॥ 70॥

जानत हौ सबही के मन की ।

तदपि कृपालु करौं बिनती सोइ सादर सुनहु दीन-हित जन की ॥

ये सेवक संतत अनन्य अति ज्यों चातकहि एक गति घन की ।

यह बिचारि गवनहु पुनीत पुर, हरहु दुसह आरति परिजन की ॥

मेरो जीवन जानिय ऐसोइ जैसो अहि जासु गई मनि फन की ।

मेटहु कुलकलंक कोसलपति आज्ञा देहु नाथ मोहि बन की ॥

मोको जोइ लाइय लागै सोइ उतपति है कुमातु तें तन की ।

तुलसिदास सब दोष दूरि करि प्रभु अब लाज करहु निज पन की ॥ 71॥

तात! बिचारो धौं हौं क्यों आवौं ।

तुम्ह सुचि सुहृद सुजान सकल बिधि, बहुत कहा कहि कहि समुझावौं ॥

---

[^1] कोरि = छीलछाल कर।

निज कर खाल खैंचि या तनु तें जौ पितु पग पानही करावौं ।

होउँ न उऋन पिता दसरथ तें, कैसे ताके बचन मेटि पति पावौं ॥

तुलसिदास जाको सुजस तिहूँ पुर क्यों तेहि कुलहिं कालिमा लावौं ।

प्रभु रुख निरखि निरास भरत भए, जान्यो है सबहि भाँति बिधि बावौं॥72॥

(राग सोरठ)

बहुरो भरत कह्यो कछु चाहैं ।

सकुच-सिन्धु बोहित बिबेक करि बुधि बल बचन निबाहैं ॥

छोटे हुतें छोह करि आए मैं सामुहैं न हेरो ।

एकहि बार आजु बिधि मेरो सील सनेह निबेरो ॥

तुलसी जो फिरिबो न बनै प्रभु तौ हौं आयसु पावौं ।

घर फेरिए लषन लरिका हैं, नाथ साथ हौं आवौं ॥ 73॥

रघुपति! मोहि संग किन लीजै

बार बार 'पुर जाहु' नाथ! केहि कारन आयसु दीजै ॥

जद्यपि हौं अति अधम कुटिल मति अपराधिनि को जायो ।

प्रनतपाल कोमल-सुभाव जिय जानि सरन तकि आयो ॥

जो मेरे तजि चरन आन गति, कहौं हृदय कछु राखी ।

तौ परिहरहु दयालु दीनहित प्रभु अभिअंतर-साखी ॥
ताते नाथ! कहौं मैं पुनि-पुनि प्रभु पितु मातु गोसाईं ।
भजनहीन नरदेह बृथा खर स्वान फेरु की नाईँ ॥
बंधु-बचन सुनि स्रवन नयन राजीव नीर भरि आए ।
तुलसिदास प्रभु परम कृपा गहि बाँह भरत उर लाए ॥ 74॥

काहेको मानत हानि हिये हौ?
प्रीति नीति गुन सील धर्म कहँ तुम अवलम्ब दिये हौ ॥
तात! जात जानिबे न ए दिन, करि प्रमान पितु-बानी ।
ऐहौं बेगि, धरहु धीरज उर कठिन कालगति जानी ॥
तुलसिदास अनुजहि प्रबोधि प्रभु चरनपीठ निज दीन्हें ।
मनहुँ सबनि के प्रान-पाहरू भरत सीस धरि लीन्हें ॥ 75॥

बिनती भरत करत कर जोरे ।
दीनबन्धु दीनता दीन की कबहुँ परै जनि भोरे ॥
तुम्हसे तुम्हहिं नाथ मोको, मोसे जन तुमको बहुतेरे ।
इहै जानि पहिचानि प्रीति छमिए अब औगुन मेरे ॥
यों कहि सीय-राम-पाँयनि परि लषन लाइ उर लीन्हें ।

पुलक सरीर नीर भरि लोचन कहत प्रेम-पन कीन्हें ॥
तुलसी बीते अवधि प्रथम दिन जो रघुबीर न ऐहौ ।
तौ प्रभु-चरन-सरोज-सपथ जीवत परिजनहि न पैहौ ॥ 76॥

अवसि हौं आयसु पाइ रहौंगो ।
जनमि कैकयी-कोखि कृपानिधि! क्यों कछु चपरि कहौंगो ॥
'भरत भूप, सिय राम लषन बन', सुनि सानन्द सहौंगो ।
पुर परिजन अवलोकि मातु सब सुख सन्तोष लहौंगो ॥
प्रभु जानत जेहि भाँति अवधि लौं बचन पालि निबहौंगो ।
आगे की बिनती तुलसी तब जब फिरि चरन गहौंगो ॥ 77॥

प्रभु सों मैं ढीठो बहुत दई है ।
कीबी छमा नाथ आरति तें कही कुजुगुति नई है ॥
यों कहि बार बार पाँयनि परि, पाँवरि पुलकि लई है ।
अपनो अदिन देखि हौं डरपत जेहि बिष बेलि बई है ॥
आए सदा सुधारि गोसाईं, जन तें बिगरि गई है ।
थके बचन पैरत सनेह-सरि, पर्‌यो मानो घोर घई [1] है ॥

[^1] घई = भँवर।

चित्रकूट तेहि समय सबनि की बुद्धि बिषाद हई है ।

तुलसी राम-भरत के बिछुरत सिला सप्रेम भई है ॥ 78॥

जब तें चित्रकूट तें आए ।

नन्दिग्राम खनि अवनि, डासि कुस, परनकुटी करि छाए ॥

अजिन बसन, फल असन, जटा धरे रहत अवधि चित दीन्हें ।

प्रभु-पद-प्रेम-नेम-ब्रत निरखत मुनिन्ह नमित मुख कीन्हें ॥

सिंहासन पर पूजि पादुका बारहि बार जोहारे ।

प्रभु-अनुराग माँगि आयसु पुरजन सब काज सँवारे ॥

तुलसी ज्यों ज्यों घटत तेज तनु त्यों त्यों प्रीति अधिकाई ।

भए, न हैं, न होहिंगे कबहूँ भुवन भरत-से भाई ॥ 79॥

(राग रामकली)

राखी भगति भलाई भली भाँति भरत ।

स्वारथ परमारथ पथी जय जय जग करत ॥

जो ब्रत मुनिवरनि कठिन मानस आचरत ।

सो ब्रत लिए चातक ज्यों सुनत पाप हरत ॥

सिंहासन सुभग राम-चरन-पीठ धरत ।

चालत सब राजकाज आयसु अनुसरत ॥
आपु अवध, बिपिन बन्धु, सोच-जरनि जरत ।
तुलसी सम-बिषम, सुगम अगम लखि न परत ॥ 80॥

मोहि भावति, कहि आवति नहि भरतजू की रहनि ।
सजल नयन सिथिल बयन प्रभु-गुन-गन कहनि ॥
असन-बसन-अयन-सयन धरम-गरुअ-गहनि ।
दिन दिन पन-प्रेम-नेम निरुपधि निरबहनि ॥
सीता-रघुनाथ लषन-बिरह-पीर सहनि ।
तुलसी तजि उभय लोक रामचरन-चहनि ॥ 81॥

जानी है संकर हनुमान लषन भरत राम-भगति ।
कहत सुगम, करत अगम, सुनत मीठी लगति ॥
लहत सकृत चहत सकल, जुग जुग जगमगति ।
राम-प्रेम-पथ तें कबहुँ डोलति नहिं, डगति ॥
ऋधि,सिधि, बिधि चारि सुगति जा बिनु गति अगति ।
तुलसी तेहि सनमुख बिनु बिषय-ठगिनि ठगति ॥ 82॥

(राग गौरी)

कैकयी करी धौं चतुराई कौन?

राम लषन सिय बनहि पठाए, पति पठए सुर भौन ॥

कहा भलो धौं भयो भरत को लगे तरुन-तन दौन ।

पुरबासिन्ह के नयन नीर बिनु कबहुँ तो देखति हौं न ॥

कौसल्या दिन राति बिसूरति बैठि मनहिं मन मौन ।

तुलसी उचित न होइ रोइबो प्रान गए सँग जौ न ॥ 83॥

हाथ मींजिबो हाथ रह्यो ।

लगी न संग चित्रकूटहु तें ह्याँ कहा जात बह्यो ॥

पति सुरपुर, सिय राम लषन बन, मुनिब्रत भरत गह्यो ।

हौं रहि घर मसान-पावक ज्यों मरिबोइ मृतक दह्यो [1]॥

मेरोइ हिय कठोर करिबे कहँ बिधि कहुँ कुलिस लह्यो ।

तुलसी बन पहुँचाइ फिरी सुत, क्यों कछु परत कह्यो ?॥ 84॥

(राग सोरठ)

हौं तो समुझि रही अपनो सो ।

[^1] मरिबोइ मृतक दह्यो = मानो मृत्यु रूपी मृतक को ही जला डाला है अर्थात् मैं मरती भी नहीं हूँ।

राम लषन सिय को सुख मो कहँ भयो, सखी! सपनो सो ॥
जिन्हके बिरह बिषाद बँटावन खग मृग जीव दुखारी ।
मोहि कहा सजनी समुझावति, हौं तिन्हकी महतारी ॥
भरत-दसा सुनि, सुमिरि भूपगति, देखि दीन पुरबासी ।
तुलसी 'राम' कहति हौं सकुचति ह्वैहै जग उपहाँसी ॥ 85॥

आली! हौं इन्हहिं बुझावौं कैसे ?
लेत हिये भरि भरि पति को हित मातुहेतु सुत जैसे ॥
बार बार हिहिनात हेरि उत जो बोलै कोउ द्वारे ।
अंग लगाइ लिए बारे तें करुनामय सुत प्यारे ॥
लोचन सजल, सदा सोवत-से, खान पान बिसराए ।
चितवत चौंकि नाम सुनि, सोचत राम-सुरति उर आए ॥
तुलसी प्रभु के बिरह बधिक हठि राजहंस से जोरे ।
ऐसेहु दुखित देखि हौं जीवति राम-लखन के घोरे ॥ 86॥

राघौ! एक बार फिरि आवौ ।
ए बर बाजि बिलोकि आपने बहुरो बनहि सिधावौ ॥
जे पय प्याइ पोखि कर-पंकज बार-बार चुचुकारे ।

क्यों जीवहिं, मेरे राम लाड़िले! ते अब निपट बिसारे ॥
भरत सौगुनी सार [1] करत हैं, अति प्रिय जानि तिहारे ।
तदपि दिनहिं दिन होत झाँवरे मनहुँ कमल हिम-मारे ॥
सुनहु पथिक! जो राम मिलहिं बन कहियो मातु-सँदेसो ।
तुलसी मोहि और सबहिन तें इन्हको बड़ो अँदेसो ॥ 87॥

काहू सों काहू समाचार ऐसे पाए ।
चित्रकूट ते राम लषन सिय सुनियत अनत सिधाए ॥
सैल, सरित, निरझर, बन, मुनि-थल देखि-देखि सब आए ।
कहत सुनत सुमिरत सुखदायक मानस-सुगम सुहाए ॥
बड़ि अवलम्ब बाम-बिधि-बिघटित, बिषम बिषाद बढ़ाए ।
सिरिस सुमन-सुकुमार मनोहर बालक बिन्ध्य चढ़ाए ॥
अवध सकल नर-नारि बिकल अति, अँकनि बचन अनभाए ।
तुलसी राम-बियोग-सोग-बस समुझत नहिं समुझाए ॥ 88॥

सुनी मैं, सखि! मंगल चाह सुहाई ।
सुभ पत्रिका निषातराज की आजु भरत पहँ आई ॥

---

[^1] सार = खबरदारी, सँभाल।

कुँवर सो कुसल-छेम अलि! तेहि पल कुलगुरु कहँ पहुँचाई ।

गुर कृपालु सम्भ्रम पुर घर घर सादर सबहि सुनाई ॥

बधि बिराध, सुर-साधु सुखी करि, ऋषि-सिख-आसिष पाई ।

कुम्भजु सिष्य समेत संग सिय मुदित चले दोउ भाई ॥

बीच बिन्ध्य रेवा सुपास थल बसे हैं परन गृह छाई ।

पन्थ-कथा रघुनाथ पथिक की तुलसिदास सुनि गाई ॥ 89॥

अरण्य कांड

(राग मलार)

देखे राम-पथिक नाचत मुदित मोर ।

मानत मनहुँ संतड़ित ललित घन, धनु सुरधनु, गरजनि टंकोर ॥

कँपै [1] कलाप [2] बर बरहि फिरावत, गावत कल कोकिल-किसोर ।

जहँ जहँ प्रभु बिचरत तहँ तहँ सुख दंडकबन कौतुक न थोर ॥

---

[^1] कँपै = कँपा कर।

[^2] कलाप = मोर की पूँछ।

सघन छाँह तम-रुचिर रजनि भ्रम, बदन-चन्द चितवत चकोर ।

तुलसी मुनि खग मृगनि सराहत भए हैं सुकृत सब इन्हकी ओर ॥1॥

(राग कल्याण)

सुभग सरासन सायक जोरे ।

खेलत राम फिरत मृगया बन बसति सो मृदु मूरति मन मोरे ॥

पीत बसन कटि, चारु चारि सर, चलत कोटि नट सो तृन तोरे [1]।

स्यामल तनु स्रम-कन राजत ज्यों नव घन सुधा-सरोवर खोरे ॥

ललित कन्ध, बर भुज, बिसाल उर, लेहि कंठ-रेखैं चित चोरे ।

अवलोकत मुख देत परम सुख लेत सरद-ससि की छबि छोरे ॥

जटा मुकुट सिर सारस-नयननि गौ हैं तकत सुभौंह सकोरे ।

सोभा अमित समाति न कानन, उमगि चली चहुँ दिसि मिति फोरे ॥

चितवत चकित कुरंग-कुरंगिनि सब भए मगन मदन के भोरे ।

तुलसिदास प्रभु बान न मोचत, सहज सुभाय प्रेमबस थोरे ॥ 2॥

---

[^1] चलत ... ... = नट भी उसकी सुंदर द्रुत गति पर मोहित होकर तिनका तोड़ता है जिसमें उन्हें नजर न लगे। (स्त्रियाँ बच्चों को नजर से बचाने के लिए तिनका तोड़ने का टोटका करती है।)

(राग सोरठ)

बैठे हैं राम लषन अरु सीता ।

पंचबटी बर परनकुटी तर, कहैं कछु कथा पुनीता ॥

कपट-कुरंग कनकमनिमय लखि प्रिय सों कहति हँसि बाला ।

पाए पालिबे जोग मंजु मृग, मारेहुँ मंजुल छाला ॥

प्रिया-बचन सुनि बिहँसि प्रेमबस गवहिं [1] चाप सर लीन्हें ।

चल्यो भाजि फिरि फिरि चितवत मुनिमख-रखवारे चीन्हें ॥

सोहति मधुर मनोहर मूरति हेम-हरिन के पाछे ।

धावनि, नवनि, बिलोकनि, बिथकनि बसै तुलसी उर आछे ॥ 3॥

(राग कल्याण)

कर सर धनु, कटि रुचिर निषंग ।

प्रिया-प्रीति-प्रेरित बन बीथिन्ह बिचरत कपट-कनक-मृग संग ॥

भुज बिसाल, कमनीय कन्ध उर, स्रम-सीकर सोहैं साँवरे अंग ।

मनु मुकुता मनि-मरकत-गिरि पर लसत ललित रबि-किरनि प्रसंग ॥

नलिन नयन, सिर जटा-मुकुट बिच सुमन-माल मनु सिव-सिर गंग ।

तुलसिदास ऐसी मूरति की बलि छबि, बिलोकि लाजैं अमित अनंग॥ 4॥

---

[^1] गवहिं = धीरे से, चुपचाप।

(राग केदारा)

राघव, भावति मोहि बिपिन की बीथिन्ह धावनि ।
अरुन-कंज-बरन-चरन सोकहरन, अंकुस कुलिस केतु अंकित अवनि ॥
सुन्दर स्यामल अंग, बसन पीत सुरंग, कटि निषंग परिकर मेरवनि [1]।
कनक-कुरंग संग साजे कर सर चाप, राजिवनयन इत उत चितवनि ॥
सोहत सिर मुकुट जटा पटल, निकर सुमन लता सहित, रची बनवनि ।
तैसेई स्रम-सीकर रुचिर राजत मुख, तैसिए ललित भृकुटिन्ह की नवनि ॥
देखत खग-निकर, मृग रवनिन्ह जुत, थकित बिसारि जहाँ-तहाँ की भँवनि [2] ।
हरि-दरसन-फल पायो है ज्ञान बिमल, जाँचत भगति मुनि चाहत जवनि ॥
जिन्हके मन मगन भए हैं रस सगुन, तिन्हके लेखे अगुन मुकुति कवनि ।
स्रवन सुख करनि, भवसरिता तरनि, गावत तुलसिदास कीरति पवनि[3] ॥ 5॥

---

[^1] मेरवनि = मिलान।

[^2] भँवनि = भ्रमण, घूमना।

[^3] पवनि = पावन, पवित्र।

(राग सोरठ)

रघुबर दूरि जाइ मृग मार्‌यो ।
लषन पुकारि, राम हरुए कहि, मरतहु बैर सँभार्‌यो ॥
सुनहु तात! कोउ तुम्हहिं पुकारत प्राननाथ की नाईं ।
कह्यो लषन हत्यो हरिन, कोपि सिय हठि पठयो बरिआईं ॥
बन्धु बिलोकि कहत तुलसी-प्रभु 'भाई! भली न कीन्हीं ।
मेरे जान जानकी काहू खल छल करि हरि लीन्हीं' ॥ 6॥

आरत बचन कहति बैदेही ।
बिलपति भूरि बिसूरि 'दूरि गए मृग सँग परम सनेही' ॥
कहे कटु बचन, रेख नाँघी मैं, तात छमा सो कीजै ।
देखि बधिक-बस राजमरालिनि लषन लाल! छिनि लीजै ॥
बनदेवनि सिय कहन कहति यों छल करि नीच हरी हौं ।
गोमर-कर सुरधेनु, नाथ! ज्यौं त्यौं पर-हाथ परी हौं ॥
तुलसिदास रघुनाथ-नाम-धुनि अकनि गीध धुकि धायो ।
'पुत्रि पुत्रि! जनि डरहि, न जैहै नीचु, मीचु हौं आयो' ॥ 7॥

फिरत न बारहि बार प्रचार्‌यो ।

चपरि चोंच-चंगुल हय हति, रथ खंड खंड करि डार्‌यो ॥
बिरथ बिकल कियो, छीन लीन्हि सिय, घन घायनि अकुलान्यौ ।
तब असि काढ़ि, काटि पर, पाँवर लै प्रभु-प्रिया परान्यौ ॥
रामकाज खगराज आजु लर्‌यो जियत न जानकि त्यागी ।
तुलसिदास सुर-सिद्ध सराहत धन्य बिहँग बड़भागी ॥ 8॥

(राग गौरी)

हेम को हरिन हनि फिरे रघुकुल-मनि,
लषन ललित कर लिए मृगछाल ।
आस्रम आवत चले, सगुन न भए भले,
फरके बाम बाहु लोचन बिसाल ॥

सरित-जल मलिन, सरनि सूखे नलिन,
अलि न गुंज़त, कल कूजैं न मराल ।
कोलिनि कोल किरात जहाँ तहाँ बिखात,
बन न बिलोकि जात खग-मृग-माल ॥

तरु जे जानकी लाए, ज्याये हरि करि-कपि,
हेरैं न हुँकरि, झरैं फल न रसाल ।

जे सुक सारिका पाले, मातु ज्यों ललकि लाले,

तेऊ न पढ़त न पढ़ावैं मुनिबाल ॥

समुझि सहमे सुठि, प्रिया तौ न आई उठि,

तुलसी बिबरन परन-तृन-साल ।

औरै सो सब समाजु, कुसल न देखौं आजु,

गहबर हिय कहैं कोसलपाल ॥ 9॥

आस्रम निरखि भूले, द्रुम न फले न फूले,

अलि खग मृग मानो कबहुँ न हे ।

मुनि न मुनिबधूटी, उजरी परनकुटी,

पंचबटी पहिचानि ठाढ़ेइ रहे ॥

उठी न सलिल लिये प्रेम प्रमुदित हिये,

प्रिया, न पुलकि प्रिय बचन कहे ।

पल्लव-सालन हेरी, प्रानबल्लभा न टेरी,

बिरह बिथकि लखि लषन गहे ॥

देखे रघुपति-गति बिबुध बिकल अति,

तुलसी गहन बिनु दहन दहे ।
अनुज दियो भरोसो, तौलों है सोचु खरो सो,
सिय-समाचार प्रभु जौलों न लहे ॥ 10॥

(राग सोरठ)

जबहि सिय-सुधि सब सुरनि सुनाई ।
भए सुनि सजग बिरहसरि पैरत थके थाह सी पाई ॥
कसि तूनीर-तीर धनु-धर-धुर धीर बीर दोउ भाई ।
पंचबटी गोदहि [1] प्रनाम करि, कुटी दाहिनी लाई ॥
चले बूझत बन बेलि-बिटप खग मृग अलि अवलि सुहाई ।
प्रभु की दसा सो समौ कहिबे को कबि उर आह [2] न आई ॥
रटनि अकनि पहिचानि गीध फिरे करुनामय रघुराई ।
तुलसी रामहि प्रिया बिसरि गई सुमिरि सनेह सगाई ॥ 11॥

मेरे एकौ हाथ न लागी ।
गयो बपु बीति बादि कानन ज्यों कलपलता दव दागी ॥

---

[^1] गोदहि = गोदावरी को।

[^2] आह = हिम्मत, साहस।

दसरथ सों न प्रेम प्रतिपाल्यौ हुतो जो सकल जग साखी ।

बरबस हरत निसाचर-पति सों हठि न जानकी राखी ॥

मरत न मैं रघुबीर बिलोके तापस बेष बनाए ।

चाहत चलन प्रान पाँवर बिनु सिय-सुधि प्रभुहि सुनाए ॥

बार-बार कर मींजि, सीस धुनि गीधराज पछिताई ।

तुलसी प्रभु कृपालु तेहि औसर आइ गए दोउ भाई ॥ 12॥

राघौ गीध गोद करि लीन्हों ।

नयन-सरोज सनेह-सलिल सुचि मनहुँ अरघजल दीन्हों ॥

सुनहु लषन! खगपतिहि मिले बन मैं पितु-मरण न जान्यौ ।

सहि न सक्यौ सो कठिन बिधाता बड़ो पछु आजुहि भान्यौ ॥

बहु बिधि राम कह्यो तनु राखन परम धीर नहि डोल्यौ ।

रोकि प्रेम, अवलोकि बदन-बिधु, बचन मनोहर बोल्यौ ॥

तुलसी प्रभु झूठे जीवन लगि समय न धोखो लैहौं [1]।

जाको नाम मरत मुनि दुर्लभ तुमहि कहाँ पुनि पैहौं ?॥ 13॥

नीके कै जानत राम हियो हौं ।

---

[^1] न धोखो लैहौं = धोखा न लगाऊँगा, न चूकूँगा।

प्रनतपाल, सेवक-कृपालु-चित, पितु पटतरहि दियो हौं ॥
त्रिजगजोनि-गत गीध जनम भरि खाइ कुजन्तु जियो हौं ।
महाराज सुकृती-समाज सब-ऊपर आजु कियो हौं ॥
स्रवन बचन, मुख नाम, रुप चख, राम उछंग लियो हौं ।
तुलसी मो समान बड़भागी को कहि सकै बियो हौं ॥ 14॥

मेरे जान तात कछू दिन जीजै ।
देखिय आपु सुवन-सेवासुख मोहि पितु को सुख दीजै ॥
दिब्य-देह, इच्छा-जीवन जग बिधि मनाइ मँगि लीजै ।
हरि हर सुजस सुनाइ, दरस दै लोग कृतारथ कीजै ॥
देखि बदन, सुनि बचन अमिय, तन रामनयन जल भीजै ।
बोल्यो बिहग बिहँसि ‘रघुबर बलि कहौं सुभाय पतीजै ॥
मेरे मरिबे सम न चारि फल होंहि तौ क्यों न कहीजै ?’ ।
तुलसी प्रभु दियो उतरु मौन हीं परी मानो प्रेम सहीजै ॥ 15॥

मेरो सुनियो, तात! सँदेसो ।
सीय-हरन जनि कहेहु पिता सों ह्वैहै अधिक अँदेसो ॥
रावरे पुन्यप्रताप-अनल महँ अलप दिननि रिपु दहिहैं ।

कुलस समेत सुरसभा दसानन समाचार सब कहिहैं ॥

सुनि प्रभु-बचन, राखि उर मुरति, चरन-कमल सिर नाई ।

चल्यो नभ सुनत राम-कल-कीरति अरु निज भाग बड़ाई ॥

पितु ज्यों गीध-क्रिया करि रघुपति अपने धाम पठायो ।

ऐसो प्रभु बिसारि तुलसी सठ तू चाहत सुख पायो ॥ 16॥

(राग सूहो)

सबरी सोइ उठी, फरकत बाम बिलोचन बाहु ।

सगुन सुहावने सूचत मुनि-मन-अगम उछाहु ॥

मुनि-अगम उर आनन्द लोचन सजल तनु पुलकावली ।

तृन-पर्नसाल बनाइ, जल भरि कलस, फल चाहन चली ॥

मंजुल मनोरथ करति, सुमिरति बिप्र-बरबानी भली ।

ज्यों कल्प-बेलि सकेलि सुकृत सुफूल-फूली सुख-फली ॥

मानप्रिय पाहुने ऐहैं राम लषन मेरे आजु ।

जानत जन-जिय की मृदु चित राम गरीबनिवाजु ॥

मृदु चित गरीबनिवाज आजु बिराजिहैं गृह आइकै ।

ब्रह्मादि संकर गौरि पूजित पूजिहौं अब जाइकै ॥

लहि नाथ हौं रघुनाथ-बानो पतितपावन पाइकै ।
दुहुँ ओर लाहु अघाइ तुलसी तीसरेहु गुन गाइकै ॥

दोना रुचिर रचे पूरन कन्द मूल, फल-फूल ।
अनुपम अमियहु तें अंबक अवलोकत अनुकूल ॥
अनुकूल अंबक अंब ज्यों निज डिम्ब हित सब आनिकै ।
सुन्दर सनेह सुधा सहस जनु सरस राखे सानिकै ॥
छन भवन, छन बाहर, बिलोकति पन्थ भूपर पानि कै ।
दोउ भाइ आये शवरिका के प्रेम-पन पहिचानि कै ॥

स्रवन सुनत चली आवत देखि लषन-रघुराउ ।
सिथिल सनेह कहै, 'है सपना बिधि कैधौं सति भाउ' ॥
सति भाउ कै सपनो? निहारि कुमार कोसलराय के ।
गहै चरन जे अघहरन नत-जन-बचन मानस-काय के ॥
लघु-भाग-भाजन उदधि उमग्यो लाभ सुख चित चाय के ।
सो जननि ज्यों आदरी सानुज, राम भूखे भाय के ॥

प्रेम-पट पाँवड़े देत सुअरघ बिलोचन-बारि ।
आस्रम लै दिए आसन पंकज-पाँय पखारि ॥

पद-पंकजात पखारि पूजे पन्थ-श्रम-बिरति भये ।
फल फूल अंकुर मूल धरे सुधारि भरि दोना नये ॥
प्रभु खात पुलकित गात, स्वाद सराहि आदर जनु जये ।
फल चारिहू फल चारि दहि, परचारि-फल सबरी दये [1]॥

सुमन बरषि, हरषे सुर, मुनि मुदित सराहि सिहात ।
केहि रुचि केहि छुधा सानुज माँगि माँगि प्रभु खात ॥
प्रभु खात माँगत देति सबरी राम भोगी जाग के ।
पुलकत प्रसंसत सिद्ध सिव सनकादि भाजन भाग के ॥
बालक सुमित्रा कौसिला के पाहुने फल साग के ।
सुनु समुझि तुलसी जानु रामहि बस अमल अनुराग के ॥

रघुबर अँचइ उठे सबरी करि प्रनाम कर जोरि ।
हौं बलि बलि गई पुरई मंजु मनोरथ मोरि ॥
पुरई मनोरथ स्वारथहु परमारथहु पूरन करी ।
अघ अवगुनन्हि की कोठरी करि कृपा मुद-मंगल भरी ॥

---

[^1] फलचारिहू ... ... सबरी दये = चारों फलों (अर्थ, धर्म आदि) को (शबरी को दिए) चार फलों से जलाकर ललकारकर शबरी को फल दिए अर्थात् शबरी को चारों फलों से बढ़कर फल दिए।

तापस किरातिनि कोल मृदु मूरति मनोहर मन धरी ।

सिर नाइ, आयसु पाइ गवनी परमनिधि पाले परी ॥

सिय-सुधि सब कही नख सिख निरखि निरखि दोउ भाइ ।

दै दै प्रदच्छिना करति प्रनाम न प्रेम अघाइ ॥

अति प्रीति मानस राखि रामहि, राम-धामहि सो गई ।

तेहि मातु-ज्यों रघुनाथ अपने हाथ जल-अंजलि दई ॥

तुलसी-भनित सबरी-प्रनति, रघुबर-प्रकृति करुनामई ।

गावत, सुनत, समुझत भगति हिय होय प्रभु पद नित नई ॥17॥

किष्किंधा कांड

(राग केदारा)

भूषन बसन बिलोकत सिय के।

प्रेम-बिबस मन,कंप पुलक तनु, नीरजनयन नीर भरे पिय के॥

स्कुचत कहत, सुमिरि उर उमगत, सील सनेह सुगुनगन तिय के।

स्वामि-दसा लखि लषन सखा कपि , पिघले हैं आँच माठ मानो घिय के॥

सोचत हानि मानि मन, गुनि गुनि, गये निघटि फल सकल सुकिय के [1]।

बरने जामवंत तेहि अवसर, बचन बिबेक बीररस बिय के॥

धीर बीर सुनि समुझि परसपर, बल-उपाय उघटत निज हिय के।

तुलसिदास यह समउ कहे तें कबि लागत निपट निठुर जड़ जिय के ॥1॥

(राग केदारा)

प्रभु कपि-नायक बोलि कह्यो है।

बरषा गई, सरद आई, अब लगि नहि सिय-सोधु लह्यो है॥

जा कारन तजि लोकलाज तनु राखि बियोग सह्यो है।

ताको तौ कपिराज आज लगि कछु न काज निबह्यो है॥

सुनि सुग्रीव सभीत नमित-मुख उतरु न देन चह्यो है।

आइ गए हरि-जूथ देखि उर पूरि प्रमोद रह्यो है॥

पठये बदि बदि अवधि दसहुँ दिसि, चले बलु सबनि गह्यो है।

तुलसी सिय लगि भव-दधि-निधि मनु फिरि हरि चहत मह्यो है॥ 2॥

[^1] सुकिय = सुकृत।

सुंदर कांड

(राग केदारा)

रजायसु राम को जब पायो ।

गाल मेलि मुद्रिका मुदित मन पवनपूत सिर नायो ॥

भालुनाथ नल नील साथ चले, बली बालि को जायो ।

फरकि सुअँग भए सगुन, कहत मानो मग मुद-मंगल छायो ॥

देखि बिबर सुधि पाइ गीध सों सबनि अपनो बल अनुमायो [1]।

सुमिरि राम, तकि तरकि तोयनिधि, लंक लूक [2] सो आयो ॥

खोजत घर घर जनु दरिद्र-मनु फिरत लागि धन धायो ।

तुलसी सिय बिलोकि पुलक्यो तनु भूरिभाग भयो भायो ॥ 1॥

देखी जानकी जब जाइ ।

परम धीर समीरसुत के प्रेम उर न समाइ ॥

कृस सरीर सुभाय सोभित, लगी उड़ि उड़ि धूलि ।

---

[^1] अनुमायो = अनुमान किया, अंदाज किया।

[^2] लूक = उल्का।

मनहुँ मनसिज मोहनी-मनि गयो भोरे भूलि ॥
रटति निसि बासर निरन्तर राम राजिवनैन ।
जात निकट न बिरहिनी-अरि अकनि ताते बैन ॥
नाथ के गुनगाथ कहि कपि दई मुँदरी डारि ।
कथा सुनि उठि लई कर बर रुचिर नाम निहारि ॥
हृदय हरष-बिषाद अति-पति-मुद्रिका पहिचानि ।
दास तुलसी दसा सो कहि भाँति कहै बखानि ?॥ 2॥

(राग सोरठ)

बोलि, बलि, मूँदरी! सानुज कुसल कोसलपालु ।
अमिय बचन सुनाइ मेटहिं बिरह-ज्वाला-जालु ॥
कहत हित अपमान मैं कियो, होत हिय सोइ सालु ।
रोष छमि सुधि करत कबहूँ ललित लछिमन लालु ?॥
परसपर पति-देवरहि का होति चरचा चालु ।
देवि! कहु केहि हेत बोले बिपुल बानर भालु ॥
सीलनिधि समरथ सुसाहिब दीनबन्धु दयालु ।
दास तुलसी प्रभुहि काहु न कह्यो मेरो हालु ॥ 3॥

सदल सलषन हैं कुसल कृपालु कोसल राउ!

सील-सदन सनेह-सागर सहज सरल सुभाउ ॥

नींद भूख न देवरहि परिहरे को पछिताउ ।

धीरधुर रघुबीर को नहि सपनेहूँ चित चाउ ॥

सोधु बिनु, अनुरोध ऋतु के, बोध बिहित उपाउ ।

करत हैं सोइ समय साधन फलति बनत बनाउ ॥

पठै कपि दिसि दसहुँ जे प्रभुकाज कुटिल न काउ ।

बोलि लियो हनुमान करि सनमान, जानि समाउ ॥

दई हौं संकेत कहि कुसलात सियहि सुनाउ ।

देखि दुर्ग बिसेषि जानकि जानि रिपु-गति आउ ॥

कियो सीय प्रबोध मुँदरी, दियो कपिहि लखाउ ।

पाइ अवसर नाइ सिर तुलसीस गुनगन गाउ ॥ 4॥

सुवन समीर को धीरधुरीन बीर बड़ोइ ।

देखि गति सिय मुद्रिका की बाल ज्यौं दियो रोइ ॥

अकनि कटु बानी कुटिल की क्रोध-बिन्ध्य बढ़ोइ ।

सकुचि सम भयो ईस-आयसु-कलसभव [1] जिय जोइ ॥

---

[^1] कलसभव = अगस्त्य जिन्होंने विंध्यपर्वत को बढ़ने से रोक दिया था।

बुद्धि बल साहस पराक्रम अछत राखे गोइ ।
सकल साज समाज साधक समउ कहै सब कोइ ॥
उतरि तरु तें नमत पद, सकुचात सोचत सोइ ।
चुके अवसर मनहुँ सुजनहि सुजन सनमुख होइ ॥
कहे बचन बिनीत प्रीति-प्रतीति नीति निचोइ ।
सीय सुनि हनुमान जान्यौ भली भाँति भलोइ ॥
देबि! बिनु करतूति कहिबो जानिहैं लघु लोइ ।
कहौंगो मुखकी समरसरि कालि कारिख धोइ ॥
करत कछू न बनत हरि हिय हरष सोक समोइ ।
कहत मन तुलसीस [1] लंका करहुँ सघन घमोइ [2]॥ 5॥

(राग केदारा)

हौं रघुबंसमनि को दूत ।
मातु मानु प्रतीति जानकी! जानि मारुतपूत ॥
मैं सुनी बातैं असैली [3], जे कही निसिचर नीच ।

---

[^1] तुलसीस = हनुमान।

[^2] घमोइ = सत्यानाशी या भंडभाँड़ नाम का पौधा जो खँडहरों में प्रायः उगता है।

[^3] असैली = शैलीविरुद्ध, रीति-नीति-विरुद्ध।

क्यों न मारै गाल, बैठो काल-डाढ़नि बीच ॥
निदरि अरि रघुबीर-बल लै जाउँ जौ हठि आज ।
डरौं आयसु-भंग तें, अरु बिगरिहै सुरकाज ॥
बाँधि बारिधि, साधि रिपु, दिन चारि में दोउ बीर ।
मिलहिंगे कपि-भालु-दल सँग, जननि उर धरु धीर ॥
चित्रकूट कथा कुसल कहि सीस नायो कीस ।
सुहृद-सेवक नाथ को लखि दई अचल असीस ॥
भये सीतल स्रवन तन मनु सुने बचन-पियूष ।
दास तुलसी रही नयननि दरसहीकी भूख ॥ 6॥

तात! तोहू सों कहत होति हिये गलानि ।
मन को प्रथम पन समुझि अछत तनु,
लखि नइ गति भइ मति मलानि ॥

पिय को बचन परहर्‌यो जिय के भरोसे,
संग चली बन बड़ो लाभ जानि ।
पीतम-बिरह तौ सनेह सरबसु, सुत!
औसर को चूकिबो सरिस न हानि ॥

आरज-सुवन के तो दया दुवनहुँ पर,
मोहि सोच मोतें सब बिधि नसानि ।
आपनी भलाई भलो कियो नाथ सबही को,
मेरे ही दिन सब बिसरी बानि ॥

नेम तौ पपीहा ही के, प्रेम प्यारो मी नही के,
तुलसी कही है नीके हृदय आनि ।
इतनी कही सो कही सीय, ज्योंही त्योंही
रही, प्रीति परी सही, बिधि सों न बसानि ॥ 7॥

मातु काहे को कहति अति बचन दीन ?
तब की तुहीं जानति अब की हौं ही कहत,
सबके जिय की जानत प्रभु प्रबीन ॥

ऐसे तो सोचहिं न्याय निठुर-नायक-रत
सलभ, खग, कुरंग, कमल, मीन ।
करुनानिधान को तो ज्यों ज्यों तनु छीन भयो,
त्यों त्यों मनु भयो तेरे प्रेम पीन ॥

सिय को सनेह, रघुबर की दसा सुमिरि

पवनपूत देखि भयो प्रीति-लीन ।

तुलसी जन को जननी प्रबोध कियो,

“समुझि तात! जग बिधि-अधीन” ॥ 8॥

(राग जैतश्री)

कहु कपि कब रघुनाथ कृपा करि, हरिहैं निज बियोग-सम्भव दुख।

राजिवनयन मयन-अनेक-छबि रबिकुल-कुमुद-सुखद मयंक-मुख ॥

बिरह-अनल स्वासा-समीर निज तनु जरिबे कहँ रही न कछु सक ।

अति बल जल बरषत दोउ लोचन, दिन अरु रैन रहत एकहि [1] तक ॥

सुदृढ़ ज्ञान अवलम्बि, सुनहु सुत! राखति प्रान बिचारि दहन मत ।

सगुन रुप, लीला-बिलास-सुख सुमिरति करति रहति अंतरगत ॥

सुनु हनुमन्त! अनन्त-बन्धु करुनासुभाव सीतल कोमल अति ।

तुलसिदास यहि त्रास जानि जिय बरु दुख-सहौं प्रकट कहि न सकति॥9॥

(राग केदारा)

कबहूँ, कपि! राघव आवहिंगे ?

---

[^1] एकहि = एकताक, एकतार, एकरस।

मेरे नयन चकोर प्रीतिबस राकाससि मुख दिखरावहिंगे ॥
मधुप मराल मोर चातक ह्वै लोचन बहु प्रकार धावहिंगे ।
अंग अंग छबि भिन्न भिन्न सुख निरखि निरखि तहँ तहँ छावहिंगे ॥
बिरह-अगिनि जरि रही लता ज्यों कृपादृष्टि-जल पलुहावहिंगे ।
निज बियोग-दुख जानि दयानिधि मधुर बचन कहि समुझावहिंगे ॥
लोकपाल-सुर-नाग-मनुज सब परे बंदि कब मुकतावहिंगे ?
रावनबध रघुनाथ-बिमल-जस नारदादि मुनिजन गावहिंगे ॥
यह अभिलाष रैन-दिन मेरे राज बिभीषन कब पावहिंगे ।
तुलसिदास प्रभु मोहजनित भ्रम भेद बुद्धि कब बिसरावहिंगे ॥ 10॥

सत्य बचन सुनु मातु जानकी !
जन के दुख रघुनाथ दुखित अति, सहज प्रकृति करुनानिधान की ॥
तुव बियोग-सम्भव दारुन दुख बिसरि गई महिमा सुबान की ।
नतु कहु कहँ रघुपति-सायक-रबि, तम-अनीक कहँ जातुधान की ॥
कहँ हम पशु साखामृग चंचल, बात कहौं मैं बिद्यमान की!
कहँ हरि सिव-अज-पूज्य ज्ञान-घन नहि बिसरति वह लगनि कान की॥
तुव दरसन-सन्देस सुनि हरि को बहुत भई अवलम्ब प्रान की ।
तुलसिदास गुन सुमिरि राम के प्रेम मगन नहि सुधि अपान की ॥11॥

(राग कान्हरा)

रावन! जू पै राम रन रोषे ।

को सहि सकै सुरासुर समरथ बिसिष काल-दसननि तें चोषे ॥

तपबल, भुजबल कै सनेह-बल सिव-बिरंचि नीकी बिधि तोषे ।

सो फल राज समाज सुवन जन, आपु न नास आपने पोपे ॥

तुला पिनाक, साहु नृप, त्रिभुवन भट-बटोरि सबके बल जोषे ।

परसुराम से सूर-सिरोमनि पल में भए खेत के से धोपे ॥

कालि की बात बालि की सुधि करि समुझिहि ता हित खोलि झरोपे ।

कह्यो कुमन्त्रिन को न मानिए, बड़ी हानि, जिय जानि त्रिदोषे ॥

जासु प्रसाद जनमि जग पुरषनि सागर सृजे, खने अरु सोखे ।

तुलसिदास सो स्वामि न सूझयो नयन बीस मन्दिर के से मोखे [1] ॥

12॥

(राग मारू)

जो हौं प्रभु-आयसु लै चलतो ।

तौ यहि रिस तोहि सहित दसानन जातुधान दल दलतो ॥

[^1] मोखे = गवाक्ष, झरोखा।

रावन सो रसराज [1] सुभट-रस सहित लंक खल खलतो [2]।
करि पुटपाक नाक-नायकहित घने घने घर घलतो ॥
बड़े समाज लाज-भाजन भयो, बड़ो काज बिनु छलतो [3]।
लंकनाथ रघुनाथ-बैरु-तरु आजु फैलि फूलि फलतो ॥
काल-करम दिगपाल सकल जग-जाल जासु करतल तो ।
ता रिपु सों पर भूमि रारि रन जीवन मरन सुथल तो ॥
देखी मैं दसकंठ-सभा सब, मोंतें कोउ न सबल तो ।
तुलसी अरि उर आनि एक अब एती गलानि न गलतो [4]॥ 13॥

तौलौं, मातु! आपु नीके रहिबो ।
जौलौं हौं ल्यावौं रघुबीरहि, दिन दस और दुसह दुख सहिबो ॥
सोखि कै खेत कै बाँधि सेतु करि, उतरिबो उदधि न बोहित चहिबो ।
प्रबल दनुज-दल दलि पल आध में, जीवत दुरित-दसानन गहिबो ॥

---

[^1] रसराज = पारा।

[^2] खलतो = खरल में डालकर घोंट डालता।

[^3] बिनु छल तो = बिना छल के या अर्थात् होता।

[^4] अरि उर ... ... गलतो = इस प्रकार एक एक शत्रु को (अर्थात् उनके बल को) समझ बूझकर भी।

बैरि-बृन्द-बिधवा-बनितनि को, देखिबो बारि-बिलोचन बहिबो ।

सानुज सेन समेत स्वामिपद निरखि परम मुद मंगल लहिबो ॥

लंक-दाह उर आनि मानिबो साँचु राम सेवक को कहिबो ।

तुलसी प्रभु सुर सुजस गाइहैं, मिटि जैहै सबको सोचु दव दहिबो ॥14॥

कपि के चलत सियको मनु गहबरि [1] आयो ।

पुलक सिथिल भयो सरीर, नीर नयनन्हि छायो ॥

कहत चह्यो सँदेस, नहि कह्यो, पिय के जिय की जानि हृदय दुसह दुख दुरायो।

देखि दसा ब्याकुल हरीस, ग्रीषम के पथिक ज्यों धरनि तरनि-तायो ॥

मीच तें नीच लगी अमरता, छल को न बल को निरखि थल परुष प्रेम पायो [2]।

कै प्रबोध मातु-प्रीति सों असीस दीन्हीं ह्वैहै तिहारोई मनभायो ॥

करुना-कोप-लाज-भय-भरो कियो गौन, मौन ही चरन कमल सीस नायो ।

---

[^1] गहबरि आयो = करुणा से भर आया।

[^2] मीच तें नीच ... ... प्रेम पायो = (सीताजी का ऐसा विरह दुःख देखकर) हनुमान जी को अपनी अमरता मृत्यु से अधिक दुःखदायिनी लगी, और उन्होंने उस स्थल पर बल छल का अवसर न देख, अपने प्रेम को बहुत कठोर और दारुण पाया।

यह सनेह-सरबस समौ [3], तुलसी रसना रुखी, ताही तें परत गायो ॥ 15॥

(राग बसन्त)

रघुपति! देखो आयो हनूमन्त । लंकस-नगर खेल्यो बसन्त ॥

श्रीराम-काजहित सुदिन सोधि । साथी प्रबोधि लाँघ्यो पयोधि ॥

सिय-पाँय पूजि, आसिषा पाइ । फल अमिय सरिस खायो अघाइ ॥

कानन दल, होरी रचि बनाइ । हठि तेल-बसन बालधि बँधाइ ॥

लिए ढोल चले सँग लोग लागि । बरजोर दई चहुँ ओर आगि ॥

आखत आहुति किए जातुधान । लखि लपट भभरि भागे बिमान ॥

नभतल कौतुक, लंका बिलाप । परिनाम पचहिं पातकी पाप ॥

हनुमान हाँक सुनि बरषि फूल । सुर बार बार बरनहिं लँगूर ॥

भरि भुवन सकल कल्यान-धूम । पुर जारि बारिनिधि बोरि लूम ॥

जानकी तोषि पोषेउ प्रताप । जय पवन-सुवन दलि दुअन-दाप ॥

नाचहिं-कूदहिं कपि करि बिनोद । पीवत मधु मधुबन मगन मोद ॥

यों कहत लषन गहे पाँय आइ । मनि सहित मुदित भेंट्यो उठाइ ॥

लगे सजन सेन भयो हिय हुलास । जय जय जस गावत तुलसिदास ॥16॥

---

[^3] समौ = प्रसंग, अवसर।

(राग जैतश्री)

सुनहु राम बिश्रामधाम हरि! जनकसुता अति बिपति जैसे सहति ।
हे सौमित्रि-बन्धु करुनानिधि मन महँ रटति प्रगट नहिं कहति ॥
निजपद-जलज बिलोकि सोकरत नयननि बारि रहत न एक छन ।
मनहुँ नील नीरज ससि-सम्भव रबि बियोग दोउ स्रवत सुधाकन ॥
बहु राच्छसी सहित तरु के तर तुम्हरे बिरह निज जनम बिगोवति ।
मनहुँ दुष्ट इंद्रिय संकट महँ, बुद्धि-बिबेक-उदय मगु जोवति ॥
सुनि कपि बचन बिचारि हृदय हरि अनपायनी सदा सो एक मन ।
तुलसिदास दुख-सुखातीत हरि सोच करत मानहुँ प्राकृत जन ॥17॥

(राग केदारा)

रघुकुल-तिलक बियोग तिहारे ।
मैं देखी जब जाइ जानकी मनहु बिरह-मूरति मन मारे ॥
चित्र से नयन अरु गढ़े से चरन कर, मढ़े से स्रवन नहि सुनति पुकारे ।
रसना रटति नाम, कर सिर चिर रहै, नित निजपद-कमल निहारे ॥
दरसन-आस-लालसा मन महँ राखे प्रभु ध्यान प्रान-रखवारे ।
तुलसिदास पूजति त्रिजटा नीके रावरे गुन-गन-सुमन सँवारे ॥ 18॥

अतिहि अधिक दरसन की आरति ।

राम-बियोग असोक-बिटप तर सीय निमेष कलप सम टारति ॥

बार-बार बर बारिजलोचन भरि भरि बरत [1] बारि उर ढारति ।

मनहुँ बिरह के सद्य पाय हिये लखि तकि-तकि धरि धीरज तारति [2]॥

तुलसिदास जद्यपि निसि बासर छिन छिन प्रभु मूरतिहि निहारति ।

मिटति न दुसह ताप तौ तन की, यह बिचारि अंतर्गति हारति ॥19॥

तुम्हरे बिरह भई गति जौन ।

चित दै सुनहु, राम करुनानिधि! जानौं कछु पै सकौं कहि हौं न ॥

लोचन-नीर कृपिन के धन ज्यों रहत निरन्तर लोचन कोन ।

'हा धुनि'-खगी लाज-पिंजरी महँ राखि हिये बड़े बधिक हठि मौन ॥

जेहि बाटिका बसति तहँ खग मृग तजि-तजि भजे पुरातन भौन ।

स्वास-समीर भेंट भइ भोरेहुँ तेहि मग पगु न धर्‌यो तिहुँ पौन ॥

तुलसिदास प्रभु! दसा सीय की मुख करि कहत होति अति गौन [3]।

दीजै दरस दूरि कीजै दुख हौ तुम्ह आरत-आरति दौन ॥ 20॥

---

[^1] बरत = तपता हुआ, गरम।

[^2] तारति = तरेरा या पानी की धारा देती है।

[^3] गौन = गौण, अर्थात् कहने में उसका महत्त्व नहीं आ सकता, कम सा हो जाता है।

कपि के सुनि कल कोमल बैन ।

प्रेम पुलकि सब गात सिथिल भए, भरे सलिल सरसीरुह नैन ॥

सिय-बियोग-सागर नागर मनु बूड़न लग्यो सहित चित-चैन ।

लही नाव पवनज-प्रसन्नता, बरबस तहाँ गह्यो गुन मैन ॥

सकत न बूझि कुसल, बूझे बिन गिरा बिपुल ब्याकुल उर ऐन ।

ज्यों कुलीन सुचि सुमति बियोगिनि सनमुख सहै बिरह सर पैन ॥

धरि धरि धीर बीर कोसलपति किए जतन सके उत्तरु दै न ।

तुलसिदास प्रभु सखा अनुज सों सैनहिं कह्यौ चलहु सजन सैन ॥ 20॥

(राग मारू)

जब रघुबीर पयानो कीन्हों ।

छुभित सिन्धु, डगमगत महीधर, सजि सारँग कर लीन्हों ॥

सुनि कठोर टंकोर घोर अति चौके बिधि त्रिपुरारि ।

जटापटल तें चली सुरसरी सकत न सम्भु सँभारि ॥

भए बिकल दिगपाल सकल, भय भरे भुवन दस चारि ।

खरभर लंक, ससंक दसानन, गरभ स्रबहिं अरि-नारि ॥

कटकटात भट भालु बिकट मरकट करि केहरि-नाद ।

कूदत करि रघुनाथ-सपथ उपरी-उपरा बदि बाद ॥

गिरि-तरुधर नख मुख कराल रद कालहु करत बिषाद ।

चले दस दिसि रिस भरि धरु धरु कहि,को बराक मनुजाद ?॥

पवन पंगु, पावक पतंग ससि दुरि गए, थके बिमान ।

जाचत सुर निमेष, सुरनायक नयन-भार अकुलान ॥

गए पूरि सर धूरि, भूरि भय अग [1] थल जलधि समान ।

नभ-निसान, हनुमान-हाँक सुनि समुझत कोउ न अपान ॥

दिग्गज कमठ कोल सहसानन धरत धरनि धरि धीर ।

बारहि बारि अमरषत करषत करकैं परीं सरीर ॥

चली चमू, चहु ओर सोर, कछु बनै न बरने भीर ।

किलकिलात, कसमसत, कोलाहल होत नीरनिधि-तीर ॥

जातुधानपति जानि कालबस मिले बिभीषन आइ ।

सरनागत-पालक कृपालु कियो तिलक, लियो अपनाइ ॥

कौतुकही बारिधि बँधाइ उतरे सुबेल-तट जाइ ।

तुलसिदास गढ़ देखि फिरे कपि प्रभु आगमन सुनाइ ॥ 22॥

(राग आसावरी)

आए देखि दूत सुनि सोच सठ मन मैं ।

---

[^1] अग = पर्वत।

बाहर बजावै गाल भालु कपि कालबस।
मोसे बीर सों चहत जीत्यो रारि रन मैं ॥

राम छाम, लरिका लषन, बालि-बालकहि,
घालि [1] को गनत? रीछ जल ज्यों न घन मैं [2]।
काज को न कपिराज, कायर कपि समाज,
मेरे अनुमान हनुमान हरि गन मैं ॥

समय सयानी मृदु बानी रानी कहै 'पिय !
पावक न होइ जातुधान बेनु-बन मैं ।
तुलसी जानकी दिए स्वामी सों सनेह किये
कुसल, नतरु सब ह्वैहैं छार छन मैं ॥ 23॥

आपनी आपनी भाँति सब काहू कही है।
मन्दोदरी, महोदर, मालवान महामति,
राजनीति पहुँच जहाँ लौं जाकी रही है ॥

---

[^1] घालि = घलुआ अर्थात् कुछ नहीं।

[^2] रीछ ... ... घन में = जामवंत बलहीन बादल के समान अर्थात् निस्सार है।

महामद-अंध दसकन्ध न करत कान,
मीचु-बस नीच हठि कुगहनि गही है ।
हँसि कहै, सचिव ‘सयाने मोसों यों कहत,
चहै मेरु उड़न बड़ी बयारि बही है ॥

भालु, नर, बानर अहार निसिचरनि को,
सोऊ नृप-बालकनि माँगी धारि लही है ।
देखो काल कौतुक पिपीलिकनि पंख लागो,
भाग मेरे लोगनि के भई चित-चही है ॥

तोसो न तिलोक आजु साहस समाज-साजु,
महाराज-आयसु भो जोई सोई सही है ।
तुलसी प्रनाम कै बिभीषन बिनती करै,
‘ख्याल बेधे ताल, कपि केलि लंका दही है ॥ 24॥

दूसरो न देखतु साहिब सम रामै ।
देदऊ पुरान कबि कोबिद बिरद-रत,
जाको जस सुनत, गावत गुन-ग्रामै ॥

माया, जीव, जग-जाल, सुभाउ, करम-काल,

सबको सासकु, सब मैं, सब जामैं ।

बिधि से करनिहार, हरि-से पालनिहार,

हर से हरनिहार जपैं जाके नामैं ॥

सोइ नरबेष जानि जन की बिनती मानि,

मतो नाथ सोई जा तें भलो परिनामैं ।

सुभट-सिरोमनि कुठारपानि सारिखेहू

लखी औ लखाई इहाँ किए सुभसामैं ॥

बचन-बिभूषन बिभिषन-बचन सुनि

लागे दुख दूषन से दाहिनेउ बामैं ।

तुलसी हुमकि हिये हन्यो लात, भले तात,

चल्यो सुरतरु ताकि तजि घोर घामैं ॥ 25॥

जाय माय पायँ परि कथा सो सुनाई है ।

समाधान करति बिभीषन को बार बार,

‘कहा भयो तात! लात मारे, बड़ो भाई है ॥

साहिब पितु समान, जातुधान को तिलक,
ताके अपमान तेरी बड़िए बड़ाई है ।
गरत गलानि जानि सनमानि सिख देति,
रोष किए दोष सहें समुझें भलाई है ॥

इहाँ तें बिमुख भये राम की सरन गए
भलो नेकु लोक राखे निपट निकाई है ।
पातु पग सीस नाइ, तुलसी असीस पाइ
चले भले सगुन कहत मन भाई है ॥26॥

भाई को सो करौं डरौं कठिन कुफेरै ।
सुकृत-संकट [1] पर्‌यो जात गलानिन्ह गर्‌यो,
‘कृपानिधि को मिलौं पै मिलिकै कुबेरै’ ॥

जाइ गह पाँय, धाइ धनद उठाइ भेंट्यो,
समाचार पाइ पोच सोचत सुमेरै ।
तहँई मिले महेस, दियो हित-उपदेस,
‘राम की सरन जाहि, सुदिनु न हेरै ॥

[^1] सुकृत-संकट = धर्मसंकट।

जाको नाम कुम्भज कलेस-सिन्धु सोखिबे को,
मेरो कह्यो मानि, तात! बाँधे जिनि बेरै ।’
तुलसी मुदित चले, पाये हैं सगुन भले,
रंक लूटिबे को मानो मनिगन-ढेरै ॥ 27॥

(राग केदारा)

संकर-सिख आसिष पाइकै ।
चले मनहि मन कहत बिभीषन सीस महेसहि नाइकै ॥
गये सोच, भए सगुन सुमंगल दस दिसि देत देखाइकै ।
सजल नयन, सानन्द हृदय तनु प्रेम-पुलक अधिकाइकै ॥
अंतहु भाव भलो भाई को कियो अनभलो मनाइकै ।
भइ कूबर की लात [1] बिधाता राखी बात बनाइकै ॥
नाहित क्यों कुबेर घर मिलि हर हितु कहते चित लाइकै ।
जो सुनि सरन राम ताके मैं निज बामता बिहाइकै ॥
अनायास अनुकूल सूलधर मग मुदमूल जनाइकै ।

---

[^1] कूबर की लात = ऐसी लात जिससे कुबड़ी पीठ सीधी हो जाय, अर्थात् बात बन जाय।

कृपासिन्धु सनमानि जानि जन दीन लियो अपनाइकै ॥
स्वारथ परमारथ करतलगत स्त्रमपथ गयो सिराइकै ।
सपने कै सौतुक, सुख-सस [1] सुर सींचत देत निराइकै ॥
गुरु गौरीस साँइ सीतापति हित हनुमानहि जाइकै ।
मिलिहौं मोहि कहा कीबे अब अभिमत अवधि अघाइकै ॥
मरतो कहाँ जाइ को जानै लटि लालची ललाइकै ।
तुलसिदास भजिहौं रघुबीरहि अभय-निसान बजाइकै ॥ 28॥

पदपदुम गरीबनिवाज के ।
देखिहौं जाइ पाइ लोचन-फल हित सुर साधु समाज के ॥
गई बहोर, ओर निरबाहक, साजक बिगरे साज के ।
सबरी सुखद, गीध-गतिदायक, समन सोक कपिराज के ॥
नाहिन मोहि और कतहूँ कछु जैसे काग जहाज के ।
आयो सरन सुखद पदपंकज चोंथे रावन-बाज के ॥
आरतिहरन सरन, समरथ सब दिन अपने की लाज के ।
तुलसी पाहि कहत नत-पालक मोहुँ से निपट निकाज के ॥ 29॥

[^1] सस = शस्य, खेती बारी।

महाराज रामपहँ जाउँगो ।

सुख-स्वारथ परिहरि करिहौं सोइ, ज्यौं साहिबहि सुहाउँगो ॥

सरनागत सुनि बेगि बोलि हैं, हौं निपटहि सकुचाउँगो ।

राम गरीबनिवाज निवाजिहैं, जानिहैं ठाकुर-ठाउँगो [1]॥

धरिहैं नाथ हाथ माथे एहि तें केहि लाभ अघाउँगो ?।

सपनो सो अपनो न कछू लखि लघु लालच न लोभाउँगो ॥

कहिहौं बलि, रोटिहा रावरो बिनु मोलही बिकाउँगो ।

तुलसी पट ऊतरे ओढ़िहौं, उबरी जूठनि खाउँगो ॥ 30॥

आइ सचिव बिभीषनके कही ।

कृपासिन्धु दसकन्ध बन्धु लघु चरन-सरन आयो सही ॥

बिषम बिषाद-बारिनिधि बूड़त थाह कपीस कथा लही ।

गये दुख दोष देखि पदपंकज अब न साध एकौ रही ॥

सिथिल सनेह सराहत नख-सिख नीक निकाई निरबही ।

तुलसी मुदित दूत भयो, मानहु अमिय-लाहु माँगत मही ॥ 31॥

बिनती सुनि प्रभु प्रमुदित भए ।

---

[^1] ठाकुर-ठाउँगो = ठाकुर और ठिकाना नहीं रह गया।

रीछराज, कपिराज, नील, नल, बोलि बालिनन्दन लए ॥
बूझिये कहा? रजाइ पाइ नय धरम सहित ऊतर दए ।
बली बन्धु ताको जेहि बिमोह-बस बैर-बीज बरबस बए ॥
बाँह-पगार द्वार तेरे तैं सभय न कबहूँ फिरि गए ।
तुलसी असरन-सरन स्वामि के बिरद बिराजत नित नए ॥ 32॥

हिय बिहँसि कहत हनुमान सों ।
सुमति साधु सुचि सुहृद बिभीषन, बूझि परत अनुमान सों ॥
'हौं बलि जाउँ और को जानै?' कही कपि कृपानिधान सों ।
छली न होइ स्वामि सनमुख ज्यों तिमिर सातहय-जान [1] सों ॥
खोटो खरो सभीत पालिये सो सनेह सनमान सों ।
तुलसी प्रभु कीबो जो भलो सोइ बूझि सरासन-बान सों ॥ 33॥

साँचेहु बिभीषन आइ है ?
बूझत बिहँसि कृपालु, लखन सुनि कहत सकुचि सिर नाइ है ॥
ऐहै कहा, नाथ? आयो ह्याँ, क्यों कहि जाति बनाइ है ।
रावन-रिपुहि राखि रघुबर बिनु को त्रिभुवन-पति पाइहै ॥

[^1] सातहय जान = सात घोड़े जिसके यान में जुते हैं, अर्थात् सूर्य।

प्रभु प्रसन्न सब सभा सराहति दूत-बचन मन भाइहै ।

तुलसी बोलिये बेगि लषन सों भइ महाराज-रजाइ है ॥ 34॥

चले लेन लषन-हनुमान हैं ।

मिले मुदित बूझि कुसल परसपर सकुचत करि सनमान हैं ॥

भयो रजायसु पाउँ धारिए, बोलत कृपानिधान हैं ।

दूरि तें दीनबन्धु देखे जनु देत अभय बरदान हैं ॥

सील सहस हिमभानु [1] तेज सत कोटि भानुहूँ के भानु हैं ।

भगतनि को हित कोटि मातु-पितु अरिन्ह को कोटि कृसानु हैं ॥

जन गुन रज गिरि गनि सकुचत निज गुन गिरि रज परमान हैं ।

बाँह-पगारु बोल को अबिचल, बेद करत गुनगान हैं ॥

चारु चाप तूनीर तामरस-करनि सुधारत बान हैं ।

चरचा चलति बिभीषन की सोइ सुनत सुचित दै कान हैं ॥

हरषत सुर बरषत प्रसून सुभ सगुन कहत कल्यान हैं ।

तुलसी ते कृतकृत्य जे सुमिरत समय सुहावनो ध्यान हैं ॥ 35॥

रामहिं करत प्रनाम निहारिकै ।

[^1] हिमभानु = चंद्रमा।

उठे उमँगि आनन्द-प्रेम-परिपूरन बिरद बिचारिकै ॥
भयो बिदेह बिभीषन उत, इत प्रभु अपनपौ बिसारिकै ।
भली भाँति भावते भरत-ज्यों भेंट्यौ भुजा पसारिकै ॥
सादर सबहि मिलाइ समाजहिं निपट निकट बैठारिकै ।
बूझत छेम कुसल सप्रेम अपनाइ भरोसे भारिकै ॥
नाथ! कुसल-कल्यान-सुमंगल बिधि सुख सकल सुधारिकै ।
देत लेत जे नाम रावरों, बिनय करत मुख चारिकै ॥
जो मूरति सपने न बिलोकत मुनि महेस मन मारिकै ।
तुलसी तेहि हौं लियो अंक भरि, कहत कछू न सँवारिकै ॥ 36॥

करुनाकर की करुना भई ।
मिटी मीचु, लहि लंक संक गइ, काहू सों न खुनिस खई ॥
दसमुख तज्यो दूध-माखी-ज्यौं आपु काढ़ि साढ़ी लई ।
भव-भूषन सोइ कियो बिभीषन मुद मंगल-महिमामई ॥
बिधि हरि हर मुनि सिद्ध सराहत, मुदित देव दुन्दुभी दई ।
बारहि बार सुमन बरषत, हिय हरषत कहि जै जै जई ॥
कौसिक सिला जनक संकट हरि भृगुपति की टारी टई [1]।

[^1] टई = टही, घात।

खग मृग सबर निसाचर सबकी पूँजी बिनु बाढ़ी सई [1]॥
जुग जुग कोटि कोटि करतब करनी न कछू बरनी नई ।
राम-भजन-महिमा हुलसी हिय, तुलसीहू की बनि गई ॥ 37॥

मंजुल मूरति मंगलमई ।
भयो बिसोक बिलोकि बिभीषन नेह देह सुधि-सींव गई ॥
उठि दाहिनी ओर तें सनमुख सुखद माँगि बैठक लई ।
नखसिख निरखि निरखि सुख पावत भावत कछु कछु और भई ॥
बार कोटि सिर काटि साटि लटि, रावन संकर पै लई ।
सोइ लंका लखि अतिथि अनवसर राम तृनासन-ज्यों दई ॥
प्रीति प्रतीति-रीति-सोभा-सिर थाहत जहँ जहँ तहँ घई ।
बाहु-बली, बानैत बोल को, बीर बिस्वबिजयी जई ॥
को दयालु दूसरो दुनी जेहि जरनि दीन-हिय की हई ?
तुलसी काको नाम जपत जग जगती जामति बिनु बई ॥ 38॥

सब भाँति बिभीषन की बनी ।
कियो कृपालु अभय कालहु तें गइ संसृति साँसति घनी ॥

---

[^1] सई = वृद्धि, बरकत।

सखा लषन हनुमान सम्भु गुरु धनी राम कोसलधनी ।
हिय ही और और कीन्हीं बिधि, रामकृपा औरै ठनी ॥
कलुष-कलंक कलेस-कोस भयो जो पद पाय रावन रनी ।
सोइ पद पाय बिभीषन भो भव-भूषन दलि दूषन-अनी ॥
रंक-निवाज रंक राजा किए, गए गरब गरि गरि गनी ।
राम-प्रनाम महामहिमा-खनि सकल सुमंगलमनि जनी ॥
होय भलो ऐसे ही अजहुँ गये राम-सरन परिहरि मनी [1]।
भुजा उठाइ साखि संकर करि कसम खाइ तुलसी भनी ॥ 39॥

कहो क्यों न बिभीषन की बनै ?
गयो छाँड़ि छल सरन राम की जो फल चारि चार्‌यौं जनै ॥
मंगलमूल प्रनाम जासु जग मूल अमंगल को खनै ।
तेहि रघुनाथ हाथ माथे दियो, को ताकी महिमा भनै ?॥
नाम-प्रताप पतित-पावन किए जे न अघाने अघ अनै ।
कोउ उलटो कोउ सुधो जपि भए राजहंस बायस-तनै ॥
हुतो ललात कृसगात खात खरि मोद पाइ कोदो-कनै ।
सो तुलसी चातक भयौ जाँचत राम स्याम सुन्दर घनै ॥ 40॥

---

[^1] मनी = [फारसी] अभिमान।

अति भाग बिभीषन के भले ।

एक प्रनाम प्रसन्न राम भए दुरित दोष दारिद दले ॥

रावन कुम्भकरन बर माँगत सिव बिरंचि बाचा छले ।

राम-दरस पायो अबिचल पद, सुदिन सगुन नीके चले ॥

मिलनि बिलोकि स्वामि-सेवक की उकठे तरु फूले फले ।

तुलसी सुनि सनमान बन्धु को दसकन्धर हँसि हिये जले ॥ 41॥

गये राम सरन सबकौ भलो ।

गनी-गरीब, बड़ो छोटो, बुध मूढ़, हीनबल अति बलो ॥

पंगु अंध निरगुनी निसम्बल जो न लहै जाँचे जलो ।

सो निबह्यो नीके जो जनमि जग राम-राज-मारग चलो ॥

नाम-प्रताप-दिवाकर-कर खर गरत तुहिन ज्यों कलिमलो ।

सुत हित नाम लेत भवनिधि तरि गयो अजामिल सो खलो ॥

प्रभुपद-प्रेम प्रनाम कामतरु सद्य बिभीषन को फलो ।

तुलसी सुमिरत नाम सबनि को मंगलमय नभ जल थलो ॥ 42॥

सुजस सुनि स्रवन हौं नाथ! आयों सरन ।

उपल केवट-गीध सबरी संसृत-समन,

सोक स्रम-सीव सुग्रीव आरतिहरन ॥

राम राजीव लोचन बिमोचन बिपति,
स्याम नव तामरस-दाम बारिद-बरन ।
लसत जट जूटि सिर चारु मुनि चीर कटि,
धीर रघुबीर तूनीर-सर-धनु-धरन ॥

जातुधानेस भ्राता बिभीषन नाम
बन्धु अपमान गुरु ग्लानि चाहत गरन ।
पतितपावन प्रनतपाल करुनासिन्धु!
राखिए मोहि सौमित्रि-सेवित-चरन ॥

दीनता प्रीति संकलित मृदु बचन सुनि
पुलकि तन प्रेम, जल नयन लागे भरन ।
बोलि, लंकेस कहि अंक भरि भेंटि प्रभु,
तिलक दियो दीन-दुख-दोष दारिद-दरन ॥

रातिचर-जाति आराति सब भाँति गत
कियो सो कल्यान-भाजन सुमंगल करन ।

दास तुलसी सदय हृदय रघुबंसमनि

पाहि कहे काहि कीन्हों न तारन-तरन ?॥ 43॥

दीन-हित बिरद पुराननि गायो ।

आरत-बन्धु, कृपालु, मृदुल-चित जानि सरन हौं आयो ॥

तुम्हरे रिपु को अनुज बिभीषन, बंस निसाचर जायो ।

सुनि गुन सील सुभाउ नाथ को मैं चरननि चितु लायो ॥

जानत प्रभु दुख सुख दासनि को तातें कहि न सुनायो ।

करु करुना भरि नयन बिलोकहु, तब जानों अपनायो ॥

बचन बिनीत सुनत रघुनायक हँसि करि निकट बुलायो ।

भेंट्यो हरि भरि अंक भरत ज्यों लंकापति मन भायो ॥

कर पंकज सिर परसि अभय कियो, जन पर हेतु दिखायो ।

तुलसिदास रघुबीर भजन करि को न परमपद पायो ?॥ 44॥

(राग धनाश्री)

सत्य कहौं मेरो सहज सुभाउ ।

सुनहु सखा कपिपति लंकापति तुम्हसन कौन दुराउ ॥

सब बिधि हीन दीन अति जड़मति जाको कतहुँ न ठाउँ ।

आयो सरन भजौं, न तजौं तिहि, यह जानत ऋषिराउ ॥
जिन्हके हौं हित सब प्रकार चित नाहिन और उपाउ ।
तिन्हहिं लागि धरि देह करौं सब, डरौं न सुजस नसाउ ॥
पुनि पुनि भुजा उठाइ कहत हौं, सकल सभा पतिआउ ।
नहि कोऊ प्रिय मोहि दास सम कपट प्रीति बहि जाउ ॥
सुनि रघुपति के बचन बिभीषन प्रेम मगन मन चाउ ।
तुलसिदास तजि आस-त्रास सब ऐसे प्रभु कहँ गाउ ॥ 45॥

नाहिन भजिबे जोग बियो ।
श्रीरघुबीर समान आन को पूरन कृपा हियो ॥
कहहु कौन सुर सिला तारि पुनि केवट मीत कियो ?
कौने गीध अधम को पितु ज्यों निज कर पिंड दियो ?॥
कौन देव सबरी के फल करि भोजन सलिल पियो ?
बालित्रास-बारिधि बूड़त कपि केहि गहि बाँह लियो ?॥
भजन-प्रभाउ बिभीषन भाष्यौ सुनि कपि-कटक जियो ।
तुलसिदास को प्रभु कोसलपति सब प्रकार बरियो [1]॥ 46॥

[^1] बरियो = बली।

(राग जैतश्री)

कब देखौंगी नयन वह मधुर मूरति ?

राजिवदल-नयन, कोमल-कृपा-अयन,

मयननि बहु छबि अंगनि दुरति ॥

सिरसि जटा-कलाप पानि सायक

चाप उरसि रुचिर बनमाल लूरति ।

तुलसिदास रघुबीर की सोभा सुमिरि,

भई है मगन नहि तन की सूरति ॥ 47॥

(राग केदारा)

कहु कबहुँ देखिहौं आली! आरज-सुवन ।

सानुज सुभग-तनु, जब तें बिछुरे बन,

तब तें दव-सी लगी तीनिहूँ भुवन ॥

मूरति सूरति किये प्रगट प्रीतम हिये,

मन के करन चाहैं चरन छुवन ।

चित चढ़िगो बियोग दसा न कहिबे जोग,

पुलक गात, लागे लोचन चुवन ॥

तुलसी त्रिजटा जानी सिय अति अकुलानी
मृदुबानी कह्यौ ऐहैं दवन-दुवन ।
तमीचर-तम-हारी सुरकंज-सुखकारी
रबिकुल-रबि अब चाहत उवन ॥ 48॥

अबलौं मैं तोसों न कहे री ।
सुन त्रिजटा! प्रिय प्राननाथ बिनु बासर निसि दुख दुसह सहे री ॥
बिरह बिषम बिष-बेलि बढ़ी उर, ते सुख सकल सुभाय दहे री ।
सोइ सींचिबे लागि मनसिज के रहँट नयन नित रहत नहे री ॥
सर-सरीर सूखे प्रान बारिचर जीवन आस तजि चलनु चहे री ।
तैं प्रभु-सुजस-सुधा सीतल करि राखे तदपि न तृप्ति लहै री ॥
रिपु-रिस घोर नदी बिबेक बल, धीर सहित हुते जात बहे री ।
दै मुद्रिका-टेक तेहि औसर, सुचि समिरसुत पैरि गहे री ॥
तुलसिदास सब सोच पोच मृग मन-कानन भरि पूरि रहे री ।
अब सखि सिय संदेह परिहरु हिय आउ गए दोउ बीर अहेरी ॥49॥

(राग बिलावल)

सो दिन सोने को कहु कब एहै ?

जा दिन बंध्यो सिन्धु त्रिजटा सुनु तू सम्भ्रम आनि मोहि सुनैहै ॥

बिस्व-दवन सुर-साधु-सतावन रावन कियो आपनो पैहै ।

कनक-पुरी भयो भूप बिभीषन, बिबुध-समाज बिलोकन धैहै ॥

दिब्य दुन्दुभी, प्रसंसि हैं मुनिगन, नभतल बिमल बिमाननि छैहै ।

बरषिहैं कुसुम भानुकुल-मनि पर, तब मोको पवनपूत लै जैहै ॥

अनुज सहित सोभिहैं कपि महँ, तनु-छबि कोटि मनोज लजैहै ।

इन नयनन्हि यही भाँति प्रानपति, निरखि हृदय आनँद न समैहै ॥

बहुरो सदल, सनाथ, सलछिमन, कुसल कुसल बिधि अवध देखैहै ।

गुर, पुर लोग, सास, दोउ देवर, मिलत दुसह उर तपनि बुतैहै ॥

मंगल-कलस, बधावने घर घर, पैहैं माँगने जो जैहि भैहै ।

बिजय राम राजाधिराज को, तुलसिदास पावन जस गैहै ॥ 50॥

सिय! धीरज धरिये राघौ अब ऐहैं ।

पवनपूत पै पाइ तिहारी सुधि, सहज कृपालु बिलम्ब न लैहैं ॥

सेन साजि कपि भालु काल सम कौतुक ही पाथोधि बँधैहैं ।

घेरोइ पै देखिबो लंकगढ़, बिकल जातुधानी पछितैहैं ॥

निसिचर सलभ कृसानु राम-सर उड़ि-उड़ि परत जरत जड़ जैहैं ।

रावन करि परिवार अगमन, जमपुर जात बहुत सकुचैहैं ॥

तिलक सारि अपनाय बिभीषन अभय-बाँह दै अमर बसैहैं ।

जय धुनि मुनि बरषिहैं सुमन सुर, ब्योम बिमान निसान बजैहैं ॥

बन्धु समेत प्रानबल्लभ-पद परसि सकल परिताप नसैहैं ।

राम बाम दिसि देखि तुमहि सब नयनवन्त लोचन फल पैहैं ॥

तुम अति हित चितइहौ नाथ-तनु, बार बार प्रभु तुमहि चितैहैं ।

यह सोभा सुख समय बिलोकत काहू तो पलकैं नहिं लैहैं ॥

कपिकुल लखन सुजस जय जानकि सहित कुसल निज नगर सिधैहैं ।

प्रेम पुलकि आनन्द मुदित मन तुलसिदास कल कीरति गैहैं ॥ 51॥

लंका कांड

(राग मारू)

मानु अजहूँ सिष परिहरि क्रोधु ।

पिय पूरो आयो अब काहि कहु करि रघुबीर-बिरोधु ॥

जेहि ताड़ुका सुबाहु मारि मख राखि जनायो आपु ।

कौतुक ही मारीच नीच मिस प्रगट्यौ बिसिष-प्रतापु ॥
सकल भूप बल गरब सहित तोर्‌यौ कठोर सिवचापु ।
ब्याही जेहि जानकी जीति जग हर्‌यौ परसुधर-दापु ॥
कपट काक साँसति प्रसाद करि बिनु स्रम बध्यो बिराधु ।
खर दूषन त्रिसिरा कबन्ध हति कियो सुखी सुर साधु ॥
एकहि बान बालि मार्‌यो जेहि जो बल-उदधि अगाधु ।
कहुधौं कन्त कुसल बीती केहि किये राम-अपराधु ॥
लाँघि न सके लोक-बिजयी तुम जासु अनुज-कृत-रेषु ।
उतरि सिन्धु जार्‌यो प्रचारि पुर जाको दूत बिसेषु ॥
कृपासिन्धु, खल-बन कृसानु सम, जस गावत स्रुति-सेषु ।
सोइ बिरुदैत बीर कोसलपति नाथ समुझि जिय देषु ॥
मुनि पुलस्त्य के जस-मयंक महँ कत कलंक हठि होहि ।
और प्रकार उबार नहीं कहुँ मैं देख्यो जग टोहि ॥
चलु मिलु बेगि कुसल सादर सिय सहित अग्र करि मोहि ।
तुलसिदास प्रभु सरन-सबद सुनि अभय करैंगे तोहि ॥ 1॥

(राग कान्हरा)

तू दसकंठ भले कुल जायो ।

तामहँ सिव-सेवा बिरंचि-बर, भुजबल बिपुल जगत जस पायो ॥
खर, दूषन त्रिसिरा, कबन्ध रिपु जेहि बाली जमलोक पठायो ।
ताको दूत पुनीत चरित हरि सुभ सन्देस कहन हौं आयो ॥
श्रीमद नृप-अभिमान मोहबस, जानत अनजानत हरि लायो
तजि ब्यलीक भजु कारुनीक प्रभु दै जानकिहि सुनहि समुझायो ॥
जातें तव हित होइ कुसल कुल अचल राज चलिहै न चलायो ।
नाहिन रामप्रताप-अनल महँ ह्वै पतंग परिहै सठ धायो ॥
जद्यपि अंगद नीति परम हित कह्यो तथापि न कछु मन भायो ।
तुलसिदास सुनि बचन क्रोध अति पावक जरत मनहु घृत नायो ॥2॥

तैं मेरो मरम कछू नहिं पायो ।
रे कपि कुटिल ढीठ पसु पाँवर! मोहि दास ज्यों डाटन आयो ॥
भ्राता कुम्भकरन रिपुघातक, सुत सुरपतिहि बंदि करि ल्यायो ।
निज भुजबल अति अतुल कहौं क्यों कन्दुक ज्यों कैलास उठायो ॥
सुर नर असुर नाग खग किन्नर सकल करत मोरो मन भायो ।
निसिचर रुचिर अहार मनुज-तनु ताको जस खल मोहि सुनायो ॥
कहा भयो बानर सहाय मिलि कर उपाय जो सिन्धु बँधायो ।
जो तरिहै भुज बीस घोर-निधि, ऐसो को त्रिभुवन में जायो ?॥

सुनि दससीस-बचन कपि-कुंजर बिहँसि ईस-मायहि सिर नायो ।
तुलसिदास लंकेस कालबस गनत न कोटि जतन समझायो ॥ 3॥

सुनु खल मैं तोहि बहुत बुझायो ।
एते मान सठ भयो मोहबस जानतहूँ चाहत बिष खायो ॥
जगत-बिदित अति बीर बालि-बल जानत हौ किधौं अब बिसरायो ।
बिनु प्रयास सोउ हत्यो एक सर सरनागत पर प्रेम देखायो ॥
पावहुगे निज-करम-जनित फल, भले ठौर हठि बैर बढ़ायो ।
बानर भालु चपेट लपेटनि मारत तब ह्वैहै पछितायो ॥
हौं ही दसन तोरिबे लायक कहा करौं जो न आयसु पायो ।
अब रघुबीर बान बिदलित उर सोवहिगो रनभूमि सुहायो ॥
अबिचल राज्य बिभीषन को सब जेहि रघुनाथ चरन चित लायो ।
तुलसिदास यहि भाँति बचन कहि गरजत चल्यो बालि-नृप जायो ॥ 4॥

(राग केदारा)

राम लषन उर लाय लये हैं ।
भरे नीर राजीव-नयन सब अँग परिताप तये हैं ॥
कहत ससोक बिलोकि बन्धु-मुख बचन प्रीति गुथये हैं ।

सेवक सखा भगति भायप-गुन चाहत अब अथये हैं ॥
निज कीरति करतूति तात! तुम सुकृती सकल जये हैं ।
मैं तुम्ह बिनु तनु राखि लोक अपने अपलोक लये हैं ॥
मेरे पन की लाज इहाँ लौं हठि प्रिय प्रान दये हैं ।
लागति साँगि बिभीषन-ही पर सीपर [1] आपु भये हैं ॥
सुनि प्रभु-बचन भालु कपि-गन सुर सोच सुखाइ गये हैं ।
तुलसी आइ पवनसुत बिधि मानो फिरि निरमये नये हैं ॥ 5॥

(राग सोरठ)

मोपै तो न कछू ह्वै आई ।
ओर निबाहि भली बिधि भायप चल्यौ लषन सो भाई ॥
पुर पितु मातु सकल सुख परिहरि जेहि बन-बिपति बँटाई ।
ता सँग हौं सुरलोक सोक तजि सक्यौं न प्रान पठाई ॥
जानत हौं या उर कठोर तें कुलिस कठिनता पाई ।
सुमिरि सनेह सुमित्रा-सुत को दरकि दरार न जाई ॥
तात-मरन तिय हरन गीध-बध भुज दाहिनी गँवाई ।
तुलसी मैं सब भाँति आपने कुलहि कालिमा लाई ॥ 6॥

---

[^1] सीपर = [फा. सिपर] ढाल।

मेरो सब पुरुषारथ थाको ।
बिपति बँटावन बन्धु-बाहु बिनु करौं भरोसो काको ?॥
सुनु सुग्रीव साँचेहूँ मोपर फेर्‌यो बदन बिधाता ।
ऐसे समय समर-संकट हौं तज्यो लषन सो भ्राता ॥
गिरि कानन जैहैं शाखा-मृग हौं पुनि अनुज सँघाती ।
ह्वैहै कहा बिभीषन की गति, रही सोच भरि छाती ॥
तुलसी सुनि प्रभु-बचन भालु कपि सकल बिकल हिय हारे ।
जामवन्त हनुमन्त बोलि तब औसर जानि प्रचारे ॥ 7॥

(राग मारू)

जो हौं अब अनुसासन पावौं ।
तौ चन्द्रमहि निचोरि चैल ज्यों आनि सुधा सिर नावौं ॥
कै पाताल दलौं ब्यालावलि अमृत-कुंड महि लावौं ।
भेदि भुवन करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं ॥
बिबुध बैद बरबस आनौं धरि तौ प्रभु अनुग कहावौं ।
पटकौं मीच नीच मूषक ज्यौं सबहि को पापु बहावौं ॥
तुम्हरिहि कृपा प्रताप तिहारेहि नेकु बिलम्ब न लावौं ।

दीजै सोइ आयसु तुलसी-प्रभु जेहि तुम्हरे मन भावौं ॥ ४॥

सुनि हनुमन्त-बचन रघुबीर ।
सत्य समीर-सुवन सब लायक कह्यो राम धरि धीर ॥
चहिये बैद, ईस-आयसु धरि सीस कीस बलाऐन ।
आन्यो सदन-सहित सोवत ही जौलौं पलक परै न ॥
जियै कुँवर निसि मिलै मूलिका, कीन्हीं बिनय सुषेन ।
उठ्यो कपीस सुमिरि सीतापति चल्यो सँजीवनि लेन ॥
कालनेमि दलि बेगि बिलोक्यौ द्रोनाचल जिय जानि ।
देखी दिब्य ओषधी जहँ तहँ जरी न परि पहिचानि ॥
लियो उठाय कुधर कन्दुक ज्यौं, बेग न जाइ बखानि ।
ज्यों धाए गजराज उधारन सपदि सुदरसनपानि ॥
आनि पहार जोहारे प्रभु, कियो बैदराज उपचार ।
करुनासिन्धु बन्धु भेंट्यो, मिटि गयो सकल दुख-भार ॥
मुदित भालु कपि-कटक लह्यो जनु समर-पयोनिधि पार ।
बहुरि ठौरही राखि महीधर आयो पवनकुमार ॥
सेन सहित सेवकहि सराहत पुनि पुनि राम सुजान ।
बरषि सुमन हिय हरषि प्रसंसत बिबुध बजाइ निसान ॥

तुलसिदास सुधि पाइ निसाचर भए मनहुँ बिनु प्रान ।
परी भोरही रोर लंकगढ़, दई हाँक हनुमान ॥ 9॥

(राग केदारा)

कौतुक ही कपि कुधर लियो है ।
चल्यो नभ नाइ माथ रघुनाथहि, सरिस न बेग बियो है ॥
देख्यो जात जानि निसिचर बिनु फर सर हयो हियो है ।
पर्‌यो कहि राम, पवन राख्यो गिरि पुर तेहि तेज पियो है ॥
जाइ भरत भरि अंक भेंटि निज जीवन-दान दियो है ।
दुख लघु लषन मरम-घायल सुनि, सुख बड़ो कीस जियो है ॥
आयसु इतहि, स्वामि-संकट उत, परत न कछू कियो है ।
तुलसिदास बिदर्‌यो अकास सो कैसेकै जात सियो है ॥ 10॥

भरत-सत्रुसूदन बिलोकि कपि चकित भयो है ।
राम लषन रन जीति अवध आए, कैधौं मोहि भ्रम,
कैधौं काहू कपट ठयो है ॥

प्रेम पुलकि पहिचानि कै पदपदुम नयो है ।
कह्यो न परत जेहि भाँति दुहूँ भाइन

सनेह सों सो उर लाय लयो है ॥

समाचार कहि गहरु भो, तेंहि ताप तयो है ।
कुधर सहित चढ़ौ बिसिष, बेगि पठवौं,
सुनि हरि हिय गरब गूढ़ उपयो है [1]॥

तीर तें उतरि जस कह्यो चहै, गुनगननि जयो है ।
धनि भरत! धनि भरत! करत भयो,
मगन मौन रह्यो मन अनुराग रयो है ॥

यह जलनिधि खन्यो, मथ्यो, लँघ्यो, बाँध्यो, अँचयो है ।
तुलसिदास रघुबीर बन्धु-महिमा को सिन्धु
तरि को कबि पार गयो है ॥ 11॥

होतो नहि जौ जग जनम भरत को ।
तौ कपि कहत कृपान-धार मग चलि आचरत बरत को ?॥
धीरज-धरम धरनि धुर-धुरहूँ तें गुरु धुर धरनि धरत को ?।
सब सदगुन सनमानि आनि उर, अघ औगुन निदरत को ?॥

---

[^1] उपयो है = उत्पन्न हुआ है।

सिवहु न सुगम सनेह रामपद सुजननि सुलभ करत को ?।
सृजि निज जस-सुरतरु तुलसी कहँ अभिमत फरनि फरत को ?॥ 12॥

सुनि रन घायल लषन परे हैं ।
स्वामि-काज संग्राम सुभट सों लोहे ललकारि लरे हैं ॥
सुवन-सोक सन्तोष सुमित्रहि रघुपति-भगति बरे हैं ।
छिन छिन गात सुखात छिनहिं छिन हुलसत होत हरे हैं ॥
कपि सों कहति सुभाय अंब के अंबक अंबु भरे हैं ।
रघुनन्दन बिनु बन्धु कुअवसर जद्यपि घनु [1] दुसरे हैं ॥
'तात! जाहु कपि सँग' रिपुसूदन उठि कर जोरि खरे हैं ।
प्रमुदित पुलकि पैन्त [2] पूरे जनु बिधिबस सुढर ढरे हैं ॥
अंब-अनुज-गति लखि पवनज भरतादि गलानि गरे हैं ।
तुलसी सब समुझाइ मातु तेहि समय सेचत करे हैं ॥ 13॥

बिनय सुनायबी परि पाय ।
कहौं कहा कपीस तुम्ह सुचि सुमति सुहृद सुभाय ॥
स्वामि संकट-हेतु हौं, जड़ जननि जनम्यो जाय ।

---

[^1] घनु = अर्थात् शत्रुघ्न।

[^2] पैंत = पाँसा।

समौ पाइ कहाइ सेवक घट्यो तौ न सहाय ॥
कहत सिथिल सनेह भो जनु धीर घायल घाय ।
भरत-गति लखि मातु सब रहि ज्यौं गुड़ी बिनु बाय ॥
भेंट कहि कहिबो, कह्यो यों कठिन-मानस माय ।
“लाल! लोने लषन-सहित सुललित लागत नाँय” ॥
देखि बन्धु-सनेह अंब सुभाउ, लषन कुठाय ।
तपत तुलसी तरनि त्रासुक एहि नये तिहुँ ताय ॥ 14॥

हृदय-घाउ मेरे पीर रघुबीरै ।
पाइ सँजीवन जागि कहत यों प्रेमपुलकि बिसराय सरीरै ॥
मोहि कहा बूझत पुनि पुनि जैसे पाठ अरथ-चरचा कीरै ।
सोभा सुख, छति लाहु भूप कहँ, केवल कान्ति मोल हीरै ॥
तुलसी सुनि सौमित्रि-बचन सब धरि न सकत धीरौ धीरै ।
उपमा राम-लषन की प्रीति कौ क्यों दीजै खीरै-नीरै ॥ 15॥

(राग कान्हरा)

राजत राम काम-सुत-सुन्दर ।
रिपु रन जीति अनुज सँग सोभित, फेरत चाप बिसिष बनरुह-कर ॥

स्याम सरीर रुचिर स्रम-सीकर, सोनित-कन बिच बीच मनोहर ।

जनु खद्योत-निकर हरिहित-गन भ्राचत मरकत-सैल-सिखर पर ॥

घायल बीर बिराजत चहुँ दिसि, हरषित सकल ऋच्छ अरु बनचर ।

कुसुमित किंसुक-तरु समूह महँ, तरुन तमाल बिमाल बिटप बर ॥

राजिव-नयन बिलोकि कृपा करि किए अभय मुनि नाग बिबुध नर ।

तुलसिदास यह रूप अनुपम हिय सरोज बसि दुसह बिपतिहर ॥16॥

(राग आसावरी)

अवधि आजु किधौं औरो दिन द्वै है ।

चढ़ि धौरहर बिलोकि दखिन दिसि बूझ धौं पथिक कहाँ ते आए वै हैं ॥

बहुरि बिचारि हारि हिय सोचति, पुलकि गात लागे लोचन च्वै हैं ।

निज बासरनि बरष पुरवैगो बिधि मेरे तहाँ करम कठिन कृत क्वै हैं ॥

बन रघुबीर, मातु गृह जीवति, निलज प्रान सुनि सुनि सुख स्वैहैं ।

तुलसिदास मो सो कठोर-चित कुलिस साल-भंजनि को ह्वैहैं ॥ 17॥

आली! अब राम-लषन कित ह्वै हैं ।

चित्रकूट तज्यौ तब तें न लही सुधि, बधू-समेत कुसल सुत द्वै हैं ॥

बारि बयारि बिषम हिम आतप सहि बिनु बसन भूमितल स्वैहैं ।

कन्द मूल फल फूल असन बन, भोजन समय मिलत कैसे वैहैं ॥
जिन्हहि बिलकि सोचिहैं लता द्रुम खग मृग मुनि लोचन जल च्वैहैं ।
तुलसिदास तिन्हकी जननि हौं, मो सो निठुर-चित औरो कहुँ ह्वैहैं ॥18॥

(राग सोरठ)

बैठी सगुन मनावति माता ।
कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर कहहु काग फुरि बाता ॥
दूध-भात की दोनी दैहौं सोने चोंच मढ़ैहौं ।
जब सिय सहित बिलोकि नयन भरि राम-लषन उर लैहौं ॥
अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी ।
गनक बोलाइ पाँय परि पूछति प्रेम-मगन मृदु बानी ॥
तेहि अवसर कोउ भरत निकट तें समाचार लै आयो ।
प्रभु-आगमन सुनत तुलसी मनो मीन मरत जल पायो ॥ 19॥

(राग गौरी)

छेमकरी बलि, बोलि सुबानी ।
कुसल छेम सिय राम लषन कब ऐहैं, अंब? अवध रजधानी ॥
ससिमुखि, कुंकुम-बरनि, सुलोचनि, मोचनि सोचनि बेद बखानी ।

देवि! दया करि देहि दरसफल जोरि पानि बिनवहिं सब रानी ॥

सुनि सनेहमय बचन निकट ह्वै मंजुल मंडल कै मड़रानी ।

सुभ मंगल आनन्द गगन-धुनि अकनि अकनि उर-जरनि जुड़ानी ॥

फरकन लगे सुअंग बिदिसि दिसि, मन प्रसन्न, दुख-दसा सिरानी ।

करहिं प्रनाम सप्रेम पुलकि तनु मानि बिबिध बलि सगुन सयानी ॥

तेहि अवसर हनुमान भरतसों कही सकल कल्यान-कहानी ।

तुलसिदास सोइ चाह [1] सँजीवनि बिषम बियोग ब्यथा बड़ि भानी ॥

20॥

(राग धनाश्री)

सुनियत सागर सेतु बँधायो ।

कोसलपति की कुसल सकल सुधि कोउ इक दुत भरत पहँ ल्यायो॥

बँध्यो बिराध त्रिसिर खर दूषन, सूर्पनखा को रूप नसायो ।

हति कबन्ध, बल-अंध बालि दलि कृपासिन्धु सुग्रीव बसायो ॥

सरनागत अपनाइ बिभीषन रावन सकुल समूल बहायो ।

बिबुध-समाज निवाजि बाँह दैं बंदिछोर बर बिरद कहायो ॥

एक एक सों समाचार सुनि नगर-लोग जहँ तहँ सब धायो ।

---

[^1] चाह = खबर, समाचार।

घन-धुनि अकनि मुदित मयूर ज्यों बूड़त जलधि पार सौ पायो ॥

‘अवधि आजु’, यो कहत परसपर बेगि बिमान निकट पुर आयो ।

उतरि अनुज अनुगनि समेत प्रभु गुरु द्विजगन सिर नायो ॥

जो जेहि जोग राम तेहि बिधि मिलि सबके मन अति मोद बढ़ायो ।

भेंटी मातु, भरत, भरतानुज, क्यों कहौं प्रेम अमित अनमायो [1]॥

तेही दिन मुनिबृन्द अनन्दित तुरत तिलक को साज सजायो ।

महाराज रघुबंस-नाथ को सादर तुलसिदास गुन गायो ॥ 21॥

(राग जैतश्री)

रन जीति राम राउ आए ।

सानुज सदल ससीय कुसल आजु अवध आनन्द-बधाए ॥

अरिपुर जारि, उजारि, मारि रिपु, बिबुध सुबास बसाए ।

धरनि धेनु महिदेव साधु सबके सब सोच नसाए ॥

दई लंक, थिर थपे बिभीषन, बचन पियूष पिआए ।

सुधा सींचि कपि, कृपा नगर-नर-नारि निहारि जिआए ॥

मिलि गुर बन्धु मातु जन परिजन भए सकल मन भाए ।

दरस हरष दसचारि बरष के दुख पल में बिसराए ॥

---

[^1] अनमायो = जिसकी माप नहीं हो सकती।

बोलि सचिव सुचि सोधि सुदिन मुनि मंगल साज सजाए ।
महाराज अभिषेक बरषि सुर सुमन निसान बजाए ॥
लै लै भेंट नृप अहिप लोकपति अति सनेह सिर नाए ।
पूजि प्रीति पहिचानि राम आदरे अधिक अपनाए ॥
दान मान सनमानि जानि रुचि जाचक जन पहिराए ।
गए सोक-सर सूखि, मोद-सरिता-समुद्र गहिराए ॥
प्रभु, प्रताप-रबि अहित-अमंगल-अघ-उलूक-तम ताए ।
किये बिसोक हित-कोक-कोकनद, लोक सुजस सुभ छाए ॥
राम राज कुलकाज सुमंगल, सबनि सबै सुख पाए ।
देहिं असीस भूमिसुर प्रमुदित प्रजा प्रमोद बढ़ाए ॥
आस्रम-धरम-बिभाग बेदपथ पावन लोग चलाए ।
धर्म-निरत, सिय-राम-चरन-रत, मनहुँ राम-सिय-जाए ॥
कामधेनु महि बिटप कामतरु कोउ बिधि बाम न लाए ।
ते तब, अब तुलसी तेउ जिन्ह हित सहित राम-गुन गाए ॥ 22॥

(राग टोड़ी)

आजु अवध आनन्द बधावन रिपु रन जीति राम आए ।
सजि सुबिमान निसान बजावत मुदित देव देखन धाए ॥

घर घर चारु चौक चन्दन मनि, मंगल-कलस सबनि साजे ।

ध्वज पताक तोरन बितान बर, बिबिध भाँति बाजन बाजे ॥

राम-तिलक सुनि दीप दीप के नृप आए उपहार लिये ।

सीय सहित आसीन सिंहासन निरखि जोहारत हरष हिये ॥

मंगल गान, बेदधुनि, जयधुनि, मुनि-असीस-धुनि भुवन भरे ।

बरषि सुमन सुर-सिद्ध प्रसंसत, सबके सब सन्ताप हरे ॥

राम राज भइ कामधेनु महि सुख सम्पदा लोक छाए ।

जनम जनम जानकीनाथ के गुनगन तुलसिदास गाए ॥ 23॥

उत्तर कांड

(राग सोरठ)

बन तें आइकै राजा राम भए भुवाल ।

मुदित चौदह भुवन, सब सुख सुखी सब सब काल ॥

मिटे कलुष कलेस कुलषन, कपट-कुपथ कुचाल ।

गए दारिद दोष दारुन दम्भ दुरित दुकाल ॥

कामधुक महि, कामतरु तरु, उपल मनिगन लाल ।

नारि नर तेहि समय सुकृती भरे भाग सुभाल ॥

बरन-आस्रम-धरमरत, मन बचन बेष मराल ।

राम-सिय-सेवक सनेही साधु सुमुख रसाल ॥

राम-राज-समाज बरनत सिद्ध सुर दिगपाल ।

सुमिरि सो तुलसी अजहुँ हिय हरष होत बिसाल ॥ 1॥

(राग ललित)

भोर जानकी-जीवन जागे ।

सूत मागध प्रबीन बेनु बीना धुनि द्वारे, गायक सरस राग रागे ॥

स्यामल सलोने गात, आलसबस जँभात प्रिया प्रेमरस पागे ।

उनींदे लोचन चारु, मुख-सुषमा-सिंगार हेरि हारे मार भूरि भागे ॥

सहज सुहाई छबि, उपमा न लहैं कबि, मुदित बिलोकन लागे ।

तुलसिदास निसि बासर अनूप रूप रहत प्रेम-अनुरागे ॥ 2॥

(राग कल्याण)

रघुपति राजीवनयन, सोभातनु कोटि मयन,

करुनारस-अयन चयन-रूप भूप, माई ।

देखो सखि अतुलित छबि, सन्त कंज-कानन रबि,
गावत कल कीरति कबि कोबिद समुदाई ॥

मज्ञन करि सरजुतीर ठाढ़े रघुबंसबीर,
सेवत पद कमल धीर निरमल चित लाई ।
ब्रह्ममंडली-मुनींद्रबृन्द-मध्य इंदुबदन
राजत सुखसदन लोकलोचन-सुखदाई ॥

बिथुरित सिररुह-बरूथ कुंचित बिच सुमन-जूथ,
मनिजुत सिसु-फनि-अनीक ससि समीप आई ।
जनु सभीत दै अँकोर राखे जुग रुचिर मोर,
कुंडल-छबि निरखि चोर सकुचत अधिकाई ॥

ललित भ्रुकुटि, तिलक भाल चिबुक अधर द्विज रसाल,
हास चारुतर, कपोल नासिका सुहाई ।
मधुकर जुग पंकज बिच सुक बिलोक नीरज पर
लरत मधुप-अवलि मानो बीच कियो [1] जाई ॥

---

[^1] बीच कियो = बीच बचाव किया, बीच में पड़कर झगड़ा छुड़ाया।

सुन्दर पटपीत बिसद, भ्राजत बनमाल उरसि,
तुलसिका-प्रसून-रचित, बिबिध बिधि बनाई ।
तरु तमाल अधबिच जनु त्रिबिध कीर-पाँति-रुचिर,
हेमजाल अंतर परि तातें न उड़ाई ॥

शंकर-हृदि-पुण्डरीक निसि बस हरि-चंचरीक,
निर्ब्यलीक [1]-मानस-गृह संतत रहे छाई ।
अतिसय आनन्दमूल तुलसिदास सानुकूल,
हरन सकल सूल, अवध-मंडन रघुराई ॥ 3॥

राजत रघुबीर धीर, भंजन भव-भीर, पीर,
हरन सकल सरजुतीर निरखहु, सखि! सोहैं ।
संग अनुज मनुज-निकर, दनुज-बल-बिभंग-करन;
अंग अंग छबि अनंग अगनित मन मोहैं ॥

सुखमा-सुख-सील-अयन नयन निरखि निरखि नील
कुंचित कच, कुंडल कल, नासिका चित पोहैं ।
मनहुँ इंदुबिम्ब मध्य कंज मीन खंजन लखि

---

[^1] निर्ब्यलीक = कपट-रहित।

मधुप मकर-कीर आए तकि तकि निज गौ हैं ॥

ललित गंड मंडल, सुबिसाल भाल तिलक झलक
मंजुतर मयंक-अंक, रुचिर बंक भौहैं ।
अरुन अधर, मधुर बोल, दसन-दमक दामिनि दुति,
हुलसति हिय हँसनि चारु, चितवनि तिरछौहैं ॥

कम्बु कंठ, भुज बिसाल उरसि तरुन तुलसिमाल,
मंजुल मुकतावलि जुत जागति जिय जोहैं ।
जनु कलिन्द-नन्दिनि मनि-इंद्रनील-सिखर परसि
धँसति लसति हंससेनि-संकुल अधिकौहैं ॥

दिब्यतर दुकूल भब्य, नब्य रुचिर चम्पक चय,
चंचला कलाप कनक निकर अलि किधौं हैं ।
सज्ञन-चष-झष-निकेत, भूषन मनिगन समेत,
रूप-जलधि-बपुष लेत मन-गयन्द बोहैं [1]॥

अकनि बचन-चातुरी, तुरीय पेखि प्रेम-मगन

[^1] बोहैं लेत = डुबकी लेता है, अवगाहन करता है।

पग न परत इत उत सब चकित तेहि समौ हैं ।

तुलसिदास यह सुधि नहि कौन की, कहाँ तें आई ,

कौन काज, काके ढिग, कौन ठाउँ को हैं ॥ 4॥

देखु सखि! आजु रघुनाथ सोभा बनी ।

नील-नीरद-बरन बपुष, भुवनाभरन,

पीत-अंबर-धरन हरन दुति-दामिनि ॥

सरजु मज्जन किए संग सज्जन लिए,

हेतु जनपर हिये, कृपा कोमल घनी ।

सजनि आवत भवन, मत्त-गजवर-गवन,

लंक मृगपति ठवनि कुँवर कोसलधनी ॥

सघन चिक्कन कुटिल चिकुर बिलुलित मृदुल,

करनि बिबरत चतुर सरस सुषमा जनी ।

ललित अहि-सिसु-निकर मनहुँ ससि सन समर

लरत, धरहरि करत [1] रुचिर जनु जुग फनी ॥

[^1] धरहरि करत = बीच बचाव करते है।

भाल भ्राजत तिलक, जलज लोचन, पलक,
चारु भ्रू नासिका सुभग सुक-आननी ।
चिबुक सुन्दर, अधर अरुन, द्विज-दुति सुघर,
बचन गम्भीर, मृदुहास भव-भाननी ॥

स्रवन कुंडल बिमल गंड मंडित चपल,
कलित कल कान्ति अति भाँति कछु तिन्ह तनी [1]।
जुगल कंचन-मकर मनहुँ बिधुकर मधुर
पियत पहिचानि करि सिन्धुकीरति भनी ॥

उरसि राजत पदिक, ज्योति रचना अधिक,
माल सुबिसाल चहुँ पास बनि गजमनी ।
स्याम नव जलदपर निरखि दिनकर-कला
कौतुकी मनहुँ रही घेरि उडुगन-अनी ॥

मन्दिरनि पर खरी नारि आनँद-भरी,
निरखि बरषहिं बिपुल कुसुम कुंकुम-कनी ।
दास तुलसी राम परम करुनाधाम,

[^1] तनी = तानी, फैलाई।

काम-सतकोटि-मद हरत छबि आपनी ॥ 5॥

आजु रघुबीर छबि जात नहि कछु कही ।

सुभग सिंहासनासीन सीतारमन,

भुवन अभिराम, बहु काम सोभा सही ॥

चारु चामर व्यजन, छत्र मनिगन बिपुल,

दाम मुकुतावली जोति जगमगि रही ।

मनहुँ राकेस सँग हंस-उडुगन-बरहि

मिलन आए हृदय जानि निज नाथही ॥

मुकुट सुन्दर सिरसि, भालबर तिलक भ्रू,

कुटिल कच, कुंडलनि परम आभा लही ।

मनहुँ हर-डर जुगल मारध्वज के मकर

लागि स्रवननि करत मेरु की बतकही [1]॥

अरुन-राजीव-दल-नयन करुना-अयन,

---

[^1] मेरु की बतकही = मेल की बातचीत।

बदन सुषमासदन, हास त्रय-तापही [2]।
बिबिध कंकन हार, उरसि गजमनि-माल,
मनहुँ बग-पाँति जुग मिलि चली जलद ही ॥

पीत निरमल चपल, मनहुँ मरकत सैल,
पृथुल दामिनि रही छाइ तजि सहज [2] ही ।
ललित सायक चाप, पीन भुज बल अतुल
मनुज तनु दनुजबन-दहन मंडन-मही ॥

जासु गुन रूप नहि कलित निर्गुन सगुन,
सम्भु सनकादि सुक भगति दृढ़ करि गही ।
दास तुलसी राम-चरन-पंकज सदा
बचन मन करम चहै प्रीति नित निर्बही ॥ 6॥

रामराज राजमौलि मुनिबर-मन-हरन, सरन
लायक, सुखदायक रघुनायक देखौ री ।
लोक-लोचनाभिराम, नीलमनि-तमाल-स्याम,

---

[^2] त्रयतापही = तीनों तापों की हनन करनेवाला।

[^2] तजि सहज = (चंचल) स्वभाव छोड़कर।

रूप-सील-धाम, अंग छबि अनंग को री ?॥

भ्राजत सिर मुकुट पुरट [1]-निर्मित मनि रचित चारु,
कुंचित कच रुचिर परम, सोभा नहि थोरी ।
मनहुँ चंचरीक-पुंज कंजबृन्द प्रीति लागि
गुंजत कल गान तान दिनमनि रिझयो री ॥

अरुनकंज-दल-बिसाल लोचन भ्रू तिलक भाल,
मंडित स्रुति कुंडल बर सुन्दरतर जोरी ।
मनहुँ सम्बरारि [2] मारि, ललित मकर-जुग बिचारि,
दीन्हें ससि कहँ पुरारि, भ्राजत दुहुँ ओरी ॥

सुन्दर नासा कपोल चिबुक, अधर अरुन, बोल
मधुर दसन राजत जब चितवत मुख मोरी ।
कंज-कोस भीतर जनु कंजराज [3]-सिखर-निकर,
रुचिर रचित बिधि बिचित्र तड़ित-रंग बोरी ॥

---

[^1] पुरट = सोना, स्वर्ण।

[^2] सम्बरारि = कामदेव, (प्रद्युम्न ने जो काम के अवतार थे शंबर को मारा था)

[^3] कंजराज = पद्मराग मणि।

कम्बु कंठ उर बिसाल तुलसिका नवीन माल,
मधुकर बर बास बिबस उपमा सुनु सो री !
जनु कलिन्दजा सुनील सैलतें धँसी समीप,
कन्द [1]-बृन्द बरसत छबि मधुर घोरि घोरी [2]?॥

निर्मल अति पीत चैल-दामिनि जनु जलद नील
राखी निज सोभाहित बिपुल बिधि निहोरी ।
नयनन्हि को फल बिसेष ब्रह्म अगुन सगुन बेष,
निरखहु तजि पलक, सफल जीवन लेखौ री ॥

सुन्दर सीता समेत सोभित करुनानिकेत,
सेवक सुख देत लेत चितवत चित चोरी ।
बरनत यह अमित रूप थकित निगम नागभूप,
तुलसिदास छबि बिलोकि सारद भइ भोरी ॥ 7॥

(राग केदारा)

---

[^1] कंद = बादल।

[^2] घोरी घोरी = गरज गरजकर।

सखि! रघुनाथ-रूप निहारु ।
सरद-बिधु रबि-सुवन मनसिज-मान भंजनिहारु ॥
स्याम सुभग सरीर जन-मन-काम-पूरनिहारु ।
चारु चन्दन मनहुँ मरकत सिखर लसत निहारु ॥
रुचिर उर उपबीत राजत पदिक गजमनि हारु ।
मनहुँ सुरधनु नखतगन बिच तिमिर-भंजनिहारु ॥
बिमल पीत दुकूल दामिनि-दुति-बिनिन्दनिहारु ।
बदन सुषमासदन सोभित मदन-मोहनिहारु ॥
सकल अंग अनूप नहिं कोउ सुकबि बरननिहारु ।
दास तुलसी निखतहि सुख लहत निरखनिहारु ॥ 8॥

सखि! रघुबीर मुख-छबि देखु ।
चित्त-भीति सुप्रिति-रंग सुरूपता अवरेखु ॥
नयन-सुषमा निरखि नागरि! सफल जीवन लेखु ।
मनहुँ बिधि जुग जलज बिरचे ससि सुपूरन मेखु ॥
भ्रकुटि भाल बिसाल राजत रुचिर-कुंकुम-रेखु ।
भ्रमर द्वै रबिकिरनि ल्याए करन जनु उनमेखु ॥
सुमुखि! केस सुदेस सुन्दर सुमन-संजुत पेषु ।

मनहुँ उडुगन निबह आए मिलन तम तजि द्वेषु ॥
स्रवन कुंडल मनहुँ गुरु कबि करत बाद बिसेषु ।
नासिका द्विज अधर जनु रह्यो मदनु करि बहु बेषु ॥
रूप बरनि न सकत नारद सम्भु सारद सेषु ।
कहै तुलसीदास क्यों मतिमन्द-सकल नरेषु ॥ 9॥

(राग जैतश्री)

देखौ, राघव-बदन बिराजत चारु ।
जात न बरनि बिलोकत ही सुख, मुख किधौं छबिबर नारि सिंगार॥
रुचिर चिबुक, रद-ज्योति अनूपम, अधर अरुन, सित हास निहारु ।
मनो ससिकर बस्यो चहत कमल महँ प्रगटत दुरत न बनत बिचारु॥
नासिक सुभग मनहुँ सुख सुन्दर, चितवत चकित आचरज अपारु ।
कल कपोल, मृदु बोल मनोहर, रीझि चित चतुर अपनपौ वारु ॥
नयन-सरोज, कुटिल कच, कुंडल भ्रुकुटि सुभाल तिलक सोभा-सारु ।
मनहुँ केतु के मकर, चाप-सर गयो बिसारि भयो मोहित मारु ॥
निगम सेष सारद सुक शंकर बरनत रूप न पावत पारु ।
तुलसिदास कहै कहौ धौं कौन बिधि अति लघुमति जड़ कूर गँवारु॥10॥

(राग ललित)

आज रघुपति-मुख देखत लागत सुख,
सेवक सुरुष, सोभा सरद-ससि सिहाई ।
दसन-बसन लाल बिसद हास रसाल
मानो हिमकर-कर राखे राजीव मनाई ॥

अरुन नैन बिसाल, ललित भ्रुकुटि भाल
तिलक, चारु कपोल, चिबुक नासा सुहाई ।
बिथुरे कुटिल कच, मानहुँ मधु लालच अलि,
नलिन-जुगल उपर रहे लोभाई ॥

स्रवन सुन्दर सम कुंडल कल जुगम,
तुलसिदास अनूप उपमा कही न जाई ।
मानो मरकत सीप सुन्दर ससि समीप
कनक मकरजुत बिधि बिरची बनाई ॥ 11॥

(राग भैरव)

प्रातकाल रघुबीर-बदन-छबि चितै चतुर चित मेरे ।

होहिं बिबेक-बिलोचन निर्मल सुफल सुसीतल तेरे ॥

भाल बिसाल बिकट भ्रुकुटी बिच तिलक-रेख रुचि राजै ।

मनहुँ मदन तम तकि मरकत-धनु जुगुल कनक सर साजै ॥

रुचिर पलक-लोचन जुग तारक स्याम, अरुन सित कोए ।

जनु अलि नलिन-कोस महँ बन्धुक सुमन सेज सजि सोए ॥

बिलुलित ललित कपोलनि पर कच मेचक कुटिल सुहाए ।

मनो बिधु महँ बनरुह बिलोकि अलि बिपुल सकौतुक आए ॥

सोभित स्रवन कनक-कुंडल कल लम्बित बिबि भुजमूले ।

मनहुँ केकि तकि गहन चहत जुग उरग इंदु प्रतिकूले ॥

अधर अरुन-तर, दसन-पाँति बर, मधुर मनोहर हासा ।

मनहुँ सोन सरसिज महँ कुलिसनि तड़ित सहित कृत बासा ॥

चारु चिबुक, सुकतुण्ड बिनिन्दक सुभग सूउन्नत नासा ।

तुलसिदास छबिधाम राममुख सुखद समन भवत्रासा ॥ 12॥

(राग केदारा)

सुमिरत श्री रघुबीर की बाहैं ।

होत सुगम भव-उदधि अगम अति, कोउ लाँघत, कोउ उतरत थाहैं ॥

सुन्दर-स्याम-सरीर-सैल तें धँसि जनु जुग जमुना अवगाहैं ।

अमित अमल जल-बल परिपूरन जनु जनमी सिंगार सविता हैं ॥

धारैं बान, कूल धनु, भूषन जलचर, भँवर सुभग सब घाहैं [1]।

बिलसति बीचि बिजय-बिरदावलि, कर-सरोज सोहत सुषमा हैं ॥

सकल-भुवन-मंगल-मन्दिर के द्वार बिसाल सुहाई साहैं [2]।

जे पूजी कौसिक-मख ऋषियनि जनक गनप, संकर गिरिजा हैं ॥

भवधनु दलि जानकी बिबाही भए बिहाल नृपाल त्रपा [3] हैं ।

परसु पानि जिन्ह किए महामुनि जे चितए कबहू न कृपा हैं ॥

जातुधान-तिय जानि बियोगिनि दुखई सीय सुनाइ कुचाहैं ।

जिन्ह रिपु मारि सुरारि-नारि तेइ सीस उघारि दिवाई धाहैं [4]॥

दसमुख-बिबस तिलोक लोकपति बिकल बिनाए नाक चना हैं ।

सुबस बसे गावत जिन्हके जस अमर-नाग-नर सुमुखि सना हैं ॥

जे भुज बेद-पुरान सेष सुक सारद सहित सनेह सराहैं ।

कल्पलताहु की कल्पलता बर, कामदुहहु की कामदुहा हैं ॥

सरनागत आरत प्रनतनि को दै दै अभयपद ओर निबाहैं ।

---

[^1] घाहैं = दो उँगलियों की बीच की घाई (संधिस्थान)

[^2] साहैं = द्वार के ढाँचे की दोनों खड़ी लकड़ियाँ।

[^3] त्रपा = लजा से।

[^4] धाहैं दिवाई = धाड़ मारकर रुलाया।

करि आईं, करिहैं, करती हैं तुलसिदास दासनि पर छाहैं ॥ 13॥

(राग भैरव)

रामचन्द्र-करकंज कामतरु बामदेव हितकारी ।
सिय सनेह-बर-बेलि-बलित बर प्रेम-बन्धु बर-बारी ॥
मंजुल मंगल-मूल मूल-तरु करज मनोहर साखा ।
रोम परन, नख सुमन, सुफल सब काल सुजन अभिलाषा ॥
अबिचल अमल अनामय अबिरल ललित रहित-छल-छाया ।
समन सकल सन्ताप पाप रुज मोह मान मद माया ॥
सेवहिं सुचि मुनि-भृंग-बिहग मन-मुदित मनोरथ पाए ।
सुमिरत हिय हुलसत तुलसी अनुराग उँमगि गुन गाए ॥ 14॥

रामचरन अभिराम कामप्रद तीरथ-राज बिराजै ।
शंकर-हृदय भगति-भूतल पर प्रेम-अछयबट भ्राजै ॥
स्यामबरन पद-पीठ, अरुन तल, लसति बिसद नखस्रेनी ।
जनु रबि-सुता सारदा सुरसरि मिलि चलीं ललित त्रिबेनी ॥
अंकुस कुलिस कमल-धुज सुन्दर भँवर तरंग-बिलासा ।
मज्ञहिं सुर सज्ञन मुनिजन मन मुदित मनोहर बासा ॥

बिनु बिराग जप जाग जोग ब्रत, बिनु तप, बिनु तनु त्यागे ।
सब सुख सुलभ सद्य तुलसी प्रभु-पद-प्रयाग अनुरागे ॥ 15॥

(राग बिलावल)

रघुबर-रूप बिलोकु नेकु मन ।
सकल लोक-लोचन-सुखदायक नखसिख सुभग स्यामसुन्दर तन ॥
चारु चरन-तल-चिह्न चारि फल चारि देत परचारि जानि जन ।
राजत नख जनु कमल-दलनि पर अरुन-प्रभा-रंजित तुषार-कन ॥
जंघा जानु आनु कदली उर, कटि किंकिनि, पटपीत सुहावन ।
रुचिर निषंग, नाभि रोमावलि त्रिबलि-बलित उपमा कछु आवन ॥
भृगुपद-चिह्न पदिक उर सोभित मुकुतमाल कुंकुम अनुलेपन ।
मनहुँ परसपर मिलि पंकज-रबि प्रगट्यो निज अनुराग, सुजस घन ॥
बाहु बिसाल ललित सायक धनु, कर कंकन केयूर महाधन ।
बिमल दुकूल दलन दामिनि-दुति यज्ञोपवीत लसत अति पावन ॥
कम्बुग्रीव, छबि-सींव, चिबुक द्विज, अधर कपोल, बोल भय-मोचन ।
नासिक सुभग कृपापरिपूरन, तरुन अरुन राजीव-बिलोचन ॥
कुटिल भ्रुकुटिबर, भाल तिलक रुचि, सुचि सुन्दरता स्रवन-बिभूषन।
मनहुँ मारि मनसिज पुरारि दिय ससिहि चाप-सर-मकर अदूषन ॥

कुंचित कच, कंचन-किरीट सिर, जटित ज्योतिमय बहु बिधि मनिगन।

तुलसिदास रबिकुल रबि-छबि कबि कहि न सकत सुक-सम्भु-सहसफन ॥16॥

(राग कान्हरा)

देखो रघुपति-छबि अतुलित अति ।

जनु तिलोक सुखमा सकेलि बिधि राखी रुचिर अंग-अंगनि प्रति ॥

पदुमराग रुचि मृदु पदतल, धुज अंकुस कुलिस कमल यहि सूरति ।

रही आनि चहुँ बिधि भगतिनि की जनु अनुराग भरी अंतरगति ॥

सकल सुचिह्न सुजन सुखदायक ऊरधरेख बिसेष बिराजति ।

मनहुँ भानु-मंडलहि सँवारत धर्‌यो सूत [1] बिधि-सुत [2] बिचित्र मति ॥

सुभग अँगुष्ठ अंगुली अबिरल कछुक अरुन नख-ज्योति जगमगति ।

चरन पीठ उन्नत नत पालक, गूढ़ गुलुफ, जंघा कदलीजति [3]॥

काम तून-तल-सरिस जानु जुग, उरु करि-कर करभहि बिलखावति ।

रसना रचित रतन चामीकर, पीत बसन कटि कसे सरसावति ॥

---

[^1] धर्‌यो सूत = कारीगरों के समान सीध नापने के लिये सूत रक्खा।

[^2] बिधिसूत = विश्वकर्मा।

[^3] कदलीजति = कदलीजित।

नाभी सर त्रिवली निसेनिका, रोमराजिस सैवल-छबि पावति ।

उर मुकुतामनि-माल मनोहर मनहु हंस-अवली उड़ि आवति ॥

हृदय पदिक भृग-चरन चिन्ह बर बाहु बिसाल जानु लगि पहुँचति ।

कल केयूर पूर कंचन-मनि, पहुँची मंजु कंजकर सोहति ॥

सुजस सुरेख सुनख अंगुलिजुत, सुन्दर पानि मुद्रिका राजति ।

अंगुलित्रान कमान बानछबि सुरनि सुखद असुरनि-उर सालति ॥

स्याम सरीर सुचन्दन-चर्चित, पीत दुकूल अधिक छबि छाजति ।

नील जलद पर निरखि चन्द्रिका दुरनि त्यागि दामिनि जनु दमकति॥

यज्ञोपबीत पुनीत बिराजत गूढ़ जत्रु [1] बनि पीन अंस [2] तति [3] ।

सुगढ़ पुष्ट उन्नत कृकाटिका [4] कम्बु कंठ सोभा मन मानति ॥

सरद-समय-सरसीरुह-निन्दक मुख-सुखमा कछु कहत न बानति ।

निरखत ही नयननि निरुपम सुख, रबिसुत, मदन, सोम-दुति निदरति॥

अरुन अधर द्विजपाँति अनूपम ललित हँसनि जनु मन आकरषति।

बिद्रुम-रचित बिमान मध्य जनु सुरमंडली सुमन-चय-बरसति ॥

---

[^1] जत्रु = गले के नीचे की धन्वाकार हड्डी जिसे हँसली कहते है।

[^2] अंस = कंघ।

[^3] तति = लिस्तीर्ण।

[^4] कृकाटिका = कंधे और गले का जोड़।

मंजुल चिबुक मनोरम हनुथल, कल कपोल नासा मन मोहति ।
पंकज-मान-बिमोचन लोचन, चितवनि चारु अमृत-जल सींचति ॥
केस सुदेस गँभीर बचन बर, स्रुति कुंडल-डोलनि जिय जागति ।
लखि नव नील पयोद रवित सुनि रुचिर मोर जोरी जनु नाचति ॥
भौंहै बंक मयंक-अंक-रुचि, कुंकुमरेख भाल भलि भ्राजति ।
सिरसि हेम-हीरक-मानिकमय मुकुट-प्रभा सब भुवन प्रकासति ॥
बरनत रूप पार नहिं पावत निगम सेष सुक संकर भारति ।
तुलसिदास केहि बिधि बखानि कहै यह मन-बचन अगोचर मूरति ॥17॥

(राग मलार)

आली री! राघौ के रुचिर हिंडोलना झूलन जैए ॥
फटिक भीति सुचारु चहुँ दिसि, मंजु मनिमय पौरि ।
गच काँच लखि मन नाच सिखि जनु पाँचसर सु फँसौरि [1]॥
तोरन-बितान-पताक-चामर धुुज सुमन-फल घौरि ।
प्रतिछाँह-छबि कबि साखि दै प्रति सों कहै गुरु हौं रि ! [2]॥

---

[^1] पाँचसर सु फँसौरि = कामदेव के फंदे सा है। फँसौरि = फंदा, पाश।

[^2] प्रतिछाँह ... ... गुरु हौं रि = प्रतिबिंब कवियों का साक्ष्य देकर मूल प्रति या बिंब (असल वस्तु) से कहता है कि मं तुमसे बड़ा हूँ।

मदन जय के खम्भ से रचे खम्भ सरल बिसाल ।
पाटीर पाटि बिचित्र भँवरा बलित बेलन लाल ॥
डाँड़ो कनक कुंकुम-तिलक रेखै-सी मनसिज-भाल ।
पटुली पदिक रति-हृदय जनु कलधौत-कोमल-माल ॥
उनये सघन घनघोर, मृदु झरि सुखद सावन लाग ।
बगपाँति सुरधनु, दमक दामिनि, हरित भूमि बिभाग ॥
दादुर मुदित, भरे सरित-सर, महि उमँग जनु अनुराग ।
पिक मोर मधुप चकोर चातक सोर उपबन बाग ॥
सो समौ देखि सुहावनो नवसत [1] सँवारि सँवारि ।
गुन-रूप-जोबन-सींव सुन्दरि चलीं झुंडनि झारि ॥
हिंडोल-साल बिलोकि सब अंचल पसारि पसारि ।
लागीं असीसन राम-सीतहिं सुख-समाजु निहारि ॥
झूलहिं झुलावहिं ओसरिन्ह गावैं सुगौंड-मलार ।
मञ्जीर-नूपुर-बलय-धुनि जनु काम करतल-तार ॥
अति चमुत स्रमकन मुखनि बिथुरे चिकुर बिलुलित हार ।
तम तड़ित उडुगन अरुन बिधु जनु करत ब्योम बिहार ॥
हिय हरषि बरषि प्रसून निरखति बिबुध-तिय तृन तूरि ।

[^1] नवसत = सोलह श्रृंगार।

आनन्द जल लोचन, मुदित-मन, पुलक तनु भरि पूरि ॥
सब कहहिं अबिचल राज नित कल्यान मंगल भूरि ।
चिरजियौ जानकिनाथ जग तुलसी सँजीवनि मूरि ॥ 18॥

(राग सूहो)

कोसलपुरी सुहावनी लरि सरजूके तीर ।
भूपावली-मुकुटमनि नृपति जहाँ रघुबीर ॥
पुर-नर-नारि चतुर अति धरमनिपुन, रत-नीति ।
सहज सुभाय सकल उर, श्रीरघुबर-पद-प्रीति ॥
श्रीरामपद-जलजात सब के प्रीति अबिरल पावनी ।
जो चहत सुक सनकादि सम्भु बिरंचि मुनि-मन-भावनी ॥
सबही के सुन्दर मन्दिराजिर, राउ-रंक न लखि परै ।
नाकेस-दुर्लभ भोग लोग करहिं, न मन बिषयनि हरै ॥

सब रितु सुखप्रद सो पुरी पावस अति कमनीय ।
निरखत मनहिं हरत हठि हरित अवनि रमनीय ॥
बीरबहूटि बिराजहीं, दादुर-धुनि चहुँ ओर ।
मधुर गरजि घन बरषहिं, सुनि सुनि बोलत मोर ॥

बोलत जो चातक मोर कोकिल कीर पारावत घने ।
खग बिपुल पाले बालकनि कूजत उड़ात सुहावने ॥
बकराजि राजति गगन हरिधनु तड़ित दिसि दिसि सोहहीं ।
नभ नगर की सोभा अतुल अवलोकि मुनि मन मोहहीं ॥

गृह गृह रचे हिंडोला महि गच काँच सुढार।
चित्र बिचित्र चहूँ दिसि परदा फटिक पगार॥
सरल बिसाल बिराजहीं बिद्रुम-खंभ सुजोर।
चारु पाटि पटी पुरट की झरकत मरकत भौंर [1]॥
मरकत भँवर डाँड़ी कनक मनि-जटित दुति जगमगि रही।
पटुली मनहुँ बिधि निपुनता निज प्रकट करि राखि सही॥
बहुरंग लसत बितान मुकुतादाम सहित-मनोहरा।
नव सुमन भाल सुगंध लोभे मंजु गुंजत मधुकरा॥

झुंड झुंड झूलन चलीं गजगामिनी बर नारि।
कुसुँभि चीर तनु सोहहीं भूषन बिबिध सँवारि॥
पिकबयनी मृगलोचनी सारद ससि सम तुंड।

---

[^1] भौंर = वह घूमनेवाली अँकड़ी जिसमें झूले की डोरी बँधी रहती है।

राम-सुजस सब गावहीं सुसुर सुसारँग गुंड॥
सारंग गुंड मलार सोरठ सुहव सुघरनि बाजहीं।
बहु भाँति तान तरंग सुनि गंधर्व किन्नर लाजहीं॥
अति मचत छूटत कुटिल कच छवि अधिक सुंदरि पावहीं।
पट उड़त भूषन खसत हँसि हँसि अपर सखी झुलावहीं॥

फिरि फिरि झूलहिं भामिनी अपनी अपनी बार।
बिबुध-बिमान थकित भए देखत चरित अपार॥
बरषि सुमन हरषहिं उर बरनहिं हरिगुन-गाथ।
पुनि पुनि प्रभुहि प्रसंसहीं 'जय जय जानकिनाथ'॥
जय जानकीपति बिसद कीरति सकल-लोक-मलापहा।
सुरबधू देहिं असीस चिरजिव राम सुख संपति महा॥
पावस समय कछु अवध बरनत सुनि अघौघ नसावहीं।
रघुबीर के गुनगन नवल नित दास तुलसी गावहीं॥19

(राग आसावरी)

साँझ समय रघुबीर पुरी की सोभा आजु बनी।
ललित दीपमालिका बिलोकहिं हित करि अवधधनी॥

फटिक-भीत सिखरन पर राजति कंचन-दीप-अनी।

जनु अहिनाथ मिलन आयो मनि-सोभित सहसफनी॥

प्रति मंदिर कलसनि पर भ्राजहिं मनिगन दुति अपनी।

मानहुँ प्रगटि बिपुल लोहितपुर [1] पठइ दिए अवनी॥

घर घर मंगलचार एकरस हरषित रंक गनी।

तुलसिदास कल कीरति गावहिं जो कलिमल-समनी॥20॥

(राग गौरी)

अवध नगर अति सुन्दर बर सरिता के तीर ।

नीति-निपुन नर तिय सबहिं धरम धुरन्धर धीर ॥

सकल ऋतुन्ह सुखदायक तामहँ अधिक बसन्त ।

भूप-मौलि-मनि जहँ बस नृपति जानकीकन्त ॥

बन उपबन नव किसलय कुसुमित नाना रंग ।

बोलत मधुर मुखर खग पिकबर, गुंजत भृंग ॥

समय बिचारि कृपानिधि देखि द्वार अति भीर ।

खेलहु मुदित नारि-नर, बिहँसि कहेउ रघुबीर ॥

नगर-नारि-नर हरषित सब चले खेलन फागु ।

---

[^1] लोहितपुर = मंगललोक।

देखि राम छबि अतुलित उमगत उर अनुराग ॥

स्याम-तमाल-जलदतनु निरमल पीत दुकूल ।

अरुन-कंज-दल-लोचन सदा दास अनुकूल ॥

सिर किरीट, स्रुति कुंडल, तिलक मनोहर भाल।

कुंचित केस, कुटिल भ्रू, चितवनि भगत-कृपाल ॥

कल कपोल, सुक नासिक, ललित अधर द्विज-जोति ।

अरुन कंज महँ जनु जुग पाँति रुचिर गज मोति ॥

बर दर-ग्रीव, अमितबल बाहु सुपीन बिसाल ।

कंकन-हार मनोहर, उरसि लसति बनमाल ॥

उर भृगु-चरन बिराजत, द्विज प्रिय चरित पुनीत ।

भगत हेतु नर बिग्रह सुरबर गुन-गोतीत ॥

उदर त्रिरेख मनोहर सुन्दर नाभि गँभीर ।

हाटक-घटित जटित मनि कटितट रट मञ्जीर ॥

उरु अरु जानु पीन मृदु मरकत खम्भ समान ।

नूपुर मुनि मन मोहत करत सुकोमल गान ॥

अरुन बरन पदपंकज, नखदुति इंदु-प्रकास ।

जनक-सुता-करपल्लव लालित बिपुल बिलास ॥

कंज कुलिस धुज अंकुस रेख चरन सुभ चारि ।

जन-मन-मीन हरन कहँ बंसी रची सँवारि ॥

अंग अंग प्रति अतुलित सुषमा बरनि न जाइ ।

एहि सुख मगन होइ मन फिरि नहि अनत लोभाइ ॥

खेलत फागु अवधपति अनुज सखा सब संग ।

बरषि सुमन सुर निरखहिं सोभा अमित अनंग ॥

ताल मृदंग झाँझ डफ बाजहिं पवन निसान ।

सुघर सरस सहनाइन्ह गावहिं समय समान ॥

बीना-बेनु मधुर धुनि सुनि किन्नर गन्धर्ब ।

निज गुन गरुअ हरुअ अति मानहिं मन तजि गर्ब ॥

निज-निज अटनि मनोहर गान करहिं पिकबैनि ।

मनहुँ हिमालय सिखरनि लसहिं अमर-मृगनैनि ॥

धवल धाम तें निकसहिं जहँ तहँ नारि-बरूथ ।

मानहुँ मथत पयोनिधि बिपुल अपसरा-जूथ ॥

किंसुक बरन सुअंसुक [1] सुषमा सुखनि समेत ।

जनु बिधु-निबह [2] रहे करि दामिनि-निकर निकेत ॥

---

[^1] अंसुक = वस्त्र।

[^2] निबह = समूह।

कुंकुम सुरस अबीरनि भरहिं चतुर बर नारि ।

ऋतु सुभाय सुठि सोभित देहिं बिबिध बिधि गारि ॥

जो सुख जोग जाग जप तप तीरथ तें दूरि ।

राम-कृपा तें सोइ सुख अवध गलिन्ह रह्यो पूरि ॥

खेलि बसन्त कियो प्रभु मज्ञन सरजूनीर ।

बिबिध भाँति जाचक जन पाए भूषन चीर ॥

तुलसिदास तेहि अवसर माँगी भगति अनूप ।

मृदु मुसुकाइ दीन्हि तब कृपादृष्टि रघुभूप ॥ 21॥

(राग बसन्त)

खेलत बसन्त राजाधिराज । देखत नभ कौतुक सुर-समाज ॥

सोहैं सखा अनुज रघुनाथ साथ । झोलिन्ह अबीर, पिचकारि हाथ ॥

बाजहिं मृदंग डफ ताल बेनु । छिरकैं सुगन्ध भरे मलय-रेनु ॥

उत जुबति-जूथ जानकी संग । पहिरे पट भूषन सरस रंग ॥

लिए छरी बेन्त सोधैं बिभाग । चाँचरि झूमक कहैं सरस राग ॥

नूपुर-किंकिनि-धुनि अति सोहाइ । ललना-गन जब जेहि धरइँ धाइ ॥

लोचन आँजहिं फगुआ मनाइ । छाड़हिं नचाइ, हाहा कराइ ॥

चढ़े खरनि बिदूषक स्वाँग साजि । करैं कूटि, निपट गई लाज भाजि॥

नर-नारि परसपर गारि देत । सुनि हँसत राम भाइन समेत ॥

बरषत प्रसून बर-बिबुध-बृन्द । जय जय दिनकर-कुल-कुमुदचन्द ॥

ब्रह्मादि प्रसंसत अवध बास । गावत कल कीरति तुलसिदास ॥22॥

(राग केदारा)

देखत अवध को आनद।

हरषि बरषत सुमन दिन दिन देवतनि को बृंद।

नगर-रचना सिखन को बिधि तकत बहु बिधिबन्द [1]॥

निपट लागत अगम ज्यों जलचरहि गमन सुछन्द ।

मुदित पुरलोगनि सराहत निरखि सुखमाकन्द ॥

जिन्हके सुअलि-चख पियत राम-मुखारबिन्द-मरन्द ।

मध्य ब्योम बिलम्बि चलत दिनेस उडुगन चन्द ।

रामपुरी बिलोकि तुलसी मिटत सब दुख-द्वन्द ॥ 23॥

(राग सोरठ)

पालत राज यों राजा राम धरमधुरीन ।

सावधान सुजान सब दिन रहत नय-लयलीन ॥

---

[^1] बिधिबन्द = बंध अर्थात् रचना के भेद।

स्वान खग जति न्याउ देख्यो आपु बैठि प्रबीन ।
नीचु हति महिदेव बालक कियो मीचुबिहीन ॥
भरत ज्यों अनुकूल जग निरुपाधि नेह नवीन ।
सकल चाहत राम ही ज्यों जल अगाधहि मीन ॥
गाइ राज-समाज जाँचत दास तुलसी दीन ।
लेहु निज करि, देहु निज पद-प्रेम पावन पीन ॥ 24॥

संकट-सुकृत को सोचत जानि जिय रघुराउ ।
सहस द्वादस पंचसत में कछुक है अब आउ ॥
भोग पुनि पितु-आयु को [1], सोउ किए बनै बनाउ ।
परिहरे बिनु जानकी नहि और अनघ उपाउ ॥
पालिबे असिधार-ब्रत, प्रिय प्रेम-पाल सुभाउ ।
होइ हित केहि भाँति, नित सुबिचारु, नहि चित चाउ ॥
निपट असमंजसहु बिलसति मुख मनोहरताउ ।
परम धीर-धुरीन हृदय कि हरष-बिसमय काउ ?॥

---

[^1] भोग पुनि पितु-आयु को = ऐसा प्रसिद्ध है कि राजा दशरथ अपनी आयु पूरी करने के पहले ही मर गए, उनकी शेष आयु को रामचंद्र ने भोगा। अपनी आयु भर तो राम ने जानकी को साथ रखा पर जब अपने पिता की आयु भोगने चले तब जानकी का परित्याग उन्होंने उचित विचारा।

अनुज सेवक सचिव हैं सब सुमति साध सखाउ ।
जान कोउ न जानकी बिनु अगम अलख लखाउ ॥
राम जोगवत सीय-मनु प्रिय-मनहि प्रानप्रियाउ ।
परम पावन प्रेम-परमिति समुझि तुलसी गाउ ॥ 25॥

राम बिचारि कै राखी ठीक दै मन माहिं ।
लोक बेद सनेह पालत पल कृपालहि जाहिं ॥
प्रियतमा, पति देवता, जिहि उमा रमा सिहाहिं ।
गुरुविनी [1] सुकुमारि सिय तियमनि समुझि सकुचाहिं ॥
मेरे ही सुख सुखी, सुख अपनो सपनहूँ नाहिं ।
गेहिनी-गुन-गेहिनी गुन सुमिरि सोच समाहिं ॥
राम-सीय-सनेह बरनत अगम सुकबि सकाहिं ।
रामसीय-रहस्य तुलसी कहत राम-कृपाहिं ॥ 26॥

चरचा चरनि सों चरची जानमनि रघुराइ ।
दूत-मुख सुनि लोक-धुनि घर घरनि बूझी आइ ॥
प्रिया निज अभिलाष रुचि कहि कहति सिय सकुचाइ ।

[^1] गुरुविनी = गुर्विणी, गर्भवती।

तीय तनय समेत तापस पूजिहौं बन जाइ ॥
जानि करुनासिन्धु भाबी-बिबस सकल सहाइ ।
धीर धरि रघुबीर भोरहि लिए लषन बोलाइ ॥
“तात तुरतहि साजि स्यन्दन सीय लेहु चढ़ाइ ।
बालमीकि मुनीस-आस्रम आइयहु पहुँचाइ॥
‘भले हि नाथ’, सुहाथ माथे राखि राम-रजाइ ।
चले तुलसी पालि सेवक-धरम अवधि अघाइ ॥ 27॥

आइ लषन लै सौंपी सिय मुनीसहि आनि ।
नाइ सिर रहे पाइ आसिष जोरि पंकजपानि ॥
बालमीकि बिलोकि ब्याकुल, लषन गरत गलानि ।
सर्वविद बूझत न बिधि की बामता पहिचानि ॥
जानि जिय अनुमान ही सिय सहस बिधि सनमानि ।
राम सदगुन-धाम, परमिति भई कछुक मलानि ॥
दीनबन्धु दयालु देवर देखि अति अकुलानि ।
कहति बचन उदास तुलसीदास त्रिभुवन-रानि ॥ 28॥

तौलौं बलि आपुही कीबी बिनय समुझि सुधारि ।

जौलों हौं सिखि लेउँ बन ऋषि-रीति बसि दिन चारि ॥
तापसी कहि कहा पठवति नृपनि को मनुहारि ।
बहुरि तिहि बिधि आइ कहिहै साधु कोउ हितकारि ॥
लषन लाल कृपाल! निपटहि डारिबी न बिसारि ।
पालबी सब तापसनि ज्यों राजधरम बिचारि ॥
सुनत सीता-बचन मोचत सकल लोचन-बारि ।
बालमीकि न सके तुलसी सो सनेह सँभारि ॥ 29॥

सुनि ब्याकुल भए, उतरु कछु कह्यो न जाइ ।
जानि जिय बिधि बाम दीन्हों मोहि सरुष सजाइ ॥
कहत हिय मेरी कठिनई लखि गई प्रीति लजाइ ।
आजु अवसर ऐसे हूँ जौं न चले प्रान बजाइ ॥
इतहि सीय-सनेह-संकट उतहि राम-रजाइ ।
मौनही गहि चरन गौने सिख सुआसिष पाइ ॥
प्रेम-निधि पितु को कहे मैं परुष बचन अघाइ ।
पाप तेहि परिताप तुलसी उचित सहे सिराइ ॥ 30॥

गौने मौनही बारहि बारि परि परि पाय ।

जात जनु रथ चीर कर लछिमन मगन पछिताय ॥

असन बिनु बन, बरम बिनु रन, बच्यौ कठिन कुघाय ।

दुसह साँसति सहन को हनुमान ज्यायो जाय ॥

हेतु हौं सियहरन को तब, अबहु भयों सहाय ।

होत हठि मोहि दाहिनो दिन दैव दारुन-दाय ॥

तज्यो तनु संग्राम जेहि लगि गीध जसी जटाय ।

ताहि हौं पहुँचाइ कानन चल्यों अवध सुभाय ॥

घोर हृदय कठोर करतब सृज्यो हौं बिधि बायँ ।

दास तुलसी जानि राख्यो कृपानिधि रघुराय ॥ 31॥

पुत्रि! न सोचिए आई हौं जनक-गृह जिय जानि ।

कालिही कल्यान-कौतुक, कुसल तव, कल्यानि ॥

राजऋषि पितु ससुर प्रभु पति, तू सुमंगल-खानि ।

ऐसेहूँ थल बामता, बड़ि बाम बिधि की बानि ॥

बोलि मुनि कन्या सिखाई प्रीति-गति पहिचानि ।

आलसिन्ह की देवसरि सिय सेइयहु मन मानि ॥

न्हाइ प्रातहि पूजिबो बट बिटप अभिमत-दानि ।

सुवन-लाहु, उछाहु, दिन दिन, देबि अनहित-हानि ॥

पाप-ताप-बिमोचनी कहि कथा सरस पुरानि ।
बालमीकि प्रबोधि तुलसी गई गरुइ गलानि ॥ 32॥

जब तें जानकी रही रुचिर आस्रम आइ ।
गगन, जल, थल बिमल तब तें सकल मंगलदाइ ॥
निरस भूरुह सरस फूलत फलत अति अधिकाइ ।
कन्द मूल अनेक अंकुर स्वाद सुधा लजाइ ॥
मलय मरुत, मराल-मधुकर-मोर-पिक-समुदाइ ।
मुदित-मन मृग बिहग बिहरत बिषम बैर बिहाइ ॥
रहत रबि अनुकूल दिन, ससि रजनि सजनि सुहाइ ।
सीय सुनि सादर सराहति सखिन्ह भलो मनाइ ॥
मोद बिपिन बिनोद चितवत लेत चितहि चोराइ ।
राम बिन सिय सुखद बन तुलसी कहै किमि गाइ ॥ 33॥

सुभ दिन, सुभ घरी, नीको नखत, लगन सुहाइ ।
पूत जाये जानकी द्वै मुनिबधू उठीं गाइ ॥
हरषि बरषत सुमन सुर गहगहे बधाए बजाइ ।
भुवन कानन आस्रमनि रहे मोद मंगल छाइ ॥

तेहि मुनि सों बिदा गवने भोर सो सुख पाइ ॥
मातु मौसी बहिनहू तें सासु तें अधिकाइ ।
करहिं तापस-तीय-तनया सीय-हित चित लाइ ॥
किए बिधि ब्यवहार मुनिबर बिप्रबृन्द बोलाइ ।
कहत सब ऋषिकृपा को फल भयो आजु अघाइ ॥
सुरुष ऋषि सुख सुतनि को, सिय सुखद सकल सहाइ ।
सूल राम-सनेह को तुलसी न जिय तें जाइ ॥ 34॥

मुनिबर करि छठी कीन्हीं बारहें की रीति ।
बन-बसन पहिराइ तापस, तोषि पोषे प्रीति ॥
नामकरन सुअन्नप्रासन बेद-बाँधी नीति ।
समय सब ऋषिराज करत समाज साज समीति ॥
बाल लालहिं कहहिं "करिहैं राज सब जग जीति" ।
राम सिय सुत गुरु अनुग्रह उचित अचल प्रतीति ॥
निरखि बाल-बिनोद तुलसी जात बासर बीति ।
पिय-चरित सिय-चित चितेरो लिखत नित हित-भीति ॥ 35॥

बालक सीय के बिहरत मुदित-मन दोउ भाइ ।

नाम लव-कुस राम-सिय अनुहरति सुन्दरताइ ॥
देत मुनि मुनि-सिसु खेलौना ते लै धरत दुराइ ।
खेल खेलत नृप-सिसुन्ह के बालबृन्द बोलाइ ॥
भूप भूषन बसन बाहन राज-साज सजाइ ।
बरम चरम कृपान सर धनु तून लेत बनाइ ॥
दुखी सिय पिय-बिरह तुलसी, सुखी सुत-सुख पाइ ।
आँच पय उफनात सींचत सलिल ज्यों सकुचाइ ॥ 36॥

कैकेयी जौलों जियति रही ।
तौलों बात मातु सों मुँह भरि भरत न भूलि कही ॥
मानी राम अधिक जननी तें जननिहु गँसन [1] गही ।
सीय लषन रिपुदवन राम-रुख लखि सबकी निबही ॥
लोक-बेद-मरजाद दोष गुन गति चित चख न चही ।
तुलसी भरत समुझि सुनि राखी राम सनेह सही ॥ 37॥

(राग रामकली)

रघुनाथ तुम्हारे चरित मनोहर गावहिं सकल अवधबासी ।

---

[^1] गँस = गाँस, वैरभाव।

अति उदार अवतार मनुज-बपु धरे ब्रह्म अज अबिनासी ॥
प्रथम ताड़का हति सुबाहु बधि, मख राख्यो द्विज-हितकारी ।
देखि दुखी अति सिला सापबस रघुपति बिप्रनारि तारी ॥
सब भूपन को गरब हर्‌यो हरि, भंज्यो सम्भु-चाप भारी ।
जनकसुता समेत आवत गृह परसुराम अति मदहारी ॥
तात-बचन तजि राज-काज सुर चित्रकूट मुनिबेष धर्‌यो ।
एक नयन कीन्हों सुरपति-सुत, बधि बिराध ऋषि-सोक हर्‌यो ॥
पंचबटी पावन राघव करि सूपनखा कुरूप कीन्हीं ।
खर दूषन संहारि कपटमृग गीधराज कहँ गति दीन्हीं ॥
हति कबन्ध सुग्रीव सखा करि, बेधे ताल, बालि मार्‌यो ।
बानर रीछ सहाय अनुज सँग सिन्धु बाँधि जस बिस्तार्‌यो ॥
सकुल पुत्र दल सहित दसानन मारि अखिल सुर-दुख टार्‌यो ।
परमसाधु जिय जानि बिभीषन लंकापुरी तिलक सार्‌यो ॥
सीता अरु लछिमन सँग लीन्हें औरहुँ जिते दास आए ।
नगर निकट बिमान आए सब नर नारी देखन धाए ॥
सिव बिरंचि सुक नारिदादि मुनि अस्तुति करत बिमल बानी ।
चौदह भुवन चराचर हरषित, आए राम राजधानी ॥
मिले भरत जननी गुरु परिजन चाहत परम अनन्द भरे ।

दुसह-बियोग-जनित दारुन दुख रामचरन देखत बिसरे ॥

बेद-पुरान बिचारि लगन सुभ महाराज अभिषेक कियो ।

तुलसिदास जिय जानि सुअवसर भगति-दान तब माँगि लियो ॥38॥

॥श्री सीताराम चन्द्रार्पणमस्तु॥

गोस्वामी तुलसीदास

श्रीकृष्ण गीतावली

[हिन्दीकोश]

श्रीकृष्ण गीतावली

(राग बिलावल)

माता लै उछंग गोबिंदमुख बार बार निरखैं।

पुलकित तनु आनंदघन छन छन मन हरषै॥

पूछत तोतरात बात मातहि जदुराई।

अतिसय सुख जाते तोहिं मोहिं कछु समुझाई॥

देखत तव बदन-कमल मन अनंद होई।

कहै कौन रसन मौन जाने कोइ कोई॥

सुंदर मुख मोहिं देखाउ, इच्छा अति मोरे।

मम समान पुन्यपुंज बालक नहिं तोरे॥

तुलसी प्रभु प्रेमबस्य मनुज-रूप धारी।

बालकेलि लीलारस ब्रजजन-हितकारी॥ 1॥

(राग ललित)

‘छोटी मोटी मीसी रोटी चिकनी चुपरि कै तू दै री, मैया!’

‘लै कन्हैया!’ ‘सो कब?’ ‘अबहिं तात।’
‘सिगरियै हौंहीं खैहौं, बलदाऊ को न दैहौं,’
सो क्यों भटू तेरो कहा कहि इत उत जात ॥
बाल बोलि डहकि बिरावत, चरित लखि,
गोपि-गन महरि मुदित पुलकित गात।
नूपुर की धुनि किंकिनि को कलरव सुनि,
कूदि कूदि किलकि किलकि ठाढ़े ठाढ़े खात ॥
तनिया ललित कटि, बिचित्र टेपारी सीस,
मुनि-मन हरत बचन कहै तोतरात।
तुलसी निरखि हरषत बरषत फूल भूरिभागी,
ब्रजबासी बिबुध सिद्ध सिहात ॥ 2 ॥

(राग आसावरी)

तोहिं स्याम की सपथ जसोदा आइ देखु गृह मेरे!
जैसी हाल करी यहि ढोटा छोटे निपट अनेरे॥
गोरस-हानि सहौं न कहौं कछु यहि ब्रजबास बसेरे।
दिन-प्रति भाजन कौन बेसा है? घर निधि काहूके रे ॥
किए निहोरो हँसत, खिझे तें डाटत नयन तरेरे।

अबहीं तें ये सिखे कहाधौं चरित ललित सुत तेरे ॥
बैठो सकुचि साधु भयो चाहत मातु-बदन तन हेरे।
तुलसिदास प्रभु कहौं ते बातैं जे कहि भजे सबेरे ॥ 3॥

मोकहँ झूठेहु दोष लगावहिं।
मैया! इन्हहि बानि परगृह की, नाना जुगुति बनावहिं ॥
इन्हके लिये खेलिबो छाँड़्यौ तउ न उबरन पावहिं।
भाजन फोरि, बोरि कर गोरस देन उरहनो आवहिं ॥
कबहुँक बाल रोवाइ पानि गहि, मिस करि उठि उठि धावहिं।
करहिं आपु सिर धरहिं आन के बचन बिरंचि हरावहिं ॥
मेरी टेव बूझि हलधर को संतत संग खेलावहिं।
जे अन्याउ करहि काहूको ते सिसु मोहि न भावहिं ॥
सुनि सुनि बचन-चातुरी ग्वालिनि हँसि हँसि बदन दुरावहिं।
बाल गोपाल केलि-कल-कीरति तुलसीदास मुनि गावहिं ॥ 4 ॥

कबहुँ न जात पराये धामहिं ।
खेलत ही देखौं निज आँगन सदा सहित बलरामहिं ॥

मेरे कहा थाकु [1] गोरस को नव-निधि मन्दिर यामहिं।
ठाढ़ी ग्वालि ओरहने के मिस आइ बकहिं बेकामहिं ॥
हौं बलि जाउँ जाहु कितहूँ जनि मातु सिखावति स्यामहिं।
बिनु कारन हठि दोष लगावति तात गए गृह तामहिं ॥
हरि मुख निरखि परूष बानी सुनि अधिक अधिक अभिरामहिं।
तुलसीदास प्रभु देख्योइ चाहति श्रीउर ललित-ललामहिं ॥ 5॥

अब सब साँची कान्ह तिहारी।
जो हम तजे पाइ गौं मोहन गृह आए दै गारी॥
सुसुकि सभीत सकुचि रूखे मुख बातैं सकल सँवारी।
साधु जानि हँसि हदय लगाए परम प्रीति महतारी ॥
कोटि जतन करि सपथ कहैं हम मानै कौन हमारी?।
तुमहि बिलोकि आन की ऐसी क्यों कहिहैं बर नारी ॥
जैसे हौ तैसे सुखदायक ब्रजनायक बलिहारी।
तुलसिदास प्रभु मुखछबि निरखत मन सब जुगुति बिसारी ॥ 6 ॥

(राग केदारा)

---

[^1] थाकु = सीमा।

महरि तिहारे पाँय परौं अपनो ब्रज लीजै।

सहि देख्यो, तुम सों कह्यो, अब नाकहिं आई,

कौन दिनहु दिन छीजै?

ग्वालिनि तौ गोरस सुखी ता बिनु क्यों जीजै।

सुत समेत पाउँ धारिये, आपुहि भवन मेरे

देखिये जो न पतीजै ॥

अति अनीति नीकी नहीं अजहूँ सिख दीजै।

तुलसिदास प्रभु सों कहै उर लाइ जसोमति

ऐसी बलि कबहूँ नहिं कीजै ॥ 7॥

अबहिं उरहनो दै गई, बहुरौ फिरि आई।

सुनु मैया! तेरी सौं करौं, याको टेव लरन की,

सकुच बेंचि सी खाई ॥

या ब्रज में लरिका घने, हौंही अन्याई।

मुँह लाए मूड़हिं चढ़ी अंतहु अहिरिनि तू सूधी करि पाई ॥

सुनि सुत की अति चातुरी जसुमति मुसुकाई।

तुलसिदास ग्वालिनि ठगी, आयो न उतर कछु,

कान्ह ठगौरी लाई ॥ 8॥

(राग गौरी)

अब ब्रजबास महरि किमि कीबो?

दूध दह्योउ माखन ढारत हैं हुतो पोसात दान दिन दीबो ॥

अब तौ कठिन कान्ह के करतब, तुम्ह हौ हँसति कहा कहि लीबो?

लीजै गाँउ, नाउँ लै रावरो है जग ठाउँ कहूँ है जीबो ॥

ग्वालिबचन सुनि कहति जसोमति, 'भलो न भूमि पर बादर छीबो।

दैअहि लागि कहौं तुलसी प्रभु अजहुँ न तजत पयोधर पीबो' ॥ 9॥

जानी है ग्वालि परी फिरि फीके।

मातुकाज लागी लखि डाँटत, 'है बायनो दियो घर नीकें ॥

अब कहि देउँ, कहति किन', यों कहि माँगत दही धर्‌यो जो छीकें ॥

तुलसी प्रभु-मुख निरखि रही चकि, रह्यो न सयानप तन मन ती के ॥ 10॥

जौलौं हौं कान्ह! रहौं गुन गोए।

तौलौं तुमहि पत्यात लोग सब, सुसुकि सभीत साँचु सो रोए ॥

हौ भले नग-फँग परे गढ़ीबै, अब ए गढ़त महरि मुख जोए।

चुपकि न रहत, कहै कछु चाहत, ह्वैहै कीच कोठिला धोए ॥

गरजति कहा तरजनिन्ह तरजति बरजति सैन नयन के कोए।

तुलसी मुदित मातु सुत-गति लखि विथकी है ग्वालि मैन-मन-मोए ॥ 11॥

भूलि न जात हौं काहूके काऊ।
साखि सखा सब सुबल, सुदामा, देखिधौं बूझि बोलि बलदाऊ ॥
यह तो मोहि खिझाइ कोटि बिधि उलटि बिबादन आइ अगाऊ।
याहि कहा मैया मुँह लावति, गनति कि एक लँगरि झगराऊ ॥
कहत परसपर बचन, जसोमति लखि नहिं सकति कपट सति भाऊ।
तुलसिदास ग्वालिनि अति नागरि, नट नागर-मनि नंद-ललाऊ ॥ 12॥

छाँडो मेरे ललित ललन लरिकाई।
ऐहैं सुत! देखुवार कालि तेरे, बबै ब्याह की बात चलाई ॥
डरिहैं सासु ससुर चोरी सुनि, हँसिहैं नई दुलहिया सुहाई।
उबटौं न्हाहु, गुहौं चुटिया, बलि, देखि भलो बर करिहिं बड़ाई॥
मातु कह्यो करि कहत बोलि दै, भइ बड़ि बार कालि तौ न आई।
जब सोइबो तात यों हाँकहि, नयन मीचि रहे पौढ़ि कन्हाई॥
उठि कह्यो भोर भयो झँगुली दै, मुदित महरि लखि आतुरताई।
बिहँसी ग्वालि जानि तुलसी प्रभु सकुचि लगे जननी उर धाई॥ 13॥

(राग केदारा)

हरि को ललित बदन निहारु

निपट हीं डाँटति निठुर ज्यों लकुट कर तें डारु ॥

मंजु अजन सहित जल-कन चुवत लोचन चारु।

स्याम-सारस मग मनो ससि स्रवत सुधा सिंगारु ॥

सुभग उर दधिबुंद सुंदर लखि अपनपौ वारु।

मनहुँ मरकत-मृदु-सिखर पर लसत बिसद तुषारु ॥

कान्हहू पर सतर भोंहें, महरि मनहिं बिचारु।

दास तुलसी रहति क्यों रिस निरखि नंदकुमार ॥ 14॥

लेत भरि भरि नीर कान्ह कमल नैन ।

फरक अधर डर, निरखि लकुट कर, कहि न सकत कछु बैन ॥

दुसह दाँवरी छोरि, थोरी खोरि कहा कीन्हो,

चीन्हो री सुभाय तेरो आजु लगे माई मैं न ।

तुलसिदास नंद-ललन ललित लखि रिस क्यों रहति उर-ऐन ॥15॥

हाहा री महरि बारो, कहा रिस-बस भई, कोखि के

जाए सों रोषु केतो बड़ो कियो है।

ढीली करि दाँवरी, बावरी साँवरेहि देखि,

सकुचि सहमि सिसु भारी भय भियो है॥
दूध दधि माखन भो, लाखन गोधन धन
जब ते जनम हलधर हरि लियो है।
खायो, कै खवायो, कै बिगार्‌यो ढार्‌यो लरिका री,
ऐस सुत पर कोह, कैसो तेरो हियो है? ॥
मुनि कहैं सुकृती न नंद जसुमति सम,
न भयो, न भावी, नहिं विद्यमान बियो है।
कौन जानै कौने तप, कौने जाग जाग जप
कान्ह सो सुवन तोको महादेव दियो है॥
इन्हहीं के आए ते बधाए ब्रज नित नए,
नादत बाढ़त सब सब सुख जियो है।
नंदलाल-बाल-जस संत-सुर-सरबस
गाइ सो अमिय रस तुलसिहु पियो है॥ 16॥

ललित लालन निहारि, महरि मन बिचारि,
डारि दै घर-बसी [1] लकुटी बेगि कर तें।
कछु न कहि सकत, सुसुकत सकुचत,

[^1] घर-बसी = व्यंग्य से घर उजाड़ने वाली।

डरहूँ को डर, कान्ह डरै तेरे डर तें ॥

कह्यौ मेरो मानि, हित जानि, तू सयानी बड़ी,

बड़े भाग पायो पूत बिधि हरि हर तें।

ताहि बाँधिबे को धाई, ग्वालिन गोरसहाँई

लै लै आई बावरी दाँवरी घर-घर तें ॥

कुल-गुरु-तिय के बचन कमनीय सुनि,

सुधि भए बचन जे सुने मुनिबर तें।

छोर लिये लाय उर, बरषैं सुमन सुर,

मंगल है तिहूँ पुर हरि हलधर तें ॥

आनँद-बधावनो मुदित गोप गोपीगन,

आजु परी कुसल कठिन करवर तें।

तुलसी जे तोरे तरु किए देव, दिये बरु,

कै न लह्यो कौन फरु देव दामोदर तें ॥ 17॥

(राग मलार)

ब्रज पर घन घमंड करि आए।

अति अपमान बिचारि आपनो कोपि सुरेस पठाए ॥

दमकति दुसह दसहुँ दिसि दामिनि भयो तम गगन गँभीर।

गरजत घोर बारिधर धावत प्रेरित प्रबल समीर ॥
बार बार पबिपात, उपल घन बरषत बूँद बिसाल।
सीत-सभीत पुकारत आरत गो गोसुत गोपी ग्वाल ॥
राखहु राम कान्ह यहि अवसर दुसह दसा भइ आइ।
नंद विरोध कियो सुरपति सों सो तुम्हरो बल पाइ ॥
सुनि हँसि उठ्यो नंद को नाहरु, लियो कर कुधर उठाइ।
तुलसिदास मघवा अपनी सों करि गयो गर्व गँवाइ ॥ 18॥

(राग गौरी)

टेरि कान्ह गोबर्धन चढ़ि गैया।
मथि मथि पियो बारि चारिक मैं भूख न जाति अघाति न घैया ॥
सैल-सिखर चढ़ि चितै चकित चित अति हित बचन कह्यौ बलभैया।
बाँधि लकुट पट फेरि बोलाईं सुनि कल बेनु धेनु धुकि धैया ॥
बलदाऊ देखियत दूरि तें आवति छाक पठाई मेरी मैया।
किलकिं सखा सब नचत मोर ज्यो, कूदत कपि कुरंग की नैया ॥
खेलत खात परसपर डहकत, छीनत कहत करत रोगदैया [1]।
तुलसी बालकेलि-सुख निरखत बरषत सुमन सहित सुरसैया॥19॥

[^1] रोगदैया = अन्याय, बेईमानी।

(राग नट)

गावत गोपाल-लाल नीकें राग नट हैं।

चलि री आलि देखन लोयन-लाहु पेखन

ठाढ़े सुरतरु तर तटिनी के तट हैं ॥

मोरचंदा चारु सिर मंजु गुंजा-पुंज धरें

बानि बन-धातु तन ओढ़े पीत पट हैं।

मुरली तान-तरँग मोहे कुरंग बिहंग,

जोहैं मूरति त्रिभंग निपट निकट हैं ॥

अंबर अमर हरषत बरषत फूल,

स्नेह सिथिल गोप गाइन्ह के ठट हैं।

तुलसी प्रभु निहारि जहाँ तहाँ ब्रज नारि

ठगी ठाढ़ी मग लिये रीते भरे घट हैं ॥ 20॥

(राग बिलावल)

देखु सखी हरि-बदन इंदु-पर।

चिक्कन कुटिल अलक अवली-छबि, कहि न जाइ सोभा अनूप बर॥॥

बाल-भुअंगिनि-निकर मनहुँ मिलि रहीं घेरि रस जानि सुधाकर।

तजि न सकहिं नहिं करहिं पान कहो कारन कौन बिचारि डरहिं डर ॥

अरून बनज-लोचन, कपोल सुभ, स्रुति मंडित कुंडल अति सुंदर।

मनहुँ सिंधु निज सुतहि मनावन पठए जुगुल बसीठ बारिचर ॥

नंदनँदन मुख की सुंदरता कहि न सकत स्रुति सेष उमाबर।

तुलसिदास त्रैलोक्य-बिमोहन रूप कपट नर त्रिबिध-सूलहर ॥ 21॥

आजु उनीदे आए मुरारी।

आलसवंत सुभग लोचन सखि छिन मूँदत, छिन देत उघारी ॥

मनहुँ इंदु पर खंजरीट दोउ कछुक अरुन बिधि रचे सँवारी।

कुटिल अलक जनु मार फंद कर गहे सजग ह्वै रह्यो सँभारी ॥

मनहुँ उड़न चाहत अति चंचल पलक पंख छिन देत पसारी।

नासिक कीर, बचन पिक सुनि करि संगति मनु गुनि रहत बिचारी ॥

रुचिर कपोल, चारु कुंडल बर, भ्रुकुटि सरासन की अनुहारी।

परम चपल तेहि त्रास मनहुँ खग प्रगटत दुरत न मानत हारी ॥

जदुपति मुखछबि कलप कोटि लगि कहि न जाइ जाकें मुख चारी।

तुलसिदास जेहि निरखि ग्वालिनी भजीं तात पति तनय बिसारी ॥22॥

(राग गौरी)

गोपाल गोकुल बल्लवी प्रिय गोप गोसुत बल्लभं।

चरनारबिंद महं भजे भजनीय सुर-मुनि-दुर्लभं ॥

घनश्याम काम अनेक छबि, लोकभिराम मनोहरं।

किंजल्क-बसन, किसोर मूरति, भूरि गुन करुनाकरं ॥

सिर केकि पच्छ बिलोल कुंडल, अरून बनरुह-लोचनं।

गुंजावतंस बिचित्र, सब अँग धातु भव भय मोचनं ॥

कच कुटिल, सुंदर तिलक भ्रू राका-मयंक-समाननं।

अपहरन तुलसीदास त्रास बिहार बृंदाकाननं ॥ 23॥

(राग बिलावल)

बिछुरत श्रीब्रजराज आजु इन नयनन की परतीति गई।

उड़ि न लगे हरि संग सहज तजि, ह्वै न गए सखि स्याममई ॥

रूप-रसिक लालची कहावत, सो करनी कछु तौ न भई।

साँचेहु कूर कुटिल, सित मेचक, बृथा मीनछबि छीनि लई ॥

अब काहें सोचत मोचत, जल, समय गए चित सूल नई।

तुलसिदास तब अपहुँ से भए जड़, जब पलकनि हठि दगा दई ॥ 24॥

(राग कान्हरा)

नहिं कछु दोष स्याम को माई!

जो दुख मैं पायों सजनी सुन सो तौ सबै बन की चतुराई ॥

निज हित लागि तबहिं ए बंचक सब अंगनि बसि प्रीति बढ़ाई।

लियो जो सब सुख हरि-अँग-सँग को जहँ जेहि बिधि तहँ सोइ बनाई ॥

अब नँदलाल-गवन सुनि मधुबन तनहि तजत नहिं बार लगाई।

रुचिर रूप-जल मो रसेस [1] ह्वै मिलि न फिरन की बात चलाई ॥

एहि सरीर बसि सखि वा सठ कहँ कहि न जाइ जो निधि फबि पाई।

तदपि कछू उपकार न कीन्हो निज मिलन्यौ नहिं मोहि लिखाई ॥

आपु मिल्यो यहि भाँति जाति तजि, तन मिलयो जल पय की नाई।

ह्वै मराल आयो सुफलक-सुत लै गयो छीर नीर बिलगाई ॥

मन हौं तजी, कान्ह हौं त्यागी, प्रानौ चलिहैं परिमिति पाई।

तुलसिदास रीतेहु तनु ऊपर नयननि की ममता अधिकाई ॥25॥

(राग धनाश्री)

करि है हरि बालक की सी केलि।

हरष न रचत, बिषाद न बिगरत, ए डगरि चले हँसि खेलि ॥

बई बनाय बारि बृंदाबन प्रीति सँजीवनि-बेलि।

---

[^1] रसेस = लवण, नमक।

सींचि सनेह-सुधा खनि काढ़ी लोक-बेद परहेलि ॥
तृन ज्यों तजीं, पालि-तनु ज्यों हम बिधि बासव बल पेलि।
एतहुँ पर भावत तुलसी प्रभु गए मोहिनी मेलि ॥ 26॥

आलि! अब कहौ जनि नेह निहारि।
समुझे सहे हमारो है हित बिधि बामता बिचारि ॥
सत्य सनेह सील सोभा सुख सब गुन उदधि अपारि।
देख्यो सुन्यो न कबहुँ काहु कहुँ मीन बियोगी बारि ॥
कहियत काकु कूबरी हूँ को, सो कुबानि बस नारि।
बिष तें बिषम बिनय अनहित की सुधा सनेही गारि ॥
मन फेरियत कुतर्क कोटि करि कुबल भरोसे भारि।
तुलसी जग दूजा न देखियत कान्ह कुँवर अनुहारि ॥ 27 ॥

लागियै रहति, नयननि आगे तें न टरति मोहन मूरति।
नील-नलिन स्याम सोभा अगनित काम, पावन हृदय जेहिं उर फूरति ॥
सारद अमित सेष नहीं कहि सकत अंग अँग सूरति।
तुलसिदास बड़े भाग मन लागेहु तें सब सुख पूरति ॥ 28 ॥

जब ते ब्रज तजि गये कन्हाई।

तब ते बिरह रबि उदित एकरस सखि बिछुरन-बृष पाई ॥
घटत न तेज, चलत नाहिन रथ, रह्यो उर-नभ पर छाई।
इन्द्रिय रूप-रासि सोचहि सुठि, सुधि सब की बिसराई ॥
भयो सोक-भय-कोक-कोकनद भ्रम-भ्रमरनि सुखदाई।
चित-चकोर, मन-मोर-कुमुद-मुदु सकल बिकल अधिकाई ॥
तनु-तड़ाग बल-बारि सुखन लाग्यो परि कुरुपता-काई।
प्रान-मीन दिन दीन दूबरे, दसा दुसह अब आई ॥
तुलसीदास मनोरथ-मन-मृग मरत जहाँ तहँ धाई।
राम स्याम सावन भादों बिनु जिय की जरनि न जाई ॥ 29॥

ससि तें सीतल मोको लागै माई री! तरनि।
याके उए बरति अधिक अँग अँग दव,
वाके उए मिटति रजनि-जनित जरनि ॥
सब बिपरीत भए माधव बिनु,
हित जो करत अनहित की करनि।
तुलसीदास स्यामसुंदर-बिरह की
दुसह दसा सो मोपैं परति नहीं बरनि ॥ 30 ॥

संतत दुखद सखी! रजनीकर।

स्वारथ-रत तब, अबहुँ एकरस, मोको कबहूँ न भयो तापहर ॥

निज अंसिक सुख लागि चतुर अति कीन्ही है प्रथम निसा सुभ सुंदर।

अब बिनु मन, तन दहत दया तजि, राखत रबि ह्वै नयन बारिधर ॥

जद्यपि है दारून बड़वानल राख्यो है जलधि गँभीर धीरतर।

ताहू तें परम कठिन जान्यो ससि तज्यो पिता तब भयो ब्योमचर ॥

सकल बिकार-कोस बिरहिनि-रिपु, काहे तें याहि सराहत सुर नर?।

तुलसिदास त्रैलाक्य मान्य भयो कारन इहै गह्यो गिरिजाबर ॥ 31॥

(राग मलार)

कोउ सखि नई बात सुनि आई।

यह ब्रजभूमि सकल सुरपति सों, मदन मिलिक करि पाई ॥

घन धावन, बग-पाँति पटो-सिर, बैरख-तड़ित सोहाई।

बेलत पिक नकीब, गरजनि मिस मानहुँ फिरत दोहाई ॥

चतक मोर चकोर मधुप सुक सुमन समीर सहाई।

चाहत [1] कियो बास बृंदाबन बिधि सों कछु न बसाई ॥

सींव न चाँपि सक्यो कोऊ तब जब हुते राम कन्हाई।

---

[^1] चाह = चर्चा।

अब तुलसी गिरिधर बिनु गोकुल कौन करिहि ठकुराई? ॥ 32॥

(राग सोरठ)

ऊधो! या ब्रज की दसा बिचारौ।

ता पाछे यह सिद्धि आपनी जोग कथा बिस्तारो ॥

जा कारन पठए तुम माधव सो सोचहु मन माहीं।

केतिक बीच बिरह परमारथ जानत हौ किधौं नाहीं ॥

परम चतुर निज दास स्याम के संतत निकट रहत हौ।

जल बूड़त अवलंब फेन को फिरि फिरि कहा कहत हौ? ॥

वह अति ललित मनोहर आनन कौने जतन बिसारौं।

जोग जुगुमि अरू मुकुति बिबिध बिधि वा मुरली पर वारौं ॥

जेहि उस बसत स्यामसुंदर घन तेहिं निर्गुन कस आवैं।

तुलसिदास सो भजन बहावौ जाहि दूसरो भावै ॥ 33 ॥

मधुकर! कहहु कहन जो पारौ।

नाहिंन, बलि, अपराध रावरो, सकुचि साध जनि मारो ॥

नहिं तुम ब्रज बसि नन्दलाल को बालबिनोद निहारो।

नाहिन रास-रसिक रस चाख्यो, तात डेल सो डारो [1]॥
तुलसी जौ न गए प्रीपम सँग प्रान त्यागि तनु न्यारो।
तौ सुनिबो देखिबो बहुत अब कहा करम सों चारो? ॥ 34 ॥

ऊधो जू कह्यो तिहारोइ कीबो।
नीके जिय की जानि अपनपौ समुझि सिखावन दीबो ॥
स्याम-बियोगी ब्रज के लोगनि जोग जोग जो जानो।
तौ सँकोच परिहरि पालागौं परमारथहि बखानो ॥
गोपी गाय ग्वाल गोसुत सब रहत रूप अनुरागे।
दीन मलीन छीन तनु डोलत मीन मजा सों लागे ॥
तुलसी है सनेह दुखदायक, नहिं जानत ऐसो को है?।
तऊ न होत कान्ह को सो मन, सबै साहिबहि सोहै॥ 35 ॥

(राग बिलावल)

सो कहौ मधुप! जे मोहन कहि पठई।
तुम सकुचत कत? हौं ही नीके जानति,
नंदनंदन हो निपट करी सठई ॥

[^1] डेल सो डारो = पत्थर सा मारते हो।

हुतो न साँचो सनेह, मिट्यो मन को सँदेह

हरि परे उघरि, संदेसहु ठठई।

तुलसिदास कौन आस मिलन की,

कहि गए सो तौ कछु एकौ न चित ठई ॥36॥

मेरे जान और कछु न मन गुनिए।

कूबरीरवन कान्ह कही जो मधुप सों,

सोई सिख सजनी ! सुचित दै सुनिए ॥

काहे को करति रोष, देहि धौं कौने को दोष,

निज नयननि को बयो सब लुनिए।

दारु सरीर, कीट पहिले सुख,

सुमिरि सुमिरि बासर निसि धुनिए ॥

ये सनेह सुचि अधिक अधिक रुचि,

बरज्यो न करत कितो सिर धुनिए।

तुलसीदास अब नंदसुवन हित

बिषम बियोग अनल तनु हुनिए ॥ 37 ॥

भली कही, आली हमहुँ पहिचाने।

हरि निर्गुन निर्लेप निरपने निपट निठुर, निज-काज सयाने ॥
ब्रज को बिरह, अरु संग महर को, कुबरिहि बरत न नेकु लजाने।
समुझि सो प्रीति की रीति स्याम की सोइ बावरि जो परेषो उर आने ॥
सुनत न सिख लालची बिलोचन एतेहु पर रुचि रूप लोभाने।
तुलसिदास इहै अधिक कान्ह पहिं नीके ई लागत मन रहत समाने ॥ 38 ॥

(राग मलार)

जोपै अलि! अंत इहै करिबो हो।
तौ अगनित अहीर अबलनि को हठि न हियो हरिबे हो ॥
जौ प्रंपच परिनाम प्रेम फिरि अनुचित आचरिबे हो।
तौ मथुराहि महामहिमा लहि सकल ढरनि ढरिबे हो ॥
दै कूबरिहि रूप ब्रज सुधि भए लौकिक डर डरिबे हो।
ज्ञान बिराग काल कृत करतब हमरेहि सिर धरिबे हो।
उन्हहि राग रबि नीरद-जल ज्यों [1], प्रभु-परमिति परिबे हो [2]।
हमहुँ निठुर-निरूपाधि-नेह-निधि निज भुजबल तरिबे हो ॥

---

[^1] उन्हहिं राग ... ... ज्यों = जैसे, सूर्य ही मेघ के रूप में जल को आकर्षित करता है, पर उससे कोई राग या संबंध नहीं रखता।

[^2] प्रभु-परमिति परिबे हो = राधा की मर्यादा के पालन में पड़ता था।

भलो भयो सब भाँति हमारो एक बार मरिबे हो।

तुलसी कान्हबिरह नित नव जर जरि जीवन भरिबे हो ॥ 39 ॥

उधो! यह ह्याँ न कछू कहिबे ही।

ज्ञानगिरा कूबरीरवन की सुनि बिचारि गहिबे ही॥

पाइ रजाइ नाइ सिर गृह ह्वै गति परमिति लहिबे ही।

मति-मटुकी मृगजल भरि घृतहित मनहीं मन महिबे ही॥

गाड़े भली, उखारे अनुचित, बनि आए बहिबे ही [1]।

तुलसी प्रभुहिं तुम्हहि हमहूँ हिय साँसति सी सहिबे ही॥ 40॥

मधुकर! कान्ह कही ते न होहीं।

कै ये नई सीख सिखई हरि निज-अनुराग बिछोहीं ॥

राखी सचि कूबरी पीठ पर ये बातैं बकुचौहीं [2]।

स्याम सो गाहक पाइ सयानी खोलि देखाई है गौ हीं ॥

नागर-मनि सोभा-सागर जेहिं जग जुबती हँसि मोहीं।

लियो रूप दै ज्ञान-गाँठरी भलो ठग्यो ठगु ओहीं ॥

---

[^1] बहिवे ही बनि आए = आ पड़ने पर निबाहना ही होगा।

[^2] बकुचौहीं = बकुचा या गठरी बाँधकर।

है निर्गुन सारी बारिक [3], बलि, घरी करौं [4], हम जोही।

तुलसी ये नागरिन्ह जोग-पट, जिन्हहि आजु सब सोही ॥ 41 ॥

मधुप! तुम्ह कान्ह ही की कही क्यों न कही है?

यह बतकही चपल चेरी की निपट चरेरीऐ रही है॥

कब ब्रज तज्यो, ज्ञान कब उपज्यौ? कब बिदेहता लही है?

गए बिसरि रीति गोकुल की, अब निर्गुन गति गही है॥

आयसु देहु करहिं सोइ सिर धरि, प्रीति-परमिति निरबही है।

तुलसी परमेस्वर न सहैगो, हम अबलनि सब सही है॥ 42 ॥

दीन्ही है मधुप सबहि सिख नीकी।

सोइ आदरौ आस जाके जिय बारि बिलोवत घी की ॥

बुझी बात कान्ह कुबरी की, मधुकर कछु जनि पूछौ।

ठालीं ग्वालि जानि पठए, अलि, कह्यो है पछोरन छूछौ ॥

हमहूँ कछुक लखी ही तब की औरेबैं [3] नंदलला की।

ये अब लही चतुर चेरी पै चोखी चालि चलाकी ॥

---

[^3] बारिक = बारीक।

[^4] घरी करौ = तह लगाकर रखो।

[^3] औरेबैं = टेढ़ी चालें।

गए कर तें, घर तें, आँगन तें, ब्रजहू तें ब्रजनाथ।

तुलसी प्रभु गयो चहत मनहु तें सो तो है हमारे हाथ ॥ 43 ॥

ताकी सिख ब्रज न सुनैगो कोउ भोरे।

जाकी कहनि रहनि अनमिल, अलि, सुनत समझियत थोरे ॥

आपु कंज-मकरंद सुधाह्रद हृदय रहत नित बोरे ।

हम सों कहत बिरह-स्रम जैहे गगन कूप खनि खोरे [1]॥

धान को गाँव पयार तें जानिय ज्ञान बिषय मन मोरे।

तुलसी अधिक कहें न रहै रस गूलरि को सो फल फोरे ॥ 44॥

आली! अति अनुचित उतरु न दीजै।

सेवक सखा सनेही हरि के जो कछु कहैं सो कीजै ॥

देस-काल उपदेस सँदेसो सादर सब सुनि लीजै।

कै समुझिबो, कै ये समुझैहैं हारेहुँ मानि सहीजै ॥

सखि सरोष प्रियदोष बिचारत प्रेम पीन पन छीजै।

खग मृग मीन सलभ सरसिज गति सुनि पाहनौ पसीजै ॥

ऊधो परम हितू हित सिखवत परमिति पहुँचि पतीजै।

---

[^1] खोरे = स्नान करने से।

तुलसिदास अपराध आपनो, नंदलाल बिनु जीजै ॥ 45॥

ऊधो हैं बड़े, कहैं सोइ कीजै।
अलि, पहिचानि प्रेम की परमिति उतरु फेरि नहिं दीजै ॥
जननी जनक जरठ जाने जन परिजन लोगु न छीजै।
दै पठयो पहिलो बिढ़तो ब्रज सादर सिर धरि लीजै ॥
कंस मारि जदुबंस सुखी कियो, स्रवन सुजस सुनि जीजै।
तुलसी त्यों-त्यों होइगी गरूई ज्यों ज्यों कामरि भीजै ॥ 46॥

कान्ह, अलि! भए नए गुरु ग्यानी।
तुम्हरे कहत आपने समुझत, बात सही उर आनी ॥
लिए अपनाइ लाइ चन्दन तन, कछु कटु चाह उड़ानी [1]।
जरी सुँघाइ कूबरी कौतुक करि जोगी बघा-जुड़ानी [2]॥
ब्रज बसि रास-बिलास, मधुपुरी चेरी सों रति मानी।
जोग जोग ग्वालिनी बियोगिनि जान-सिरोमनि जानी ॥
कहिबे कछू कछू कहि जैहै, रहौ ,आलि! अरगानी।
तुलसी हाथ पराए प्रीतम, तुम्ह प्रिय-हाथ बिकानी ॥ 47 ॥

[^1] चाह उड़ानी = खबर उड़ी है।

[^2] बघा-जुड़ानी = व्याघ्र को ठंडा अर्थात् वश में करनेवाली क्रिया।

सब मिलि साहस करिय सयानी।
ब्रज आनियहिं मनाइ पाँय परि कान्ह कूबरी रानी ॥
बसैं सुबास, सुपास हेहिं सब फिरि गोकुल रजधानी।
महरि महर जीवहिं सुख-जीवन खुलहिं मोद-मनि-खानीं ॥
तजि अभियान अनख अपनो हित कीजिय मुनिबर वानी।
देखिबो दरस दूसरेहुँ चौथेहु बड़ो लाभ, लघु हानि ॥
पावक परत निषिद्ध लाकरी होति अनल जग जानी।
तुलसी सो तिहुँ भुवन गाइबी नंदसुवन सनमानी ॥ 48 ॥

कही है भली बात सब के मन मानी।
प्रिय-सम प्रियसनेह-भाजन, सखि! प्रीति-रीति जग-जानी ॥
भूषन भूति गरल परिहरि कै हरमूरित उर आनी?।
मज्ञन पान कियो कै [1] सुरसरि कर्मनास जल छानी? ॥
पूछ सो प्रेम, बिरोध सींग सों एहिं बिचार हित-हानी।
कीजै कान्ह-कुबरी सों नित नेह करम मन बानी ॥
तुलसी तजिय कुचालि आलि अब सुधरै सबइ नसानी।

[^1] कै = किसने।

आगे करि मधुकर मथुरा कहँ सोधिय सुदिन सयानी ॥ 49 ॥

(राग कान्हरा)

हे हम समाचार सब पाए।
अब बिसेष देखे तुम्ह देखे हैं कूबरी कहाँ से लाए ॥
मथुरा बड़ो नगर नागर जन जिन्ह जातहिं जदुनाथ पढ़ाए।
समुझि रहनि, सुनि कहनि बिरह ब्रन अनष अमिय औषध सरुहाए [1]॥
मधुकर रसिक सिरोमनि कहियत कौने यह रस-रीति सिखाए।
बिनु आषर को गीत गाइ गाइ चाहत ग्वालिन ग्वाल रिझाए ॥
फल पहिले ही लह्यो ब्रजबासिन्ह, अघ साधन उपदेसन आए।
तुलसी अलि, अजहूँ नहीं बूझत, कौन हेतु नँदलाल पठाए ॥ 50॥

कौन सुनै अलि की चतुराई।
अपनिहिं मतिबिलास अकास महँ चाहत सियनि चलाई ॥
सरल सुलभ हरिभगति सुखाकर निगम पुराननि गाई ।
तजि सोइ सुधा मनोरथ करि को मरिहै, री माई ॥
जद्यपि ताको सोइ मारग-प्रिय जाहि जहाँ बनि आई ।

[^1] सरुहाए = चंगा किया (?)।

मैन [1] के दसन, कुलिस के मोदक कहत सुनत बौराई ॥
सुगन छीरनिधि-तीर बसत ब्रज तिहुँ पुर बिदित बड़ाई।
आक दुहन तुम्ह कह्यो सो परिहरि हम यह मति नहिं पाई ॥
जानत हैं जदुनाथ सबन की बुधि बिबेक जड़ताई।
तुलसिदास जनि बकहि, मधुप सठ! हठ निसि दिन अँवराई ॥ 51॥

(राग केदारा)

गोकुल प्रीति नित नई जानि।
जाइ अनत सुनाइ मधुकर ज्ञान-गिरा पुरानि ॥
मिलहिं जोगी जरठ तिन्हहि दिखाउ निरगुन-खानि।
नवल नंदकुमार के ब्रज सगुन सुजस बखानि ॥
तू जो हम आदर्‌यो, सो तो नव कमल की कानि।
तजहि तुलसी समुझि यह उपदेसिबे की बानि ॥ 52 ॥

काहे को कहत बचन सँवारि।
ज्ञानगाहक नाहिनै ब्रज मधुप अनत सिधारि ॥
जुगुति धूम बघारिबे की समुझिहैं न गँवारि।

[^1] मैन = मोम।

जोगिजन मुनिमंडली मों जाइ रीती ढारि ॥
सुनै तिन्ह की कौन तुलसी जिन्हहि जीति न हारि।
सकति खारो कियो चाहत मेघहू को बारि ॥ 53 ॥

ऐसे हौं हूँ जानति भृंग!
नाहिनै काहू लह्यो सुख प्रीति करि इक अंग ॥
कौन भीर जो नीरदहि जेहि लागि रटत बिहंग।
मीन जल बिनु तलफि तनु, तजै, सलिल सहज असंग ॥
पीर कछू न मनिहि जाके बिरह-बिकल भुअंग।
ब्याध-बिसिख बिलोक नहिं कलगान-लुबुध कुरंग ॥
स्यामघन गुनबरि छबिमनि मुरलि-तान-तरंग।
लग्यो मन बहु भाँति तुलसी होइ क्यों रसभंग? ॥ 54 ॥

ऊधो! प्रीति करि निरमोहियन सों को न भयो दुख दीन?।
सनत समुझत कहत हम सब भई अति अप्रबीन ॥
अहि कुरंग पतंग पंकज चारु चातक मीन।
बैठि इनकी पाँति अब सुख चहत मन मतिहीन ॥
निठुरता अरू नेह की गति कठित परति कही न।

दास तुलसी सोच नित निज प्रेम जानि मलीन ॥ 55 ॥

(राग गौरी)

सुनत कुलिस सम बचन तिहारे।
चित दै मधुर! सुनहु सोउ कारन जाते जात न प्रान हमारे ॥
ज्ञान कृपान समान लगत उर, बिहरत छिन-छिन होत निनारे।
अविध जरा जोरति हठि पुरि-पुनि, याते रहत सहत दुख भारे ॥
पावक बिरह, समीर स्वास, तनु-तूल मिले तुम्ह जारनिहारे।
तिन्हहि निदरि अपने हित कारन राखत नयन निपुन रखवारे ॥
जीवन कठिन, मरन की यह गति, दुसह बिपति ब्रजनाथ निवारे।
तुलसिदास यह दसा जानि जिय उचित होइ सो कहौ अलि, प्यारे ॥ 56 ॥

छपद! सुनहु बर बचन हमारे।
बिनु ब्रजनाथ ताप नयनन को कौन हरै, हरि अंतर-कारे ॥
कनक-कुंभ भरि-भरि पियूष-जल बरषत सक्र कलप-सत हारे।
कदलि सीप चातक को कारज-स्वाति बारि बिनु कोउ न सँवारे ॥
सब अँग रुचिर किसोर स्यामघन जेहिं ह्यदि-जलज बसत हरि प्यारे।

तेहि उर क्यों समात बिराट-बपु त्यों [1] महि सरित सिंधु गिरि भारे ॥
बढ्यो अति प्रेम प्रलय के बट ज्यों बिपुल जोग जल बोरि न पारे।
तुलसिदास ब्रज-बनितन को ब्रत समरथ को करि जतन निवारे ॥ 57॥

मधुप! समुझि देखहु मन माहीं।
प्रेम पियूषरूप उडुपति बिनु कैसे हो अलि! पैयत रबि पाहीं ॥
जद्यपि तुम हित लागि कहत सुनि स्रवन बचन नहीं हृदय समाहीं।
मिलहिं न पावक महँ तुषार कन जो खोजत सत कल्प सिराहीं ॥
तुम कहि रहे, हमहु पचि हारी, लोचन हठी तजत हठ नाहीं।
तुलसिदास सोइ जतन करहु कछु बारक स्याम इहाँ फिरि जाहीं ॥58॥

मोको अब नयन भए रिपु माई!
हरि-बियोग तनु तजेहि परम-सुख ए राखहिं सोइ है बरिआई ॥
बरु मन कियो बहुत हित मेरो बरहिं-बार काम दव लाई।
बरषि नीर ये तबहिं बुझावहिं स्वारथ निपुन अधिक चतुराई ॥
ज्ञान परसु दै मधुप पठायो बिरह-बेलि कैसेहु कठिनाई।

---

[^1] त्यों = सह, साथ।

सो थाक्यो बरह्यो [1] एकहि तक [2] देखत इनकी सहज सिंचाई ॥
हारत हू न हारि मानत, सखि, सठ सुभाव कंदुक की नाई।
चातक जलज मीनहुँ ते भोरे समुझत नहिं उन्हकी निठुराई ॥
ये हठ-निरत दरस लालच-बस परे जहाँ बुधि-बल न बसाई।
तुलसिदास इन्ह पर जो द्रवहिं हरि तौ पुनि मिलौं बैरु बिसराई ॥ 59॥

(राग आसावरी)

कहा भयो कपट जुआ जौ हौं हारी।
समर-धीर महाबीर पाँच-पति क्यों दैहै मोहि होन उघारी ॥
राज-समाज सभासद समरथ भीषम द्रोन धर्म-धुर-धारी।
अबला अनघ अनवसर अनुचित होति, हेरि करिहैं रखवारी ॥
यों मन गुनति दुसासन दुरजन तमक्यो तकि गहि दुहुँ कर सारी।
सकुचि गात गोवति कमठी ज्यों हहरी हृदय, बिकल भइ भारी ॥
अपनेनि को अपनो बिलोकि बल सकल आस बिस्वास बिसारी।
हाथ उठाइ अनाथनाथ सों 'पाहि पाहि प्रभु, पाहि' पुकारी ॥
तुलसी परखि प्रतीति प्रीति गति आरतपाल कृपाल मुरारी।

---

[^1] बरह्यो = बरहे में।

[^2] एकहि तक = एक ही तार, लगातार।

बसन-बेष राखी बिसेषि लखि बिरुदावलि मूरति नर-नारी ॥ 60॥

गहगह गगन दुंदुभी बाजी।

बरषि सुमन सुरगन गावत जस हरष मगन मुनि सुजन समाजी ।

सानुज सगन ससचिव सुजोधन भए मुख मलिन खाइ खल खाजी [1]।

लाज गाज उनवनि कुचाल कलि परी बजाइ कहूँ कहुँ गाजी ॥

प्रीति प्रतीति द्रुपदतनया की भली भूरि भय भभरि न भाजी।

कहि पारथ-सारथिहि सराहत गई-बहोरि गरीब-नेवाजी ॥

सिथिल-सनेह मुदित मनहीं मन बसन बीच बीच बधू बिराजी।

सभासिंधु जदुपति जय जय जनु रमा प्रगटि त्रिभुवन भरि भ्राजी ॥

जुग जुग जग साके केसव के समन कलेस कुसाज सुसाजी।

तुलसी को न होइ सुनि कीरति कृष्णकृपालु-भगति पथ राजी? ॥ 61॥

~~~~~~~~

[^1] खाजी = खाद्य, अर्थात् अपने मुँह की खाकर।
~~~~~~~~

गोस्वामी तुलसीदास

विनयपत्रिका

[हिन्दीकोश]

विनयपत्रिका

(राग बिलावल)

गाइये गनपति जगबंदन । संकर-सुवन भवानी-नंदन [1] ॥

सिद्धि-सदन, गज-बदन, बिनायक । कृपा-सिंधु सुंदर सब लायक ॥

मोदक-प्रिय, मुद-मंगल-दाता । बिद्या-बारिधि बुद्धि-बिधाता ॥

माँगत तुलसिदास कर जोरे । बसहिं रामसिय मानस मोरे ॥ 1॥

दीनदयालु दिवाकर देवा । कर मुनि मनुज सुरासुर सेवा ॥

हिम-तम-करि-केहरि करमाली [2] । दहन दोष-दुख-दुरित-रुजाली [3] ॥

कोक-कोकनद-लोक-प्रकासी । तेज-प्रताप-रूप-रस-रासी ॥

सारथि पंगु,दिब्य रथ-गामी । हरि-संकर-बिधि-मूरति स्वामी ॥

बेद पुरान प्रगट जस जागै । तुलसी राम-भगति बर माँगै ॥ 2 ॥

---

[^1] नंदन = आनंद देनेवाले।

[^2] करमाली = किरणों की माला धारण करनेवाले।

[^3] रूजाली = रोगसमूह ।

को जाँचिये संभु तजि आन?

दीनदयालु भगत आरति-हर सब प्रकार समरथ भगवान ॥

कालकूट-जुर जरत सुरासुर,निज पन लागि कियो बिषपान ।

दारुन दनुज जगत-दुखदायक जार्‌यो त्रिपुर एक ही बान ॥

जो गति अगम महामुनि दुर्लभ कहत संत स्रुति सकल पुरान ।

सोइ गति मरन-काल अपने पुर देत सदासिव सबहिं समान ॥

सेवत सुलभ उदार कलप-तरु पारबती-पति परम सुजान ।

देहु काम-रिपु राम-चरन-रति तुलसिदास कहँ कृपानिधान ॥ 3॥

(राग धनाश्री)

दानी कहुँ संकर सम नाहीं ।

दीन-दयालु दिबोई भावै जाचक सदा सोहाहीं ॥

मारि कै मार थप्यौ जग में जाकी प्रथम रेख भट माहीं ।

ता ठाकुर को रीझि निवाजिबौ कह्यौ क्यों परत मो पाहीं ॥

जोग कोटि करि जो गति हरि सों मुनि माँगत सकुचाहीं ।

बेद-बिदित तेहि पद पुरारि-पुर कीट पंतग समाहीं ॥

ईस उदार उमापति परिहरि अनत जे जाचन जाहीं ।

तुलसिदास ते मूढ़ माँगने,कबहुँ न पेट अघाहीं ॥ 4 ॥

बावरो रावरो नाह, भवानी ।

दानि बड़ो दिन [1], देत दए बिनु, बेद-बडाई भानी ॥

निज घर की बरबात बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी ।

सिव की दई संपदा देखत, श्री-सारदा सिहानी [2] ॥

जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी ।

तिन रंकन को नाक [3] सँवारत हौं आयो नकबानी [4]॥

दुख दीनता दुखी इनके दुख,जाचकता अकुलानी ।

यह अधिकार सौपिये औरहिं,भीख भली मैं जानी ॥

प्रेम-प्रसंसा-बिनय-ब्यंग-जुत सुनि बिधि की बर बानी ।

तुलसी मुदित महेस, मनहिं मन जगत-मातु मुसुकानी ॥ 5 ॥

(राग रामकली)

जाचिए गिरिजापति कासी । जासु भवन अनिमादिक दासी ॥

---

[^1] दिन = प्रतिदिन, सदा।

[^2] सिहानी = ईर्ष्या।

[^3] नाक = स्वर्ग।

[^4] नकबानी आयो = नाक में दम हो गया।

औढर-दानि [1] द्रवत पुनि थोरे । सकत न देखि दीन कर जोरे ॥

सुख-संपति,मति-सुगति सुहाई । सकल सुलभ संकर सेवकाई ॥

गये सरन आरति-कै लीन्हे [2]। निरखि निहाल निमिष महँ कीन्हे ॥

तुलसिदास जाचक जस गावै । बिमल भगति रघुपति की पावै ॥ 6॥

कस न दीन पर द्रवहु, उमाबर । दारुन-बिपति-हरन, करुनाकर ॥

बेद-पुरान कहत उदार हर । हमरि बेर कस भयो कृपिनतर ॥

कवनि भगति कीन्ही गुननिधि द्विज । ह्वै प्रसन्न दीन्हेउ सिव पद निज [3]॥

जो गति अगम महामुनि गावहिं । तव पुर कीट पतंगहु पावहिं ॥

देहु कामरिपु ! रामचरन-रति । तुलसिदास प्रभु हरहु भेद-मति ॥ 7॥

देव बड़े, दाता बड़े, संकर बड़े भोरे ।

किये दूर दुख सबनि के, जिन-जिन कर जोरे ॥

सेवा सुमिरन पूजिबो, पात आखत थोरे ।

---

[^1] औढर दानि = मन मौजी (पात्रापात्र का विचार न करनेवाले) देने वाले।

[^2] आरति-कै लीन्हे = दुःखग्रस्त।

[^3] गुणनिधि नामक ब्राह्मण ने शिव की मूर्ति पर चढ़कर मंदिर का घंटा चुराया था। शिव ने समझा कि और लोग तो पत्र पुष्प आदि चढ़ाते है, पर इसने अपने आपको हमारे अर्पण कर दिया। अतः प्रसन्न होकर उन्होंने उसे मुक्ति दे दी।

दियो जगत जहँ लगि सबै सुख गज रथ,घोरे ॥

गाँव बसत, बामदेव, मैं कबहूँ न निहोरे ।

अधिभौतिक बाधा भई, ते किंकर तोरे ॥

बेगि बोलि, बलि, बरजिए करतूति कठोरे ।

तुलसी दलि रूँध्यो चहैं सठ साखि [1] सिहोरे [2]॥ 8॥

सिव! सिव! होइ प्रसन्न करु दाया ।

करुनामय, उदार-कीरति,बलि जाउँ! हरहु निज माया ॥

जलज-नयन,गुन-अयन,मयन-रिपु,महिमा जान न कोई ।

बिनु तव कृपा राम-पद-पंकज सपनेहुँ भगति न होई ॥

ऋषय सिद्ध मुनि मनुज दनुज सुर अपर जीव जग माहीं ।

तव-पद-बिमुख न पार पाव कोउ कलप कोटि चलि जाहीं ॥

अहिभूषन, दूषन-रिपु-सेवक, देव-देव, त्रिपुरारी ।

मोह-निहार [3]-दिवाकर, संकर, सरन-सोक-भयहारी ॥

गिरिजा-मन-मानस-मराल, कासीस, मसान-निवासी ।

---

[^1] साखि = शाखी, वृक्ष।

[^2] सिहोरे = थूहर, सेंहुड़।

[^3] निहार = कुहार।

तुलसिदास हरि-चरन-कमल, हर! देहु भगति अबिनासी ॥ 9॥

(राग धनाश्री)

देव! मोहतम-तरणि, हर, रुद्र,संकरशरण,

हरण-भयशोक, लोकाभिरामं ।

बालशशि-भाल,सुविशाल लोचन-कमल,

काम-सतकोटि-लावण्य-धामं ॥

कंबु-कुंदेंदु-कर्पूर-विग्रह [1] रुचिर,

तरुण-रवि-कोटि तनु तेज भ्राजै ।

भस्म सर्वांग, अर्धांग शैलात्मजा,

व्याल-नृकपाल-माला विराजै ॥

मौलि संकुल [2] जटा-मुकुट-विद्युच्छटा,

तटिनि वर वारि हरि-चरण पूतं [3]।

श्रवण कुंडल, गरल-कंठ, करुणाकंद,

सच्चिदानंद वंदेऽवधूतं ॥

---

[^1] विग्रह = शरीर।

[^2] संकुल = भरा हुआ, छाया हुआ।

[^3] पूतं = पवित्र।

शूल-शायक पिनाकासि [1]-कर,शत्रु-वन-

दहन इव धूमध्वज [2], वृषभ-यानं ।

व्याघ्र-गज-चर्म-परिधान,विज्ञान-घन,

सिद्ध-सुर-मुनि-मनुज-सेव्यमानं ॥

तांडवित-नृत्य-पर,डमरु डिमडिम-प्रवर,

अशुभ इव भाति [3] कल्याणाराशी ।

महाकल्पांत ब्रह्मांड-मंडल-दवन,

भवन कैलास, आसीन काशी ॥

तज्ञ [4], सर्वज्ञ, यज्ञेश, अच्युत, विभो,

विश्व भवदंशसंभव [5], पुरारी ।

ब्रह्मेंद्र चंद्रार्क वरुणाग्नि वसु मरुत यम,

---

[^1] पिनाकासि = धनुष और तलवार।

[^2] धूमध्वज = अग्नि।

[^3] भाति = जान पड़ते है।

[^4] तज्ञ = तत्त्व के जानने वाले।

[^5] भवदंश-संभव = तुम्हारे अंश से पैदा हुआ।

अर्चि [1] भवदंघ्नि [2] सर्वाधिकारी ॥

अकल, निरुपाधि, निर्गुण, निरंजन [3], ब्रह्म,

कर्म-पथमेकमज निर्विकारं ।

अखिल विग्रह, उग्ररूप शिव भूपसुर,

सर्वगत, शर्व सर्वोपकारं ॥

ज्ञान, वैराग्य, धन, धर्म, कैवल्य सुख,

सुभग सौभाग्य शिव सानुकूलं ।

तदपि नर मूढ आरूढ संसार-पथ,

भ्रमत भव, विमुख-तव-पादमूलं ॥

नष्टमति, दुष्ट अति,कष्ट-रत, खेद-गत,

दास तुलसी शंभु शरण आया ।

देहि कामारि श्रीराम-पद-पंकजे

भक्ति अनवरत [4] गत-भेद-माया ॥ 10॥

---

[^1] अर्चि = पूजन करके।

[^2] भवदंघ्नि = तुम्हारे चरण।

[^3] निरंजन = माया रहित।

[^4] अनवरत = सदा।

भीषणाकार भैरव भयंकर, भूत-प्रेत-प्रमथाधिपति [1], विपति-हर्ता ।

मोह-मूषक-मार्जार, संसार-भय-हरण, तारण-तरण, करण, कर्ता ॥

अतुल बल विपुल विस्तार विग्रह गौर, अमल अति धवल धरणीधराभं।

शिरसि संकुलित-कल-कूट पिंगल जटा-पटल शत-कोटि-विद्युच्छटाभं ॥

भ्राज विबुधापगा-आप पावन परम, मौलि-मालेव शोभा-विचित्रं ।

ललित लल्लाट पर राज रजनीश कल, कलाधर,नौमि हर धनद-मित्रं ॥

इंदु-पावक-भानु-नयन,मर्दन-मयन, ज्ञान-गुण-अयन, विज्ञान-रूपं ।

रवन-गिरिजा, भवन भूधराधिप सदा, श्रवण कुंडल,वदन-छवि अनूपं ॥

चर्म-असि-शूल-धर, डमरु शर चाप कर, यान वृषभेश,करुणा-निधानं।

जरत सुर-असुर नरलोक शोकाकुलं मृदुलचित अजित कृत गरलपानं ॥

भस्म तनु-भूषणं,व्याघ्र-चर्माम्बरं, उरग-नर-मौलि-उर-मालधारी ।

डाकिनी-शाकिनी-खेचरं-भूचरं, यंत्र-मंत्र-भंजन, प्रबल कल्मकारी ॥

काल-अतिकाल [2], कलिकाल-व्यालादि-खग [3], त्रिपुर-मर्दन, भीम-कर्म भारी ।

सकल लोकान्त-कल्पान्त-शूलाग्र-कृत दिग्गजाव्यक्त-गुण नृत्यकारी॥

---

[^1] प्रमथ = महादेवजी के एक प्रकार के गण।

[^2] अतिकाल = काल के भी परे अर्थात् उसके भी काल।

[^3] व्यालादि-खग = साँप खानेवाला पक्षी, गरुड़।

पाप संताप घनघोर संसृति दीन भ्रमत जग-योनि नहिं कोपि त्राता ।

पाहि भैरव-रूप राम-रूपी रुद्र, बंधु गुरु जनक जननी विधाता ॥

यस्य गुण-गण गनति विमल-मति शारधा निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारी ।

शेष सर्वेश आसीन आनंदवन [1], प्रणत तुलसीदास त्रासहारी ॥ 11॥

सदा शंकरं, शंप्रदं, सज्जनानंददं, शैल-कन्या-वरं, परम रम्यं ।

काम-मदमोचनं, तामरस-लोचनं वामदेवं भजे भावगम्यं ॥

कंबु-कुंदेंदु-कर्पूर, गौरं, शिवं, सुंदरं, सच्चिदानंदकंदं ।

सिद्ध-सनकादि-योगींद्र वृंदारका-विष्णु-विधि-वन्द्य चरणारविंदं ॥

ब्रह्म-कुल-वल्लभं सुलभ-मति-दुर्लभं, विकट-वेषं, विभुं, वेदपारं ।

नौमि करुणाकरं गरल-गंगाधरं, निर्मलं,निर्गुणं,निर्विकारं ॥

लोकनाथं,शोक-शूल-निर्मूलिनं, शूलिनं मोह-तम-भूरि-भानुं ।

कालकालं, कलातीतमजरं, हरं, कठिन-कलिकाल-कानन-कृशानुं ॥

तज्ञमज्ञान-पाथोधि-घटसंभवं, सर्वगं, सर्वसौभाग्य-मूलं ।

प्रचुर-भव-भंजनं, प्रणत-जन-रंजनं, दास-तुलसी शरण सानुकूलं ॥ 12॥

(राग वसन्त)

---

[^1] आनंदवन = काशी।

सेवहु सिव-चरन-सरोज-रेनु । कल्यान-अखिल-प्रद कामधेनु ॥

कर्पूर-गौर, करुना-उदार । संसार-सार,भुजगेन्द्र-हार ॥

सुख-जनम-भूमि महिमा अपार । निर्गुन, गुननायक,निराकार ॥

त्रयनयन,मयन-मर्दन, महेस । अहँकार-निहार-उदित-दिनेस ॥

बर बाल-निसाकर मौलि भ्राज । त्रैलोक-सोकहर, प्रमथराज ॥

जिन कहँ बिधि सुगति न लिखी भाल । तिनकी गति कासीपति कृपाल ॥

उपकारी कोऽपर हर-समान? । सुर-असुर जरत कृत गरल-पान ॥

बहु कल्प उपायन करिय अनेक । बिनु संभु-कृपा नहिं भव-बिबेक ॥

विज्ञान-भवन, गिरिसुता-रमन । कह तुलसिदास मम त्रास-समन ॥ 13॥

देखो देखो बन बन्यो आजु उमाकंत । मानों देखन तुमहिं आई ऋतु बसंत॥

जनु तनुदुति चंपक-कुसुम-माल । बर बसन नील नूतन तमाल ॥

कल कदलि जंघ, पद कमल लाल । सूचति कटि केहरि, गति मराल ॥

भूषन प्रसून बहु बिबिध रंग । नूपूर किंकिनि कलरव-बिहंग ॥

कर नवल बकुल-पल्लव रसाल । श्रीफल कुच, कंचुकि लता-जाल ॥

आनन सरोज, कच मधुप-पुंज । लोचन बिसाल नव नील-कंज ॥

पिक-बचन चरित बर बर्हि कीर । सित सुमन हास,लीला समीर ॥

कह तुलसिदास सुनु सिव सुजान । उर बसि प्रपंच रचै पंचबान ॥

करि कृपा हरिय भ्रम-फंद-काम । जेहि हृदय बसहिं सुखरासि राम ॥ 14॥

(राग मारू)

दुसह-दोष-दुख-दलनि करु देवि! दाया ।

विश्व-मूलासि, जन-सानुकूलासि, शर-शूलधारिणि महामूल माया ॥

तड़ित-गर्भांग सर्वांग सुन्दर लसत, दिव्य पट, भव्य भूषण विराजै ।

बालमृग-मंजु-खंजन-विलोचनि,चन्द्रबदनि, लखि कोटि रतिमार लाजै ॥

रूप-सुख-शील-सीमासि,भीमासि,रामासि,वामासि बर बुद्धि बानी ।

छमुख-हेरंब [1]-अंबासि जगदंबिके! शंभु-जायासि जय जय भवानी ॥

चंड-भुजदंड-खंडनि बिहंडनि, महिष-मद-भंग करि अंग तोरे ।

शुम्भ निःशुम्भ-कुम्भीश रण-केशरिणि, क्रोध-बारीश बैरि-वृन्द बोरे ॥

निगम-आगम-अगम, गुर्वि तव गुण-कथन उर्विधर करै सहस जीहा ।

देहि मा! मोहि प्रण प्रेम, यह नेम निज राम घनश्याम, तुलसी पपीहा ॥ 15 ॥

(राग रामकली)

जय जय जगजननि, देवि, सुर-नर-मुनि-असुर-सेवि,

भुक्ति-मुक्ति-दायनी,भय-हरणि कालिका ।

---

[^1] हेरंब = गणेश।

मंगल-मुद-सिद्धि-सदनि, पर्वशर्वरीश [1]-बदनि,

ताप-तिमिर-तरुन-तरनि-किरणमालिका ॥

वर्म-चर्म-कर कृपान, शूल-सेल-धनुषबाण-

धरणि,दलनि दानव-दल,रन-करालिका ।

पूतना पिसाच प्रेत-डाकिनी साकिनी समेत,

भूत ग्रह बेताल खग मृगालि-जालिका ॥

जय महेश-भामिनी, अनेक-रूप-नामिनी,

समस्त लोक-स्वामिनी, हिमशैल-बालिका ।

रघुपति-पद परम प्रेम, तुलसी चह अचल नेम,

देहि ह्वै प्रसन्न, पाहि प्रणत-पालिका ॥ 16॥

जय जय भगीरथनन्दिनि, मुनि-चय [2] चकोर-चन्दिनि,

नर-नाग-बिबुध-बंदिनि, जय जह्नु बालिका ।

बिष्णु-पद-सरोजजासि, ईस-सीस पर बिभासि,

त्रिपथगासि, पुन्यरासि, पाप-छालिका ॥

बिमल बिपुल बहसि बारि, सीतल त्रयताप-हारि,

[^1] पर्वशर्वरीश = पूर्णिमा का चंद्रमा।

[^2] चय = समूह।

भँवर बर, बिभंगतर [1], तरंग-मालिका ।

पुरजन-पूजोपहार सोभित ससि-धवल धार,

भंजन भव-भार, भक्ति-कल्प-थालिका [2]॥

निज-तटबासी बिहंग, जल-थल-चर पसु पतंग,

कीट, जटिल तापस सब सरिस पालिका ।

तुलसी तव तीर तीर सुमिरत रघुबंस बीर,

बिचरत मति देहि मोह-महिष कालिका! ॥ 17॥

(राग धनाश्री)

जयति जय सुरसरी जगदखिल-पावनी ।

विष्णु-पदकंज-मकरंद इव अम्बुवर बहसि,

दुख दहसि,अघवृन्द-विद्राविनी ॥

मिलित जलपात्र-अज [3]-युक्त-हरिचरनरज,

बिरज [4]-बर-बारि त्रिपुरारि शिर-धामिनी।

---

[^1] विभंग = चंचल।

[^2] थालिका = थाला, आलबाल।

[^3] अज = ब्रह्मा।

[^4] विरज = निर्मल।

जव्हु-कन्या धन्य, पुन्यकृत सगर-सुत,

भूधर-द्रोनि [1]-विद्दरणि बहुनामिनी ॥

यक्ष गंधर्व मुनि किन्नरोरग दनुज

मनुज मज्ञहिं सुकृत-पुंज युत-कामिनी ।

स्वर्ग-सोपान विज्ञान-ज्ञानप्रदे!

मोह-मद-मदन-पाथोज-हिम जामिनी ॥

हरित गंभीर वानीर दुहुँ तीर वर,

मध्य धारा विशद विश्व-अभिरामिनी ।

नील पर्यक कृत शयन सर्पेश जनु

सहस-सीसावली स्रोत सुर-स्वामिनी ॥

अमित-महिमा अमितरूप भूपावली-

मुकुट-मनि-वंदिते! लोकत्रयगामिनी ।

देहि रघुबीर-पद-प्रीति निर्भर [2]-मातु!

दासतुलसी त्रासहरणि भवभामिनी ॥ 18॥

(राग रामकली)

---

[^1] द्रोनि = घाटी।

[^2] निर्भर = पूर्ण।

हरति पाप त्रिबिध-ताप सुमिरत सुरसरित ।
बिलसति महि कल्प-बेलि मुद-मनोरथ-फरित ॥
सोहति ससि-धवल-धार सुधा-सलिल-भरित ।
बिमलतर तरंग लसत रघुबर के-से चरित ॥
तो बिनु जगदंब गंग! कलिजुग का करित ?
घोर भव-अपार-सिंधु तुलसी कैसे तरित ?॥ 19॥

ईस-सीस बससि, त्रिपथ लससि, नभ-पताल-धरनि ।
मुनि, सुर, नर, नाग, सिद्ध, सुजन मंगल-करनि ॥
देखत दुख-दोष-दुरित-दाह-दारिद-दरनि ।
सगर-सुवन साँसति-समनि, जलनिधि-जल-भरनि ॥
महिमा की अवधि करसि बहु बिधि हरि-हरनि ।
तुलसी करु बानि बिमल बिमल-बारि-बरनि ॥ 20 ॥

(राग बिलावल)

जमुना यों ज्यों ज्यों लागी बाढ़न ।
त्यों त्यों सुकृत-सुभट कलि भूपहिं निदरि लगे बहि [1] काढ़न ॥

---

[^1] बहि = बहिः, बाहर।

ज्यों ज्यों जल मलीन त्यों त्यों जमगन मुख मलीन लहै आढ़ [1] न ।

तुलसिदास जगदघ [2] जवास ज्यों अनघ-मेघ लागे डाढ़न ॥ 21॥

(राग भैरव)

सेइय सहित सनेह देह-भरि कामधेनु कलि कासी ।

समनि-सोक-संताप-पाप-रुज,सकल-सुमंगल-रासी ॥

मरजादा चहुँ ओर चरन बर सेवत सुरपुर-बासी ।

तीरथ सर सुभ अंग, रोम सिवलिंग अमित अबिनासी ॥

अंतरअयन [3] अयन [4] भल, थन फल, बच्छ बेद-बिस्वासी ।

गल कंबल बरुना बिभाति जनु लूम लसति सरितासी [5]॥

दंडपानि भैरव बिषान, मलरुचि खलगन- यदा-सी ।

---

[^1] आढ़ = ओट।

[^2] जगदघ = जगद् + अघ।

[^3] अंतर-अयन = अंतर्गृही।

[^4] अयन = आयन, दुग्धकोश।

[^5] सरितासी = सरिता + असी।

लोलदिनेस [1] त्रिलोचन [2] लोचन, करनघंट [3] घंटा सी ॥

मनिकर्निका-बदन-ससि सुंदर,सुरसरि मुख-सुषमा-सी ।

स्वारथ-परमारथ-परिपूरन पंचकोस महिमा सी ॥

बिस्वनाथ पालक कृपालु चित, लालति नित गिरिजा-सी ।

सिद्ध सची सारद पूजहिं, मन जोगवति रहति रमा सी ॥

पंचाच्छरी प्रान, मुद माधव [4], गब्य सुपंचनदा [5] सी ।

ब्रह्म जीव सम राम नाम जुग आखर-बिस्व-बिकासी ॥

चारितु [6] चरति करम कुकरम कर मरत जीवगन घासी ।

लहत परमपद पय पावन जेहि, चहत प्रपंच-उदासी ॥

कहत पुरान रची केसव निज कर-करतूति कला-सी ।

तुलसी बसि हरपुरी राम जपु जो भयो चहै सुपासी ॥ 22॥

---

[^1] लोलदिनेस = लोलार्फ (एक कुंड)

[^2] त्रिलोचन = एक स्थान।

[^3] करनघंट = करनघंटा।

[^4] माधव = बिंदुमाधव।

[^5] पंचनदा = पंचगंगा।

[^6] चारितु = आरा।

(राग बसन्त)

सब सोच-बिमोचन चित्रकूट । कलिहरन, करन-कल्यान बूट [1]॥

सुचि अवनि सुहावनि आलबाल । कानन बिचित्र, बारी [2] बिसाल ॥

मंदाकिनि-मालिनि सदा सींच । बर-बारि, बिषम नर नारि नीच ॥

साखा, सुसृंग,भूरुह सुपात । निरझर मधु, बर मृदु मलय-बात ॥

सुक-पिक-मधुकर-मुनिबर-बिहारु । साधन-प्रसून, फल-चारि चारु ॥

भव-घोरघाम-हर सुखद छाँह । थप्यो थिर प्रभाव जानकी-नाह ॥

साधक-सुपथिक बडे भाग पाइ । पावत अनेक अभिमत अघाइ ॥

रस एक,रहित-गुन-कर्म-काल । सिय राम लषन पालक कृपाल ॥

तुलसी जो राम पद चहिय प्रेम । सेइय गिरि करि निरुपाधि नेम ॥ 23॥

(राग कान्हरा)

अब चित चेति चित्रकूटहि चलु ।

कोपित कलि, लोपित मंगल-मगु, बिलसत बढ़त मोह-माया-मलु ॥

भूमि बिलोकु राम-पद-अंकित, बन बिलोकु रघुबर-बिहार-थलु ।

सैल-सृंग भवभंग-हेतु लखु, दलन कपट-पाखंड-दंभ-डलु ॥

---

[^1] बूट = वृक्ष।

[^2] बारी = बारी, बगीचा।

जहँ जनमे जग-जनक जगतपति बिधि हरि हर परिहरि प्रपंच छलु ।

सकृत प्रबेस करत जेहि आस्रम बिगत-बिषाद भए पारथ नलु ॥

न करु बिलंब, बिचारु चारु मति, बरष पाछिले सम अगिलो पलु ।

मंत्र सो जाइ जपहि जो जपि भे अजर अमर हर अँचइ हलाहलु ॥

राम-नाम-जप-जाग करत नित, मज्ञत पय [1] पावन पीवत जलु ।

करिहैं राम भावतो मन को, सुख-साधन अनयास महा फलु ॥

कामदमन, कामता-कल्पतरु सो जुग-जुग जागत जगतीतलु ।

तुलसी तोहि बिसेष बूझिए एक प्रतीति, प्रीति, एकै बलु ॥ 24॥

(राग धनाश्री)

जयति अंजनी-गर्भ-अंभोधि-संभूत-विधु विबुध-कुल-कैरवानंदकारी ।

केसरी-चारु-लोचन चकोरक-सुखद, लोकगन-शोक-संतापहारी ॥

जयति जय बालकपि-केलि-कौतुक-उदित-चंडकर-मंडल[2]-ग्रासकर्त्ता।

राहु-रवि-शक्र-पवि-गर्व-खर्वीकरन, सरन भयहरण, जय भुवन-भर्ता ॥

जयति रनधीर रघुवीर-हित देवमनि रुद्र अवतार संसार-पाता [3]।

---

[^1] पय = पयस्विनी।

[^2] चंडकर-मंडल = सूर्यमंडल।

[^3] संसारपाता = संसार की रक्षा करनेवाला।

विप्र-सुर-सिद्ध-मुनि-आशिषाकार-वपुष विमल-गुन-बुद्धि-वारिधि विधाता ॥

जयति सुग्रीव-सिच्छादि-रच्छन-निपुन, बालि-बलशालि-बध-मुख्य-हेतू ।

जलधि-लंघन सिंह, सिंहिंका-मद-मथन, रजनिचर-नगर-उत्पात-केतू॥

जयति भूनन्दिनी-सोच-मोचन, बिपिन-दलन घननादवस-बिगतसंका ।

लूमलीला-अनल-ज्वालमालाकुलित, होलिकाकरण लंकेस-लंका ॥

जयति सौमित्र रघुनंदनानंदकर, रिच्छ-कपि-कटक-संघट-बिधाई [1]।

बद्ध-वारिधि-सेतु, अमर-मंगल-हेतु, भानुकुलकेतु-रन-विजयदाई ॥

जयति जय वज्रतनु, दसन, नख, मुख बिकट, चंड-भुजदंड, तरु-सैल-पानी ।

समर-तैलिक-यंत्र तिल-तमीचर-निकर पेरि डारे सुभट घालि घानी ॥

जयति दसकंठ-घटकरन[2]-बारिद-नाद-कदन[3]-कारन कालनेमि-हंता ।

अघट-घटना-सुघट, सुघट-बिघटन बिकट, भूमि-पाताल-जल-गगन-गंता ॥

जयति विस्ब-विख्यात बानैत, बिरुदावली, बिदुष बरनत बेद बिमल-बानी ।

दास तुलसी-त्रास-समन सीतारमन-संग सोभित राम राजधानी ॥ 25॥

जयति मर्लटाधीस मृगराज-बिक्रम महादेव मुद-मंगलालय कपाली ।

---

[^1] संघट-बिधाई = एकत्र करनेवाला।

[^2] घटकरन = कुंभकर्ण।

[^3] कदन = मरण, विनाश।

मोह-मद-कोह-कामादि-खल-संकुल-घोर-संसार-निशि किरनमाली॥

जयति लसदंजनादितिज कपि-केसरी-कश्यप-प्रभव-जगदार्तिहर्ता ।

लोक-लोकप-कोक-कोकनद-सोकहर-हंस [1] हनुमान कल्यानकर्ता ॥

जयति सुबिसाल बिकराल-बिग्रह, बज्रसार सर्वांग भुजदंड भारी ।

कुलिस नख दसन बर, लसति बालधि [2] बृहद्बैरि-सस्त्रास्त्रधर कुधरधारी ॥

जयति जानकी-शोच-संताप-मोचन,रामलक्ष्मिमणानंद-बारिज-बिकासी।

कीस-कौतुक-केलि-लूम-लंका-दहन,दलन कानन तरुण तेजरासी ॥

जयति पाथोधि-पाषाण-जलयान-कर,यातुधान-प्रचुर-हरष-हाता ।

दुष्ट-रावण-कुंभकर्ण-पाकारिजित्[3]-मर्मभित्[4]-कर्म-परिपाक-दाता ॥

जयति भुवननैकभूषण, विभीषण-वरद-बिहित कृत, राम-संग्राम साका ।

जयति पर-यत्रंमंत्राभिचार-प्रसन, कारमनि-कूट-कृत्यादि-हंता ।

शाकिनी-डाकिनी-पूतना-प्रेत-बैताल-भूत-प्रमथ-यूथ-यंता ॥

पुष्पकारूढ़-सौमित्रि-सीता-सहित-भानु-कुलभानु-कीरति-पताका ॥

---

[^1] हंस = सूर्य।

[^2] बालधि = पूँछ।

[^3] पाकारिजित् = इंद्रजीत (मेघनाथ)।

[^4] मर्मभित् = मर्मस्थानों को भेदनेवाला।

जयति वेदान्तबिद बिबिध-बिद्या-बिशद-बेद-बेदांग-बिद्, ब्रह्मवादी ।

ज्ञान-बैराग्य-बिज्ञान-भाजन विभो! बिमल गुण गनत शुक नारदादी ॥

जयति काल-गुन-कर्म-माया-मथन, निश्चल-ज्ञान-व्रत, सत्यरत, धर्म्मचारी ।

सिद्ध-सुरवृंद-जोगींद्र-सेवति सदा दास-तुलसी प्रणत भय-तमारी ॥ 26॥

जयति मंगलागार, संसारभारापहर, बानराकार, बिग्रह पुरारी ।

राम-रोषानल-ज्वालमाला-मिस-ध्वांतचर[1]-सलभ[2]-संहारकारी ॥

जयति मरुदंजनामोद-मंदिर, नतग्रीव[3]-सुग्रीव-दुखःखैक-बंधो ।

यातुधानोद्धत-क्रुद्ध-कालाग्निहर,सिद्ध-सुर-सज्जनानंद-सिंधो ॥

जयति रुद्राग्रणी, बिश्व-बिद्याग्रणी, बिश्वबिख्यात-भट-चक्रवर्ती ।

सामगाताग्रणी, कामजेताग्रणी, रामहित, रामभक्तानुवर्ती ॥

जयति संग्रामजय, रामसंदेसहर, कौशला-कुशल-कल्याण-भाखी ।

राम-विरहार्क-संतप्त भरतादि-नरनारि-शीतलकरन कल्पसाखी [4]॥

---

[^1] ध्वांतचर = निश्चर।

[^2] सलभ = फतिंगा।

[^3] नतग्रीव = नीची गर्दनवाले।

[^4] कल्पसाखी = कल्पवृक्ष।

जयति सिंहासनासीन सीतारमन निरखि निर्भर[5]-हरष-नृत्यकारी ।

राम सम्राज सोभा-सहित सर्वदा तुलसिमानस-रामपुर-बिहारी ॥ 27॥

जयति बात-संजात, बिख्यात-बिक्रम, बृहद्बाहु, बलबिपुल, बालधिबिसाला ।

जातरूपाचलाकार[2]-बिग्रह लसत-लोम-बिद्युल्लता-ज्वालमाला ॥

जयति बालार्क बर-बदन, पिंगल नयन, कपिस[3]-कर्कस-जटाजूटधारी ।

बिकट भ्रुकुटी, बज्र दसन नख, वैरि-मदमत्त-कुंजर-पुंज-कुंजरारी !॥

जयति भीमार्जुन-ब्यालसूदन[4]-गर्बहर, धनंजय-रथ-त्राण-केतू ।

भीष्म-द्रोन-करनादि-पालित कालदृक सुयोधन-चमू-निधन-हेतू ॥

जयति गतराज-दातार, हरतार संसार-संकट, दनुज-दर्पहारी ।

ईति अति भीति-ग्रह-प्रेत-चौरानल-ब्याधिबाधा समन घोर मारी ॥

जयति निगमागम व्याकरण-करलिपि[5], काव्य-कौतुक-कला-कोटि-सिंधो ।

---

[^5] निर्भर = भरा।

[^2] जातरूपाचल = सोने का पर्वत।

[^3] कपिस = भूरा।

[^4] ब्यालसूदन = गरुड़।

[^5] करलिपि = लेखक।

सामगायक, भक्त-काम-दायक, बामदेव-श्रीराम-प्रिय-प्रेम बंधो ॥

जयति धर्मांशु[1]-संदग्ध संपाति-नवपच्क्ष-लोचन-दिव्य-देह-दाता ।

कालकलि-पाप-संताप-संकुल सदा-प्रणत तुलसीदास-तात-माता ॥ 28॥

जयति निर्भरानंद[2]-संदोह कपिकेसरी केसरी-सुवन भुवनैकभर्ता ।

दिव्य-भूम्यंजना-मंजुलाकर-मणे [3],भक्त-संताप-चिंतापहर्ता ॥

जयति धमार्थ-कामापवर्गद विभो! ब्रह्मलोकादि-बैभव-बिरागी ।

बचन-मानस-कर्म सत्य-धर्मव्रती जानकीनाथ-चरणानुरागी ॥

जयति बिहगेस-बल-बुद्धि-बेगाति-मद-मथन, मनमथ-मथन, ऊर्ध्वरेता [4]।

महानाटक-निपुन, कोटि-कबिकुल-तिलक, गानगुण-गर्ब-गंधर्व-जेता ॥

जयति मंदोदरी-केस-कर्षन, विद्यमान दसकंठ भट-मुकुट मानी ।

---

[^1] धर्मांशु = सूर्य।

[^2] निर्भरानंद = पूर्णानंद।

[^3] भूम्यंजना-मंजुलाकर-मणे = (भूमि + अंजना + मंजुल + आकार + मणि) अंजनारूपी भूमि की सुंदर खानि के रत्न।

[^4] ऊर्ध्वरेता = जिसका वीर्य च्युत न हुआ हो।

भूमिजा[1]-दुःख-संजात[2]-रोषांतकृत [3] जातनाजंतु[4]-कृत-जातुधानी ॥

जयति रामायण श्रवण-संजात-रोमांच-लोचन सजल-सिथिल-वाणी ।

रामपदपद्म-मकरंद-मधुकर पाहि! दास-तुलसी-सरण सूलपाणी ॥ 29॥

(राग सारंग)

जाके गति है श्री हनुमान की ।

ताकी पैज पूजि आई यह रेखा कुलिस पषान की ॥

अघटित-घटन, सुघट-बिघटन, ऐसी बिरुदावलि नहिं आन की ।

सुमिरत संकट-सोच-बिमोचन मूरति मोद-निधान की ॥

तापर सानुकूल गिरिजा, हर, लषन, राम अरु जानकी ।

तुलसी कपि की कृपा-बिलोकनि खानि सकल कल्यान की ॥ 30॥

(राग गौरी)

---

[^1] भूमिजा = सीता।

[^2] संजात = उत्पन्न।

[^3] अंतकृत = यमराज।

[^4] जातनाजंतु = वह जंतु जो मरणकाल का कष्ट-भोग रहा हो।

ताकिहै तमकि ताकी ओर को ?।

जाके है सब भाँति भरोसो कपि केसरी-किसोर को ॥

जन-रंजन, अरिगन-गंजन, मुख-भंजन खल बरजोर को ।

बेद पुरान प्रगट पुरुषारथ, सकल सुभट-सिरमोर को ॥

उथपे-थपन [1], थपे उथपन पन बिबुधबृंद-बदिछोर [2] को ।

जलधि लंघि, दहि लंक प्रबल-बल-दलन निसाचर घोर को ॥

जाको बालबिनोद समुझि जिय डरत दिवाकर भोर को ।

जाकी चिबुक-चोट चूरन किय रद-मद [] कुलिस कठोर को ॥

लोकपाल अनुकूल बिलोकिबो चहत बिलोचन-कोर को ।

सदा अभय जय-मुद-मंगलमय जो सेवक रनरोर [3] को ॥

भगत-कामतरु नाम राम परिपूरन चंद चकोर को ।

तुलसी फल चारो करतल, जस गावत गई-बहोर [4] को ॥ 31॥

(राग बिलावल)

---

[^1] उथपे-थपन = उखड़े हुए को स्थापति करनेवाले।

[^2] बदिछोर = बंदीखाने से छोड़नेवाले।

[^3] रनरोर = रण में विजयी।

[^4] गई-बहोर = गई हुई वस्तु को पुनः लौटनेवाले।

ऐसी तोही न बूझिए [1] हनुमान हठीले ।

साहेब कहूँ न राम से, तो से न वसीले [2]॥

तेरे देखत सिंह को सिसु-मेंढक लीले ।

जानत हौं कलि तेरेऊ मन गुनगन कीले ॥

हाँक सुनत दसकंध के भए बंधन ढीले ।

सो बल गयो किधौं भए अब गर्ब-गहीले [3]॥

सेवक को परदा फटै, तू समरथ सी ले ।

अधिक आपु तें आपुनो सुनि मान सही ले ॥

साँसति तुलसीदास की सुनि सुजस तुही ले ।

तिहूँ काल तिनको भलो जे राम-रँगीले ॥ 32॥

समरथ सुवन समीर के रघुबीर पियारे ।

मोपर कीबे [4] तोहि जो करि लेहि भिया [5], रे ॥

---

[^1] बूझिये = चाहिए।

[^2] वसीले = जरिये, द्वारा।

[^3] गर्ब-गहीले = घमंडी।

[^4] कीवे = करना।

[^5] भिया = भैया (संबोधन)।

तेरी महिमा ते चलै चिंचिनी-चिया [1] रे ।

अँधियारो मेरी बार क्यो? त्रिभुवन-उजियारे ॥

केहि करनी जन जानि कै सनमान किया रे ।

केहि अघ अवगुन आपनो कर डारि दिया [2] रे ॥

खायो खोंची [3] माँगि मैं तेरो नाम लिया रे ।

तेरे बल, बलि, आजु लौं जग जागि [4] जिया रे ॥

जो तोसों होतौ फिरौं मेरो हेतु हिया रे ।

तौ कयों बदन देखावतो कहि बचन इया [5] रे ॥

तो सो ज्ञान-निधान को सर्बज्ञ विया [6] रे ?।

हौं समुझत साँई-द्रोहि की गति छार-छिया [7] रे ॥

तेरे स्वामी राम से, स्वामिनी सिया रे ।

---

[^1] चिंचिनी-चिया = इमली की बाज।

[^2] डारि दिया = त्याग किया।

[^3] खोंची = भिक्षा (बाजार की)।

[^4] जागि = प्रसिद्ध होकर।

[^5] इया = यह।

[^6] विया = दूसरा।

[^7] छिपा = गलीज।

तहँ तुलसी के कौन को काको तकिया [1] रे ?॥ 33॥

अति आरत, अति स्वारथी, अति दीन दुखारी ।

इनको बिलगु न मानिए [2] बोलहिं न बिचारी ॥

लोक-रीति देखी सुनी, व्याकुल नर नारी ।

अति बरषे अनबरषे हूँ देहिं दैवहिं गारी ॥

ना कहि आयो नाथ सों साँसति भय भारी ।

“कहि आयो, कीबी छमा निज ओर निहारी” ॥

समय साँकरे सुमिरिए समरथ हितकारी ।

सो सब बिधि ऊपर करै [3] अपराध बिसारी ॥

बिगरी सेवक की सदा साहेबहिं सुधारी ।

तुलसी पर तेरी कृपा निरुपाधि निरारी [4]॥ 34॥

कटु कहिए गाढ़े परे सुनु समुझि सुसाईं ।

करहिं अनभले को भलो आपनी भलाई ॥

---

[^1] तकिया = शरण, आश्रय।

[^2] बिलगु न मानिए = बुरा न मानिए।

[^3] ऊपर करे = पक्ष ग्रहण करता है, सहायता करता है।

[^4] निरारी = निराली, अनोखी।

समरथ सुभ जो पावई, बीर, पीर पराई ।

ताहि तकैं सब ज्यों नदी बारिधि न बुलाई ॥

अपने अपने को भलो चहैं लोग लुगाई ।

भावै जो जेहिं तेहिं भजै सुभ असुभ सगाई [1]॥

बाँह बोलि [2] दै थापिए जो निज बरिआई ।

बिन सेवा सों पालिए सेवक की नाईं ॥

चूक चपलता मेरियै, तू बड़ो बड़ाई ।

होत आदरे ढीठ हौं अति नीच निचाई ॥

बंदिछोर बिरुदावली निगमागम गाई ।

नीको तुलसीदास को तेरि ही निकाई ॥ 35॥

(राम गौरी)

मंगल-मूरति मारुत-नंदन । सकल-अमंगल-मूल-निकंदन ॥

पवनतनय संतन हितकारी । हृदय बिराजत अवध-बिहारी ॥

मातु-पिता गुरु गनपति सारद । सिवा समेत संभु सुक नारद ॥

चरन बंदि बिनवौं सब काहू । देहु रामपद-नेह-निबाहू ॥

---

[^1] सगाई = संबंध।

[^2] बाँह बोलि = भुजबल का भरोसा।

बंदौं राम लषन बैदेही । जे तुलसी के परम सनेही ॥ 36॥

(राग दंडक)

लाल लाडिले लषन हित हौ जन के ।

सुमिरे संकटहारी, सकल सुमंगलकारी ,

पालक कृपालु आपने पन के ॥

धरनी-धरनहार भंजन-भुवनभार ,

अवतार साहसी सहसफन के ॥

सत्य-संघ, सत्यब्रत, परम-धरमरत ,

निरमल करम बचन अरु मन के ॥

रूपके निधान, धनु-बान पानि,

तून कटि, महाबीर बिदित, जितैया बड़े रनके ॥

सेवक-सुख-दायक, सबल, सब लायक,

गायक जानकीनाथ-गुनगन के ॥

भावते भरत के, सुमित्रा-सीता के दुलारे ,

चातक चतुर राम स्याम-घन के ॥

बल्लभ उर्मिला के, सुलभ सनेहबस ,

धनी धन तुलसी से निरधन के ॥ 37॥

(राग धनाश्री)

जयति लक्ष्मणानंत भगवंत भूधर [1],

भुजग-राज, भुवनेश, भूभारहारी ।

प्रलय-पावक-महाज्वाल-माला-वमन [2],

शमन-संताप लीलावतारी ॥

जयति दाशरथि, समर-समरथ,

सुमित्रा-सुवन, शत्रुसूदन, राम-भरत-बंधो ।

चारु-चंपक-बरन, वसन-भूषन-धरन,

दिव्यतर, भव्य, लावण्य-सिधों ॥

जयति गाधेय[3]-गौतम-जनक-सुख-जनक,

विश्व-कंटक-कुटिल-कोटि-हंता ।

---

[^1] भूधर = पृथ्वी को धारण करनेवाले।

[^2] ज्वाल-माला-वमन = लपट का समूह मुँह से निकालनेवाले।

[^3] गाधेय = विश्वामित्र।

बचन-चय-चातुरी-परसुधर-गर्बहर,

सर्वदा रामभद्रानुगंता ॥

जयति सीतेस-सेवासरस , बिषयरस-

निरस, निरुपाधि धुरधर्मधारी ।

बिपुलबलमूल, शार्दूलविक्रम, जलद-

नाद-मर्दन, महावीर भारी ॥

जयति संग्राम-सागर-भयंकर-तरण,

रामहित-करण-बरबाहु-सेतू ।

उर्मिला-रवण, कल्याण-मंगल-भवन,

दासतुलसी-दोष-दवन-हेतू ॥ 38॥

जयति भूमिजा-रमण-पदकंज-मकरंद-रस-

रसिक-मधुकर-भरत भूरिभागी ।

भुवन-भूषण-भानुवंश-भूषण, भूमिपाल-

मनि रामचंद्रानुरागी ॥

जयति विबुधेश[1]-धनदादि-दुर्लभ

महा-राज-सम्राज-सुख-प्रद-बिरागी ।

खंग-धाराव्रती-प्रथमरेखा प्रकट

शुद्धमति-युवति पति-प्रेम-पागी ॥

जयति निरुपाधि-भक्तिभाव-यंत्रित[2]-हृदय ,

बंधु-हित चित्रकुटाद्रि-चारी ।

पादुका-नृप-सचिव पुहुमि-पालक परम

धीर गंभीर बर बीर भारी ॥

जयति संजीवनी-समय-संकट हनूमान

धनु बान महिमा बखानी ।

बाहुबल बिपुल परमिति [3] पराक्रम अतुल,

गूढ गति जानकी-जानि जानी ॥

---

[^1] बिबुधेश = इंद्र।

[^2] यंत्रित = ताला लगा हुआ।

[^3] परमिती = हद से परे, बेहद।

जयति रण-अजिर गन्धर्व-गन-गर्वहर [4],
फेरि किये रामगुनगाथ-गाता ।
मांडवी-चित्त-चातक-नवांबुद-बरण,
सरन तुलसीदास अभय दाता ॥ 39॥

जयति जय सत्रु-करि-केसरी शत्रुहन,
शत्रु-तम-तुहिनहर-किरनकेतू [2]।
देव! महिदेव-महि-धेनु-सेवक सुजन-
सिद्धि-मुनि-सकल-कल्यान-हेतू ॥

जयति सर्वांगसुदंर सुमित्रा-सुवन,
भुवन-विख्यात-भरतानुगामी ।
वर्मचर्मासी[3]-धनु-बाण-तूणीर-धर
शत्रु-संकट-समय यत्प्रनामी [4]॥

---

[^4] गन्धर्व-गन-गर्वहर = भरत जी के मामा युधाजित् को जब गंधर्वों ने तंग किया था वह उनकी सहायता के लिए भरत जी गए थे।

[^2] किरनकेतु = सूर्य।

[^3] वर्म, चर्म, असि = कवच, ढाल और तलवार।

[^4] यत्प्रनामी = जो प्रणाम करनेवाले है उनको।

जयति लवणाम्बुनिधि[1]-कुंभसंभव [2],

महा-दनुज-दुर्जन-दवन, दुरितहारि ।

लक्ष्मणानुज, भरत-राम-सीता-चरन-

रेनु-भूषित-भाल-तिलकधारी ॥

जयति श्रुतिकीर्ति[3]-वल्लभ सुदुर्लभ सुलभ

नमत नर्मद [4] भुक्ति-मुक्तिदाता ।

दासतुलसी चरन-सरन सीदत [5], विभो!

पाहि! दीनार्त्त-संताप-हाता ॥ 40॥

बैजनाथ की सटीक विनयपत्रिका में 41 वाँ पद निम्नलिखित है, जो अन्य प्रतियों में नहीं है –

---

[^1] लवणाम्बुनिधि = लवणासुर रूपी समुद्र।

[^2] कुंभसंभव = अगस्त्य मुनि, जिन्होंने समुद्र को सोख लिया था।

[^3] श्रुतिकीर्ति = शत्रुघ्न की स्त्री।

[^4] नर्मद = सुखदाता।

[^5] सीदत = दुःख पाता है।

जयति श्रीजानकी भानुकुल-भानु की प्राणप्रिय-वल्लभे तरणि भूपे ?

राम-आनंद-चैतन्यघन-विग्रहा-शक्ति अह्लादिनी साररूपे ॥

चित्त चरण चिंतनि जेहि धरत ही दूर हो काम भय कोह मद मोह माया।

रुद्र बिधि विष्णु सुरसिद्ध बंदित पदे जयति सर्वेश्वरी रामजाया ॥

कर्म जप जोग विज्ञान बैराग्य लहि मोक्ष हित योगि जे प्रभु मनावैं ।

जयति बैदेहि सब-शक्ति-शिरभूषणे ते न तब दृष्टि बिन कबहुँ पावैं ।

कोटि ब्रह्मांड जगदीश को ईश जेहि निगम मुनि बुद्धि ते अगम गावैं ।

विदित यह गाथ अहदान कुलमाथ सो नाथ तब दान लै हाथ न आवैं ॥

दिव्य शत वर्ष जप ध्यान जब शि धन्यो राम गुरुरूप मिले पथ बताओ।

चितै हित लीन लखि कृपा कीनी तबै, देबि, अति दुर्लभहिं दरस पायो॥

जयति श्री स्वामिनी सीय शुभनामिनी दामिनी कोटि जिन देह दरसै ।

इंदिरा आदि दै मत्त-गजगामिनी देव-भामिनी सबै पाँव परसैं ॥

दुखित लखि भक्त बिन दरस निज रूप तप यजन यतन ते सुलभ नाहीं।

कृपा करि पूर्ण नवकंज-दल-लोचना प्रकट भइ जनकनृप अजिर माहीं।

रमित तब बिपिन प्रियप्रेम प्रगटन करन लंकपति ब्याज कछु खेल ठान्यो।

गोपिका कृष्ण तब तुल्य बहु यतन करि तोहि मिलि ईश आनंद मान्यो॥

हीन तब सुमुख के संग रहि रंक सो बिमुख जो देव नहिं नाह नेरो।

अधम उद्धरणि यह जानि गहि शरण तब दास तुलसी भयो आय चेरो ॥41॥

(राग केदारा)

कबहुँक अंब अवसर पाइ ।

मेरिऔ सुधि द्याइबी [1] कछु करुन-कथा चलाइ ॥

दीन सब अँगहीन छीन मलीन अघी अघाइ [2]।

नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास [3] कहाइ ॥

बूझिहैं ‘सो है कौन’? कहिबी नाम दसा जनाइ ।

सुनत राम-कृपालु के मेरी बिगरिऔ बनि जाइ ॥

जानकी जगजननि जनकी किए बचन सहाइ [4]।

तरै तुलसीदास भव तव नाथ-गुन-गन गाइ ॥ 41॥

कबहुँ समय सुधि द्ययाबी मेरी मातु जानकी ।

जन कहाइ नाम लेत हौं किए पन चातक ज्यों, प्यास-प्रेम-पान की ॥

सरल-प्रकृति आपु जानिए करुना-निधान की ।

---

[^1] द्याइबी = देना, दिखाइयेगा।

[^2] अघाइ = भरपेट ।

[^3] प्रभुदासीदास = तुलसी।

[^4] बचन सहाइ किए = वचनों द्वारा की गई सहायता से।

निजगुन अरि-कृत अनहितौ दास-दोष सुरति चित रहति न दिए दान की ॥

बानि बिसारनसील [1] है मानद अमान की ।

तुलसीदास न बिसारिए मन क्रम बचन जाके सपनेहुँ गति न आन की॥42॥

जयति सच्चिदव्यापकानंद यद्ब्रह्म-विग्रह-व्यक्त लीलावतारी ।

विकल ब्रह्मादि,सुर,सिद्ध,संकोचवश,विमल गुण-गेह नर-देह-धारी ॥

जयति कोशलाधीश[2]-कल्याण, कोशलसुता [3] कुशल, कैवल्य-फल चारु चारी ।

बेद-बोधित कर्म-धर्म-धरनी-धेनु-बिप्र-सेवक साधु-मोदकारी ॥

जयति ऋषि-मख-पाल,शमन सज्जन-साल, शापवश मुनिवधू-पापहारी ।

भंजि भवचाप, दलि दाप भूपावली, सहित भृगुनाथ नतमाथ भारी ॥

जयति धारमिक-धुर धीर-रघुवीर गुर-मातु-पितु-बंधु-वचनानुसारी ।

चित्रकूटाद्रि-विन्ध्याद्रि-दंडकविपिन-धन्यकृत, पुन्यकानन-बिहारी ॥

---

[^1] बिसारनसील = विस्मरणशील, भूलने योग्य।

[^2] कोशलाधीश = राजा दशरथ।

[^3] कोशलसुता = कौशल्या।

जयति पाकारिसुत[1]-काक-करतूति-फलदानि, खनि गर्त [2] गोपित बिराधा ।

दिव्य-देवी-वेष देखि, लखि निशिचरी जनु विडंबित करी [3] विश्वबाधा ॥

जयति खर-त्रिशिर-दूषण चतुर्दश-सहस-सुभट-मारीच-संहारकर्ता ।

गृध्र-शबरी-भक्ति-विवश करुणासिंधु, चरित-निरुपाधि, त्रिविधार्तिहर्ता ॥

जयति मद-अंध कुकबंध बधि, बालि बलशालि बधि, करन सुग्रीव राजा ।

सुभट-मर्कट-भालु-कटक-संघट [4] सजत, नमत, पद रावणानुज निवाजा ॥

जयति पाथोधि-कृत-सेतु कौतुक हेतु, काल-मन अगम लई ललकि लंका ।

सकुल सानुज सदल दलित दशकंठ रण, लोक-लोकप किए रहित-शंका ॥

जयति सौमित्रि-सीता-सचिव-सहित चले पुष्पकारुढ निज राजधानी ।

दासतुलसी मुदित अवधबासी सकल, राम भे भूप, वैदेहि रानी ॥ 43॥

जयति राज-राजेंद्र राजीवलोचन,

---

[^1] पाकारिसुत = इंद्र का पुत्र जयंत।

[^2] गर्त = गड्ढा।

[^3] बिडंबित करी = लज्जित की।

[^4] संघट = समूह।

राम-नाम-कलि-कामतरु, साम-शाली [5]।

अनय[2]-अंभोधि-कुंभज, निशाचर-निकर-

तिमिर-घनघोर-खर-किरणमाली [3]॥

जयति मुनि-देव नरदेव दसरत्थ के ,

देव-मुनि-वंद्य किए अवध-बासी ।

लोक नायक-कोक-शोक-संकट-शमन,

भानुकुल-कमल कानन-हिकासी ॥

जयति शृंगार-सर तामरस-दाम द्युति-

देह, गुणगेह, विश्वोपकारी ॥

सकल सौभाग्य-सौंदर्य-सुषमारुप,

मनोभव [4] कोटि-गर्वापहारी ॥

जयति सुभग सारंग-सु-निखंग-सायक-सक्ति,

---

[^5] सामशाली = साम नीतिवाले।

[^2] अनय = अनीति।

[^3] किरणमाली = सूर्य।

[^4] मनोगत = कामदेव।

चारु-चर्मासि-बर-वर्म-धारी ।

धर्मधुर धीर रघुवीर भुजबल अतुल,

हेलया [1] दलित भूभार भारी ॥

जयति कलधौत[2]-मणि-मुकुट,कुंडल,तिलक-

झलक-भलि-भाल बिधु-बदन-शोभा ।

दिव्य-भूषन-बसन पीत, उपवीत,

किए ध्यान कल्याण-भाजन न को भा ॥

जयति भरत-सौमित्रि-शत्रुघ्न-सेवित सुमुख,

सचिव-सेवक-सुखद-सर्वदाता ॥

अधम आरत दीन पतित पातक-पीन,

सकृत [3] नतमात्र कहि पाहि पाता [4]॥

जयति जय भुवन दसचारि जस जगमगत,

---

[^1] हेलया = खेल ही में, सहज ही में।

[^2] कलधौत = सोना।

[^3] सकृत = एक बार।

[^4] पाता = रक्षक।

पुन्यमय, धन्य जय राम-राजा ।

चरित-सुरसरित कवि-मुख्य [1] गिरि निःसरित [2]

पिबत मज्जत मुदित सत समाजा ॥

जयति वर्णाश्रमाचार-पर नारि-नर,

सत्य-शम-दम-दया-दानशीला ।

विगत-दुख-दोष, संतोष सुख सर्वदा,

सुनत गावत राम-राजलीला ॥

जयति वैराग्य-विज्ञान-वारांनिधे [3]

नमत नर्मद [4] पाप-ताप-हर्ता ।

दास तुलसी चरण शरण संशय-हरण,

देहि अवलंब वैदेहि-भर्ता ॥ 44॥

(राग गौरी)

---

[^1] कविमुख्य = वाल्मीकि।

[^2] निःसरित = निकली हुई।

[^3] वाराँनिधे = समुद्र।

[^4] नर्मद = सुखदाता।

श्री रामचंद्र कृपालु भजु मन हरण भवभय दारुणं ।

नवकंज-लोचन, कंज-मुख, कर-कंज, पद-कंजारुणं ॥

कंदर्प-अगणित-अमित-छबि, नवनील-नीरज-सुंदरं ।

पट-पीत मानहु तड़ित-रुचि [1] शुचि नौमि जनक-सुता-वरं ॥

भजु दीनबंधु दिनेश दानव-दैत्य-वंश निकंदनं ।

रघुनंद आनँदकंद कोशलचंद दशरथ-नंदनं ॥

सिर मुकुट, कुंडल तिलक चारु, उदार अंग विभूषणं ।

आजानुभुज, सर-चाप-धर,संग्राम-जित-खरदूषणं ॥

इति बदत तुलसीदास संकर-सेष-मुनि-मन-रंजनं ।

मम हृदय-कंज निवास करु कामादि-खल-दल-गंजनं ॥ 45॥

(राग रामकली)

सदा राम जपु,राम जपु,राम जपु, राम जपु, राम जपु, राम मूढ मन बार-बारं ।

सकल-सौभाग्य-सुख-खानि जिय जानि, सठ! मानि बिश्वास वद वेदसारं ॥

कोशलेन्द्र नव-नीलकंजाभ तनु मदन-रिपु कंजहृद-चंचरीकं ।

जानकीरमन, सुखभवन, भुवनैक प्रभु,समर-भंजन, परम कारुनीकं ॥

---

[^1] रुचि = शोभा।

दनुज-बन भूमध्वज [2], पीन आजानु-भुजदंड-कोदंडवर चंड बानं ।

अरुन कर चरन मुख, नयन राजीव, गुन-अयन, बहु-मयन-शोभा-निधानं ॥

बासना-वृंद-कैरव-दिवाकर, काम क्रोध-मद-कंज-कानन-तुषारं ।

लोभ-अति-मत्त-नागेंद्र पंचाननं, भक्तहित-हरन-संसार-भारं ॥

केशवं, क्लेशहं,केश[2]-वंदित-पद-द्वंद्व-मंदाकिनी मूलभूतं ।

सर्वदानंद-संदोह, मोहापहं, घोर-संसार-पाथोधि-पोतं ॥

शोक-संदेह-पाथोद-पटलानिलं, पाप-पर्वत-कठिन-कुलिसरूपं ।

संतजन-कामधुक धेनु विश्रामप्रद, नाम-कलि-कलुष-भंजन अनूपं ॥

धर्म-कल्पद्रुमाराम, हरिधाम-पथि संबलं [3], मूलमिदमेव एकं [4]।

भक्ति वैराग्य विज्ञान सम दान दम नाम-आधीन साधन अनेकं ॥

तेन तप्तं हुतं दत्तमेवाखिलं, तेन सर्व कृत कर्मजालं ।

येन श्रीराम-नामामृतं पानकृतमनिशमनवद्यमवलोक्य कालं [5]॥

---

[^2] भूमध्वज = अग्नि।

[^2] केश = क + ईश = ब्रह्मा और महादेव।

[^3] पथि-संबल = मुसाफिरों के लिये कलेवा वा राह खर्च।

[^4] मूलम् इदम् इव एकम् = यही एकमात्र मूल है।

[^5] तेन तप्तं ... ... कालं = उसी ने तप, होम और सब दानकर लिए और उसी ने सब कर्म समूह कर लिए, जिसने समय को देखकर रात-दिन रामनाम-रूपी पवित्र अमृत

श्वपच खल भिल्ल यवनादि हरिलोक-गत नामबल विपुल-मति मलिन-परसी ।
त्यागि सब आस संत्रास भवपास-असि-निसित [1] हरिनाम-जपु-दासतुलसी ॥46॥

ऐसी आरती राम रघुबीर की करहि मन ।
हरन दुखद्वंद्व गोबिंद आनन्दघन ॥
अचर-चर-रूप हरि सर्बगत सर्बदा बसत, इति बासना [2] धूप दीजै ।
दीप निज-बोध [3], गत क्रोध मद मोह तम, प्रौढ अभिमान-चितबृति छीजै॥
भाव अतिसय बिसद प्रवर [4] नैवेद्य सुभ श्रीरमन परम-संतोषकारी ।
प्रेम-तांबूल, गत-शूल संसय सकल, बिपुल-भव-बासना-बीज-हारी ॥
असुभ-सुभकर्म घृत-पूर्ण दस वर्तिका [5], त्याग पावक, सतोगुन प्रकासं ।
भगति-बैराग-बिज्ञान दीपावली अर्पि नीराजनं [6] जगनिवासं ॥

का पान किया।

[^1] निसित = पैनी।

[^2] इति बासना = इस वासना की।

[^3] निज-बोध = आत्मज्ञान।

[^4] प्रवर = श्रेष्ठ।

[^5] वर्तिका = बत्ती।

बिमल-हृदि-भवन कृत सांति पर्यक सुभ-सयन विस्राम श्रीरामराया ।

क्षमा करुणा प्रमुख [1] तत्र परिचारिका, यत्र हरि तत्र नहिं भेद-माया॥

(एहि) आरती-निरत-सनकादि-श्रुति-शेष-

सिव-देव ऋषि-अखिल-मुनि-तत्वदरसी ।

करै सोइ तरै, परिहरै कामादि मल,

वदति इति अमलमति-दास तुलसी ॥47॥

हरति सब आरती [2] आरती राम की ।

दहति दुख दोष निर्मूलिनी काम की ॥

सुभग सौरभ धूप दीप बर मालिका ।

उड़त अघ-बिहँग सुनि ताल करतालिका ॥

भक्त-हृदि-भवन अज्ञान-तम-हारिनी ।

बिमल बिज्ञानमय, तेज-बिस्तारिनी ॥

मोह-मद-कोह-कलि-कंज-हिमजामिनी [3] ।

---

[^6] नीराजन = आरती, दीपदान।

[^1] प्रमुख = आदि।

[^2] आरती = आर्त्ति, दुःख, पीड़ा।

[^3] हिमजामिनी = जाड़े की रात।

मुक्ति की दूतिका, देह-दुति दामिनी ॥

प्रनत-जन-कुमुद-बन-इंदु-कर-जालिका [1]।

तुलसि अभिमान-महिषेस [2] बहु कालिका ॥ 48॥

दनुज-बन-दहन, गुन-गहन, गोविंद, नंदादि-आनंद-दाताऽबिनाशी ।

संभु सिव रुद्र संकर भयकर भीम घोर-तेजायतन क्रोध-रासी ॥

अनँत भगवंत जगदंत अंतक[3]-त्रास-समन श्रीरमन भुवनाभिरामं ।

भूधराधीश जगदीश ईसान विज्ञानघन ज्ञान-कल्यान-धामं ॥

वामनाव्यक्त पावन परावर विभो [4], प्रकट परमातमा प्रकृति-स्वामी ।

चंद्रशेखर शूलपाणि हर अनघ अज अमित अविच्छिन्न वृषभेश-गामी ॥

नीलजलदाभ तनु स्याम बहु-काम-छवि, राम राजीवलोचन कृपाला ।

कबुं-कर्पूर-वपु धवल निर्मल मौलि, जटा सुर-तटिनि, सित सुमन-माला ॥

वसन किंजल्क[5]-धर चक्र सारंग-दर-कंज-कौमोदकी अति बिशाला ।

---

[^1] जालिका = समूह।

[^2] महिषेश = महिषासुर।

[^3] अंतक = यमराज।

[^4] परावर विभो = सर्वत्र व्यापक। परावर = दूर और पास, सर्वत्र।

[^5] बिंजल्क = कमल की केसर के समान, जो पीले रंग की होती है।

मार-करि-मत्त-मृगराज त्रयनयन हर नौमि अपहरन-संसार-जाला ॥

कृष्ण करुणाभवन, दवन कालीय-खल विपुल कंसादि निर्वंशकारी ।

त्रिपुर-मद-भंगकर, मत्तगज-चर्म-धर, अन्धकोरग[1]-ग्रसन पन्नगारी ॥

ब्रह्म व्यापक अकल सकल-पुर परम हित ज्ञान-गोतीत गुण-वृत्ति[2]-हर्त्ता ।

सिंधुसुत[3]-गर्व-गिरि-वज्र, गौरीस, भव, दक्ष-मख-अखिल-विध्वंसकर्त्ता ॥

भक्तिप्रिय भक्तजन-कामधुक-धेनु हरि हरन-दुर्घट-बिकट-बिपति-भारी ।

सुखद नर्मद वरद विरज [4] अनवद्यऽखिल [5], विपिन-आनंद-वीथिन-विहारी ॥

रुचिर हरिसंकरी-नाम मंत्रावली द्वंद्वदुख-हरनि आनंदखानी ।

विष्णु-सिव-लोक-सोपान सम सर्वदा वदति तुलसीदास विसद बानी ॥ 49॥ [6]

---

[^1] अंधकोरग = अंधक दैत्य रूपी सर्प।

[^2] गुणवृत्ति = त्रिगुण व्यापार।

[^3] सिंधुसुत = जलंधर।

[^4] विरज = रजोगुण के प्रभाव से रहित।

[^5] अनवद्य = दोष से रहित।

[^6] यह पद रामभक्तों में हरिशंकरी के नाम से प्रसिद्ध है क्योंकि विष्णु और शिव के नाम साथ साथ आते गए है।

भानुकुल-कमल-रवि, कोटि-कंर्दप-छवि, काल-कलि-व्यालमिव-वैनतेयं ।

प्रबल भुजदंड-परचंड कोदंड-धर, तूनवर विसिष बलमप्रमेयं ॥

अरुन राजीवदल-नयन सुषमा अयन श्याम-तनु-कांति वर-वारिदाभं ।

तत्प-कांचन-वस्त्र, शस्त्र-विद्या-निपुन सिद्ध-सुर-सेव्य पाथोजनाभं ॥

अखिल लावन्य-गृह विश्व-विग्रह परम प्रौढ गुनगूढ़ महिमा उदारं ।

दुर्धर्ष, दुस्तर, दुर्ग [1], स्वर्ग-अपवर्ग-पति, भग्न-संसार-पादप कुठारं ॥

सापवश मुनिबधू-मुक्तकृत, विप्रहित,यज्ञ-रक्षन-दच्छ पच्छकर्ता ।

जनक-नृप-सदसि[2]-सिवचाप-भंजन, उग्र भार्गवागर्व[3]-गरिमापहर्त्ता ॥

गुरु-गिरा-गौरवामर-सुदुस्त्यज[4]-राज्य त्यक्त श्री सहित सौमित्रि-भ्राता ।

संग जनकात्मजा, मनुजमनुसृत्य [5], अज, दुष्ट-वध-निरत, त्रैलोक्यत्राता ॥

दंडकारन्य-कृत-पुन्य- पावन चरन, हरन मारीच-मायाकुरंगं ।

बालि-बल-मत्त गजराज-इव केसरी, सुहृद-सुग्रीव-दुख-रासि-भंगं [6]॥

---

[^1] दुर्ग = दुर्गम।

[^2] सदसि = सभा में।

[^3] भार्गव = परशुराम। आर्गव = पूर्णगर्व।

[^4] दुस्त्यज = कठिनता से त्यागने योग्य।

[^5] अनुसुत्य = अनुसार, नाई।

[^6] भंग = काटने के हेतु।

रिच्छ मर्कट विकट सुभट उभ्दट, समर सैल-संकास रिपु-त्रासकारी ।

बद्ध पयोधि, सुर निकर-मोचन, सकुल-दलन दससीस-भुजबीस भारी ॥

दुष्ट-विबुधारि-संघात- महि-भार-अपहरन अवतार कारन अनूपं ।

अमल अनवद्य अद्वैत निर्गुन सगुन ब्रह्म सुमिरामि नरभूप-रूपं ॥

सेष स्रुति शारदा संभु नारद सनक गनत गुन, अंत नहीं तव चरित्रं ।

सोइ राम कामारि प्रिय अवधपति सर्वदा दासतुलसी-त्रास-निधि वहित्रं [1]॥

50॥

जानकीनाथ रघुनाथ रागादि-तम-तरणि, तारुण्यतनुतेजधामं ।

सच्चिदानंद आनंदकंदाकरं विश्व-विस्राम रामाभिरामं ॥

नीलनव-वारिधर सुभग-सुभ-कांतिकर पीत-कौसेय[2]-बर-बसन-धारी ।

रत्न-हाटक-जटित मुकुट मंडित मौलि भान-सुत-सदृश उद्योतकारी ॥

स्रवन कुंडल, भाल तिलक, भूरुचिर अति,अरुन अंभोज लोचन विसालं ।

वक्त्र[3]-आलोक-त्रैलोक्य सोकापहं, मार-रिपु-हृदय-मानस-मरालं ॥

नासिका चारु, सुकपोल, द्विज वज्रद्यति, अधर बिंबोपमा, मधुर हासं ।

---

[^1] वहित्र = जहाज।

[^2] कौशेय = रेशमी।

[^3] वक्त्र = मुख।

कंठ दर [1], चिबुक बर, वचन गंभीरतर, सत्य-संकल्प सुरत्रास-नासं ॥

सुमन सुविचित्र नव तुलसिकादल-युतं मृदुल वनमाल उर भ्राजमानं ।

भ्रमत आमोदबस [2] मत्त-मधुकर-निकर मधुरतर मुखर कुर्वन्ति गानं ॥

सुभग श्रीवत्स [3] केयूर [4] कंकन-हार, किंकनी-रटनि कटि-तट रसालं ।

बाम दिसि जनकजासीन सिंहासनं कनक-मृदुवल्लित तरु-तमालं ॥

आजानु-भुजदंड, कोदंड-मंडित वाम बाहु, दक्षिण पाणि बानमेकं ।

अखिल मुनि-निकर सुरसिद्ध गंधर्व वर नमत नर नाग अवनिप अनेकं ॥

अनघ अविछिन्न सर्वज्ञ सर्वेश खलु [5] सर्वतोभद्र [6] दाताऽसमाकं [7]।

प्रणतजन-खेद-विच्छेद-विद्या-निपुन नौमि श्रीराम सौमित्रि-साकं [8]॥

---

[^1] दर = शंख।

[^2] आमोद = सुगंध।

[^3] श्रीवत्स = श्री का चिह्न।

[^4] केयूर = विजायठ।

[^5] खलु = निश्चय।

[^6] सर्वतोभद्र = सब प्रकार से कल्याण रूप।

[^7] आसमाकं = अस्माकं, हमको।

[^8] साकं = सहित।

युगल पदपद्म सुखसद्म [9] पद्मालयं, चिन्ह कुलिसादि सोभाति-भारी ।
हनुमंत-हृदि-विमल-कृत परममंदिर सदा दासतुलसी सरन-सोकहारी ॥ 51॥

कोशलाधीस जगदीस जगदेकहित अमितगुन बिपुल विस्तार-लीला ।
गायंति तव चरित सुपवित्र श्रुति सेष सुक संभु सनकादि मुनि मननसीला ॥
वारिचर-वपुषधरि, भक्त-निस्तार-पर, धरनि कृत नाव महिमातिगुर्वी [2]।
सकल यज्ञांसमय उग्र-विग्रह क्रोड [3], मर्दि दनुजेस उद्धरन उर्वी [4]॥
कमठ अति विकट तनु, कठिन पृष्ठोपरी भ्रमत मंदर कंडु-सुख [5] मुरारी ।
प्रकटकृत अमृत, गो इंदिरा, इंदु, वृंदारका-वृंद-आनंदकारी ॥
मनुज-मुनि-सिद्ध-सुर-नाग-त्रासक दुष्ट दनुज द्विज-धर्म-मर्य्याद-हर्त्ता ।
अतुल मृगराज-वपु धरति, विद्दरित अरि, भक्त प्रहलाद-अहलाद-कर्त्ता ॥
छलन बलि कपट-बटुरूप वामन ब्रह्म, भुवन पर्य्यंत पद तीनि-करणं ।

---

[^9] सद्म = घर।

[^2] गुर्वी = बड़ी।

[^3] क्रोड = शूकर।

[^4] उर्वी = पृथ्वी।

[^5] कुंड-सुख = खुजलाने का सुख।

चरण-नख-नीर-त्रैलोक्य-पावन परम, बिबुध-जननी[1]-दुसह-शोक-हरणं ॥

क्षत्रियाधीस-करिनिकर-वर-केसरी परसुधर विप्र-ससि[2]-जलदरूपं ।

बीस-भुजदंड-दससीस खंडन चंड-वेग-सायक नौमि राम-भूपं ॥

भूमि-भर[3]-भार-हर प्रकट परमातमा ब्रह्म नररूपधर भक्तहेतू ।

वृष्णि-कुल-कुमुद-राकेस राधारमन कंस-बंसाटवी[4]-धूमकेतू ॥

प्रबल पाखंड-महि-मंडलाकुल देखि निंद्यकृत्-अखिल-मख कर्म-जालं ।

शुद्ध बोधैक घन-ज्ञान-गुनधाम अज बुद्ध अवतार बंदे कृपालं ॥

कालकलि-जनित-मल-मलिनमन सर्व-नर, मोह-निसि-निबिड़यवनांधकारं ।

विष्णुयश[5]-पुत्र कल्की-दिवाकर उदित दासतुलसी हरण विपति-भारं ॥

52॥

सर्व-सौभाग्यप्रद, सर्वतोभद्र-निधि, सर्व सर्वेस सर्वाभिरामं ।

---

[^1] बिबुध-जननी = अदिति।

[^2] ससि = खेती।

[^3] भर = भारी।

[^4] अटवी = जंगल।

[^5] विष्णुयश = एक ब्राह्मण जिसके पुत्ररूप में कल्कि अवतार होगा।

शर्व[1]-हृदि-कंज-मकरंद-मधुकर रुचिर-रूप भूपालमणि नौमि रामं ॥

सर्व सुख-धाम गुनग्राम विश्रामपद नाम सर्वास्पद [2] मति पुनीतं ।

निर्मलं सांत सुविसुद्ध बोधायतन क्रोध-मद-हरन करुना निकेतं ॥

अजित निरुपाधि गोतीतमव्यक्त विभुमेकमनवद्यमजमद्वितीयं ।

प्राकृतं [3] प्रकट परमातमा परमहित प्रेरकानंत बंदे तुरीयं [4]॥

भूधरं [5] सुन्दरं श्रीवरं मदन-मद-मथन, सौन्दर्य-सीमातिरम्यं ।

दुष्प्राप्य दुष्पेक्ष्य दुस्तर्क्य दुष्पार संसारहर सुलभ मृदुभाव-गम्यं ॥

सत्यकृत सत्यरत सत्यव्रत सर्वदा पुष्ट संतुष्ट संकष्टहारी ।

धर्मवर्मणि ब्रह्मकर्मबोधैक [6] द्विप्रपूज्य ब्रह्मण्य जनप्रिय मुरारी ॥

नित्य निर्मम नित्य मुक्त निर्मान [7] हरि ज्ञानघन सच्चिदानंद मूलं ।

---

[^1] शर्व = महादेव।

[^2] सर्वास्पद = सब वस्तुओं का मूल स्थान।

[^3] प्राकृत = प्रकृति से बद्ध, मनुष्यरूपधारी।

[^4] तुरीय = मोक्षरूप।

[^5] भूधरं = भूमि को धारण करनेवाले।

[^6] ब्रह्मकर्म = ब्रह्म विद्या और कर्मकांड।

[^7] निर्मान = बेहद, अपार।

सर्वरक्षक सर्वभक्षकाध्यक्ष कूटस्थ गूढार्चि [8] भक्तानुकूलं ॥

सिद्धि साधक साध्य, वाच्य [2] वाचक रूप, मंत्र-जापक-जाप्य, सृष्टि-स्रष्टा [3]।

परम-कारन, कंजनाभ, जलदाभतनु, सगुन निर्गुन, सकल दृश्य-द्रष्टा ॥

व्योम-व्यापक विरज [4] ब्रह्म वरदेश [5] वैकुंठ वामन विमल ब्रह्मचारी ।

सिद्ध वृंदारकावृंद-वंदित सदा खंडि पाखंड निर्मूलकारी ॥

पूरनानंद-संदोह अपहरन-संमोह[6]-अज्ञान-गुन-सन्निपातं [7]।

बचन मन कर्म गत शरन तुलसीदास, त्रास-पाथोधि-इव कुंभजातं ॥ 53॥

विश्व-विख्यात विश्वेश विश्वायतन विश्वमर्याद व्यालारिगामी ।

ब्रह्म वरदेश वागीश व्यापक विमल विपुल बलवान निर्वानस्वामी ॥

---

[^8] गूढार्चि = गुप्त तेजवाला।

[^2] वाच्य = अर्थ।

[^3] स्रष्टा = सृष्टि का रचयिता।

[^4] विरज = रजोगुण रहित (शुद्ध सत्व-स्वरूप)।

[^5] वरद + ईश = देवताओं का स्वामी।

[^6] संमोह = भारी मोह।

[^7] सन्निपात = समूह, ढेर।

प्रकृति, महतत्व, सब्दादि, गुन, देवता, व्योम मरुदग्नि, अमलांबु उर्वी ।
बुद्धि मन इंद्रिय प्रान चित्तातमा काल-परमानु विच्छक्ति गुर्वी ॥
सर्वमेवात्रत्वद्रूप भूपालमनि व्यक्तमव्यक्त गतभेद, विष्णो [1]।
भुवन भवदंस कामारि-वंदित-पदद्वंद्व-मंदाकिनी-जनक जिष्णो ॥
आदिमध्यांत भगवंत त्वं सर्वगतमीश, पश्यन्ति ये ब्रह्मवादी ।
यथा पट-तंतु,घट-मृतिका, सर्प-स्रग [2], दारु-करि कनक-कटकांगदादी ॥
गूढ़ गंभीर सर्वघ्न गूढार्थवित गुप्त गोतीत गुरु ज्ञान ज्ञाता ।
ज्ञेय ज्ञानप्रिय [3] प्रचुर गरिमागार घोर-संसार-परपार दाता ॥
सत्यसंकल्प अतिकल्प [4] कल्पांतकृत कल्पनातीत अहि-तल्पवासी [5]।

---

[^1] विष्णो = हे जयशील।

[^2] सर्प-स्रग = सर्प में माला के समान अर्थात् भ्रम-रूप वस्तु में सत्य-वस्तु के समान। वेदांत के अनुसार इस मिथ्या संसार की जो सत्ता प्रतीत होती है वह ब्रह्मरूप सत्य-वस्तु के कारण।

[^3] ज्ञानप्रिय = ज्ञाता।

[^4] अतिकल्प = कल्प से परे।

[^5] तल्प = शैया।

बनज-लोचन बनज-नाभ बनदाभ-वपु, वनचर-ध्वज-कोटि लावन्यरासी॥

सुकर दुष्कर दुराराध्य दुर्व्यसनहर दुर्ग दुर्द्धर्ष दुर्गार्त्ति-हर्त्ता ।

वेदगर्भार्भकादर्भ[1]-गुण-गर्व-अर्वांपर[2]-गर्व-निर्वाप-कर्त्ता ॥

भक्त-अनुकूल,भवसूल-निर्मूलकर, तूल-अघ-नाम-पावक-समानं ।

तरल-तृष्णा-तमी[3]-तरणि धरणीधरन सरन-भय-हरन करुणानिधानं ॥

बहुल वृंदारु[4]-वृंदारकावृंद-पद-द्वंद्व, मंदार-मालोर-धारी ।

पाहि मामीस संताप-संकुल सदा दासतुलसी प्रनत रावनारी ॥ 54॥

संत-संतापहर विश्व-विश्रामकर राम कामारि-अभिरामकारी [5]।

सुद्ध बोधायतन सच्चिदानंदघन सज्जनानंद-वर्धन खरारी ॥

सील-समता-भवन विषमता-मति-समन-राम रामारमन रावनारी ।

खड्गकर चर्मवर-वर्मधर, रुचिर कटि तूण, सर-सक्ति-सारंगधारी ॥

[^1] वेदगर्भ = ब्रह्मा। अर्भक = पुत्र। वेदगर्भार्भक – तनफादिक।

[^2] अर्वाक पर = यह और वह अर्थात् परा अपरा विद्या।

[^3] तमी = रात्रि।

[^4] वृंदारू = वंदना करनेवाले।

[^5] अभिराम = आनंद।

सत्यसंधान [6] निर्वाणप्रद सर्वहित सर्वगुण-ज्ञान-विज्ञानसाली ।

सघन-तम-घोर-संसार-भर-शर्वरी नाम-दिवसेस-खर-किरनमाली ॥

तपन [2] तीछन तरुन तीव्रतापघ्न तपरूप तनुभूप तमपर [3] तपस्वी ।

मान-मद-मदन-मत्सर-मनोरथ-मथन मोह-अंभोधि-मंदर मनस्वी ॥

वेद-विख्यात वरदेश वामन विरज विमल वागीश वैकुंठस्वामी ।

काम-क्रोधादि-मर्दन-विवर्धन-क्षमा-सांति-विग्रह विहगराज-गामी ॥

परम पावन, पाप-पुंज-मुंजावटी अनल-इव-निमिष-निर्मूलकर्त्ता ।

भुवन-भूषन, दूषनारि, भुवनेस, भूनाथ श्रुतिमाथ [4] जय भुवनभर्त्ता ॥

अमल अविचल अकल सकल संतप्त-कलि-विकलता-भंजनानंदरासी ।

उरग-नायक-सयन, तरुन-पंकज-नयन, छीरसागर-अयन, सर्ववासी ॥

सिद्ध-कवि-कोविकानंद-दायक पदद्वंद्व मंदात्ममनुजैर्दुरापं [5]।

यत्र संभूत अति पूत जल सुरसरी दर्शनादेव अपहरति पापं ॥

नित्य निर्मुक्त संयुक्तगुन निर्गुनानंद भगवंत नियामक नियंता ।

---

[^6] सत्यसंघान = सत्यप्रतिज्ञ।

[^2] तपन = सूर्य।

[^3] तमपर = तमोगुण के परे।

[^4] श्रुतिमाथ = वेदों के मस्तक अर्थात् मुख्य तत्व।

[^5] दुराप = कठिनता से मिलनेवाले।

विश्व-पोषन-भरन विश्व-कारन-करन [1], सरन तुलसीदास त्रास-हंता ॥ 55॥

दनुजसूदन दयासिंधु दंभापहन दहन दुर्दोष दुष्पापहर्त्ता ।
दुष्टतादमन दमभवन, दुःखौघहर दुर्ग-दुर्वासना नास-कर्त्ता ॥
भूरिभूषण भानुमंत [2] भगवंत भवभंजनाभयद भुवनेस भारी ।
भावनातीत भववंद्य भव-भक्तहित भूमि-उद्धरन भूधरन-धारी ॥
वरद वनदाभ वागीस विश्वात्मा बिरज बैकुण्ठ-मन्दिर-विहारी ।
व्यापक-व्योम ब्द्यांघ्रि बामन बिभो ब्रह्मविद्-ब्रह्मचिंतापहारी [3]॥
सहज सुन्दर,सुमुख,सुमन,शुभ सर्वदा, शुद्धसर्वज्ञ,स्वछन्दचारी ।
सर्वकृत सर्वभृत सर्वजित् सर्वहित सत्य-संकल्प कल्पांतकारी ॥
नित्य निर्मोह निर्गुन निरंजन निजानंद [4] निर्वाण निर्वाणदाता ।
निर्भरानंद निःकंप निःसीम निर्मुक्त निरुपाधि निर्मम विधाता ॥
महामंगलमूल मोद-महिमायतन मुग्ध मधु-मथन मानद अमानी ।

[^1] करन = सामग्री।

[^2] भानुमंत = सूर्य के समान प्रकाशवाले।

[^3] ब्रह्मचिंता = ब्राह्मणों की चिंता।

[^4] निजानंद = आत्मानंद स्वरूप।

मदनमर्दन मदातीत मायारहित मंजु मानाथ [1] पाथोज-पानी ॥

कमल-लोचन कलाकोस कोदंडधर कोसलाधीस कल्याणरासी ।

यातुधान प्रचुर-मत्तकरि-केसरी भक्त मन-पुण्य-आरन्यवासी ॥

अनघ अद्वैत अनवद्य अव्यक्त अज अमित अविकार आनंदसिंधो ।

अचल अनिकेत अविरल [2] अनामय अनारंभ अंभोदनादहन []बंधो ॥

दासतुलसी खेदखिन्न, आपन्न [3], इह-सोकसंपन्न [4] अतिसय सभीतं ।

प्रनतपालक राम परम करुनाधाम पाहि मामुर्विपति [5] दुर्विनीतं [6]॥

56 ॥

देहि सतसंग निज-अंग, श्रीरंग [7], भवभंग-कारन, सरन-सोकहारी ।

---

[^1] मानाथ = लक्ष्मीपति।

[^2] अविरल = अनवच्छिन्न।

[^3] आपन्न = ग्रस्त।

[^4] इह = संसार। इह-शोक = संसार का दुःख।

[^5] उविपति = पृथ्वी के मालिक।

[^6] दुर्विनीत = नम्रतारहित।

[^7] श्रीरंग = लक्ष्मीपति।

येतु [1] भवदंघ्रि [2] पल्लव-समाश्रित सदा भक्तिरत विगतसंशय मुरारी ॥

असुर सुर नाग नर यक्ष गंधर्व खग रजनिचर सिद्ध ये चापि अन्ये ।

संत-संसर्ग त्रयवर्गपर [3] परमपद प्राप [4], निप्राप्य गति त्वयि प्रसन्ने ॥

वृत्र बलि बाण प्रहलाद मय व्याध गज गृद्ध द्विजबन्धु [5] निजधर्म-त्यागी ।

साधुपद-सलिल-निर्धूत-कल्मष सकल,स्वपच यवनादि कैवल्य-भागी ॥

शांत निरपेक्ष निर्मम निरामय अगुन शब्द ब्रह्मैक पर-ब्रह्मज्ञानी ।

दक्ष, समदृक स्वदृक [6] विगत-अति स्वपरमति परमरति तव विरति

चक्रपानी॥

विश्व उपकारहित व्यग्र-चित सर्वदा, त्यक्तमदमन्यु, कृत-पुन्यरासी ।

यत्र तिष्ठन्ति तत्रैव अज शर्व हरि सहित गच्छन्ति क्षीराब्धिवासी ॥

वेद-पय-सिंधु, सुविचार-मंदर महा, अखिल-मुनिवृंद निमर्थनकर्त्ता ।

सार-सतसंगमुद्-धृत्य इति निश्चिंतं वदति श्रीकृष्ण वैदर्भिभर्त्ता ॥

---

[^1] येतु = जो।

[^2] भवत् + अंघ्रि = तुम्हारे चरण।

[^3] त्रयवर्गपर = अर्थ, धर्म और काम से परे।

[^4] प्राप = पाते है।

[^5] द्विजबन्धु = नीच ब्राह्मण।

[^6] स्वदृक = अपनी ओर अर्थात् अपने दयालु स्वभाव की ओर देखनेवाले।

सोक संदेह भय हर्षतम तर्षगण साधु-सद्युक्ति-विच्छेदकारी ।
यथा रघुनाथ-सायक निसाचरमू-निचय-निर्दलन-पटु वेग-भारी ॥
यत्र कुत्रापि मम जन्म निज कर्मवश भ्रमत जगयोनि संकट अनेकम् ।
तत्र त्वद्भक्ति सज्जन-समागम सदा भवतु मे राम-विश्राममेकम् ॥
प्रबल भव-जनित-त्रैव्याधि-भेषज भगति, भक्त भैषज्यमद्वैतदरसी ।
संत-भगवंत अंतर निरंतर नहीं किमपि मति-मलिन कह दासतुलसी ॥ 57॥

देहि अवलंब कर-कमल कमलारमन दमन-दुख समन-संताप भारी ।
अज्ञान-राकेस-ग्रासन विंधुतुद, गर्ब-काम-करिमत्त-हरि दूषनारी ॥
वपुष ब्रह्माण्ड सो, प्रवृत्ति-लंका-दुर्ग रचित मन दनुज मय-रूपधारी ।
विविध-कोशौघ अति रुचिर-मंदिर-निकर सत्वगुण-प्रमुख त्रयकटककारी ॥
कुनप[1]-अभिमान-सागर भयंकर घोर बिपुल अवगाह दुस्तर अपारम् ।
नक्र-रागादि संकुल मनोरथ सकल संग-संकल्प-वीची-विकारम् ॥
मोह दसमौलि, तद्भ्रात अहँकार, पाकारिजित्-काम विश्रामहारी ।
लोभ अतिकाय, मत्सर महोदर दुष्ट, क्रोध-पापिष्ट बिबुधांतकारी ॥
द्वेष-दुर्मुख, दंभ-खर, अकंपन कपट, दर्प मनुजाद-मद सूलपानी ।
अमितबल परम दुर्जय निसाचर-निकर सहित षड्वर्ग गो-यातुधानी ॥

---

[^1] कुनप = शरीर।

जीव भवदंघ्रि-सेवक विभीषन बसत मध्य दुष्टाटवी ग्रसितचिंता ।
नियम यम सकल सुरलोक लोकेश लंकेश-बस नाथ! अत्यंत भीता ॥
ज्ञान अवधेश, गृह गेहिनी भक्ति सुभ, तत्र अवतार भूभार-हर्त्ता ।
भक्त संकष्ट अवलोकि पितु-वाक्य कृत गमन किय गहन वैदेहि-भर्ता ॥
कैवल्य-साधन अखिल भालु मर्कट बिपुल, ज्ञान-सुग्रीवकृत जलधिसेतू ।
प्रबल वैराग्य दारुण प्रभंजन-तनय विषय-वन-दहनमिव धूमकेतू ॥
दुष्ट-दनुजेस निर्वस कृत दासहित विश्वदुख हरन बोधैकरासी ।
अनुज निज जानकी सहित हरि सर्वदा दासतुलसी-हृदय कमलवासी ॥58॥

दीन-उद्धरन रघुबय करुनाभवन समन-संताप पापौघ-हारी ।
बिमल विज्ञान-बिग्रह अनुग्रहरूप भूपबर बिबुध-नर्मद खरारी ॥
संसार-कांतार [1] अति-घोर गंभीर घन गहन तरुकर्म-संकुल, मुरारी ।
बासना-बल्लि खर[2]-कंटकाकुल बिपुल निबिड़ बिटपाटवी कठिन भारी ॥
बिबिध चितबति खग-निकर सेनोलूक काक वक गृध्र आमिष-अहारी ।
अखिल-खल-निपुण छल-छिद्र निरखत सदा, जीव-जन-पथिक-मन-
खेदकारी ॥

---

[^1] कांतार = जंगल।

[^2] खर = तीक्ष्ण।

क्रोध करि मत्त, मृगराज कंदर्प, मद-दर्प वृक भालु अति उग्रकर्म्मा ।

महिष मत्सर क्रूर, लोभ सूकर रूप, फेरु छल, दंभ मार्जार-धर्म्मा ॥

कपट मर्कट, बिकट व्याघ्र पाखंडमुख दुखद-मृगव्रात [1] उत्पातकर्त्ता ।

हृदय अवलोकि यह सोक सरणागतं, पाहि, मां पाहि, भो [2] विश्वभर्ता ॥

प्रबल अहंकार दुर्घट महीधर, महामोह गिरि-गुहा निबिड़ांधकारम् ।

चित्त बैताल, मनुजाद मन, प्रेतगन रोग भोगौघ वृश्चिक-बिकारम् ॥

बिषय-सुख-लालसा दंस-मसकादि, खल-झिल्लि, रूपादि सब सर्प स्वामी ।

तत्र आक्षिप्त तव विषम माया, नाथ! अंध मैं मंद ब्यालादगामी ॥

घोर अवगाह भव-आपगा, पापजल-पूर, दुष्प्रेक्ष्य, दुस्तर अपारा ।

मकर षड्वर्ग, गो नक्र, चक्राकुला [3] कूल सुभ-असुभ, दुख तीव्र धारा ॥

सकल संघट [4] पोच, सोचबस सर्बदा दासतुलसी-बिषम-गहन-ग्रस्तम् ।

त्राहि रघुवंशभूषन कृपाकर कठिन-काल-बिकराल-कलि-त्रास-त्रस्तम् ॥ 59॥

नौमि नारायणं नरं करुणायनं ध्यान-पारायणं ज्ञान-मूलम् ।

---

[^1] व्रात = झुंड।

[^2] भो = है।

[^3] चक्राकुला = भँवरवाली।

[^4] संघटन = जमघट, जमावड़ा।

अखिल-संसार-उपकार-कारन सदय-हृदय तपनिरत प्रणतानुकूलम् ॥

श्याम-नव-तामरस-दाम-द्युति-वपुष,-छबि, कोटि-मदनार्क अगणित प्रकाशम् ।

तरुण रमणीय राजीव लोचन ललित बदन राकेश, कर-निकस-हासम् ॥

सकल-सौंदर्य-निधि, विपुल-गुण-धाम विधि-बेद-बुध-संभु-सेवित अमानम् ।

अरुण-पदकंज-मकरंद-मंदाकिनी मधुप-मुनिवृंद कुर्वन्ति पानम् ॥

शक्र-प्रेरित-घोर-मदन मद-भृगंकृत, क्रोधगत, बोधरत, ब्रह्मचारी ।

मार्केन्डेय मुनिबर्य हित कौतुकी, बिनहि कल्पांत प्रभु प्रलयकारी [1]॥

पुन्य-बन शैल सरि बद्रिकाश्रम सदाऽसीन-पद्मासनं एक रूपं ।

सिद्ध-योगीन्द्र-वृंदारकानंदप्रद भद्रदायक दरस अति अनूपं ॥

मान मनभंग[2], चितभंग, मद, क्रोध लोभादि-पर्वतदुर्ग, भुवन-भर्त्ता ।

द्वेष मत्सर-राग-प्रबल प्रत्यूह प्रति,भूरि निर्दय, क्रूर-कर्म-कर्त्ता ॥

विकटतर बक्र क्षुरधार प्रमदा, तीव्र-दर्प कंदर्प खर खंगधारा ।

धीर-गंभीर-मन-पीर-कारक तत्र के बराका [3] वयं बिगतसारा ॥

---

[^1] मारकंडेय ... ... = मारकंडेयजी के कहने से नारायण ने उन्हें प्रलय का दृश्य दिखाया था।

[^2] मनभंग, चितभंग, क्षुरधार, खंगधार = वररिकाश्रम के पर्वतों के नाम।

[^3] बराका = बेचारा।

परम दुर्घट पथं, खल असंगत साथ, नाथ, नहिं हाथ वर विरति-यष्टी [4]।

दरशनारत दास, त्रसित-माया-पास, त्राहि त्राहि ! दास कष्टी [2]॥

दासतुलसी दीन, धर्म-संबलहीन श्रमित अति, खेद, मति मोह-नासी ।

देहि अवलंब न विलंब अंभोज-कर, चक्रधर-तेजबल शर्मरासी ॥ 60॥

सकल-सुखकंद आनंदवन-पुण्यकृत बिंदुमाधव द्वंद्व-बिपति-हारी ।

यस्यांघ्रिपाथोज अज संभु सनकादि सुक शेष मुनिवृंद अलि निलयकारी ॥

अमल-मरकत श्याम,काम-सतकोटि-छबि, पीतपट तड़ित इव जलदनीलम् ।

अरुण-शतपत्र-लोचन,विलोकनि-चारू, प्रणतजन-सुखद,करुणार्द्रशीलम् ॥

काल-गजराज-मृगराज,दनुजेश-बन-दहन पावक, मोह-निशि-दिनेशम् ।

चारिभुज चक्र कौमोदकी जलज दर सरसिजोपरि यथा राजहंसम् ॥

मुकुट कुंडल तिलक, अलक-अलिव्रातइव, भृकुटि-द्विज-अधरबरचारुनासा ।

रुचिर सुकपोल, दर ग्रीव सुखसीव, हरि, इंदुकर-कुंदमिव मधुरहासा ॥

उरसि बनमाल सुबिशाल, नवमंजरी भ्राज श्रीवत्स-लांछन उदारम् ।

परम ब्रह्मण्य,अति धन्य गतमन्यु अज अमित बल विपुल महिमा अपारम् ॥

हार केयूर, कर कनक-कंकड़, रतन-जटित मणि मेखला कटिप्रदेशम् ।

---

[^4] यष्टी = छड़ी।

[^2] कष्टी = कष्टवाला।

युगल पद नूपुरा मुखर कलहंसवत, सुभग सर्वांग सौन्दर्य-वेषम् ॥
सकल-सौभाग्य-संयुक्त त्रैलोक्य-श्री, दक्ष-दिशि [1] रुचिर बारीश-कन्या ।
बसत विबुधापगा निकट तट सदन बर, नयन निरखंति नर तेऽति धन्या ॥
अखिल मंगल-भवन,निबिड़ संशय-शमन, दमन-व्रजिनाटवी [2],कष्टहर्त्ता ।
विश्वधृत विश्वहित अजिद गोतीत शिव विश्व-पालन-हरण-विश्वकर्त्ता ॥
ज्ञान-विज्ञान-वैराग्य-ऐश्वर्य निधि, सिद्धि अणिमादि दे भूरि दानम् ।
ग्रसित-भव-व्याल अतित्रास तुलसीदास त्राहि श्रीराम उरगारियानम् ॥ 61॥

इहै परम फल परम बड़ाई ।
नखसिख रुचिर बिंदुमाधव-छबि निरखहिं नयन अघाई ॥
बिसद किसोर पीन सुंदर बपु श्याम सुरुचि अधिकाई ।
नीलकंज बारिद तमाल मनु इन्ह तनु तें दुति पाई ॥
मृदुल चरन सुभ चिन्ह पदज नख अति अदभुत उपमाई ।
अरुन नील पाथोज प्रसव जनु मनिजुत दल-समुदाई ॥
जातरूप मनि-जटित-मनोहर नूपुर जन-सुखदाई ।

---

[^1] दक्षदिशि = दक्षिण की ओर। बिंदुमाधव की मूर्ति के साथ लक्ष्मी की मूर्ति दाहिनी ओर थी। यह पुरानी मूर्ति अभी तक है।

[^2] व्रजिनाटवी = पापो का जंगल।

जनु हर उर हरि [1] बिबिध रूप धरि रहे बर भवन बनाई ॥

कटितट रटति चारु किंकिनि, रव अनुपम बरनि न जाई ।

हेम-जलज कल कलित मध्य जनु मधुकर मुखर सोहाई ॥

उर बिसाल भृगुचरन चारु अति सूचत कोमलताई ।

कंकन चारु बिबिध भूषन बिधि रचि निज कर मन लाई ॥

गज-मनि-माल बीच भ्राजत कहि जाति न पदिक [2] निकाई ।

जनु उडुगन-मंडल बारिद, पर नवग्रह रची अथाई []॥

भुजँग-भोग [3] भुजदंड, कंज दर चक्र गदा बनि आई ।

सोभासींव ग्रीव चिबुकाधर बदन अमित छबि छाई ॥

कुलिस-कुंद-कुडमल[4]-दामिनि-दुति दसननि देखि लजाई ।

नासा नयन कपोल ललित, श्रुति-कुंडल भ्रू मोहि भाई ॥

कुंचित कच सिर मुकुट भाल पर तिलक कहौं समुझाई ।

अलप तड़ित जुग-रेख इंदु महँ रहि तजि चंचलताई ॥

निर्मल पीत दुकूल अनूपम उपमा हिय न समाई ।

---

[^1] हरि = कामदेव।

[^2] पदिक = छाती पर पहिनने का एक भूषण विशेष।

[^3] भुजंगभोग = भुजंग (नाग) = हाथी + भोग = सूँड़ अर्थात् हाथी की सूँड।

[^4] कुडमल = कली।

बहु मनिजुत गिरि-नील-सिखर पर कनक-बसन रुचिराई ॥
दच्छ-भाग अनुराग सहित इंदिरा अधिक ललिताई ।
हेमलता जनु तरु तमाल ढिग नील निचोल ओढ़ाई ॥
सत सारदा सेस स्रुति मिलि करि सोभा कहि न सिराई ।
तुलसिदास मतिमंद द्वंद्वरत कहै कौन बिधि गाई ?॥ 62॥

(राग जयतश्री)

मन, इतनोई या तनु को परम फलु ।
सब अँग सुभग बिंदुमाधव-छबि तजि सुभाउ अवलोकु एक पलु ॥
तरुन अरुन-अंभोज चरन मृदु,नख-दुति हृदय-तिमिर-हारी ।
कुलिस-केतु-जव-जलज रेख बर, अंकुस मन-गज-बसकारी ॥
कनक-जटित मनि नूपुर, मेखल कटि-तट रटति मधुर बानी ।
त्रिबली उदर गँभीर नाभि-सर जहँ उपजे बिरंचि ज्ञानी ॥
उर बन-माल पदिक अति सोभित, बिप्र-चरन चित कहँ करषै ।
स्याम तामरस-दाम-बरन बपु, पीत बसन सोभा बरषै ॥
कर कंकन केयूर मनोहर, देति मोद मुद्रिक न्यारी ।
गदा-कंज-दर-चारु चक्रधर, नाग-सुंड-सम भुज चारी ॥
कंबु-ग्रीव, छबिसींव चिबुक द्विज, अधर अरुन, उन्नत नासा ।

नव-राजीव-नयन, ससि आनन, सेवक-सुखद बिसद हासा ॥

रुचिर कपोल, स्रवन कुंडल, सिर मुकुट, सुतिलक भाल भ्राजै ।

ललित भ्रुकुटि, सुंदर चितवनि, कच निरखि मधुप-अवली लाजै ॥

रूप-सील-गुन-खानि दच्छ-दिसि, सिंधु-सुता रत-पद-सेवा ।

जाकी कृपा-कटाच्छ चहत सिव, बिधि, मुनि, मनुज, दनुज, देवा ॥

तुलसिदास भव-त्रास मिटै तब जब मति येहि सरूप अटकै ।

नाहिं त दीन मलीन हीन-सुख कोटि जनम भ्रमि भ्रमि भटकै ॥ 63॥

(राग बसन्त)

बंदौ रघुपति करुना-निधान । जाते छूटै भव भेद-ग्यान ॥

रघुबंस-कुमुद सुखप्रद निसेस । सेवित पद-पंकज अज महेस ॥

निज भगत-हृदय-पाथोज-भृंग । लावन्य बपुष अगनित अनंग ॥

अति प्रबल मोह-तम-मारतंड । अज्ञान-गहन-पावक प्रचंड ॥

अभिमान-सिंधु-कुंभज उदार । सुररंजन, भंजन भूमिभार ॥

रागादि-सर्पगन-पन्नगारि । कंदर्प-नाग-मृगपति मुरारि ॥

भव-जलधि-पोत चरनारबिंद । जानकी-रमन आनंद-कंद ॥

हनुमंत-प्रेम-बापी-मराल । निष्काम कामधुक गो दयाल ॥

त्रैलोक्य-तिलक गुनगहन राम । कह तुलसिदास बिश्राम-धाम ॥64॥

(राग भैरव)

राम राम रटु,राम राम रटु, राम राम जपु जीहा ।
रामनाम-नव-नेह-मेह को मन, हठि होहि पपीहा ॥
सब साधन-फल कूप सरित-सर-सागर-सलिल-निरासा ।
रामनाम-रति-स्वाति-सुधा सुभ-सीकर प्रेम-पियासा ॥
गरजि तरजि पाषान बरषि पबि प्रीति परखि जिय जानै ।
अधिक अधिक अनुराग उमँग उर, पर परमिति पहिचानै ॥
रामनाम गति, रामनाम मति, रामनाम-अनुरागी ।
ह्वै गए, हैं जे होहिंगे आगे तेइ गनियत बड़भागी ॥
एक-अंग [1] मग अगम गवन करि बिलमु न छिन छिन छाहैं ।
तुलसी हित अपनो अपनी दिसि निरुपधि नेम निबाहैं ॥ 65॥

राम जपु, राम जपु, राम जपु, बावरे ।
घोर भव-नीर-निधि नाम निजु नाव, रे ॥
एकहि साधन सब रिद्धि सिद्धि साधि, रे ।
ग्रसे कलि रोग जोग संजम समाधि, रे ॥

[^1] एक अंग = अनन्य, एकांगी।

भलो जो है, पोच जो है, दाहिनो जो बाम, रे ।

राम-नाम ही सों अंत सबही को काम, रे ॥

जग नभ-बाटिका रही है फलि फूलि, रे ।

धुवाँ के से धौरहर देखि तू न भूलि, रे ॥

राम-नाम छाँड़ि जो भरोसो करै और, रे ।

तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर, रे ॥ 66॥

राम राम जपु जिय सदा सानुराग, रे ।

कलि न बिराग जोग जाग तप त्याग, रे ॥

राम सुमिरत सब बिधि ही को राज [1], रे ।

राम को बिसारिबो निषेध-सिरताज [2], रे ॥

राम-नाम महामनि, फनि जगजाल, रे ।

मनि बिना फनि जियै ब्याकुल बिहाल, रे ॥

राम-नाम कामतरु देत फल चारि, रे ।

कहत पुरान, बेद, पंडित मुरारि, रे ॥

रामनाम प्रेम परमारथ को सार, रे ।

---

[^1] विधि को राज = वेदशास्त्र की सारी विधियों या आज्ञाओं में श्रेष्ठ।

[^2] निषेध-सिरताज = सब निषिद्ध बातों से बढ़कर।

रामनाम तुलसी को जीवन-अधार, रे ॥ 67॥

राम राम राम जीव जौलौं तू न जपिहै ।

तौ लौं तू कहूँ जाय तिहूँ ताप तपिहै ॥

सुरसरि-तीर बिनु नीर दुख पाइहै ।

सुरतरु तरे तोहि दारिद सताइहै ॥

जागत बागत सपने न सुख सोइहै ।

जनमि जनमि जुग जुग जग रोइहै ॥

छूटिबे की जतन बिसेष बाँध्यो जायगो ।

ह्वैहै बिष भोजन जो सुधा-सानि खायगो ॥

तुलसी तिलोक तिहूँ काल तोसे दीन को ।

रामनाम ही की गति जैसे जल मीन को ॥ 68॥

सुमिरु सनेह सों तू नाम राम राय को ।

संबर [1] निसंबर को सखा असहाय को ॥

भाग है अभागे हू को, गुन गुनहीन को ।

गाँहक गरीब को दयालु दानि दीन को ॥

---

[^1] संबर = संबल, कलेवर, राहखर्च।

कुल अकुलीन को सुन्यो है, बेद साखि है ।

पाँगुरे को हाथ-पाँय, आँधरे को आँखि है ॥

माय-बाप भूखे को, अधार निराधार को ।

सेतु भव-सागर को, हेतु सुखसार को ॥

पतित-पावन राम-नाम सो न दूसरो ।

सुमिरि सुभूमि भयो तुलसी सो ऊसरो ॥ 69॥

भलो भली भाँति है जो मेरे कहे लागिहै ।

मन राम-नाम सों स्वभाव अनुरागि है ॥

राम-नाम को प्रभाव जानि जूड़ी आगि है ।

सहित सहाय कलिकाल भीरु भागि है ॥

राम-नाम सों, बिराग जोग जागिहै ।

बाम बिधि भाल हू न कर्म-दाग दागिहै ॥

राम-नाम-मोदक सनेह-सुधा पागिहै ।

पाइ परितोष तू न द्वार द्वार बागिहै ॥

काम-तरु राम-नाम, जोइ जोइ माँगिहै ।

तुलसिदास स्वारथ परमारथ न खाँगिहै [1]॥ 70॥

---

[^1] खाँगिहै = कम होगा।

ऐसेउ साहब की सेवा सों होत चोर, रे ।

आपनी न बुझि, न कहे को राढ़रोर [1], रे ॥

मुनि-मन-अगम, सुगम, माइ-बाप, सों ।

कृपासिंधु, सहज सखा, सनेही आपु सों ॥

लोक-बेद-बिदित बड़ो न रघुनाथ सों ।

सब दिन, सब देस, सबही के साथ सों ॥

स्वामी सर्वज्ञ सों चलै न चोरी चार [2] की ।

प्रीति पहिचानि यह रीति दरबार की ॥

काय न कलेस-लेस, लेत मानि मन की ।

सुमिरे सकुचि रुचि जोगवत जन की ॥

रीझे बस होत, खीझे देत निज धाम, रे ।

फलत सकल फल कामतरु नाम, रे ॥

बेंचे खोटो दाम न मिलै, न राखे काम रे ।

सोऊ तुलसी निवाज्यो ऐसो राजा राम, रे ॥ 71॥

मेरो भलो कियो राम आपनी भलाई ।

---

[^1] राढ़ + रोर = बेकाम और उद्दंड।

[^2] चार = नौकर, दूत।

हौं तो साई-द्रोही पै सेवक-हितु साँई ॥

राम सों बड़ो है कौन? मोसों कौन छोटो ?

राम सो खरो है कौन? मो सों कौन खोटो ?

लोक कहै राम को गुलाम हौं, कहावौं ।

एतो बड़ो अपराध, भो न मन बावौं [1]॥

पाथ-माथे [2] चढ़े तृन तुलसी ज्यों नीचो ।

बोरत न बारि ताहि जानि आपु सींचो ॥ 72॥

जागु जागु जीव जड़ जोहै जग-जामिनी ।

देह गेह नेह जानु जैसे घन-दामिनी ॥

सोवत सपने सहै संसृति-संताप रे ।

बूड़ो मृग-बारि खायो जेवरी को साँप रे ॥

कहैं बेद बुध तू तौ बूझि मन माहिं रे ।

दोष दुख सपने के जागे ही पै जाहिं, रे ॥

तुलसी जागे ते जाय ताप तिहुँ ताय, रे ।

राम-नाम सुचि रुचि सहज सुभाय, रे ॥ 73॥

---

[^1] बावौं = रखते है।

[^2] पाथ माथे = पानी के ऊपर।

(राग विभास)

जानकी की कृपा जगावती, सुजान जीव!
जागी त्यागु मूढ़तानुरागु श्री हरे ।
करु बिचार, तजु बिकार, भजु उदार रामचंद्र,
भद्रसिंधु दीनबंधु, बेद बदत, रे ॥

मोहमय कुहू-निसा बिसाल काल बिपुल सोयो,
खोयो सो अनूप रूप स्वप्न हू परे ।
अब प्रभात प्रगट ज्ञान-भानु के प्रकाश,
बासना-सराग-मोह-द्वेष-निबिड़ टरे ॥

भागे मद-मान चोर भोर जानि जातुधान,
काम-क्रोध-लोभ-छोभ-निकर अपडरे ।
देखत रघुबर-प्रताप बीते संताप-पाप,
ताप त्रिबिध प्रेम-आप दूर ही करे ॥

स्त्रवन सुनि गिरा गँभीर जागे अति धीर,
बीर बर बिराग-तोष सकल संत आदरे ।

तुलसिदास प्रभु कृपालु निरखि जीव-जन बिहालु,

भंज्यो भव-जालु परम मंगलाचरे ॥ 74॥

(राग ललित)

खोटो खरो रावरो हौं, रावरी सौं, रावरे सों

झूठ क्यों कहोंगो? जानो सबही के मन की ।

करम बचन हिये कहौं न कपट किये,

ऐसी हठ जैसी गाँठि पानी परे सन की ॥

दूसरो भरोसो नाहिं, बासना उपासना को,

बासव, बिरंचि, सुर, नर, मुनिगन की ।

स्वारथ के साथी, मेरे हाथ सों न लेवा देई,

काहू तो न पीर रघुबीर दीनजन की ॥

साँप सभा [1] साबर लबार भए देव दिब्य [2],

दुसह साँसति कीजै आगे ही या तन की ।

---

[^1] साँप सभा = दिव्य परीक्षा जिसमें सर्प, अग्नि आदि द्वारा अभियुक्त के दोषी या निर्दोष होने का निश्चय किया जाता है।

[^2] दिव्य देना = परीक्षा लेना।

साँचे परे पाँऊ पान, पंचन में पन प्रमान,

तुलसी-चातक-आस राम-स्याम-घन की ॥ 75॥

राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यौ राम,

काम यहै नाम द्वै हौ कबहूँ कहत हौं ।

रोटी-लूगा [1] नीके राखै,आगे हू की बेद भाषै,

भलो ह्वैहै तेरो, तातें आनँद लहत हौं ॥

बाँधो हौं करम जड़ गरब गूढ़ निगड़,

सुनत दुसह हौं तौ साँसति सहत हौं ।

आरत-अनाथ-नाथ कोसलपाल कृपाल,

लीन्हौ छीनि दीन देख्यो दुरित दहत हौं ॥

बूझ्यौ ज्यौं ही, कह्यो “मैं हूँ चेरो ह्वैहौ रावरो जू

मेरो कोऊ कहूँ नाहिं, चरन गहत हौं ।

मींजो गुरु पीठ अपनाइ गहि बाँह बोलि

सेवक-सुखद सदा बिरद बहत हौं ॥

---

[^1] रोटी लूगा = अन्न वस्त्र।

लोग कहै पोचु, सो न सोचु न सँकोचु

मेरे ब्याह न बरेखी, जाति पाँति न चहत हौं ।

तुलसी अकाज काज राम ही के रीझे खीझे,

प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत हौं ॥ 76 ॥

जानकी-जीवन, जग-जीवन, जगत-हित,

जगदीस, रघुनाथ, राजीव-लोचन राम ।

सरद-बिधु-बदन, सुखसील, श्रीसदन,

सहज सुंदर तनु, सोभा अगनित काम ॥

जग सुपिता, सुमातु, सुगुरु, सुहित, सुमीत,

सबको दाहिनो, दीनबन्धु काहु को न बाम ।

आरतहरन, सरनद, अतुलित दानि,

प्रनतपाल, कृपालु, पतित-पावन नाम ॥

सकल बिस्व-बंदित, सकल सुर-सेवित,

आगम-निगम कहैं रावरे ई गुनग्राम ।

इहै जानि तुलसी तिहारो जन भयो,

न्यारो कै गनिबो जहाँ गने गरीब गुलाम ॥ 77॥

(राग टोडी)

दीन को दयालु दानि दूसरो न कोऊ ।
जाहि दीनता कहौं हौं देखौं दीन सोऊ ॥
मुनि सुर नर नाग असुर साहिब तौ घनेरे ।
पै तौलौं जौंलौं रावरे न नेकु नयन फेरे ॥
त्रिभुवन तिहुँ काल बिदित, बेद बदति चारी ।
आदि अंत मध्य राम साहबी तिहारी ॥
तोहि माँगि माँगनो [1] न माँगनो कहायो ।
सुनि सुभाव सील सुजस जाचन जन आयो ॥
पाहन, पसु, बिटप, बिहँग अपने करि लीन्हे ।
महाराज दसरथ के ! रंक राय कीन्हे ॥
तूँ गरीब को निवाज, हौं गरीब तेरो ।
बारक कहिये कृपालु! तुलसिदास मेरो ॥ 78॥

तू दयालु, दीन हौं. तू दानि, हौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी ॥

---

[^1] माँगनो = मंगन, याचक।

नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो?

मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसो ॥

ब्रह्म तू, हौं जीव, तू है ठाकुर, हौं चेरो ।

तात. मात-गुरु, सखा तू सब बिधि हितु मेरो ॥

तोहिं मोहिं नाते अनेक मानियै जो भावै ।

ज्यों त्यों तुलसी कृपालु ! चरन-सरन पावै ॥ 79॥

और काहि माँगिये, को माँगिबो निवारै ।

अभिमतदातार कौन, दुख-दरिद्र दारै ?॥

धरम-धाम राम काम-कोटि-रूप रूरो ।

साहब सब बिधि सुजान, दान-खंग-सूरो ॥

सुसमय दिन द्वै निसान सब के द्रार बाजै ।

कुसमय दसरथ के दानि! तैं गरीब निवाजै ॥

सेवा बिनु, गुन-बिहीन दीनता सुनाए ।

जे जे तैं निहाल किए फूले फिरत पाए ॥

तुलसीदास जाचक-रुचि जानि दान दीजै ।

रामचंद्र चंद्र तू! चकोर मोहिं कीजै ॥ 80॥

दीनबंधु, सुखसिंधु, कृपाकर, कारुनीक रघुराई ।
सुनहु नाथ ! मन जरत त्रिबिध ज्वर, करत फिरत बौराई ॥
कबहुँ जोगरत, भोग-निरत सठ, हठ बियोग बस होई ।
कबहुँ मोहबस द्रोह करत बहु, कबहुँ दया अति सोई ॥
कबहुँ दीन मतिहीन रंकतर, कबहुँ भूप अभिमानी ।
कबहुँ मूढ पंडित बिडंब-रत, कबहुँ धरम-रत ज्ञानी ॥
कबहुँ देख जग धनमय रिपुमय, कबहुँ नारिमय भासै ।
संसृति-सन्निपात दारुन दुख बिनु हरि-कृपा न नासै ॥
संजम जप तप नेम धरम ब्रत बहु भेषज समुदाई ।
तुलसिदास भव-रोग रामपद-प्रेम-हीन नहिं जाई ॥ 81॥

मोहजनित मल लाग बिबिध बिधि, कोटिहु जतन न जाई ।
जनम जनम अभ्यास-निरत चित अधिक अधिक लपटाई ॥
नयन मलिन परनारि निरखि, मन मलिन बिषय सँग लागे ।
हृदय मलिन बासना मान मद, जीव सहज सुख त्यागे ॥
परनिंदा सुनि स्रवन मलिन भए, बचन दोष पर गाए ।
सब प्रकार मलभार लाग निज नाथ-चरन बिसराए ॥
तुलसिदास ब्रत दान ज्ञान तप सुद्धिहेतु स्रुति गावै ।

राम-चरन-अनुराग-नीर बिनु मल अति नास न पावै ॥ 82॥

(राग जयतश्री)

कछु ह्वै न आइ गयो जनम जाय ।

अति दुर्लभ तनु पाइ कपट तजि भजे न राम मन बचन काय ॥

लरिकाई बीती अचेत चित, चंचलता चौगुने चाय ।

जोबन-जुर जुबती कुपथ्य करि भयो त्रिदोष भरि मदन बाय ॥

मध्य बयस धन-हेतु गँवाई कृषी बनिज नाना उपाय !

राम बिमुख सुख लह्यो न सपनेहुँ, निसिबासर तयौ तिहूँ ताय ॥

सेये नहिं सीतापति-सेवक साधु सुमति भलि भगति भाय ।

सुने न पुलकि तनु, कहे न मुदित मन, किए जे चरित रघुबंसराय ॥

अब सोचत मनि बिनु भुजंग ज्यो बिकल अंग दले जरा धाय ।

सिर धुनि-धुनि पछिताय मींजि कर कोउ न मीत हित दुसह दाय [1]॥

जिन्ह लगि निज परलोक बिगार्‌यौ, ते लजात होत ठाढ़े ठायँ ।

तुलसी अजहुँ सुमिरि रघुनाथहिं, तरो गयंद जाके अर्द्ध नायँ ॥ 83॥

तौ तू पछितैहै मन मींजि हाथ ।

---

[^1] दाय = दाँव या अवसर।

भयो है सुगम तो को अमर-अगम तनु समुझि धौं कत खोवत अकाथ॥
सुख-साधन हरि बिमुख बृथा, जैसे श्रम-फल घृतहित मथे पाथ ।
यह बिचारि तजि कुपथ कुसंगति चलि सुपंथ मिलि भले साथ ॥
देखु राम-सेवक सुनु कीरति, रटहि नाम करि गान गाथ ।
हृदय आनु धनुबान-पानि प्रभु लसे मुनिपट कटि कसे भाथ ॥
तुलसिदास परिहरि प्रपंच सब नाउ रामपद-कमल माथ ।
जनि डरपहि तो से अनेक खल अपनाये जानकीनाथ ॥ 84॥

(राग धनाश्री)

मन, माधव को नेकु निहारहि ।
सुनु सठ, सदा रंक के धन ज्यो छन-छन प्रभुहिं सँभारहि ॥
सोभा-सील ज्ञान-गुन-मंदिर सुंदर परम उदारहि ।
रंजन-संत अखिल-अघ-गंजन-भंजन-बिषय-बिकारहि ॥
जो बिनु जोग जज्ञ ब्रत संयम गयो चहहि भव पारहि ।
तौ जनि तुलसिदास निसि बासर हरि-पद-कमल बिसारहि ॥ 85॥

इहै कह्यो सुत, बेद चहूँ ।
श्रीरघुबीर-चरन चिंतन तजि नाहिन ठौर कहूँ ॥

जाके चरन बिरंचि सेइ सिधि पाई संकर हूँ ।

सुक सनकादि मुक्त बिचरत तेउ भजन करत अजहूँ ॥

जद्यपि परम चपल श्री संतत, थिर न रहति कतहूँ ।

हरि-पद-पंकज पाइ अचल भइ करम बचन मनहूँ ॥

करुनासिंधु भगत-चिंतामनि सोभा सेवत हूँ ।

और सकल सुर असुर ईस सब खाए उरग छहूँ [1]॥

सुरुचि [2] कह्यो सोइ सत्य, तात! अति परुष बचन जबहूँ ।

तुलसिदास रघुनाथ-बिमुख नहिं मिटै बिपति कबहूँ ॥ 86॥

सुनु मन मूढ, सिखावन मेरो ।

हरि-पद-बिमुख लह्यो न काहु सुख सठ यह समुझ सबेरो ॥

बिछुरे ससि रबि, मन नयननि तें पावत दुख बहुतेरो ।

भ्रमत स्रमित निसि दिवस गगन महँ, तहँ रिपु राहु बड़ेरो ॥

जद्यपि अति पुनित सुरसरिता तिहुँ पुर सुजस घनेरो ।

तजे चरन अजहूँ न मिटत नित बहिबो ताहू केरो ॥

---

[^1] उरग छहूँ = काम, क्रोध आदि षड् रिपु।

[^2] सुरुचि = ध्रुव की सौतेली माता। यह भजन ध्रुव की माता के उपदेश के रूप में है जो उन्होंने ध्रुव को दिया था।

छुटै न बिपति भजे बिनु रघुपति स्रुति संदेह निबेरो ।

तुलसिदास सब आस छाँडि करि होहि राम कर चेरो ॥ 87॥

कबहूँ मन बिस्राम न मान्यो ।

निसि दिन भ्रमत बिसारि सहज सुख जहँ तहँ इंद्रिन-तान्यो ॥

जदपि बिषय-सँग सहे दुसह दुख बिषम जाल अरुझान्यो ।

तदपि न तजत मूढ़ ममताबस,जानत हूँ नहिं जान्यो ॥

जनम अनेक किए नाना बिधि करम-कीच चित सान्यो ।

होइ न बिमल बिबेक-नीर बिनु, बेद पुरान बखान्यो ॥

निज हित नाथ पिता गुरु हरि सों हरषि हृदय नहिं आन्यो ।

तुलसिदास कब तृषा जाइ? सर खनतहिम जनम सिरान्यो ॥ 88॥

मेरो मन हरि! हठ न तजै ।

निसि दिन नाथ ! देउँ सिख बहु बिधि, करत सुभाउ निजै ॥

ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै ।

ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सठ पुनि खल पतिहिं भजै ॥

लोलुप भ्रम गृहपसु [1] ज्यौं जहँ तहँ सिर पदत्रान बजै ।

---

[^1] गृहपसु = कुत्ता।

तदपि अधम बिचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ़ लजै ॥
हौं हार्‌यौ करि जतन बिबिध बिधि, अतिसय प्रबल अजै ।
तुलसिदास बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै ॥ 89॥

ऐसी मूढ़ता या मन की ।
परिहरि राम-भगति-सुरसरिता आस करत ओसकन की ॥
धूम-समूह निरखि चातक ज्यो तृषित जानि मति [1] घन की ।
नहिं तहँ सीतलता न बारि, पुनि हानि होति लोचन की ॥
ज्यों गच-काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की ।
टूटत अति आतुर अहार बस छति बिसारि आनन की ॥
कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि जानत हौ गति जन की ।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की ॥ 90॥

नाचत ही निसि-दिवस मर्‌यो ।
तब ही ते न भयो हरि! थिर जबतें जिव नाम धर्‌यो ॥
बहु बासना, बिबिध कंचुकि-भूषन-लोभादि भर्‌यो ।
चर अरु अचर गगन जल थल में कौन स्वाँग न कर्‌यो ॥

---

[^1] मति = सदृश (पूरबी – मतिन)।

देव दनुज मुनि नाग मनुज नहिं जाँचत कोउ उबर्‌यो ।
मेरो दुसह दरिद्र दोष दुख काहू तौ न हर्‌यो ॥
थके नयन पद पानि सुमति बल, संग सकल बिछुर्‌यो ।
अब रघुनाथ सरन आयो जन भव-भय-बिकल डर्‌यो ॥
जेहि गुन तें बस होहु रीझि करि सो मोहि सब बिसर्‌यो ।
तुलसिदास निज भवन-द्वार प्रभु दीजै रहन पर्‌यो ॥ 91॥

माधव जू मो सम मंद न कोऊ ।
जद्यपि मीन पतंग हीनमति मोहि नहिं पूजहिं ओऊ ॥
रुचिर रुप-आहार-बस्य उन पावक लोह न जान्यो ।
देखत बिपति बिषय न तजत हौं, तातें अधिक अजान्यो ॥
महामोह-सरिता अपार महँ संतत फिरत बह्यो ।
श्रीहरि-चरन-कमल नौका तजि फिरि फिरि फेन गह्यो ॥
अस्थि पुरातन छुधित स्वान अति ज्यौं भरि मुख पकर्‌यो ।
निज तालूगत रुधिर पान करि मन संतोष धर्‌यो ॥
परम कठिन भव-ब्याल-ग्रसित हौं, त्रसित भयो अति भारी ।
चाहत अभय भेक सरनागत खगपति-नाथ बिसारी ॥
जलचर बृंद जाल-अंतरगत होत सिमिटि इक पासा ।

एकहि एक खात लालच-बस, नहिं देखत निज नासा ॥
मेरे अघ सारद अनेक जुग गनत पार नहिं पावै ।
तुलसिदास पतित-पावन प्रभु यह भरोस जिय आवै ॥ 92॥

कृपा सो धौं कहाँ बिसारी राम ।
जेहि करुना सुनि श्रवन दीन-दुख धावत हौ तजि धाम ॥
नागराज निज बल बिचारि हिय हारि चरन चित दीन ।
आरत गिरा सुनत खगपति तजि चलत बिलंब न कीन ॥
दितिसुत-त्रास त्रसित निसि दिन प्रहलाद प्रतिज्ञा राखी ।
अतुलित बल मृगराज-मनुज[1]-तनु दनुज हत्यो श्रुति साखी ॥
भूप सदसि सब नृप बिलोकि प्रभु राखु कह्यो नर-नारी [2]।
बसन पूरि, अरि-दरप दूरि करि भूरि कृपा दनुजारी ॥
एक एक रिपु ते त्रासित जन तुम राखे रघुबीर ।
अब मोहि देत दुसह दुख बहु रिपु कस न हरहु भव-पीर ॥
लोभ ग्राह, दनुजेस-क्रोध, कुरुराज-बंधु खल मार ।
तुलसिदास प्रभु यह दारुन दुख भंजहु राम उदार ॥ 93॥

---

[^1] मृगराज-मनुज = नरसिंह।

[^2] नर-नारी = अर्जुन की स्त्री, द्रौपदी।

काहे ते हरि मोहिं बिसारो ।
जानत निज महिमा मेरे अघ, तदपि न नाथ सँभारो ॥
पतित-पुनीत दीनहित असरन-सरन कहत श्रुति चारो ।
हौं नहिं अधम सभीत दीन ? किधौं बेदन मृषा पुकारो ? ॥
खग-गनिका-गज-ब्याध-पाँति जहँ तहँ हौ हूँ बैठारो ।
अब केहि लाज कृपानिधान परसत पनवारो [1] टारो ॥
जो कलिकाल प्रबल अति होतो तुव निदेस ते न्यारो ।
तौ हरि रोस भरोस दोस गुन तेहि भजते तजि गारो ॥
मसक बिरंचि, बिरंचि मसक सम करहु प्रभाउ तुम्हारो ।
यह सामर्थ्य अछत मोहिं त्यागहु, नाथ तहाँ कछु चारो ॥
नाहिन नरक परत मोकहँ डर,जद्यपि हौं अति हारो ।
यह बड़ि त्रास दासतुलसी प्रभु नामहुँ पाप न जारो ॥ 94॥

तऊ न मेरे अघ अवगुन गनिहैं ।
जौ यमराज काज सब परिहरि यही ख्याल उर अनिहैं ॥
चलिहैं छूटि पुंज पापिन के असमंजस जिय जनिहैं ।

[^1] पनवारो = पत्तल गारो = गर्व या गौरव।

देखि खलल अधिकार प्रभू सों (मेरी) भूरि भलाई भनिहैं ॥
हँसि करिहैं परतीति भगत की भगत-सिरोमनि मनिहैं ।
ज्यों त्यों तुलसिदास कोसलपति अपनायहि पर बनिहैं ॥ 95॥

जौ पै जिय धरिहौ अवगुन जन के ।
तौ क्यों कटत सुकृत-नख तें मोपै बिपुल बृंद अघ-बन के ॥
कहिहै कौन कलुष मेरे कृत करम बचन अरु मन के ।
हारहिं अमित सेष सारद स्रुति गिनत एक-एक छन के ॥
जो चित चढ़ै नाम-महिमा जिन गुनगन पावन पन के ।
तो तुलसिहिं तारिहौ बिप्र ज्यों कसन तोरि जमगन के ॥ 96॥

जौ पै हरि जन के औगुन गहते ।
तौ सुरपति कुरुराज बालि सो कत हठि बैर बिसहते ?॥
जौ जप-जाग-जोग-ब्रत-बरजित केवल प्रेम न चहते ।
तौ कत सुर मुनिबर बिहाय ब्रज गोप-गेह बसि रहते ?॥
जौ जहँ तहँ प्रन राखि भगत को भजन-प्रभाउ न कहते ।
तौ कलि कठिन करम-मारग जड़ हम केहि भाँति निबहते ? ॥
जौ सुतहित लिए नाम अजामिल के अघ अमित न दहते ।

तौ जमभट साँसति-हर हम से बृषभ खोजि खोजि नहते [1]॥
जौ जग-बिदित पतित-पावन अति बाँकुर बिरद न बहते ।
तौ बहुकल्प कुटिल तुलसी से सपनेहुँ सुगति न लहते ॥ 97॥

ऐसी हरि करत दास पर प्रीति ।
निज प्रभुता बिसारि जन के बस होत सदा यह रीति ॥
जिन बाँधे सुर असुर नाग नर प्रबल करम की डोरी ।
सोइ अबिछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि बाँध्यो सकत न छोरी ॥
जाकी मायाबस बिरंचि सिव नाचत पार न पायो ।
करतल ताल बजाइ ग्वाल-जुवतिन सोइ नाच नचायो ॥
बिस्वंभर, श्रीपति, त्रिभुवन-पति बेद-बिदित यह लीख [2]।
बलि सों कछु न चली प्रभुता बरु ह्वै द्विज माँगी भीख ॥
जाको नाम लिए छूटत भव-जनम-मरन दुख-भार ।
अंबरीष हित लागि कृपानिधि सोइ जनम्यौ दस बार ॥
जोग बिराग ध्यान जप तप करि जेहि खोजत मुनि ज्ञानी ।
बानर भालु चपल पसु पाँवर, नाथ तहाँ रति मानी ॥

[^1] नहते = नाँघते, जोतते।

[^2] लीख = लकीर, पक्की बात।

लोकपाल, जम, काल, पवन, रबि, ससि सब अज्ञाकारी ।

तुलसिदास प्रभु उग्रसेन के द्वार बेंत-कर-धारी [1]॥ 98॥

बिरद गरीबनिवाज राम को ।

गावत बेद पुरान संभ सुक प्रगट प्रभाव नाम को ॥

ध्रुव, प्रहलाद, बिभीषन, कपि, जदुपति [2], पाडंव, सुदाम [3] को ।

लोक सुजस परलोक सुगति इनमें को हो राम काम को ॥

गनिका, कोल, किरात, आदि-कबि इनते अधिक बाम को ।

बाजिमेध कब कियो अजामिल, गज गायो कब साम को ॥

छली मलीन हीन सबही सँग, तुलसी सो छीन छाम को ।

नाम-नरेस-प्रताप प्रबल जग जुग जुग चालत चाम को [4]॥ 99॥

सुनि सीतापति सील सुभाउ ।

मोद न मन, तन पुलक, नयन जल, सो नर खेहर खाउ ॥

सिसुपन तें पितु मातु बंधु गुरु सेवक सचिव सखाउ ।

---

[^1] बेंत-कर-धारी = छड़ीबरदार।

[^2] जदुपति = उग्रसेन।

[^3] सुदाम = सुदामा।

[^4] चाम को चलत = चमड़े का सिक्का चलाता है।

कहत राम-बिधु-बदन रिसौहैं सपनेहुँ लख्यो न काउ ॥

खेलत संग अनुज बालक नित जोगवत अनट [1] अपाउ [2]।

जीति हारि चुचुकारि दुलारत, देत दिवावत दाउ ॥

सिला साप-संताप-बिगत भइ परसत पावन पाउ ।

दई सुगति सो न हेरि हरष हिय, चरन छुएको पछिताउ ॥

भव-धनु भंजि निदरि भूपति भृगुनाथ खाइ गये ताउ ।

छमि अपराध, छमाइ पाँइ परि, इतौ न अनत समाउ [3]॥

कह्यो राज, बन दियो नारिबस, गरि गलानि गयो राउ ।

ता कुमातु को मन जोगवत ज्यों निज तन मरम कुघाउ ॥

कपि सेवा-बस भए कनौड़े, कह्यौ, पवनसुत आउ ।

देबे को न कछू रिनियाँ हौं, धनिक तूँ पत्र लिखाउ ॥

अपनाए सुग्रीव बिभीषन, तिन न तज्यो छल-छाउ ।

भरत-सभा सनमानि सराहत होत न हृदय अघाउ ॥

निज करुना करतूति भगत पर चपत चलत चरचाउ ।

सकृत प्रनाम प्रनत-जस बरनत सुनत कहत फिरि गाउ ॥

---

[^1] अनट = अन्याय।

[^2] अपाउ = नटखटी।

[^3] समाउ = समाई, क्षमता, सहन शक्ति।

समुझि समुझि गुनग्राम राम के उर अनुराग बढ़ाउ ।

तुलसिदास अनयास रामपद पाइहै प्रेम-पसाउ [1]॥ 100॥

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे ?

काको नाम पतित-पावन जग? केहि अति दीन पियारे ?॥

कौने देव बराय [2] बिरद-हित हठि हठि अधम उधारे ?।

खग, मृग, ब्याध, पषान, बिटप, जड़, जमन कवन सुर तारे ?॥

देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब माया-बिबस बिचारे ।

तिनके हाथ दासतुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारे ?॥ 101॥

हरि! तुम बहुत अनुग्रह कीन्हो ।

साधन-धाम बिबुध दुर्लभ तनु मोहि कृपा करि दीन्हों ॥

कोटिहुँ मुख कहि जायँ न प्रभु के एक एक उपकार ।

तदपि नाथ कछु और माँगिहौं दीजै परम उदार ॥

बिषय-बारि मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक ।

तातें सहिय बिपति अति दारुन जनमत जोनि अनेक ॥

कृपा-डोरि, बंसी-पद-अंकुस, परम प्रेम-मृदु-चारो ।

---

[^1] पसाउ = प्रसाद।

[^2] बराय = चुन चुन कर।

एहि बिधि बेधि हरहु मेरो दुख, कौतुक राम तिहारो ॥
हैं स्त्रुति-बिदित उपाय सकल, सुर केहि केहि दीन निहोरै ?
तुलसिदास यहि जीव मोह-रजु जेहि बाँध्यो सोइ छोरै ॥ 102॥

यह बिनती रघुबीर गुसाई ।
और आस बिस्वास-भरोसो हरो जीव-जड़ताई ॥
चहौं न सुगति, सुमति, संपति, कछु रिधि-सिधि, बिपुल बड़ाई ।
हेतु-रहित अनुराग राम-पद बढ़ौ अनुदिन अधिकाई ॥
कुटिल करम लै जाय मोहिं जहँ जहँ अपनी बरिआई ।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़िए, कमठ-अंड की नाई ॥
या जग में जहँ लगि या तनु की प्रीति प्रतीति सगाई ।
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहिं सिमिटि एक ठाई ॥ 103॥

जानकी-जीवन की बलि जैहों ।
चित कहै रामसीय पद परिहरि अब न कहूँ चलि जैहौं ॥
उपजी उर प्रतीति सपनेहुँ सुख, प्रभु-पद बिमुख न पैहौं ।
मन समेत या तन के बासिन्ह इहै सिखावन दैहौं ॥
स्त्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं, रसना और न गैहौं ।

रोकिहौं नयन बिलोकत औरहिं, सीस ईस ही नैहौं ॥
नातो नेह नाथ सों करि सब नातो नेह बहैहौं ।
यह छर भार [1] ताहि तुलसी जग जाको दास कहैहौं ॥ 104॥

अब लौ नसानी अब न नसैहौं ।
राम-कृपा भव-निसा सिरानी जागे फिरि न डसैहौं ॥
पायो नाम चारु चिंतामनि, उर कर तें न खसैहौं ।
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहिं कसैहौं ॥
परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं ।
मन मधुकर पन करि तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं ॥ 105॥

(राग रामकली)

महाराज राम आदर्‍यो धन्य सोई ।
गरुअ, गुनरासि, सर्बज्ञ, सुकृती, सूर, सील-निधि, साधु तेहि सम न कोई ॥
कीस, केवट, उपल, भालु, निसिचर, सबरि, गीध-सम-दम दया-दान-हीने ।
नाम लिए राम किए परम-पावन सकल तरत नर तिनके गुनगान कीने ॥

---

[^1] छरभार = उत्तरदायित्व का बोझा, कामों की सँभाल।

ब्याध-अपराध की साध राखी कौन? पिंगला कौन मति भक्ति भेई [2]।

कौन धौं सोमजागी [2] अजामिल अधम? कौन गजराज धौं बाजपेई ॥

पांडु-सुत, गोपिका, बिदुर, कुबरी, सबरि सोध किए सुद्धता लेस कैसो ।

प्रेम लखि कृष्ण किए आपने तिनहुँ को, सुजस संसार हरिहर को जैसो ॥

कोल, खस, भील्ल जवनादि खल राम कहि नीच ह्वै ऊँच पद को न पायो ।

दीन-दुख-दवन श्रीरवन करुना-भवन, पतित-पावन बिरद बेद गायो ॥

मंदमति कुटिल खल-तिलक तुलसी सरिस

भो न तिहुँ-लोक तिहुँ-काल कोऊ ।

नाम की कानि पहिचानि पन आपनो

ग्रसित कलिब्याल राख्यो सरन सोऊ ॥ 106 ॥

(राग बिलावल)

है नीको मेरो देवता कोसलपति राम ।

सुभग सरोरुह-लोचन सुठि सुंदर स्याम ॥

सिय समेत सोहत सदा, छबि अमित अनंग ।

भुज बिसाल सर धनु धरे, कटि चारु निषंग ॥

---

[^2] भेई = भिगाई, डुबाई।

[^2] सोमजागी = सोम याग करनेवाला।

बलि पूजा चाहत नहीं चाहै एक प्रीति ।

सुमिरत ही मानै भलो, पावन सब रीति ॥

देइ सकल सुख, दुख दहै आरत-जन-बंधु ।

गुन गहि अघ अवगुन हरै, अस करुनासिंधु ॥

देस काल पूरन सदा, बद बेद पुरान ।

सब को प्रभु,सब मों बसै,सब की गति जान ॥

को करि कोटिक कामना पूजै बहु देव ?

तुलसिदास तेहि सेइए संकर जेहि सेव ॥ 107॥

बीर महा अवराधिए साधे सिधि होय ।

सकल काम पूरन करै जानै सब कोय ॥

बेगि, बिलंब न कीजिए, लीजै उपदेस ।

बीज महा मंत्र जपिए सोई जो जपत महेस ॥

प्रेम-बारि तर्पन भलो, घृत सहज सनेहु ।

संसय समिधि [1], अगिनि छमा, ममता बलि देहु ॥

अघ उचाटि मन बस करै, मारै मद मार ।

आकरषै सुख संपदा संतोष बिचार ॥

---

[^1] समिधि = लकड़ी।

जे यहि भाँति भजन किए मिले रघुपति ताहि ।

तुलसिदास प्रभुपथ चढ़्यौ, जौ लेहु निबाहि ॥ 108॥

कस न करहु करुना हरे! दुखहरन मुरारि!

त्रिबिध-ताप संदेह-सोक-संसय-भय-हारि ॥

एक कलिकाल-जनित मल मतिमंद मलिन-मन ।

तेहि पर प्रभु नहिं कर सँभार, केहि भाँति जियै जन ॥

सब प्रकार समरथ, प्रभो! मैं सब बिधि दीन ।

यह जिय जानि द्रवहु नहीं मै करम बिहीन ॥

भ्रमत अनेक जोनि रघुपति! पति आन न मोरे ।

दुख सुख सहौं रहौं सदा सरनागत तोरे ॥

तो सम देव न कोउ कृपालु समुझौं मन माहीं ।

तुलसिदास हरि तोषिए सो साधन नाहीं ॥ 109॥

कहु केहि कहिय कृपानिधे! भव-जनित बिपति अति ।

इंद्रिय सकल बिकल सदा, निज निज सुभाउ रति ॥

जे सुख-संपति, सरग नरक संतत सँग लागी ।

हरि परिहरि सोइ जतन करत मन मोर अभागी ॥

मै अति दीन, दयालु देव, सुनि मन अनुरागे ।

जो न द्रवहु, रघुबीर धीर! दुख काहे न लागे ॥

जद्यपि मैं अपराध-भवन, दुख-समन मुरारे ।

तुलसिदास कहँ आस इहै बहु पतित उधारे ॥ 110॥

केसव! कहि न जाइ का कहिए?।

देखत तव रचना बिचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए ॥

सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे ।

धोये मिटै न, मरै भीति-दुख, पाइय यहि तनु हेरे ॥

रबिकर-नीर [1] बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं ।

बदन-हीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं ॥

कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै [2]।

तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम सो आपन पहिचानै ॥ 111॥

केसव! कारन कौन गुसाई ।

जेहि अपराध असाध जानि मोहिं तजेहु अज्ञ की नाई ॥

---

[^1] रबिकर-नीर = मृगतृष्णा का जल।

[^2] कोउ कह ... ... मानै = न्याय, वेदांत और सांख्य के अनुसार संसार और ब्रह्म के सत्यासत्य के सिद्धांत अर्थात् नाना दार्शनिक वाद।

परम पुनीत संत कोमल-चित तिनहिं तुमहिं बनि आई ।
तौ कत बिप्र ब्याध गनिकहि तारेहु? कछु रही सगाई ॥
काल कर्म, गति अगति जीव की सब हरि हाथ तुम्हारे ।
सोइ कछु करहु रहहु ममता मम, फिरहुँ न तुमहिं बिसारे ॥
जौ तुम तजहु भजौं न आन प्रभु, यह प्रमान पन मोरे ।
मन क्रम बचन नरक सुरपुर जहँ तहँ रघुबीर निहोरे ॥
जद्यपि नाथ उचित न होत अस प्रभु सों करौं ढिठाई ।
तुलसिदास सीदत [1] निसिदिन देखत तुम्हारि निठुराई ॥ 112॥

माधव! अब न द्रवहु केहि लेखे ?
प्रनतपाल पन तोर, मोर पन जिअउँ कमलपद देखे ॥
जब लगि मै न दीन, दयालु तैं, मैं न दास, तैं स्वामी ।
तब लगि जो दुख सहेउँ कहेउँ नहिं, जद्यपि अंतरजामी ॥
तैं उदार, मैं कृपन, पतित मैं, तैं पुनीत स्रुति गावै ।
बहुत नात रघुनाथ तोहि मोहि, अब न तजे बनि आवै ॥
जनक-जननि, गुरु बंधु सुहृद पति सब प्रकार हितकारी ।
द्वैतरूप तम-कूप परौं नहिं अस कछु जतन बिचारी ॥

[^1] सीदत = दुःख पाता है।

सुनु अदभ्र-करुना, बारिज-लोचन, मोचन-भय-भारी ।
तुलसिदास प्रभु तव प्रकास बिनु संसय टरै न टारी ॥ 113॥

माधव! मो समान जग माहीं ।
सब बिधि हीन, मलीन, दीन अति लीन-बिषय कोउ नाहीं ॥
तुम सम हेतु-रहित कृपालु, आरत-हित, ईसहि त्यागी ।
मैं दुख-सोक-बिकल कृपालु! केहि कारन दया न लागी ?॥
नाहिंन कछु अवगुन तुम्हार, अपराध मोर मैं माना ।
ज्ञान-भवन तनु दिएहु नाथ! सोउ पाय न मैं प्रभु जाना ॥
बेनु करील, श्रीखंड बसंतहि दूषन मृषा लगावै ।
सार-रहित, हत-भाग्य सुरभि पल्लव सो कहु कहँ पावै ॥
सब प्रकार मैं कठिन, मृदुल हरि, दृढ़ बिचार जिय मोरे ।
तुलसिदास प्रभु मोह-शृंखला छुटिहि तुम्हारे छोरे ॥ 114॥

माधव! मोह-फाँस क्यों टूटै ?
बाहिर कोटि उपाय करिय, अभ्यंतर ग्रन्थि न छूटै ॥
घृतपूरन कराह अंतरगत ससि प्रतिबिंब दिखावै ।
ईंधन अनल लगाय कलप सत औटत नास न पावै ॥

तरु-कोटर महँ बस बिहंग, तरु काटे मरै न जैसे ।
साधन करिय बिचार-हीन मन सुद्ध होइ नहिं तैसे ॥
अंतर मलिन बिषय मन अति, तन पावन करिय पखारे ।
मरै न उरग अनेक जतन बलमीकि बिबिध बिधि मारे ॥
तुलसिदास हरि-गुरु-करुना बिनु बिमल बिबेक न होई ।
बिनु बिबेक संसार-घोर-निधि पार न पावै कोई ॥ 115॥

माधव! अस तुम्हारि यह माया ।
करि उपाय पचि मरिय, तरिय नहिं जब लगि करहु न दात्रा ॥
सुनिय, गुनिय, समुझिय, समुझाइय दसा हृदय नहिं आवै ।
जेहि अनुभव बिनु मोह-जनित दारुन भव-बिपति सतावै ॥
ब्रह्म पियूष मधुर सीतल जो पै मन सो रस पावै ।
तौ कत मृगजल रूप बिषय कारन निसि बासर धावै ॥
जेहि के भवन बिमल चिंतामनि सो कत काँच बटोरै ।
सपने परबस पर्‌यो जागि देखत केहि जाइ निहोरै ?॥
ज्ञान भगति साधन अनेक सब सत्य, झूँठ कछु नाही ।
तुलसिदास हरि-कृपा मिटै भ्रम, यह भरोस मन माहीं ॥ 116॥

हे हरि! कवन दोष तोहिं दीजै ?

जेहि उपाय सपनेहुँ दुर्लभ गति सोइ निसि-बासर कीजै ॥

जानत अर्थ [1] अनर्थ-रूप, तमकूप परब यहि लागे ।

तदपि न तजत स्वान, अज, खर ज्यो फिरत बिषय-अनुरागे ॥

भूत-द्रोह-कृत मोह-बस्य हित आपन मै न बिचारो ।

मद, मत्सर, अभिमान, ज्ञान-रिपु इन महँ रहनि अपारो ॥

बेद पुरान सुनत समुझत रघुनाथ सकल जगब्यापी ।

भेदत नहिं श्रीखंड बेनु इव सारहीन मन पापी ॥

मैं अपराध सिंधु करुनाकर ! जानत अंतरजामी ।

तुलसिदास भव-ब्याल-ग्रसित तव सरन उरग-रिपु-गामी ॥ 117॥

हे हरि ! कवन जतन सुख मानहु ?

जिमि गज-दसन तथा मम करनी सब प्रकार तुम जानहु ॥

जो कछु कहिय करिय भवसागर तरिय बत्सपद जैसे ।

रहनि आन बिधि, कहिय आन, हरिपद सुख पाइय कैसे ॥

देखत चारु मयूर बयन-सुभ, बोलि सुधा इव सानी ।

सबिष उरग-आहार निठुर अस, यह करनी वह बानी ॥

---

[^1] अर्थ = इंद्रियों के विषय।

अखिल-जीव-वत्सल निर्मत्सर चरन-कमल-अनुरागी ।

ते तव प्रिय रघुबीर! धीरमति अतिसय निज-पर त्यागी ॥

जद्यपि मम अवगुन अपार संसार-जोग्य रघुराया ।

तुलसिदास निज गुन बिचारि करुनानिधान करु दाया ॥ 118॥

हे हरि ! कवन जतन भ्रम भागै ?

देखत सुनत बिचारत यह मन निज सुभाव नहिं त्यागै ॥

भगति, ज्ञान, बैराग्य सकल साधन यहि लागि उपाई ।

कोउ भल कहउ, देउ कछु कोऊ, असि बासना न उर तें जाई ॥

जेहि निसि सकल जीव सूतहिं तव कृपापात्र जन जागै ।

निज करनी बिपरीत देखि मोहिं समुझि महा भय लागै ॥

जद्यपि भगन-मनोरथ बिधि-बस सुख इच्छत दुख पावै ।

चित्रकार करहीन जथा स्वारथ बिनु चित्र बनावै ॥

हृषीकेश सुनि नाउँ जाउँ बलि, अति भरोस जिय मोरे ।

तुलसिदास इंद्रिय-संभव दुख हरे बनिहिं प्रभु तोरे ॥ 119॥

हे हरि ! कस न हरहु भ्रम भारी ?

जद्यपि मृषा सत्य भासै जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी ॥

अर्थ [1] अबिद्यमान जानिय संसृति नहिं जाइ गोसाई ।
बिन बाँधे निज हठ सठ परबस पर्‌यो कीर की नाई ॥
सपने ब्याधि बिबिध बाधा भइ, मृत्यु उपस्थित आई ।
बैद अनेक उपाय करहिं, जागे बिनु पीर न जाई ॥
स्रुति-गुरु-साधु-सुमृति-संमत यह दृश्य असत दुखकारी ।
तेहि बिनु तजे, भजे बिनु रघुपति बिपति सकै को टारी ?॥
बहु उपाय संसार-तरन कहँ बिमल गिरा स्रुति गावै ।
तुलसिदास 'मैं मोर' गए बिनु जिउ सुख कबहुँ न पावै ॥ 120॥

हे हरि ! यह भ्रम की अधिकाई ।
देखत सुनत कहत समुझत संसय संदेह न जाई ॥
जो जग मृषा, ताप-त्रय-अनुभव होहिं कहहु केहि लेखे ।
कहि न जाय मृगबारि सत्य, भ्रम तें दुख होइँ बिसेखे ॥
सुभग सेज सोवत सपने, बारिधि बूड़त भय लागै ।
कोटिहुँ नाव न पार पाव कोउ जब लगि आपु न जागै ॥
अनबिचार रमनीय सदा, संसार भयंकर भारी ।
सम संतोष दया बिबेक तें व्यवहारी सुखकारी ॥

[^1] अर्थ = इंद्रियों के विषय।

तुलसिदास सब बिधि-प्रपंच जग जदपि झूठ स्रुति गावै ।
रघुपति-भगति संत-संगति बिनु को भव-त्रास नसावै ॥ 121॥

मै हरि, साधन करइ न जानी ।
जस आमय भेषज न कीन्ह तस, दोष कहा दिरमानी [1]॥
सपने नृप कहँ घटै बिप्र-बध, बिकल फिरै अघ लागे ।
बाजिमेध सत कोटि करै नहिं सुद्ध होइ बिनु जागे ॥
स्रग महँ सर्प बिपुल भयदायक प्रगट होइ अबिचारे ।
बहु आयुध धरि, बल अनेक करि हारहिं, मरै न मारे ॥
निज भ्रम ते रबिकर-सम्भव सागर अति भय उपजावै ।
अवगाहत बोहोत नौका चढ़ि कबहुँ पार न पावै ॥
तुलसिदास जग आपु सहित जब लगि निर्मूल न जाई ।
तब लगि कोटि कलप उपाय करि मरिय, तरिय नहिं भाई ॥ 122॥

अस कछु समुझि परत, रघुराया !
बिनु तव कृपा दयालु दास-हित मोह न छूटै माया ॥
बाक्य-ज्ञान अत्यंत निपुन भव-पार न पावै कोई ।

---

[^1] दिरमानी = वैद्य।

निसि गृह मध्य दीप की बातन तम निबृत नहिं होई ॥
जैसे कोइ इक दीन दुखित अति असन-हीन दुख पावै ।
चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह लिखे न बिपति नसावै ॥
षट रस बहु प्रकार भोजन कोउ दिन अरु रैनि बखानै ।
बिनु बोले संतोष-जनित सुख खाइ सोइ पै जानै ॥
जब लगि नहिं निज हृदि प्रकास, अरु बिषय-आस मन माहीं ।
तुलसिदास तब लगि जग-जोनि भ्रमत सपनेहुँ सुख नाहीं ॥ 123 ॥

जौ निज मन परिहरै बिकारा ।
तौ कत द्वैत-जनित संसृति-दुख, संसय, सोक अपारा ॥
सत्रु मित्र मध्यस्थ तीनि ये मन कीन्हे बरिआई ।
त्यागन गहब उपेच्छनीय अहि हाटक तृन की नाई ॥
असन, बसन, बसु [1], बस्तु बिबिध बिधि सब मनि महँ रह जैसे ।
सरग, नरक, चर अचर लोक बहु बसत मध्य मन तैसे ॥
बिटप मध्य पुत्रिका [2], सूत्र महँ कंचुकि बिनहिं बनाए ।
मन महँ तथा लीन नाना तनु, प्रगटत अवसर पाए ॥

---

[^1] बसु = धन।

[^2] पुत्रिका = पुतली।

रघुपति-भगति-बारि-छालित[1]-चित बिनु प्रयास ही सूझै ।
तुलसिदास कह चिद-बिलास जग बूझत बूझत बूझै ॥ 124॥

मै केहि कहौं बिपति अति भारी । श्रीरघुबीर धीर हितकारी ॥
मम हृदय भवन प्रभु तोरा । तहँ बसे आइ बहु चोरा ॥
अति कठिन करहिं बरजोरा । मानहिं नहिं बिनय निहोरा ॥
तम, मोह, लोभ, अहँकारा । मद, क्रोध, बोध-रिपु, मारा ॥
अति करहिं उपद्रव नाथा । मरदहिं मोहि जानि अनाथा ॥
मैं एक, अमित बटपारा । कोउ सुनै न मोर पुकारा ॥
भागेहु नहि नाथ उबारा । रघुनायक, करहु सँभारा ॥
कह तुलसिदास सुनु रामा । लूटहिं तस्कर तव धामा ॥
चिंता यह मोहिं अपारा । अपजस नहिं होइ तुम्हारा ॥ 125॥

मन मेरे मानहि सिख मेरी । जो निजु भगति चहै हरि केरी ॥
उर आनहि प्रभु-कृत हित जेते । सेवहि ते जे अपनपौ, चेते ॥
दुख सुख अरु अपमान बड़ाई । सब सम लेखहिं बिपति बिहाई ॥
सुनु सठ काल-ग्रसित यह देही । जनि तेहि लागि बिदूषहि केही ॥

[^1] छालित = प्रक्षालित, धोया हुआ।

तुलसिदास बिनु असि मति आयै । मिलहिं न राम कपट-लय लाये ॥ 126॥

मै जानी हरिपद-रति नाहीं । सपनेहु नहि बिराग मन माहीं ॥
जे रघुबीर चरन अनुरागे । तिन्ह सब भोग रोग-सम त्यागे ॥
काम, भुजंग डसत जब जाहीं । बिषय-नींब कटु लगत न ताही ॥
असमंजस अस हृदय बिचारी । बढ़त सोच नित नूतन भारी ॥
जब कब राम-कृपा दुख जाई । तुलसिदास नहिं आन उपाई ॥ 127 ॥

सुमिरु सनेह-सहित सीतापति । रामचरन तजि नहिंन आन गति ॥
जप, तप, तीरथ, जोग, समाधी । कलि मति बिकल,न कछु निरुपाधी ॥
करतहुँ सुकृत न पाप सिराहीं । रकतबीज जिमि बाढ़त जाहीं ॥
हरति एक अघ-असुर-जालिका । तुलसिदास प्रभु-कृपा-कालिका ॥ 128॥

रुचिर रसना तू राम राम राम क्यों न रटत ।
सुमिरत सुख सुकृत बढ़त, अघ अमंगल घटत ॥
बिनु स्रम कलि-कलुष-जाल कटु कराल कटत ।
दिनकर के उदय जैसे तिमिर-तोम फटत ॥
जोग, जाग, जप, बिराग, तप, सुतीरथ अटत ।
बाँधिबे को भव-गयंद रेनु की रजु बटत ॥

परिहरि सुर-मनि सुनाम गुंजा लखि लटत [1]।

लालच लघु तेरो लखि तुलसि तोहि हटत [2]॥ 129॥

राम, राम, राम, राम, राम, राम, जपत ।

मंगल मुद उदित होत, कलि-मल-छल छपत ॥

कहु के लहे फल रसाल बबुर-बीज बपत ।

हाहरि जनि जनम जाय गाल-गूल [3] गपत [4]॥

काल, करम, गुन, सुभाव सबके सीस तपत ।

राम-नाम-महिमा की चरचा चले चपत ॥

साधन बिनु सिद्धि सकल बिकल लोग लपत [5]।

कलिजुग बर बनिज बिपुल नाम-नगर खपत ॥

नाम सो प्रतीति-प्रीति हृदय सुथिर थपत ।

---

[^1] लटत = ललचाता है।

[^2] हटत = हटकता है, मना करता है (कि ऐसा मत कर)।

[^3] गाल गूल = अनाप शनाप, व्यर्थ की बात।

[^4] गपत = गप मारते हुए, बकते हुए।

[^5] लपत = लपकते है।

पावन किय रावन-रिपु तुलसिहु से अपत [6]॥ 130॥

पावन प्रेम-राम-चरन जनम लाहु परम ।
रामनाम लेत होत सुलभ सकल धरम ॥
जोग, मख, बिबेक बिरत बेद-बिहित करम ।
करिबे कहँ कटु कठोर, सुनत मधुर नरम ॥
तुलसी सुनि जानि बूझि भूलहि जनि भरम ।
तेहि प्रभु को होहि जाहि सबही की सरम ॥ 131॥

राम से प्रीतम की प्रीति-रहित जीव जाय जियत ।
जेहि सुख सुख मानि लेत सुख सो समुझ कियत [2]॥
जहँ जहँ जेहि जोनि जनम महि पताल बियत [3]।
तहँ-तहँ तू बिषय-सुखहिं चहत, लहत नियत ॥
कत बिमोह लट्यो फट्यो गगन मगन सियत ।
तुलसी प्रभु-सुजस गाइ क्यों न सुधा पियत ॥ 132॥

---

[^6] अमत = पति-हीन, गया बीता।

[^2] कियत = कितना है।

[^3] बियत = आकाश।

तोसो हौं फिरि फिरि हित सत्य बचन कहत ।

सुनि मन गुनि समुझि क्यों न सुगम सुमग गहत ॥

छोटो बड़ो,खोटो खरो जग जो जहँ रहत ।

अपनो अपने को भलो कहहु को न चहत ?॥

बिधि लगि लघु कीट अवधि सुख सुखी, दुख दहत ।

पसु लौं पसुपाल ईस बाँधत छोरत नहत ॥

बिषय मुद निहारि भार सिर ज्यों काँधे बहत ।

योहीं जिय जानि मानि सठ तू साँसति सहत ॥

पायो केहि घृत बिचारु हरिन-बारि [1] महत [2]।

तुलसी तकु ताहि सरन जाते सब लहत ॥ 133॥

ताते हौं बार बार देव! द्वार परि पुकार करत ।

आरति नत दीनता कहे प्रभु संकट हरत ॥

लोकपाल सोक-बिकल रावन-डर डरत ।

का सुनि सकुचे कृपालु नर-सरीर धरत ॥

कौसिक, मुनि-तीय, जनक सोच-अनल जरत ।

---

[^1] हरिनबारि = मृगतृष्णा का जल।

[^2] मथत = मथते हुए।

साधन केहि सीतल भये सो न समुझि परत ॥

केवट, खग, सबरि सहज चरनकमल न रत ।

सनमुख तोहिं होत नाथ कुतरु सुफर फरत ॥

बंधु-बैर कपि बिभीषन गुरु गलानि गरत ।

सेवा केहि रीझि राम किए सरिस भरत ?॥

सेवक भयो पवनपूत साहिब अनुहरत ।

ताको लिए नाम राम सबको सुढर ढरत ॥

जाने बिनु राम-रीति पचि पचि जग मरत ।

परिहरि छल सरन गए तुलसिहु से तरत ॥ 134 ॥

(राग सुहो बिलावल)

राम सनेही सों तैं न सनेह कियो ।

अगम जो अमरनि हूँ सो तनु तोहिं दियो ॥

दियो सुकुल जनम सरीर सुंदर हेतु जो फल चारि को ।

जो पाइ पंडित परमपद पावत पुरारि मुरारि को ॥

यह भरतखंडसमीप सुरसरि, थल भली, संगति भली ।

तेरी कुमति बायर कलप-बल्ली चहति बिष-फल फली ॥

अजहूँ समुझि चित दै सुनु परमारथ ।

है हित सो जगहूँ जाहि तें स्वारथ ॥

स्वारथहि प्रिय, स्वारथ सो काते, कौन बेद बखानई ।

देखु खल, अहि-खेल परिहरि सो प्रभुहि पहिचानाई ॥

पितु,मातु गुरु, स्वामी, अपनपो, तिय, तनय, सेवक, सखा ।

प्रिय लगत जाके प्रेम सों बिनु हेतु हित नहिं तैं लखा ॥

दूरि न सो हितू हेरि हिये ही है ।

छलहि छाँड़ि सुमिरे छोह किए ही है ।

किए छोह छाया कमल कर की भगतपर भजतहि भजे ।

जगदीस जीवन जीव को जो साज सब सबको सजै ॥

हरिहि हरिता, बिधिहि बिधिता, सिवहि सिवता जो दई ।

सोइ जानकी-पति मधुर मूरति मोदमय मंगल मई ॥

ठाकुर अतिहि बड़ो सील सरल सुठि ।

ध्यान-अगम सिव हू,भेट्यो केवट उठि ॥

भरि अंक भेट्यो सजल नयन सनेह सिथिल सरीर सों ।

सुर सिद्ध मुनि कबि कहत कोउ न प्रेमप्रिय रघुबीर सो ।

खग सबरि निसिचर भालु कपि किए आपु तें बंदित बड़े ।
तापर तिनकी सेवा सुमिरि जिय जात जनु सकुचनि गड़े ॥

स्वामीको सुभाव कह्यो सो जब उर आनिहै ।
सोच सकल मिटिहैं, राम भलो मन मानिहैं ॥
भलो मानिहैं रघुनाथ जोरि जो हाथ माथो नाइहै ।
ततकाल तुलसीदास जीवन जनम को फल पाइहै ॥
जपि नाम करहि प्रनाम कहि गुन-ग्राम,रामहिं धरि हिये ।
बिचरहि अवनि अवनीस-चरन-सरोज मन मधुकर किये ॥ 135॥

जिव जब तें हरि तें बिलगान्यो । तब ते देह गेह निज जान्यो ॥
मायाबस सरुप बिसरायो । तेहि भ्रम तें दारुन दुख पायो ॥
पायो जो दारुन दुसह दुख, सुख-लेस सपनेहुँ नहिं मिल्यो ।
भव-सूल सोक अनेक जेहि तेहि पंथ तू हठि हठि चल्यौ ॥
बहु जोनि जन्म जरा बिपति, मतिमंद हरि जान्यो नहीं ।
श्रीराम बिनु बिश्राम मूढ़! बिचारि लखि पायो कहीं ॥

आनँद-सिंधु-मध्य तव बासा । बिनु जाने कस मरसि पियासा ॥
मृग-भ्रम-बारि सत्य जिय जानी । तहँ तू मगन भयो सुख मानी ॥

तहँ मगन मज्जसि पान करि त्रयकाल जल नाहीं जहाँ ।

निज सहज अनुभव रूप तव खल भूलि अब आयो तहाँ ॥

निर्मल निरंजन निर्विकार उदार सुख तैं परिहर्‌यो ।

निःकाज राज बिहाय नृप इव स्वप्न कारागृह पर्‌यो ॥

तैं निज करम-डोरि दृढ़ कीन्हीं । अपने करनि गाँठि गहि दीन्हीं ॥

ताते परबस पर्‌यो अभागे । ता फल गर्भ-बास-दुख आगे ॥

आगे अनेक समूह संसृति, उदरगत जान्यो सोऊ ।

सिर हेठ [1], ऊपर चरन, संकट बात नहिं पूछै कोऊ ॥

सोनित पुरीष जो मूत्र मल कृमि कर्दमावृत सोवही ।

कोमल सरीर, गँभीर बेदन, सीस धुनि-धुनि रोवहीं ॥

तू निज करम-जाल जहँ घेरो । श्रीहरि संग तज्यो नहिं तेरो ॥

बहुबिधि प्रतिपालन प्रभु कीन्हों । परम कृपालु ज्ञान तोहि दीन्हों ॥

तोहि दियो ज्ञान-बिबेक जन्म अनेक की तब सुधि भई ।

तेहि ईस की हौं सरन जाकी बिषम माया गुनमई ॥

जेहि किए जीव निकाय बस रस हीन दिन दिन अति नई ।

[^1] हेठ = नीचे।

सो करौ बेगि सँभारि श्रीपति बिपति महँ जेहि मति दई ॥

पुनि बहुबिधि गलानि जिय मानी । अब जग जाइ भजौं चक्रपानी ॥
ऐसेहि करि बिचार चुप साधी । प्रसव-पवन प्रेरेउ अपराधी ॥
प्रेर्‌यो जो परम प्रचंड मारुत कष्ट नाना तैं सह्यो ।
सो ज्ञान ध्यान बिराग अनुभव जातना-पावक दह्यो ॥
अति खेद ब्याकुल अल्प बल छिन एक बोलि न आवई ।
तव तीव्र कष्ट न जान कोउ सब लोग हर्षित गावई ॥

बाल-दसा जेते दुख पाए । अति अनीस [1] नहिं जायँ गनाए ॥
छुधा ब्याधि ब्याधा भइ भारी । बेदन नहिं जानै महतारी ॥
जननी न जानै पीर सो केहि हेतु सिसु रोदन करै ।
सोइ करै बिबिध उपाय जातें अधिक तुव छाती जरै ॥
कौमार, सैसव अरु किसोर अपार अघ को कहि सकै ।
ब्यतिरेक [2] तोहि निर्दय! महाखल! आन कहु को सहि सकै ?॥

जोबन जुवती-सँग रँग रात्यो । तब तू महा मोह मद मात्यो ॥

---

[^1] अनीस = अनाथ।

[^2] ब्यतिरेक = सिवाय।

ताते तजी धर्म मरजादा। बिसरे तब सब प्रथम बिषादा ॥

बिसरे बिषाद निकाय-संकट समुझि नहिं फाटत हियो ।

फिरि गर्भगत-आवर्त संृसति-चक्र जेहि होइ सोइ कियो ॥

कृमि-भस्म-बिट[1]-परिनाम तनु तेहि लागि जग बैरी भयो ।

परदार परधन द्रोहपर संसार बाढ़ै नित नयो ॥

देखत ही आई बिरुधाई। जो तैं सपनेहुँ नाहिं बुलाई ॥

ताके गुन कछु कहे न जाहीं। सो अब प्रगट देखु तनु माहीं ॥

सो प्रगट तनु जर्जर जराबस ब्याधि सूल सतावई ।

सिर-कंप, इन्द्रिय-सक्ति प्रतिहत बचन काहु न भावई ॥

गृहपाल [2] हू तें अति निरादर, खान, पान न पावई ।

ऐसिहु दसा न बिराग, तहँ तृष्णा तरंग बढ़ावई ॥

कहि को सकै महा भव [3] तेरे। जनम एक के कछुक गने रे ॥

खानि चारि [4] संतत अवगाही। अजहुँ न करु बिचार मन माहीं ॥

---

[^1] विट = विष्ठा।

[^2] गृहपाल = कुत्ता।

[^3] भव = जन्म।

[^4] खानि चारि = स्वेदज, अंडज, पिंडज, ऊष्मज – ये चार प्रकार के जीव।

अजहुँ बिचारि बिकार तजि भजु राम जन-सुखदायकं ।
भवसिंधु दुस्तर जलरथं भजु चक्रधर सुर-नायकं ॥
बिनु हेतु करुनाकर उदार अपार-माया तारनं ।
कैवल्य-पति, जगपति, रमापति, प्रानपति, गतिकारनं ॥

रघुपति-भगति सुलभ सुखकारी । सो त्रयताप-सोक-भय-हारी ॥
बिनु सतसंग भगति नहिं होई । ते तब मिलै द्रवै जब सोई ॥
जब द्रवै दीनदयालु राघव साधु-संगति पाइए ।
जेहि दरस-परस-समागमादिक पापरासि नसाइए ॥
जिन्हके मिले सुख-दुख समान, अमानतादिक गुन भए ।
मद मोह लोभ बिषाद क्रोध सुबोध तें सहजहि गए ॥

सेवत साधु द्वैत-भय भागे । श्रीरघुबीर-चरन लय लागे ॥
देह-जनित विकार सब त्यागे । तब फिरि निज स्वरूप अनुरागे ॥
अनुराग सो निज रूप जो जग तें बिलच्छन देखिए ।
सन्तोष सम सीतल सदा दम देहवंत न लेखिए ॥
निर्मल निरामय एकरस, तेहि हर्ष-सोक न ब्यापई ।
त्रैलोक्य-पावन सो सदा जाकी दसा ऐसी भई ॥

जो तेहि पंथ चलै मन लाई । तौ हरि काहे न होहिं सहाई ।

जो मारग स्नुति-साधु दिखावै । तेहि पथ चलत सबै सुख पावै ॥

पावै सदा सुख हरि-कृपा, संसार-आसा तजि रहै ।

सपनेहुँ नहीं सुख द्वैत दरसन, बात कोटिक को कहै ॥

द्विज देव गुरु हरि संत बिनु संसार पार न पावई ।

यह जानि तुलसीदास त्रासहरन रमापति गावई ॥ 136॥

(राग बिलावल)

जोपै कृपा रघुपति कृपालु की बैर और के कहा सरै ।

होइ न बाँको बार भगत को जो कोउ कोटि उपाय करै ॥

तकै नीच जो मीच साधु की सोइ पामर तेहि मीच मरै ॥

बेद-बिदित प्रहलाद कथा सुनि को न भगति-पथ पाउँ धरै ? ॥

गज उधारि हरि थप्यो बिभीषन, ध्रुव अबिचल कबहूँ न टरै ।

अंबरीष की साप सुरति करि अजहुँ महामुनि ग्लानि गरै ॥

सों न कहा जो कियो सुजोधन, अबुध आपने मान जरै ।

प्रभु-प्रसाद सौभाग्य बिजय-जस, पांडु-तनय बरिआइँ बरै ॥

जो जो कूप खनैगो पर कहँ, सो सठ फिरि तेहि कूप परै ।

सपनेहुँ सुख न संतद्रोही कहँ, सुरतरु सोउ बिष-फरनि फरै ॥

है काके द्वै सीस ईस के जौ हठि जन की सीम चरै ?
तुलसिदास रघुबीर-बाहुबल सदा अभय काहु न डरै ॥ 137॥

कबहुँ सो कर-सरोज रघुनायक धरिहौ, नाथ! सीस मेरे ।
जेहि कर अभय किए जन आरत बारक बिबस नाम टेरे ॥
जेहि कर-कमल कठोर संभुधन भंजि जनक-संसय मेट्यो ।
जेहि कर-कमल उठाइ बंधु ज्यों परम प्रीती केवट भेंट्यो ॥
जेहि कर-कमल कृपालु गीध कहँ पिंडोदक दै धाम दियो ।
जेहि कर बालि बिदारि दास-हित, कपिकुल-पति सुग्रीव कियो ॥
आयो सरन सभीत बिभीषन जेहि कर-कमल तिलक कीन्हों ।
जेहि कर गहि सर चाप असुर हति अभयदान देवन दीन्हों ॥
सीतल सुखद छाँह जेहि कर की मेटति पाप, ताप, माया ।
निसि बासर तेहि कर-सरोज की चाहत तुलसिदास छाया ॥ 138॥

दीनदयालु दुरित दारिद दुख दुनी [1] दुसह तिहुँ ताप तई है ।
देव-दुआर पुकारत आरत सबकी सब सुख-हानि भई है ॥
प्रभु के बचन बेद-बुध सम्मत मम मूरति महिदेव-मई है ।

[^1] दुनी = दुनिया।

तिन्हकी मति रिस,-राग, मोह, मद, लोभ लालची लीलि लई है ॥
राज-समाज कुसाज कोटि कटु कल्पत कलुष कुचाल नई है ।
नीति प्रतीति प्रीति परमिति पति हेतु-बाद [1] हठि हेरि हई है ॥
आस्रम-बरन-धरम-बिरहित जग लोक-बेद-मरजाद गई है ।
प्रजा पतित पाखंड पापरत, अपने अपने रंग रई है [2]॥
सांति सत्य सुभ रीति गई घटि, बढ़ी कुरीति कपट-कलई है ।
सीदत साधु, साधुता सोचति, खल बिलसत, हुलसति खलई है ॥
परमारथ स्वारथ-साधन भए अफल सफल, नहिं सिद्धि सई है [3]।
कामधेनु-धरनी कलि-गोमर-बिबस बिकल, जामति न बई है ॥
कलि-करनी बरनिए कहाँ लौं करत फिरत बिनु टहल टई है [4]।
तापर दाँत पीसि कर मींजत, को जानै चित कहा ठई है ॥
त्यों त्यों नीच चढ़त सिर ऊपर ज्यों ज्यों सीलबस ढील दई है [5]।

---

[^1] हेतुवाद = तर्क।

[^2] रई है = रंगी है, मग्न है।

[^3] सिद्धि सई = सिद्धि और सार।

[^4] बिनु टहल टई = बिना काम का काम।

[^5] ढील दई है = जाने देते है, छोड़ देते है, ध्यान नहीं देते है, रोक टोक नहीं करते है।

सरुष बरजि तरजिए तरजनी, कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जई [6] है ॥
दीजै दादि देखि नातो बलि [2], मही-मोद-मंगल-रितई [3] है ।
भरे भाग अनुराग लोग कहैं राम अबध [4] चितवनि चितई है ॥
बिनती सुनि सानंद हेरि हँसि, करुना-बारि भूमि भिजई है ।
राम-राज भयो काज सगुन सुभ, राजा राम जगत-बिजई है ॥
समरथ बड़ो सुजान सुसाहब सुकृत-सेन हारत जितई है ।
सुजन सुभाव सराहत सादर अनायास साँसति बितई है ॥
उथपे-थपन, उजारि बसावन, गई बहोर बिरद सदई [5] है ।
तुलसी प्रभु आरत-आरतिहर अभयबाँह केहि केहि न दई है ॥139॥

ते नर नरकरूप जीवत जग भव-भंजन-पद, बिमुख अभागी ।
निसि बासर रुचि पाप, असुचि मन, खल मति-मलिन, निगमापथ-त्यागी ॥
नहिं सतसंग भजन नहिं हरि को स्रवन न राम-कथा अनुरागी ।

---

[^6] जई = फल का अंकुर।

[^2] नातो बलि = बलि से आपने पृथ्वी दान में ली है, इससे उसकी देखभाल रखनी चाहिए।

[^3] रितई = खाली की हुई, रहित की हुई।

[^4] अबध = अबाध्या।

[^5] सदई = सदैव।

सुत-बित-दार-भवन-ममता-निसि सोवत अति, न कबहुँ मति जागी ॥
तुलसिदास हरि-नाम-सुधा तजि सठ हठि पियत बिषय-बिष माँगी ।
सूकर स्वान सृगाल सरिस जन जनमत जगत जननि-दुख लागी ॥ 140॥

रामचंद्र रघुनायक! तुम सो हौं बिनती केहि भाँति करौं ।
अघ अनेक अवलोकि आपने अनघ नाम अनुमानि डरौं ॥
पर-दुख दुखी, सुखी पर-सुख तें संत-सील नहिं हृदय धरौं ।
देखि आन की बिपति परम सुख, सुनि संपति बिनु आगि जरौं ॥
भक्ति, बिराग, ज्ञान साधन कहि बहु बिधि डहँकत लोग फिरौं ।
सिव-सर्बस सुखधाम नाम तव, बेंचि नरकप्रद उदर भरौं ॥
जानत हूँ निज पाप जलधि जिय जल-सीकर सम सुनत लरौं ।
रज सम पर अवगुन सुमेरु करि गुन-गिरि-सम रज तें निदरौं ॥
नाना बेष बनाय दिवस निसि पर-बित जेहि तेहि जुगुति हरौं ।
एकौ पल न कबहुँ अलोल-चित हित दै पद-सरोज सुमिरौं ॥
जो आचरन बिचारहु मेरो कलप कोटि लगि अवटि [1] मरौं ।
तुलसिदास प्रभु-कृपा-बिलोकनि गोपद ज्यों भवसिंधु तरौं ॥ 141॥

---

[^1] अवटि = भरम कर, चक्कर खाकर।

सकुचत हौं अति, राम कृपानिधि! क्यों करि बिनय सुनावौं ?

सकल धरम बिपरीत करत, केहि भाँति नाथ! मन भावौ ?॥

जानत हूँ हरि रूप चराचर मैं हठि नयन न लावौं ।

अंजन-केस[1]-सिखा जुवती तहँ लोचन-सलभ पठावौं ॥

स्रवनन को फल कथा तिहारी यह समुझौं,समुझावौं ।

तिन्ह स्रवननि परदोष निरंतर सुनि सुनि भरि भरि तावौं [2]॥

जेहि रसना गुन गाइ तिहारे बिनु प्रयास सुख पावौं ।

तेहि मुख पर-अपवाद भेक ज्यों रटि रटि जनम नसावौं ॥

'करहु हृदय अति बिमल बसहिं हरि', कहि कहि सबहिं सिखावौं ।

हौं निज उर अभिमान-मोह-मद खल-मंडली बसावौं ॥

जो तनु धरि हरिपद साधहिं जन सो बिनु काज गँवावौं ।

हाटक घट भरि धर्‌यो सुधा गृह तजि नभ कूप खनावौं ॥

मन क्रम बचन लाइ कीन्हे अघ ते करि जतन दुरावौं ।

पर-प्रेरित इरषा-बस कबहुँक किय कछु सुभ,सो जनावौं ॥

बिप्र-द्रोह जनु बाँट पर्‌यो [3], हठि सब सों बैर बढ़ावौ ।

---

[^1] अंजन-केस = दीपक।

[^2] तावौं = मूँदता हूँ, बन्द करके यत्न से रखता हूँ।

[^3] बाँट पर्‌यो = मेरे हिस्से में आया है।

ताहू पर निज मति-बिलास [1] सब संतन माँझ गनावौं ॥

निगम, सेष, सादर निहोरि जो अपने दोष कहावौं ।

तौ न सिराहिं कलप सत लगि, प्रभु, कहा एक मुख गावौं ॥

जो करनी आपनी बिचारौं तौं कि सरन हौं आवौं ।

मृदुल सुभाव सील रघुपति को, सो बल मनहिं दिखावौं ॥

तुलसिदास प्रभु सो गुन नहिं जेहि सपनेहुँ तुमहिं रिझावौं ।

नाथ-कृपा भवसिंधु धेनुपद सम जो जानि सिरावौं ॥ 142॥

सुनहु राम रघुबीर गुसाई! मन अनीति-रत मेरो ।

चरन-सरोज बिसारि तिहारे निसि दिन फिरत अनेरो [2]॥

मानत नाहिं निगम-अनुसासन, त्रास न काहू केरो ।

भूल्यो सूल कर्म-कोल्हुन तिल ज्यों बहु बारनि पेरो ॥

जहँ सतसंग कथा माधव की सपनेहुँ करत न फेरो ।

लोभ-मोह-मद-काम-क्रोध-रत तिन्ह सों प्रेम घनेरो ॥

पर-गुन सुनत दाह, पर-दूषन सुनत हर्ष बहुतेरो ।

---

[^1] मति-बिलास = मन की मौज से।

[^2] अनेरो = व्यर्थ।

आप पाप को नगर बसावत, सहि न सकत पर खेरो [3]॥

साधन-फल, स्रुति-सार नाम तव, भव-सरिता कहँ बेरो ।

सो पर कर काँकिनी [2] लागि सठ, बेंचि होत हठि चेरो ॥

कबहुँक हौं संगति-प्रभाव तें जाउँ सुमारग नेरो ।

तब करि क्रोध संग कुमनोरथ देत कठिन भट-भेरो ॥

इक हौं दीन मलीन हीनमति बिपति-जाल अति घेरो ।

तापर सहि न जाय करुनानिधि मन को दुसह दरेरो ॥

हारि पर्‌यो करि जतन बहुत बिधि, तातें कहत सबेरो ।

तुलसिदास यह त्रास मिटै जब हृदय करहु तुम डेरो ॥ 143॥

सो धौ को जो नाम-लाज ते, नहिं राख्यो रघुबीर ?

कारुनीक बिनु कारन ही हरि, हरौ सकल भव-भीर ॥

बेद-बिदित जग-बिदित अजामिल बिप्रबंधु [3] अघ-धाम ।

घोर जमालय जात निवार्‌यो सुत-हित सुमिरत नाम ॥

पसु पाँवर अभिमान-सिंधु गज ग्रस्यो आइ जब ग्राह ।

---

[^3] खेरो = खेड़ा, गाँव।

[^2] काँकिनी = कौड़ी।

[^3] बिप्रबंधु = नीच ब्राह्मण।

सुमिरत सकृत सपदि आये प्रभु हर्‌यो दुसह उर-दाह ॥
ब्याध, निषाद, गीध, गनिकादिक, अगनित अवगुन-मूल ।
नाम ओट तें राम सबनि की दूरि करी सब सूल ॥
केहि आचरन घाटि हौं तिन्ह तें, रघुकुल-भूषन भूप ।
सीदत तुलसिदास निसि बासर पर्‌यो भीम तम-कूप ॥ 144॥

कृपासिंधु! जन दीन दुवारे दादि न पावत काहे ।
जब जहँ तुमहिं पुकारत आरत तहँ तिन्हके दुख दाहे ॥
गज, प्रहलाद, पांडुसुत, कपि सब के रिपु-संकट मेट्यो ।
प्रनत बंधु-भय-बिकल बिभीषन उठि सो भरत ज्यों भेट्यो ॥
मैं तुम्हरो लै नाम ग्राम इक उर आपने बसावौं ।
भजन, बिबेक, बिराग लोग भले करम करम करि [1] ल्यावौं ॥
सुनि रिस भरे कुटिल कामादिक करहिं जोर बरिआई ।
तिन्हहिं उजारि नारि अरि धन पुर राखहिं राम गुसाईं ॥
सम सेवा छल दान दंड हौं रचि उपाय पचि हार्‌यो ।
बिनु कारन के कलह बड़ो दुख, प्रभु सों प्रगटि पुकार्‌यो ॥

[^1] करम करम करि = क्रम क्रम से, धीरे धीरे।

सुर स्वारथी, अनीस [2], अलायक 3[], निठुर, दया चित नाहीं ।

जाउँ कहाँ, को बिपति-निवारक भव-तारक जग माही ? ॥

तुलसी जदपि पोच तउ तुम्हरो, और न काहु केरो ।

दीजै भगति-बाँह बैरक [3] ज्यों, सुबस बसै अब खेरो ॥ 145॥

हौं सब बिधि राम रावरो चाहत भयो चेरो ।

ठौर ठौर साहबी होति है ख्याल काल-कलि केरो ॥

काल कर्म इंद्रिय-बिषय गाहकगन घेरो ।

हौं न कबूलत बाँधि कै मोल करत करेरो ॥

बंदि-छोर तेरो नाम है, बिरुदैत बड़ेरो ।

मैं कह्यो तब छल-प्रीति कै माँगें उर डेरो ॥

नाम-ओट अब लगि बच्यो मलजुग [4] जग जेरो [5]।

अब गरीब जन पोषिए, पाइबो न हेरो ॥

---

[^2] अनीस = अच्छे स्वामी नहीं।

[^3] अलायक = [हि. अ + फा. लायक] अयोग्य।

[^3] बैरक = [अरबी] झंडा, पताका।

[^4] मलजुग = कलियुग।

[^5] जेरो = जेर किया है, वशीभूत किया है, जीत लिया है।

जेहि कौतुक बक स्वान को प्रभु न्याव निबेरो ।
तेहि कौतुक कहिए कृपालु तुलसी है मेरो ॥ 146॥

कृपासिंधु ताते रहौं निसि दिन मन मारे ।
महाराज लाज आपुही निज जाँघ उघारे ॥
मिले रहैं, मार्‌यौ चहै कामादि सँघाती ।
मो बिनु रहै न, मेरियै जारैं छल छाती ॥
बसत हिये हित जानि मैं सबकी रुचि पाली ।
कियो कथक को दंड हौं जड़ कर्म कुचाली ॥
देखी सुनी न आजु लौं अपनायत ऐसी ।
करहिं सबै सिर मेरे ही फिरि परै अनैसी ॥
बड़े अलेखी [1] लखि परैं, परिहरे न जाहीं ।
असमंजस में मगन हौं, लीजै गहि बाहीं ॥
बारक बलि अवलोकिए कौतुक जन जी को ।
अनायास मिटि जाइगो संकट तुलसी को ॥ 147॥

कहौ कौन मुहँ लाइ कै, रघुबीर गुसाई !

[^1] अलेखी = बेढब, अन्यायी।

सकुचत समुझत आपनी [1] सब, साइँ दुहाई !

सेवत बस, सुमिरत सखा, सरनागत सो हौं ।

गुनगन सीतानाथ के चित करत न हौं हौं ॥

कृपासिंधु बंधु दीन के आरत-हितकारी ।

प्रनत-पाल बिरुदावली सुनि जानि बिसारी ॥

सेइ न धेइ [2] न सुमिरि कै पद-प्रीति सुधारी ।

पाइ सुसाहिब राम सो भरि पेट बिगारी ॥

नाथ गरीबनिवाज हैं, मैं गही न गरीबी ।

तुलसी प्रभु निज ओर तें बनि परै सो कीबी ॥ 148॥

कहाँ जाउँ, कासों कहौं और ठौर न मेरो ।

जनम गँवायो तेरेहि द्वार मैं किंकर तेरो ॥

मै तौ बिगारी नाथ सों आरति के लीन्हें ।

तोहि कृपानिधि क्यों बनै मेरी सी कीन्हें ॥

दिन दुरदिन, दिन दुरदसा, दिन दुख, दिन दूषन ।

जब लौं तू न बिलोकिहै रघुबंस-बिभूषन ॥

---

[^1] आपनी = अपनी करनी।

[^2] धेई = ध्याइ, ध्यान करके।

दई पीठ बिनु डीठ मैं, तुम बिस्व-बिलोचन ।

तोसों तुही न दूसरो नत-सोच-बिमोचन ॥

पराधीन देव, दीन हौं, स्वाधीन गुसाईं ।

बोलनिहारे [1] सों करै, बलि, बिनय कि झाई [2]॥

आपु देखि मोहि देखिये जन मानिय साँचो ।

बड़ी ओट रामनाम की जेहि लई सो बाँचो ॥

रहनि रीति राम रावरी नित हिय हुलसी है ।

ज्यों भावै त्यों करु कृपा तेरो तुलसी है ॥ 149॥

रामभद्र मोहिं आपनो सोच है अरु नाहीं ।

जीव सकल संताप के भाजन जग माहीं ॥

नातो बड़े समर्थ सों एक ओर किधौं हूँ ।

तोको मोसे अति घने, मोको एकै तूँ ॥

बड़ी गलानि हिय हानि है, सर्वज्ञ गुसाईं ।

कूर कुसेवक कहत हौं सेवक की नाईं ॥

भलो पोच राम को कहैं मोहि सब नर नारी ।

---

[^1] बोलनिहारा = बोलता शुद्ध आत्मा, चैतन्य।

[^2] झाई = प्रतिबिंब स्वरूप जीव।

बिगरे सेवक स्वान ज्यों साहिब-सिर गारी ॥
असमंजस मन को मिटै सो उपाय न सूझै ।
दीनबंधु! कीजै सोई बनि परै जो बूझै ॥
बिरुदावली बिलोकिए तिन्ह में कोउ हौं हौं ।
तुलसी प्रभु को परिहर्यो सरनागत सो हौं ॥ 150॥

जो पै चेराई राम की करतो न लजातो ।
तौ तू दाम कुदाम ज्यों कर कर न बिकातो ॥
जपत जीह रघुनाथ को नाम नहिं अलसातो ।
बाजीगर के सूम ज्यों, खल! खेह न खातो ॥
जौ तू मन मेरे कहे राम-नाम कमातो ।
सीतापति सनमुख सुखी सब ठाँव समातो ॥
राम सोहाते तोहिं जौ तू सबहिं सोहातो ।
काल करम कुल कारनी [1] कोऊ न कोहातो ॥
राम-नाम अनुरागही जिय जो रतिआतो [2]।
स्वारथ-परमारथ-पथी तोहिं सब पतिआतो ॥

[^1] कुल कारनी = सब के कारण।

[^2] रतिआतो = प्रीति करता।

सेइ साधु, सुनि समुझि कै पर-पीर पिरातो ।
जनम कोटि को कँदैलो [1] ह्रद[2]-हृदय थिरातो ॥
भव-मग अगम अनंत है बिनु स्त्रमहि सिरातो ।
महिमा उलटे नाम की मुनि कियो किरातो ॥
अमर अगम तनु पाइ सो जड़ जाय [3] न जातो ।
होतो मंगल-मूल तू अनुकूल बिधातो ॥
जो मन प्रीति प्रतीति सों राम नामहिं रातो ।
तुलसी रामप्रसाद सों तिहुँताप न तातो ॥ 151॥

राम भलाई आपनी भल कियो न काको ?
जुग जुग जानकी-नाथ को जग जागत साको [4]॥
ब्रह्मादिक बिनती करी कहि दुख बसुधा को ।
रबिकुल-कैरव-चंद भो आनंद सुधा को ॥

---

[^1] कँदैलो = कीचड़वाला।

[^2] ह्रद = ताल।

[^3] जाय = व्यर्थ।

[^4] जागत साको = साका जागता है, कीर्ति चली जाती है।

कौसिक गरत तुषार ज्यों तकि तेज तिया [5] को ।

प्रभु अनहित हित को दियो फल कोप कृपा को ॥

हर्‍यो पाप आप जाइकै संताप सिला को ।

सोच-मगन काढ्यो सही साहिब मिथिला को ॥

रोष-रासि भृगुपति धनी अहमिति ममता को ।

चितवत भाजन करि लियो उपसम समता को ॥

मुदित मानि आयसु चले बन मातु पिता को ।

धरम-धुरंधर धीरधुर गुन-सील-जिता को ? ॥

गुह गरीब गत-ज्ञाति हूँ जेहि जिउ न भखा को ॥

पायो पावन प्रेम ते सनमान सखा को ? ॥

सद्‌गति सबरी गिद्ध की सादर करता को ।

सोच-सींव सुग्रीव के संकट-हरता को ॥

राखि बिभीषन को सकै अस काल गहा [2] को ।

आज बिराजत राज है दसकंठ जहाँ को ॥

बालिस [3] बासी अवध को बूझिए न खाको ।

---

[^5] तिया = ताड़का।

[^2] काल गहा = काल-ग्रस्त।

[^3] बालिस = मूर्ख।

सो पाँवर पहुँचो तहाँ जहँ मुनि मन थाको ॥

गति न लहै राम-नाम सों बिधि सो सिरिजा को ?

सुमिरत कहत प्रचारि कै बल्लभ गिरिजा को ॥

अकनि अजामिल की कथा सानंद न भा को ?

नाम लेत कलिकाल हूँ हरिपुरहिं न गा को ? ॥

राम-नाम-महिमा करै काम-भुरुह [1] आको [2]।

साखी बेद पुरान है तुलसी-तन ताको ॥ 152॥

मेरे रावरिये गति है रघुपति बलि जाउँ ।

निलज, नीच, निरधन, निरगुन कहँ जग दूसरो न ठाकुर ठाउँ ॥

है घर घर बहु भरे सुसाहिब, सूझत सबनि आपनो दाउँ ।

बानर-बंधु, बिभीषन-हित बिनु कोसलपाल कहूँ न समाउँ ॥

प्रनतारति-भंजन जन-रंजन सरनागत पबि-पंजर [3] नाउँ ।

कीजै दास दास तुलसी अब कृपासिंधु बिनु मोल बिकाउँ ॥ 153॥

देव ! दूसरो कौन दीन को दयालु ?

---

[^1] कामभुरुह = कल्पवृक्ष।

[^2] आको = आक या मदार भी।

[^3] पबि-पंजर = रक्षा के लिए वज्र का पिंजरा।

सील-निधान, सुजान-सिरोमनि, सरनागत-प्रिय, प्रनत-पालु ॥

को समर्थ सर्बज्ञ सकल प्रभु सिव-सनेह-मानस मरालु ?

को साहिब किए मीत प्रीति बस खग निसिचर कपि भील भालु ?॥

नाथ हाथ माया-प्रपंच सब जीव दोष गुन-करम-कालु ।

तुलसिदास भलो पोच रावरो, नेकु निरखि कीजै निहालु ॥ 154॥

(राग सारंग)

बिस्वास एक राम-नाम को ।

मानत नहि परतीति अनत ऐसोइ सुभाव मन बाम को ॥

पढिबो पर्‌यो न छठी [1] छ मत [2], ऋगु, जजुर, अथर्वन, साम को ।

ब्रत तीरथ, तप सुनि सहमत, पचि मरै करै तन छाम को ? ॥

करम-जाल कलिकाल कठिन आधीन सुसाधित दाम [3] को ।

ज्ञान, बिराग, जोग, जप, तप, भय, लोभ, मोह, कोह, काम को ॥

सब दिन सब लायक भयो गायक रघुनायक गुन-ग्राम को ।

बैठे नाम-कामतरु-तर डर कौन घोर घन घाम को ?॥

---

[^1] छठी न पर्‌यो = भाग्य में न लिखा गया।

[^2] मत = शास्त्र।

[^3] दाम = धन।

को जानै को जैहै जमपुर को सुरपुर पर-धाम को ।

तुलसिहिं बहुत भलो लागत जग जीवन रामगुलाम को ॥ 155॥

कलि नाम कामतरु राम को ।

दलनिहार दारिद दुकाल दुख दोष घोर घन घाम को ॥

नाम लेत दाहिनो होत मन बाम बिधाता बाम को ।

कहत मुनीस महेस महातम उलटे सूधे नाम को ॥

भलो लोक-परलोक तासु जाके बल ललित-ललाम [1] को ।

तुलसी जग जानियत नाम ते सोच न कूच मुकाम को ॥ 156॥

सेइए सुसाहिब राम सो ।

सुखद, सुसील, सुजान, सूर, सुचि, सुंदर कोटिक काम सो ॥

सारद, सेस, साधु महिमा कहैं, गुनगन-गायक साम सो ।

सुमिरि सप्रेम नाम जासों रति चाहत चंद्र-ललाम सो ॥

गमन बिदेस न लेस कलेस को सकुचत सकृत प्रनाम सो ।

साखी ताको बिदित बिभीषन बैठो है अबिचल धाम सो ॥

टहल सहल जन महल महल जागत चारो जुग जाम सो ।

[^1] ललित-ललाम = सुन्दर राम ना।

देखत दोष न रीझत रीझत सुनि सेवक गुन-ग्राम सो ॥
जाके भजे तिलोक-तिलक भए त्रिजग जोनि तनु तामसो [1]।
तुलसी ऐसे प्रभुहिं भजै जो न ताहि बिधाता बाम सो ॥ 157॥

(राग नट)

कैसे देउँ नाथहिं खोरि ?
काम-लोलुप भ्रमत मन हरि भगति परिहरि तोरि ॥
बहुत प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि ।
देत सिख सिखयो न मानत, मूढ़ता असि मोरि ॥
किये सहित सनेह जे अघ हृदय राखे चोरि ।
संग-बस किये सुभ सुनाए सकल लोक निहोरि ॥
करौं जो कछु धरौं सचि पचि सुकृत-सिला बटोरि ।
पैठि उर बरबस दयानिधि दंभ लेत अँजोरि [2]॥
लोभ मनहिं नचाव कपि ज्यों गरे आसा-डोरि ।
बात कहौं बनाइ बुध ज्यों, बर बिराग निचोरि ॥
एतेहुँ पर तुम्हरो कहावत लाज अँचई घोरि ।

---

[^1] तनु तामसो = तामस शरीर वाले (राक्षस) भी।

[^2] अँजोरि लेत = खोल लेता है।

निलजता पर रीझि रघुबर देहु तुलसिहिं छोरि ॥ 158॥

है प्रभु मेरोई सब दोसु ।
सीलसिंधु, कृपालु, नाथ, अनाथ-आरत पोसु ॥
बेष, बचन, बिराग, मन, अघ, अवगुननि को कोसु ।
राम-प्रीती-प्रतीति पोली, कपट-करतब ठोसु ॥
राग-रंग कुसंग ही सों, साधु संगति रोसु ।
चहत केहरि-जसहिं सेइ सृगाल ज्यों खरगोसु ॥
संभु-सिखवन रसन हूँ नित राम-नामहिं घोसु ।
दंभ हूँ कलि नाम-कुंभज सोच-सागर-सोसु ॥
मोद-मंगल-मूल अति अनुकूल निज निरजोसु [1]।
रामनाम-प्रभाव सुनि तुलसिहुँ परम संतोसु ॥ 159॥

मैं हरि पतित-पावन सुने ।
मैं पतित तुम पतित-पावन दोउ बानक बने ॥
ब्याध, गनिका, गज अजामिल साखि निगमनि भने ।
और अधम अनेक तारे, जात कापै गने ?॥

[^1] निरजोसु = निश्चल।

जानि नाम अजानि लीन्हें नरक सुरपुर मने [1]।
दासतुलसी सरन आयो राखिए आपने ॥ 160॥

(राग मलार)

तोंसों प्रभु जो पै कहुँ कोउ होतो ।
तौ सहि निपट निरादर निसि दिन रटि लट ऐसो घटि को तो [2]॥
कृपा-सुधा जलदान माँगिबो कहाँ सो साँच निसोतो [3]।
स्वाति-सनेह-सलिल सुख चाहत चित-चातक सो पोतो [4]॥
काल करम बस मन कुमनोरथ कबहुँ कबहुँ कुछ भो तो ।
ज्यों मुदमय बसि मीन बारि तजि उछरि भभरि लेत गोतो ॥
जितो दुराव दास तुलसी उर क्यों कहि आवत ओतो ।
तेरे राज राय दसरथ के लयो बयो बिनु जोतो ॥ 161॥

(राग सोरठ)

---

[^1] मने = वर्जित किया हुआ, ले जाना मना किया गया।

[^2] को तो = कौन था ?

[^3] निसोतो = खरा।

[^4] पोतो = बच्चा।

ऐसो को उदार जग माहीं ?

बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं ॥

जो गति जोग बिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ज्ञानी ।

सो गति देत गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी ॥

जो संपति दस सीस अरपि करि रावन सिव पहँ लीन्हीं ।

सो संपदा बिभीषन कहँ अति सकुच सहित हरि दीन्ही ॥

तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो ।

तौ भजु राम, काम सब पूरन करै कृपानिधि तेरो ॥ 162॥

एकै दानि-सिरोमनि साँचो ।

जोइ जाच्यो सोइ जाचकता-बस फिरि बहु नाच न नाच्यो ॥

सब स्वारथी असुर, सुर, नर ,मुनि, कोउ न देत बिनु पाए ।

कोसलपालु कृपालु कलपतरु द्रवत सकृत सिर नाए ॥

हरिहु और अवतार आपने राखी बेद-बड़ाई ।

लै चिउरा निधि दई सुदामहिं जद्यपि बाल मिताई ॥

कपि, सबरी, सुग्रीव, बिभीषन को नहिं कियो अजाची ।

अब तुलसिहि दुख देति दयानिधि! दारून आस-पिसाची ॥ 163॥

जानत प्रीति-रीति रघुराई ।

नाते सब हाते करी राखत [1] राम सनेह-सगाई ॥

नेह निबाहि देह तजि दसरथ कीरति अचल चलाई ।

ऐसेहुँ पितु तें अधिक गीध पर ममता गुन गरुआई ॥

तिय-बिरही सुग्रीव सखा लखि प्रानप्रिया बिसराई ।

रन पर्‌यो बंधु बिभीषन ही की सोच हृदय अधिकाई ॥

घर गुरुगृह प्रिय-सदन सासुरे भइ जब जहँ पहुनाई ।

तब तहँ कहि सबरी के फलनि की रुचि माधुरी न पाई ॥

सहज सरूप कथा मुनि बरनत रहत सकुचि सिर नाई ।

केवट-मीत कहे सुख मानत, बानर बंधु बड़ाई ॥

प्रेम कनौड़ो राम सो प्रभु त्रिभुवन तिहुँ काल न भाई ।

तेरो रिनी हौं कह्यो कपि सों, ऐसी मानिहि को सेवकाई ॥

तुलसी राम-सनेह-सील लखि जो न भगति उर आई ।

तौ तोहिं जनमि [2] जाय जननी जड़ तनु-तरुनता गँवाई ॥ 164॥

रघुबर! रावरि यहै बड़ाई ।

---

[^1] हाते करि राखत = अलग रखते है, दूर करते है।

[^2] जनमि =जनमा कर, जन कर।

निंदरि गनी आदर गरीब पर करत कृपा अधिकाई ॥

थके देव साधन करि सब, सपनेहुँ नहिं देत दिखाई ।

केवट कुटिल भालु कपि कौनप [1] कियो सकल संग भाई ॥

मिलि मुनिबृंद फिरत दंडक-बन सो चरचौ न चलाई ।

बारहि बार गीध सबरी की बरनत प्रीति सुहाई ॥

स्वान कहे तें कियो पुर बाहिर जती गयंद चढ़ाई ।

तिय-निंदक मतिमंद प्रजा रज निज नय नगर बसाई ॥

यहि दरबार दीन को आदर, रीति सदा चलि आई ।

दीनदयालु दीन तुलसी की काहु न सुरति कराई ॥ 165 ॥

ऐसे राम दीन-हितकारी ।

अतिकोमल करुनानिधान बिनु कारन पर-उपकारी ॥

साधन-हीन दीन निज अघ-बस सिला भई मुनि-नारी ।

गृह तें गवनि परसि पद पावन घोर साप तें तारीं ॥

हिंसारत निषाद तामस बपु पसु समान बन चारी ।

भेंट्यो हृदय लगाइ प्रेमबस नहिं कुल जाति बिचारी ॥

जद्यपि द्रोह कियो सुरपति-सुत, कह न जाय अति भारी ।

---

[^1] कौनप = पातकी।

सकल लोक अवलोकि सोक-हत सरन गए भय टारी ॥

बिहँग-जोनि आमिष अहार-पर, गीध कौन ब्रतधारी ।

जनक समान क्रिया ताकी निज कर सब भाँति सँवारी ॥

अधम जाति सबरी जोषित जड़ लोक बेद तें न्यारी ।

जानि प्रीति दै दरस कृपानिधि सोउ रघुनाथ उधारी ॥

कपि सुग्रीव बंधु-भय-ब्याकुल आयो सरन पुकारी ।

सहि न सके दारुन दुख जन के हत्यो बालि सहि गारी ॥

रिपु को अनुज बिभीषन निसिचर कौन भजन अधिकारी ।

सरन गये आगे ह्वै लीन्हौं भेंट्यो भुजा पसारी ॥

असुभ होइ जिनके सुमिरे ते बानर रीछ बिकारी ।

बेद-बिदित पावन किए ते सब, महिमा नाथ तुम्हारी ॥

कहँ लगि कहौं दीन अगनित जिन्हकी तुम बिपति निवारी ।

कलिमल-ग्रसित दास तुलसी पर काहे कृपा बिसारी ॥ 166॥

रघुपति! भक्ति करत कठिनाई ।

कहत सुगम, करनी अपार, जानै सोइ जेहि बनि आई ॥

जो जेहि कला कुसल ता कहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी ।

सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी बहै गज भारी ॥

ज्यों सर्करा मिलै सिकता महँ बल तें न कोउ बिलगावै ।
अति रसज्ञ सूच्छम पिपीलिका बिनु प्रयास ही पावै ॥
सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी ।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख अतिसय द्वैत-बियोगी ॥
सोक, मोह, भय, हरष, दिवस निसि, देस-काल तहँ नाहीं ।
तुलसिदास यहि दसाहीन [1] संसय निर्मूल न जाहीं ॥ 167॥

जो पै राम-चरन-रति होती ।
तौ कत त्रिबिध सूल निसि बासर सहते बिपति निसोती [2]॥
जौ संतोष-सुधा निसि बासर सपनेहुँ कबहुकँ पावै ।
तौ कत बिषय बिलोकि झूँठ जल मन-कुरंग ज्यों धावै ॥
जौ श्रीपति-महिमा बिचारि उर भजते भाव बढ़ाए ।
तौ कत द्वार द्वार कूकर ज्यों फिरते पेट खलाए ॥
जे लोलुप भए दास आस के ते सबही के चेरे ।
प्रभु-बिस्वास आस जीती जिन्ह ते सेवक हरि केरे ॥
नहिं एकौ आचरन भजन को बिनय करत हौं ताते ।

---

[^1] यहि दसा-हीन = इस दशा का प्राप्त हुए बिना।

[^2] निसोती = शुद्ध, खालीस।

कीजै कृपा दासतुलसी पर, नाथ! नाम के नाते ॥ 168॥

जो मोही राम लागते मीठे ।
तौ नवरस, षटरस-रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे ॥
बंचक बिषय बिबिध तनु धरि अनुभवे सुने अरु डीठे ।
यह जानत हौं हृदय आपने सपने न अघाइ उबीठे [1]॥
तुलसिदास प्रभु सों एकहि बल बचन कहत अति ढीठे ।
नाम की लाज राम करुनाकर केहि न दिये कर चीठे ॥ 169॥

यों मन कबहूँ तुमहिं न लाग्यो ।
ज्यों छल छाँड़ि सुभाव निरंतर रहत बिषय अनुराग्यो ॥
ज्यों चितई परनारि, सुने पातक-प्रपंच घर घर के ।
त्यों न साधु, सुरसरि-तरंग-निरमल गुनगन रघुबर के ॥
ज्यों नासा सुगंधरस-बस, रसना षटरस-रति मानी ।
राम-प्रसाद-माल जूठनि लगि त्यों न ललकि ललचानी ॥
चंदन चंद्रबदनि भूषन पट ज्यों चह पाँवर परस्यो ।
त्यों रघुपति-पद पदुम परस को तनु पातकी न तरस्यो ॥

[^1] उबीठे = ऊबे, मन हटा।

ज्यों सब भाँती कुदेव कुठाकुर सेए बपु बचन हिये हूँ ।
त्यों न राम सुकृतज्ञ जे सकुचत सकृत प्रनाम किए हूँ ॥
चंचल चरन लोभ लगि लोलुप द्वार द्वार जग बागे ।
राम-सीय-आस्त्रमनि चलत त्यों भये न श्रमित अभागे ॥
सकल अंग पद-बिमुख नाथ मुख नाम की ओट लई है ।
है तुलसिहिं परतीति एक प्रभु-मूरति कृपामई है ॥ 170॥

कीजै मोको जमजातनामई ।
राम तुमसे सुचि सुहृद साहिबहिं मैं सठ पीठि दई ॥
गरभबास दस मास पालि पितु-मातु-रूप हित कीन्हों ।
जड़हि बिबेक, सुसील खलहिं, अपराधिहिं आदर दीन्हों ॥
कपट करौं अंतरजामिहुँ सों, अघ ब्यापकहिं दुरावौं ।
ऐसेहु कुमति कुसेवक पर रघुपति न कियो मन बावौं ॥
उदर भरौं किंकर कहाइ, बेंच्यौं बिषयनि हाथ हियो है ।
मोसे बंचक को कृपालु छल छाँड़ि कै छोह कियो है ॥
पल पल के उपकार रावरे जानि बूझी सुनि नीके ।
भिद्यो न कुलिसहुँ ते कठोर चित कबहुँ प्रेम सिय-पी के ॥

स्वामी की सेवक-हितता सब, कछु निज साँई-द्रोहाई [][1]।
मैं मति-तुला तौलि देखी भइ मेरिहि दिसि गरूआई ॥
एतेहु पर हित करत नाथ मेरो, करि आयो अरु करिहैं ।
तुलसी अपनी ओर जानियत प्रभुहि कनौड़ो भरिहैं ॥ 171॥

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो ।
श्री रघुनाथ-कृपालु-कृपा ते संत सुभाव गहौंगो ॥
यथालाभ संतोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो ।
पर-हित-निरत निरंतर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो ॥
परुष-बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो ।
बिगत मान सम सीतल मन, पर-गुन, नहिं दोष कहौंगो ॥
परहरि देह-जनित चिंता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो ।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अबिचल हरि-भगति लहौंगो ॥ 172॥

नाहिंन आवत आन भरोसो ।
यहि कलिकाल सकल साधनतरु है स्रम-फलनि फरो सो ॥
तप, तीरथ, उपवास, दान, मख जेहि जो रुचै करो सो ।

[^1] साँई द्रोहाई = स्वामी के विरुद्ध आचरण।

पाएहि पै जानिबो करम-फल, भरि भरि बेद परोसो ॥

आगम-बिधि, जप, जाग करत नर सरत न काज खरो सो ।

सुख सपनेहु न जोग-सिधि-साधन, रोग बियोग धरो सो ॥

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह मिलि ज्ञान बिराग हरो सो ।

बिगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम घरो [1] सो ॥

बहु मत मुनि बहु पंथ पुराननि जहाँ-तहाँ झगरो सो ।

गुरु कह्यो राम-भजन नीको मोंहि लगत राज-डगरो सो ॥

तुलसी बिनु परतीती प्रीति फिरि फिरि पचि मरै मरो सो ।

रामनाम-बोहित भव-सागर, चाहै तरन तरो सो ॥ 173॥

जाके प्रिय न राम बैदेही ।

सो छाँड़िए कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही ॥

तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी ।

बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज-बनितन्हि, भए मुद-मंगलकारी ॥

नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं ।

अंजन कहा आँखि जेहि फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥

तुलसि सो सब भाँति परम हित पुँजी प्रानते प्यारो ।

---

[^1] आम घरो = कच्चा घड़ा।

जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो ॥ 174॥

जो पै रहनि राम सों नाहीं ।

तौ नर खर कूकर सूकर सम बृथा जियत जग माहीं ॥

काम, क्रोध, मद, लोभ, नींद, भय, भूख, प्यास सबही के ।

मनुज देह सुर-साधु सराहत सो सनेह सिय-पी के ॥

सूर, सुजान, सुपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई ।

बिनु हरिभजन इँनारुन के फल तजत नहीं करुआई ॥

कीरति, कुल, करतूति, भूति भलि, सील, सरूप सलोने ।

तुलसी प्रभु-अनुराग-रहित जस सालन साग अलोने ॥ 175॥

राख्यो राम सुस्वामी सों नीच नेह न नातो ।

एते अनादर हूँ तोहि ते न हातो [1]॥

जोरे नए नाते नेह फोकट [2] फीके ।

देह के दाहक, गाहक जी के ॥

अपने अपने को सब चाहत नीको ।

मूल दुहुँ को दयालु दूलह सी को ॥

[^1] हातो = अलग, दूर।

[^2] फोकट = व्यर्थ।

जीव को जीवन, प्रान को प्यारो ।

सुखहू को सूख राम सो बिसारो ॥

कियो, करैगो तोसे खल को भलो ।

ऐसे सुसाहब सों तू कुचाल क्यौं चलो ॥

तुलसी तेरी भलाई अजहूँ बूझै ।

राढ़उ [1] राउत होत फिरि कै जूझै ॥ 176॥

जो तुम त्यागों राम हौं तौं नहीं त्यागो ।

परिहरि पाँय काहि अनुरागों ॥

सुखद सुप्रभु तुम सों जग माहीं ।

स्रवन-नयन मन गोचर नाहीं ॥

हौं जड़ जीव, ईस रघुराया ।

तुम मायापति, हौं बस माया ॥

हौं तो कुजाचक, स्वामी सुदाता ।

हौं कुपूत, तुमहीं पितु माता ॥

जौ पै कहुँ कोउ बूझत बातो ।

तौ तुलसी बिनु मोल बिकातो ॥ 177 ॥

---

[^1] राढ़उ = कायर भी।

भए हूँ उदास राम मेरे आस रावरी ।

आरत स्वारथी सब कहैं बात बावरी ॥

जीवन को दानी घन कहा ताहि चाहिए ।

प्रेम नेम के निबाहे चातक सराहिए ॥

मीन तें न लाभ-लेस पानी पुन्य-पीन को ?

जल बिनु थल कहा मीचु बिनु मीन को ?॥

बड़े ही की ओट, बलि बाँचि आए छोटे हैं ।

चलत खरे के संग जहाँ तहाँ खोटे हैं ॥

यहि दरबार भलो दाहिनेहु-बाम को ।

मोको सुभदायक भरोसो राम-नाम को ॥

कहत नसानी ह्वैहै हिये नाथ नीकी है ।

जानत कृपानिधान तुलसी के जी की है ॥ 178॥

(राग बिलावल)

कहाँ जाउँ? कासों कहौ? कौन सुनै दीन की ?

त्रिभुवन तुही गति सब अंगहीन की ॥

जग जगदीस घर घरनि घनेरे हैं ।

निराधार के अधार गुनगन तेरे हैं ॥
गजराज-काज खगराज तजि धायो को ।
मोसे दोस-कोस पोसे, तोसे माय जायो को ॥
मोसे कूर कायर कुपूत कौड़ी आध के ।
किए बहुमोल तैं करैया गीध-स्राध के ॥
तुलसी की तेरे ही बनाये, बलि, बनैगी ।
प्रभु की बिलंब-अंब दोष दुख जनैगी ॥ 179 ॥

बारक बिलोकि बलि कीजै मोहिं आपनो ।
राय दशरथ के तू उथपन-थापनो ॥
साहिब सरनपाल सबल न दूसरो ।
तेरो नाम लेत ही सुखेत होत ऊसरो ॥
बचन करम तेरे मेरे मन गड़े हैं ।
देखे सुने जाने मैं जहान जेते बड़े हैं ॥
कौन कियो समाधान सनमान सीला को ?
भृगुनाथ सो ऋषी जितैया कौन लीला को ?
मातु-पितु-बन्धु-हितु, लोक-बेदपाल को ?
बोल को अचल, नत करत निहाल को ?

संग्रही सनेहबस अधम असाधु को ?

गीध सबरी को, कहो, करिहै सराधु को ?

निराधार को अधार, दीन को दयालु को ?

मीत कपि केवट, रजनिचर भालु को ॥

रंक निरगुनी नीच जितने निवाजे हैं ।

महाराज! सुजन -समाज ते बिराजे हैं ॥

साँची बिरुदावली न बढ़ि कहि गई है ।

सीलसिंधु ढील तुलसी की बार भई है ॥ 180॥

केहू भाँति कृपासिंधु मेरी ओर हेरिए ।

मोको और ठौर न, सुटेक एक तेरिए ॥

सहस सिला तें अति जड़ मति भई है ।

कासों कहौं, कौन गति पाहनिहिं दई है ?॥

पद-राग-जाग [1] चहौं कौसिक ज्यों कियो हौं ।

कलि-मल खल देखि भारी भीति भियो हौं [2]॥

करम-कपीस बालि बली त्रास-त्रस्यो हौं ।

---

[^1] पद-राग-जाग = चरणों में स्नेहरूपी यज्ञ।

[^2] भियो हौं = डरा हूँ।

चाहत अनाथ-नाथ तेरी बाँह बस्यो हौं ॥

महामोह रावन बिभीषन ज्यों हयो हौं ।

त्राहि, तुलसीस! त्राहि तिहूँ ताप तयो हौं ॥ 181 ॥

नाथ-गुननाथ सुनि होत चित चाउ सो ।

राम रीझिबे को जानो भगति न भाउ सो ॥

करम सुभाव काल ठाकुर न ठाउँ सो ।

सुधन न, सुतन न, सुमन, सुआउ [1] सो ॥

जाँचौं जल जाहि कहै अमिय पिआउ सो ।

कासों कहौं काहू सों न बढ़त हिआउ सो ॥

बाप बलि जाऊँ आप करिए उपाउ सो ।

तेरेहि निहारे परै हारेहू सुदाउ सो ॥

तेरेहि सुझाए सूझे असुझ सुझाउ सो ।

तेरे ही बुझाये बूझै अबुझ बुझाउ सो ॥

नाम अवलंबु-अंबु दीन मीन-राउ सो ।

प्रभु सों बनाइ कहौं जीह जरि जाउ सो ॥

सब भाँति बिगरी है एक सुबनाउ सो ।

---

[^1] सुआउ = दीर्घायु।

तुलसी सुसाहिबहिं दियो है जनाउ सो ॥ 182 ॥

(राग आसावरी)

राम प्रीति की रीति आप नीके जनियत है ।

बड़े की बड़ाई, छोटे की छोटाई दूरि करै,

ऐसी बिरुदावली बलि बेद मनियत है ॥

गीध को कियो सराध, भीलनी को खायो फल,

सोऊ साधु-सभा भली भाँति भनियत है ।

रावरे आदरे लोक बेद हूँ आदरियत,

जोग ज्ञान हू तें गरू गनियत है ॥

प्रभु की कृपा कृपालु कठिन कलि हूँ काल,

महिमा समुझि उर अनियत है ।

तुलसी पराये बस भये रस अनरस,

दीनबंधु! द्वारे हठ ठनियत है ॥ 183॥

राम-नाम के जपे जाइ जिय की जरनि ।

कलिकाल अपर उपाय ते अपाय भए,

जैसे तम नासिबे को चित्र के तरनि ॥

करम-कलाप परिताप पाप साने सब,
ज्यों सुफूल फूलै तरु फोकट फरनि ।
दंभ, लोभ, लालच उपासना बिनासि नीके,
सुगति साधन भई उदर भरनि ॥

जोग न समाधि निरुपाधि न बिराग ज्ञान,
बचन बिसेष बेष, कहूँ न करनि ।
कपट कुपथ कोटि, कहनि रहनि खोटि,
सकल सराहैं निज निज आचरनि ॥

मरत महेस उपदेस हैं कहा करत,
सुरसरि-तीर कासी धरम-धरनि ।
राम-नाम को प्रताप हर कहैं, जपैं आपु,
जुग जुग जानैं जग बेदहूँ बरनि ॥

मति राम-नाम ही सों, रति राम-नाम ही सों,
गति राम नाम ही की बिपति-हरनि ।

राम-नाम सों प्रतीति प्रीति राखे कबहुँक,

तुलसी ढरैंगे राम आपनी ढरनि ॥ 184॥

लाज न लागत दास कहावत ।

सो आचरन बिसारि सोच तजि जो हरि तुम कहँ भावत ॥

सकल संग तजि भजत जाहि मुनि जप तप जाग बनावत ।

मो सम मंद महा खल पाँवर कौन जतन तेहि पावत ॥

हरि निर्मल, मल-ग्रसित हृदय, असमंजस मोहि जनावत ।

जेहि सर काक कंक बक सूकर क्यों मराल तहँ आवत ॥

जाकी सरन जाइ कोबिद दारुन त्रयताप बुझावत ।

तहूँ गए मद मोह लोभ अति सरगहुँ मिटत न सावत [1]॥

भव-सरिता कहँ नाउ संत यह कहि औरनि समुझावत ।

हौं तिन सों करि परम बैर हरि तुम सों भलो मनावत ॥

नाहिंन और ठौर मो कहँ तातें हठि नातो लावत ।

राखु सरन उदार-चूड़ामनि तुलसिदास गुन गावत ॥ 185॥

कौन जतन बिनती करिए ।

---

[^1] सावत = सबति भाव, डाह, ईर्ष्या।

निज आचरन बिचारि हारि हिय मानि जानि डरिए ॥
जेहि साधन हरि द्रवहु जानि जन सो हठि परिहरिए ।
जाते बिपति-जाल निसि दिन दुख तेहि पथ अनसरिए ॥
जानत हूँ मन बचन कर्म पर-हित कीन्हें तरिए ।
सो बिपरीत देखि पर-सुख बिनु कारन ही जरिए ॥
स्त्रुति पुरान सब को मत यह सतसंग सुदृढ़ धरिए ।
निज अभिमान मोह ईर्षा बस तिनहिं न आदरिए ॥
संतत सोइ प्रिय मोहिं सदा जातें भव-निधि परिए ।
कहौं अब नाथ! कौन बल तें संसार-सोग हरिए ॥
जब कब निज करुना सुभाव तें द्रवहु तौ निस्तरिए ।
तुलसिदास बिस्वास आनि नहिं, कत पचि-पचि मरिए ॥ 186॥

ताहि तें आयो सरन सबेरे ।
ज्ञान-बिराग-भगति साधन कछु सपनेहु नाथ न मेरे ॥
लोभ, मोह, मद, काम, क्रोध, रिपु फिरत रैन दिन घेरे ।
तिनहि मिले मन भयो कुपथ-रत फिरै तिहारेहि फेरें॥
दोष-निलय यह बिषय सोक-प्रद कहत संत स्त्रुति टेरे ।
जानत हूँ अनुराग तहाँ अति सो हरि तुम्हरेहि प्रेरे ॥

बिष पियूष सम करहु, अगिनि हिम, तारि सकहु बिनु बेरे ।

तुम सम ईस कृपालु परम हित पुनि न पाइहौं हेरे ॥

यह जिय जानि रहौं सब तजि रघुबीर भरोसे तेरे ।

तुलसिदास यह बिपति-बाँगुरो [1] तुमहिं सों बनै निबेरे ॥ 187॥

मैं तोहिं अब जान्यो, संसार !

बाँधि न सकहिं मोहिं हरि के बल प्रगट कपट-आगार ॥

देखत ही कमनीय, कछू नाहिंन पुनि किए बिचार ।

ज्यों कदलीतरु मध्य निहारत कबहुँ न निकसत सार ॥

तेरे लिये जनम अनेक मैं फिरत न पायों पार ।

महामोह-मृगजल-सरिता महँ बोर्‌यो हौं बारहिं बार ॥

सुनु खल छल बल कोटि किए बस होहिं न भगत उदार ।

सहित सहाय तहाँ बसि अब जेहि हृदय न नंदकुमार ॥

तासों करहु चातुरी जो नहिं जानै मरम तुम्हार ।

सो परि डरै मरै रजु-अहि तें बूझै नहिं ब्यवहार ॥

निज हित सुनु सठ! हठ न करहि जो चहहि कुसल परिवार ।

तुलसिदास प्रभु के दासनि तजि भजहि जहाँ मद मार ॥ 188॥

---

[^1] बाँगुरो = जाल।

(राग गौरी)

राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु, भाई रे ।

नाहिं तौ भव बेगारि मह परिहौ छूटत अति कठिनाई रे ॥

बाँस पुरान साज सब अटकट [1] सरल [2] तिकोन खटोला रे ।

हमहिं दिहल [3] करि कुटिल करमचँद मंद [4] मोल बिनु डोला रे ॥

बिषम कहार मार-मदमाते चलहिं न पाउँ बटोरा रे !

मंद बिलंद [5] अभेरा दलकन [6] पाइय दुख झकझौरा रे !

---

[^1] अटकन = गड़बड़।

[^2] सरल = सड़ा हुआ।

[^3] दिहल = दिया।

[^4] मंद = नीचा।

[^5] बिलंद = ऊँचा।

[^6] दलकन = झटका।

काँट कुरायँ [1] लपेटन [2] लोटन [3] ठावहिं ठाउँ बझाऊ [4] रे !

जस जस चलिय दूरि तस तस निज बास न भेंट लगाऊ रे !

मारग अगम, संग नहिं संबल, नाउँ गाउँ कर भूला रे !

तुलसिदास भव-त्रास हरहु अब, होहु राम अनुकूला रे !॥ 189॥

सहज सनेही राम सों तैं कियो न सहज सनेह ।

तातें भव भाजन भयो, सुनु अजहुँ सिखावन एह ॥

ज्यों मुख मुकुर बिलोकिए अरु चित न रहै अनुहारि ।

त्यों सेवतहुँ न आपने ये मातु पिता सुत नारि ॥

दै दै सुमन तिल बासि कै अरु खरि [5] परिहरि रस लेत ।

स्वारथ हित भूतल भरे, मन मेचक, तन सेत ॥

करि बीत्यो, अब करतु है, करिबे हित मीत अपार ।

कबहुँ न कोउ रघुबीर सो नेह निबाहनिहार ॥

---

[^1] कुरायँ = कंकड़ी।

[^2] लपेटन = परों में लिपटनेवाला तृण।

[^3] लोटन = सरीमृप, साँप।

[^4] बझाऊ = बझाव, उलझन।

[^5] खरि = खली, सीठी।

जासों सब नातों फुरै तासों न करी पहिचानि ।

तातें कछू समझ्यो नहीं कहा लाभ कह हानि ॥

साँचो जान्यो झूठ को, झूठे कहँ साँचो जानि ।

को न गयो, को जात है, को न जैहै करि हितहानि ॥

बेद कह्यो, बुध कहत हैं अरु हौहुँ कहत हौं टेरि ।

तुलसी प्रभु साँचो हितू, तू हिये की आँखिन हेरि ॥ 190॥

एक सनेही साँचिलो केवल कोसलपालु ।

प्रेम कनौड़ो राम सो नहि दूसरो दयालु ॥

तन साथी सब स्वारथी, सुर ब्यवहार-सुजान ।

आरत अधम अनाथ हित को रघुबीर समान ॥

नाद निठूर, समचर [1] सिखी [2], सलिल सनेह न सूर ।

ससि सरोग, दिनकर बड़े, पयद प्रेम-पथ कूर ॥

जाको मन जासों बँध्यो ताको सुखदायक सोइ ।

सरल सील साहिब सदा सीतापति सरिस न कोइ ॥

सुनि सेवा सही को करै, परिहरै को दूषन देखि ।

---

[^1] समचर = एक सा व्यवहार करनेवाला।

[^2] सिखी = मोर।

केहि दिवान [1] दिन दीन को आदर अनुराग बिसेखि ॥
खग सबरी पितु-मातु ज्यों माने, कपि को किए मीत ।
केवट भेंट्यों भरत ज्यो ऐसो को कहु पतित-पुनीत ॥
देह अभागहिं भागु को, को राखै सरन सभीत ।
बेद-बिदित बिरुदावली, कबि कोबिद गावत गीत ॥
कैसेउ पाँवर पातकी जेहि लई नाम की ओट ।
गाँठी बाँध्यो दाम सो पर्‌यो न फेरि खर खोट ॥
मन-मलीन, कलि किलबिषी [2] होत सुनत जासु कृत काज ।
सो तुलसी कियो आपुनो रघुबीर गरीब-निवाज ॥ 191 ॥

जो पै जानकी नाथ सों नातो नेह न नीच ।
स्वारथ परमारथ कहाँ? कलि कुटिल बिगोयो बीच ॥
धरम बरन आस्रमनि के पैयत पोथिही पुरान ।
करतब बिनु बेष देखिए ज्यौं सरीर बिनु प्रान ॥
बेद-बिहित साधन सबै सुनियत दायक फल चारि ।
राम-प्रेम बिनु जानिबो जैसे सर सरिता बिनु बारि ॥

[^1] दिवान = दरबार।

[^2] किलविषि = दोषयुक्त, पापी।

नाना पथ निरबान के, नाना बिधान बहु भाँति ।

तुलसी तू मेरे कहे जपु राम-नाम दिन राति ॥ 192॥

अजहुँ आपने राम के करतब समुझत हित होइ ।

कहँ तू, कहँ कोसलधनी, तोको कहा कहत सब कोइ ॥

रीझि निवाज्यो कबहिं तू, कब खीझि दई तोहिं गारि ।

दरपन बदन निहारि कै सुबिचारि मान हिय हारि ॥

बिगरी जनम अनेक की सुधरत पल लगै न आधु ।

'पाहि कृपानिधि!' प्रेम सों कहे को न राम कियो साधु ॥

बालमीकि-केवट-कथा, कपि-भील-भालु-सनमान ।

सुनि सनमुख जो न राम सों तिहि को उपदेसहि ज्ञान ॥

का सेवा सुग्रीव की, का प्रीति-रीति-निरबाहु ?।

जासु बंधु बध्यो ब्याध ज्यों सो सुनत सोहात न काहु ॥

भजन बिभीषन को कहा, फल कहा दियो रघुराज!

राम गरीब-निवाज के बड़ी बाँह-बोल की लाज ॥

जपहि नाम रघुनाथ की चरचा दूसरी न चालु ।

सुमुख सुखद साहिब सुधी समरथ कृपालु नतपालु ॥

सजल नयन, गदगद गिरा, गहबर मन पुलक सरीर ।

गावत गुनगन राम के केहि की न मिटी भव-भीर ?॥
प्रभु कृतज्ञ सरबज्ञ हैं,परिहरु पाछिली गलानि ।
तुलसी तोसों राम सो कछु नई न जान-पहिचानि ॥ 193॥

जो अनुराग न राम सनेही सों । तौ लह्यो लाहु कहा नर देही सों ॥
जो तनु धरि परिहरि सब सुख भए सुमति राम अनुरागी ।
सो तनु पाइ अघाइ किये अघ अवगुन-उदधि अभागी ॥
ज्ञान बिराग जोग जप तप मख जग मुद-मग [1] नहिं थोरे ।
राम-प्रेम बिनु नेम जाय जैसे मृग-जल-जलधि हिलोरे ॥
लोक बिलोकि, पुरान बेद सुनि, समुझि बूझि गुरु ज्ञानी ।
प्रीति प्रतीति राम-पद-पंकज सकल सुमंगल-खानी ॥
अजहुँ जानि जिय मानि हारि हिय होइ पलक महँ नीको ।
सुमिरु सनेह सहित हित रामहिं मानु मतो तुलसी को ॥ 194॥

बलि जाउँ हौं राम गुसाईं । कीजै कृपा आपनी नाईं ॥
परमारथ सुरपुर-साधन सब स्वारथ सुखद भलाई !
कलि सकोप लोपी सुचाल, निज कठिन कुचाल चलाई ॥

[^1] मुद-मग = मंगल के मार्ग।

जहँ जहँ चित चितवत हित तहँ नित नव बिषाद अधिकाई ।

रुचि-भावती भभरि भागहि, समुहाहिं अमित अनभाई ॥

आधि-मगन मन, ब्याधि-बिकल तन, बचन मलीन झुठाई ।

एतेहुँ पर तुम सों तुलसी की प्रभु सकल सनेह सगाई ॥ 195॥

काहे को फिरत मन करत बहु जतन,

मिटै न दुख बिमुख रघुकुल-बीर ।

कीजै जो कोटि उपाइ,त्रिबिध ताप न जाइ,

कह्यो जो भुज उठाय मुनिबर कीर [1]॥

सहज टेव बिसारि तुही धौं देखु बिचारि,

मिलै न मथत बारि घृत बिनु छीर ।

समुझि तजहि भ्रम भजहि पद जुगम,

सेवत सुगम गुन गहन गँभीर ॥

आगम निगम ग्रंथ, ऋषि मुनि सुर संत,

सबही को एक मत सुनु, मतिधीर ।

तुलसिदास प्रभु बिनु पियास मरै पसु,

[^1] मुनिबर कीर = शुक्रदेव जी।

जद्यपि है निकट सुरसरि-तीर ॥ 196॥

नाहिन चरन-रति ताहि तें सहौं बिपति,
कहत स्त्रुति सकल मुनि मतिधीर ।
बसै जो ससि-उछंग सुधा-स्वादित कुरंग,
ताहि क्यों भ्रम निरखि रबिकर-नीर ?॥

सुनिय नाना पुरान, मिटत नाहिं अज्ञान,
पढ़िय न समुझिय जिमि खग कीर ।
बझत बिनहिं पास सेमर-सुमन-आस,
करत चरत तेइ फल बिनु हीर [1]॥

कछु न साधन सिधि, जानौं न निगम, बिधि,
नहिं जप तप बस मन, न समीर [2]।
तुलसिदास भरोस परम करुना-कोस,
प्रभु हरिहैं बिषम भवभीर ॥ 197॥

---

[^1] हीर = गूदा, सार।

[^2] समीर = प्राण वायु, जिसे योगी वश में करते है।

(राग भैरवी)

मन पछितैहै अवसर बीते ।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु करम बचन अरु ही ते ॥
सहसबाहु दसबदन आदि नृप बचे न काल बली ते ।
हम हम करि धन धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते ॥
सुत बनितादि जानि स्वारथ-रत न करु नेह सबही ते ।
अंतहु तोहिं तजैंगे, पामर! तू न तजै अबही ते ॥
अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुरासा जी ते ।
बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहुँ, बिषय-भोग बहु घी ते ॥ 198॥

काहे को फिरत मूढ़ मन धायो ।
तजि हरि-चरन-सरोज सुधारस रबिकर-जल लय लायो ॥
त्रिजग, देव, नर, असुर, अपर जग जोनि सकल भ्रमि आयो ।
गृह, बनिता, सुत, बंधु भए बहु मातु पिता जिन्ह जायो ॥
जाते निरय[1]-निकाय निरंतर सोइ इन्ह तोहिं सिखायो ।
तुव हित होइ कटै भव-बंधन, सो मगु तोहिं न बतायो ॥
अजहुँ बिषय कहँ जतन करत, जद्यपि बहुबिधि डहँकायो ।

[^1] निरय = नरक।

पावक-काम भोग-घृत तें सठ, कैसे परत बुझायौ ?॥
बिषयहीन दुख, मिले बिपति अति, सुख सपनेहुँ नहिं पायो ।
उभय प्रकार प्रेत-पावक [1] ज्यों धन दुखप्रद स्रुति गायो ॥
छिन छिन छीन होत जीवन, दुरलभ तनु बृथा गँवायो ।
तुलसिदास हरि भजहि आस तजि, काल-उरग जग खायो ॥199॥

ताँबे सो पीठि मनहुँ तन पायो [2]।
नीच! मीच जानत न सीस पर, ईस निपट बिसरायौ ॥
अवनि, रवनि, धन, धाम, सुहृद, सुत को न इन्हहिं अपनायो ।
काके भए गए सँग काके सब सनेह छल-छायो ॥
जिन्ह भूपनि जग जीति, बाँधि जम अपनी बाँह बसायो ।
तेऊ काल कलेऊ कीन्हे, तू गिनती कब आयो ?॥
देखु बिचारि सार का साँचो, कहा निगम निजु [3] गायो ।
भजहिं न अजहुँ समुझि तुलसी तेहि जेहि महेस मन लायो ॥ 200॥

---

[^1] प्रेत-पावक = दलदलों और मैदानों में रात को दिखाई देता हुआ लुक जिसे आग समझकर लोग धोखा खाते है।

[^2] ताँबे सो... पायो = मानो ताँबे से मढ़ी पीठ लेकर आया, अर्थात् शरीर का नाश नहीं होगा।

[^3] निजु = प्रधानतः, विशेष रूप से।

लाभ कहा मानुष तनु पाए ।
काय, बचन, मन सपनेहु कबहुँक घटत [1] न काज पराए ॥
जो सुख सुरपुर नरक गेह बन आवत बिनहिं बुलाए ।
तेहि सुख कहँ बहु जतन करत मन, समुझत नहिं समुझाए ॥
पर-दारा, परद्रोह, मोहबस किए मूढ़ मन भाए ।
गर्भबास दुखरासि जातना तीव्र बिपति बिसराए ॥
भय निद्रा मैथुन अहार सब के समान जग जाए ।
सुर-दुरलभ तनु धरि न भजे हरि, मद अभिमान गँवाए ॥
गई न निज-पर-बुद्धि, सुद्ध ह्वै रहे न राम-लय लाए ।
तुलसिदास यह अवसर बीते का पुनि के पछिताए ?॥ 201॥

काज कहा नरतनु धरि सार्‌यो ।
पर-उपकार सार श्रुति को जो सो धोखेहु न बिचार्‌यो ॥
द्वैत मूल, भय सूल, सोक फल, भवतरु टरै न टार्‌यौ ।
रामभजन तीछन कुठार लै सो नहिं काटि निवार्‌यो ॥
संसय-सिंधु नाम बोहित भजि निज आतमा न तार्‌यो ।

[^1] घटत = काम आता है।

जनम अनेक विवेकहीन बहु जोनि भ्रमत नहिं हार्‌यो ॥
देखि आन की सहज संपदा द्वेष-अनल मन-जार्‌यो ।
सम दम दया दीन-पालन सीतल हिय हरि न सँभार्‌यो ॥
प्रभु गुरु पिता सखा रघुपति तैं मन क्रम बचन बिसार्‌यो ।
तुलसिदास एहि त्रास सरन राखिहि जेहि गीध उधार्‌यो ॥ 202॥

श्रीहरि-गुरु-पद-कमल भजहु मन तजि अभिमान ।
जेहि सेवत पाइय हरि सुख निधान भगवान ॥
परिवा प्रथम प्रेम बिनु राम मिलन अति दूरि ।
जद्यपि निकट हृदय निज रहे सकल भरि पूरि ॥
दुइज द्वैत-मति छाँड़ि चरहि महि-मंडल धीर ।
बिगत मोह माया मद हृदय बसत रघुबीर ॥
तीज त्रिगुन-पर परम पुरुष श्रीरमन मुकुंद ।
गुन सुभाव त्यागे बिनु दुरलभ परमानंद ॥
चौथि चारि परिहरहु बुद्धि मन, चित अहंकार ।
बिमल बिचार परमपद निज सुख सहज उदार ॥
पाँचइँ पाँच परस, रस, सब्द, गंध अरु रूप ।
इन्ह कर कहा न कीजिए बहुरि परब भव-कूप ॥

छठ षड्बर्ग करिय जय जनकसुता-पति लागि ।
रघुपति-कृपा-बारि बिनु नहीं बुताइ लोभागि ॥
सातैं सप्तधातु-निर्मित तनु करिय बिचार ।
तेहि तनु केर एक फल, कीजै पर-उपकार ॥
आठइँ आठ-प्रकृति-पर निर्बिकार श्रीराम ।
केहि प्रकार पाइय हरि, हृदय बसहिं बहु काम ॥
नवमी नवद्वार-पुर बसि जेहि न आपु भल कीन्ह ।
ते नर जोनि अनेक भ्रमत दारून दुख लीन्ह ॥
दसइँ दसहु कर संयम जो न करिय जिय जानि ।
साधन बृथा होइँ सब मिलहिं न सारँगपानि ॥
एकादसी एक मन बस कै सेवहु जाइ ।
सोइ ब्रत कर फल पावै आवागमन नसाइ ॥
द्वादसि दान देहु अस अभय होइ त्रैलोक ।
परहित निरत सो पारन बहुरि न ब्यापत सोक ॥
तेरसि तीन अवस्था तजहु भजहु भगवंत ।
मन-क्रम-बचन-अगोचर, ब्यापक, ब्याप्य, अनंत ॥
चौदसि चौदह भुवन अचर-चर रूप गोपाल ।
भेद गए बिनु रघुपति अति न हरहिं जग-जाल ॥

पूनो प्रेम-भगति-रस हरि-रस जानहिं दास ।

सम सीतल गत-मान ज्ञानरत बिषय उदास ॥

त्रिबिध सूल होलिय जरै, खेलिय अब फागु ।

जो जिय चहसि परम सुख, तौ यहि मारग लागु ॥

श्रुति-पुरान-बुध-संमत चाँचरि [1] चरित मुरारि ।

करि बिचार भव तरिय, परिय न कबहुँ जमधारि ॥

संसय-समन दमन दुख सुखनिधान हरि एक ।

साधु-कृपा बिनु मिलहिं न करिय उपाय अनेक ॥

भव-सागर कहँ नाव सुद्ध संतन के चरन ।

तुलसिदास प्रयास बिनु मिलहिं राम दुखहरन ॥ 203 ॥

(राग कान्हरा)

जो मन लागै रामचरन अस ।

देह, गेह,सुत, बित, कलत्र महँ मगन होत बिनु जतन किए जस ॥

द्वंद्व-रहित, गत-मान, ज्ञानरत, बिषय-बिरत खटाइ [2] नाना कस [3]।

---

[^1] चाँचरि = फाग के स्वाँग।

[^2] खटाइ = परीक्षा में पूर्ण उतरे।

[^3] कस = जाँच, परीक्षा।

सुखनिधान सुजान कोसलपति ह्वै प्रसन्न कहु, क्यों न होंहि बस ?॥
सर्व भूत-हित निर्ब्यलीक चित भगति प्रेम दृढ़ नेम एक-रस ।
तुलसिदास यह होइ तबहिं जब द्रवै ईस जेहि हतो सीसदस॥204॥

जो मन भज्यो चहै हरि-सुरतरु ।
तौ तज बिषय-बिकार सार भजु, अजहूँ जो मैं कहौं सोइ करु ॥
सम, संतोष, बिचार बिमल अति, सतसंगति, ए चारि दृढ़ करि धरु ।
काम क्रोध अरु लोभ मोह मद राग द्वेष निसेष करि परिहरु ॥
स्रवन कथा, मुख नाम, हृदय हरि, सिर प्रनाम, सेवा कर अनुसरु ।
नयनन निरखि कृपा-समुद्र हरि अग-जग-रूप भूप सीताबरु ॥
इहै भगति, बैराग्य-ज्ञान यह हरि-तोषन यह सुभ ब्रत आचरु ।
तुलसिदास सिव-मत मारग यहि चलत सदा सपनेहुँ नाहिन डरु ॥ 205 ॥

नाहिन और कोउ सरन लायक दूजो श्रीरघुपति सम बिपति-निवारन ।
काको सहज सुभाउ सेवक-बस, काहि प्रनत परप्रीति अकारन ?॥
जन-गुन अलप गनत सुमेरु करि, अवगुन कोटि बिलोकि बिसारन ।
परम कृपालु, भगत-चिंतामनि बिरद पुनीत पतितजन-तारन ॥
सुमिरत सुलभ, दास दुख सुनि हरि चलत तुरत पट पीत सँभार न ।

साखि पुरान-निगम अगम सब, जानत द्रुपद-सुता अरु बारन ॥
जाको जस गावत कबि-कोबिद, जिन्हके लोभ मोह मद मार न ।
तुलसिदास तजि आस सकल भजु कोसलपति मुनिबधू-उधारन ॥ 206॥

भजिबे लायक सुखदायक रघुनायक सरिस सरनप्रद दूजो नाहिन ।
आनँदभवन दुखदवन सोकसमन रमारमन गुन गनत सिराहिं न ॥
आरत अधम कुजाति कुटिल खल पतित सभीत कहुँ जे समाहिं न ।
सुमिरत नाम बिबस हू बारक पावत सो पद जहाँ सुर जाहिं न ॥
जाके पद-कमल लुब्ध मुनि-मधुकर बिरत जे परम सुगतिहु लुभाहिं न ।
तुलसिदास सठ तेहि न भजसि कस कारुनिक जो अनाथहिं दाहिन॥207॥

(राग कल्याण)

नाथ सों कौन बिनती कहि सुनावौं ।
बिबिध अनगनित अवलोकि अघ आपने
सरन सनमुख होत सकुचि सिर नावौं ॥

बिरचि हरिभगति को बेष बर टाटिका [1],
कपट-दल हरित पल्लवनि छावौं ।

[^1] टाटिका = टट्टी।

नाम-लगि [1] लाइ, लासा-ललित-बचन कहि,

ब्याध ज्यों बिषय-बिहँगनि बझावौं ॥

कुटिल सत कोटि मेरे रोम पर वारियहि,

साधु-गनती में पहलेहि गनावौं ।

परम बर्बर खर्ब-गर्ब-पर्बत चढ़्यो,

अज्ञ सर्बज्ञ जन-मनि [2] जनावौं ॥

साँच किधौं झूठ मोको कहत कोउ

कोउ राम रावरो हौंहुँ तुम्हरो कहावौं ।

बिरद की लाज करि दास तुलसिहिं, देव!

लेहु अपनाइ अब देहु जनि बावौ ॥ 208॥

नाहिनै नाथ अवलंब मोहिं आन की ।

करम-मन-बचन पन सत्य, करुनानिधे!

एक गति राम भवदीय पदत्रान की ॥

---

[^1] लगि = लग्गी, बाँस की लंबी छड़।

[^2] जन-मनि = मनुष्यों में श्रेष्ठ।

कोह मद मोह ममतायतन जानि मन,
बात नहि जाति कहि ज्ञान-बिज्ञान की ।
काम-संकल्प उर निरखि बहु बासनहिं,
आस नहिं एक हू आँक [1] निरबान की ॥

बेद-बोधित करम धरम बिनु, अगम अति
जदपि, जिय लालसा अमरपुर जान की ।
सिद्ध सुर मनुज दनुजादि सेवत कठिन
द्रवहिं हठजोग दिए भोग बलि प्रान की ॥

भगति दुरलभ परम, संभु सुक मुनि मधुप,
प्यास पदकंज-मकरंद-मधुपान की ।
पतित-पावन सुनत नाम बिस्रामकृत
भ्रमित पुनि समझि चित ग्रंथि अभिमान की ॥

नरक-अधिकार मम घोर संसार-तम-कूपकहीं,
भूप! मोहि सक्ति आपान की [2]।

---

[^1] एक हूँ आँक = सोलह आने में एक आना भी, कुछ भी।

[^2] आपान की = अपनी या आपकी।

दासतुलसी सोउ त्रास नहि गनत मन,

सुमिरि गुह गीध गज ज्ञाति हनुमान की ॥ 209॥

और कहँ ठौर, रघुबंस-मनि मेरे ?

पतित-पावन प्रनत-पाल असरन-सरन,

बाँकुरे बिरुद बिरुदैत केहि केरे ॥

समुझि जिय दोष अति रोष करि राम कै,

करत नहिं कान बिनती बदन फेरे ।

तदपि ह्वै निडर हौं कहौं, करुना-सिंधु!

क्योंऽब रहि जात सुनि बात बिनु हेरे ॥

मुख्य रुचि बसिबे की पुर रावरे,

राम तेहि रुचिहि कामादि गन घेरे ।

अगम अपवर्ग, अरु स्वर्ग सुकृतैक फल,

नाम-बल क्यों बसौं जम-नगर नेरे ?॥

कतहुँ नहिं ठाउँ कहँ जाउँ, कोसलनाथ!

दीन बितहीन हौं बिकल बिनु डेरे ।

दास तुलसिहि बास देहु अब करि कृपा,

बसत गज गीध ब्याधादि जेहि खेरे ॥ 210॥

कबहुँ रघुबंस-मनि सो कृपा करहुगे ?

जेहि कृपा ब्याध गज बिप्र खल नर तरे

तिन्हहि सम मानि मोहि नाथ उद्धरहुगे ॥

जोनि बहु जनमि किए करम खल बिबिध बिधि,

अधम आचरन कछु हृदय नहि धरहुगे ।

दीनहित अजित सर्बज्ञ समरथ प्रनतपाल,

चित मृदुल निज गुननि अनुसरहुगे ॥

मोह मद मान कामादि खल-मंडली,

सकुल निरमूल करि दुसह दुख हरहुगे ।

जोग जप ज्ञान बिज्ञान तें अधिक अति,

अमल दृढ़ भगति दै परम सुख भरहुगे ॥

मंदजन-मौलि-मनि सकल साधनहीन,

कुटिल मन, मलिन-जिय जानि जो डरहुगे ।

दासतुलसी बेद-बिदित बिरुदावली,

बिमल जस नाथ केहि भाँति बिस्तरहुगे ?॥ 211 ॥

(राग केदारा)

रघुपति बिपति-दवन ।

परम कृपालु प्रनत-प्रतिपालक पतित-पावन ॥

कूर कुटिल कुलहीन दीन अति मलिन जवन ।

सुमिरत नाम राम पठए सब अपने भवन ॥

गज पिंगला अजामिल से खल गनै धौं कवन ।

तुलसिदास प्रभु केहि न दीन्हि गति जानकी-रवन ॥ 212 ॥

हरि सम आपदा-हरन ।

नहि कोउ सहज कृपालु दुसह दुख-सागर-तरन ॥

गज निज बल अवलोकि कमल गहि गयो सरन ।

दीन बचन सुनि चले गरुड़ तजि सुनाभ[1]-धरन ॥

द्रुपदसुता को लग्यो दुसासन नगन करन ।

‘हा हरि पाहि’ कहत पूरे पट बिबिध बरन ॥

---

[^1] सुनाभ = चक्र।

इहे जानि सुर नर मुनि कोबिद सेवत चरन ।

तुलसिदास प्रभु को न अभय कियो नृग-उद्धरन ॥ 213॥

(राग कल्यान)

ऐसी कौन प्रभु की रीति ?

बिरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति ॥

गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाई ।

मातु की गति दई ताहि कृपालु जादवराइ ॥

काम-मोहित गोपिकनि पर कृपा अतुलित कीन्ह ।

जगत-पिता बिरंचि जिन्हके चरनकी रज लीन्ह ॥

नेम तें सिसुपाल दिन प्रति देत गनि गनि गारि ।

कियो लीन सु आप में हरि राज-सभा मँझारि ॥

ब्याध चित दै चरन मार्‌यो मूढ़मति मृग जानि ।

सो सदेह सुलोक पठयो प्रगट करि निज बानि ॥

कौन तिन्हकी कहै जिन्हके सुकृत अरु अघ दोउ ।

प्रगट पातक-रूप तुलसी सरन राख्यो सोउ ॥ 214॥

श्री रघुबीर की यह बानि ।

नीचहूँ सों करत नेह सुप्रीति मन अनुमानि ॥

परम अधम निषाद पाँवर, कौन ताकी कानि ?

लियो सो उर लाइ सुत ज्यौं प्रेम को पहिचानि ॥

गीध कौन दयालु जो बिधि रच्यो हिंसा सानि ?

जनक ज्यों रघुनाथ ता कहँ दियो जल निज पानि ॥

प्रकृति-मलिन कुजाति सबरी सकल अवगुन-खानि ।

खात ताके दिए फल अति रुचि बखानि बखानि ॥

रजनिचर अरु रिपु बिभीषन सरन आयो जानि ।

भरत ज्यों उठि ताहि भेंटत देह-दसा भुलानि ॥

कौन सुभग सुसील बानर जिनहिं सुमिरत हानि ।

किए ते सब सखा, पूजे भवन अपने आनि ॥

राम सहज कृपालु कोमल दीनहित दिन दानि ।

भजहि ऐसे प्रभुहि तुलसी कुटिल कपट न ठानि ॥ 215॥

हरि तज और भजिये काहि ?

नाहिनै कोउ राम सो ममता प्रनत पर जाहि ॥

कनक-कसिपु बिरंचि को जन करम मन अरु बात ।

सुतहिं दुखवत बिधि न बरज्यो काल के घर जात ॥

संभु-सेवक जान जग, बहु बार दिए दस सीस ।

करत राम-बिरोध सो सपनेहु न हटक्यो ईस ॥

और देवन की कहा कहौं, स्वारथहि के मीत ।

कबहुँ काहु न राख लियो कोउ सरन गयउ सभीत ॥

को न सेवत देत संपति ? लोक हू यह रीति ।

दास तुलसी दीन पर एक राम ही की प्रीति ॥ 216॥

जो पै दूसरो कोउ होइ ।

तौ हौं बारहि बार प्रभु कत दुख सुनावौं रोइ ॥

काहि ममता दीन पर, को पतितपावन नाम ?

पापमूल अजामिलहि केहि दियो अपनो धाम ?॥

रहे संभु बिरंचि सुरपति लोकपाल अनेक ।

सोक-सरि बूड़त करीसहि [1] दई काहु न टेक ॥

बिपुल भूपति-सदसि [2] मह नर-नारि [3] कह्यो 'प्रभु पाहि' ।

सकल समरथ रहे काहु न बसन दीन्हों ताहि ॥

---

[^1] करीस = गजराज।

[^2] सदसि = सभा।

[^3] नर-नारि = अर्जुन की स्त्री, द्रौपदी।

एक मुख क्यों कहौं करुनासिंधु के गुन-गाथ ?
भगतहित धरि देह काह न कियो कोसलनाथ ॥
आप से कहुँ सौंपिये मोहि जो पै अतिहि घिनात ।
दासतुलसी और बिधि क्यों चरन परिहरि जात ?॥ 217 ॥

कबहि देखाइहौ हरि चरन?

समन सकल कलेस कलि-मल, सकल-मंगल- करन ॥
सरद-भव सुंदर तरुनतर अरुन-बारिज-बरन ।
लच्छि [1] लालित ललित करतल छबि अनूपम धरन ॥
गंग-जनक, अनंग-अरि-प्रिय, कपट बटु बलि-छरन ।
बिप्रतिय, नृग, बधिक के दुख दोष दारुन दरन ॥
सिद्ध-सुर-मुनि-बृंद-बंदित सुखद सब कहँ सरन ।
सकृत उर आनत जिनहिं जन होत तारन-तरन ॥
कृपासिंधु सुजान रघुबर प्रनत-आरति-हरन ।
दरस-आस-पियास तुलसीदास चाहत मरन ॥ 218॥

द्वार हौं भोर ही को आज ।

[^1] लच्छि = लक्ष्मी।

रटत रिरिहा [1] आरि [2] और न कौर ही तें काज ॥

कलि कराल दुकाल दारुन सब कुभाँति कुसाज ।

नीच जन, मन ऊँच जैसी कोढ़ में की खाज ॥

हहरि हिय मैं सदय बूझ्यो जाइ साधु-समाज ।

मोहुँ से कहुँ कतहुँ कोउ तिन्ह कह्यो कोसलराज ॥

दीनता दारिद दलै को कृपा-बारिधि बाज [3]।

दानि दसरथ राय के तुम बानइत सिरताज ॥

जनम को भूखो भिखारी हौं गरीब-नेवाज ।

पेट भरि तुलसिहिं जेंवाइय भगति-सुधा सुनाज ॥ 219 ॥

करिय सँभार, कोसलराय!

और ठौर, न और गति, अवलंब नाम बिहाय ॥

बूझि अपनी आपनौ हित आप बाप न माय ।

राम राउर नाम गुरु सुर स्वामि सखा सहाय ॥

रामराज न चले मानस-मलिन के छल-छाय ।

---

[^1] रिरिहा = रट लगाकर और गिड़गिड़ा कर माँगनेवाला।

[^2] आरि = टेक, हठ।

[^3] बाज = बिना, बगैर।

कोप तेहि कलिकाल कायर मुएहि घायल घाय ॥

लेत केहरि को बयर ज्यों भैक हनि गोमाय [1]।

त्योंहि राम-गुलाम जानि निकाम देत कुदाय [2]॥

अकनि याके कपट-करतब, अमित अनय-अपाय ।

सुखि हरिपुर बसत होत परीछितहि पछिताय ॥

कृपासिंधु बिलोकिए जन-मन की साँसति साय [3]।

सरन आयो, देव दीनदयालु! देखन पाय ॥

निकट बोलि न बरजिए, बलि जाउँ हनिय न हाय ।

देखिहैं हनुमान गोमुख नाहरनि के न्याय [4]॥

अरुन मुख भ्रू बिकट, पिंगल नयन रोष कषाय ।

बीर सुमिरि समीर को घटिहै चपल चित चाय ॥

बिनय सुनि बिहँसे अनुज सों बचन के कहि भाय ।

भली कही कह्यो लषन हूँ हँसि, बने सकल बनाय ॥

---

[^1] गोमाय = गोमायु, गीदड़।

[^2] कुदाय देत = घात करता है।

[^3] साय = जाय या शांत हो।

[^4] गोमुख नाहर न्याय = ऊपर से गाय की तरह सीधा, पर असल में व्याघ्र के समान क्रूर।

दई दीनहिं दादि सो सुनि सुजन-सदन बधाय ।

मिटे संकट सोच पोच प्रपंच पाप-निकाय ॥

पेखि प्रीति प्रतीति जन पर अगुन अनघ अमाय ।

दास तुलसी कहत मुनिगन, ‘जयति जय उरुगाय’ [1]॥ 220 ॥

नाथ-कृपा ही को पंथ चितवत दीन हौं दिन राति ।

होइ धौं केहि काल दीनदयालु जानि न जाति ॥

सुगुन, ज्ञान, बिराग, भगति सु-साधननि की पाँति ।

भजे बिकल बिलोकि कलि अघ-अवगुननि की थाति ॥

अति अनीति कुरीति भइ भुइँ तरनि हूँ तें ताति ।

जाउँ कहँ बलि जाउँ? कहूँ न ठाउँ मति अकुलाति ॥

आप सहित न आपनो कोउ, बाप! कठिन कुभाँति ।

स्यामघन सींचिये तुलसी सालि सफल सुखाति ॥ 221॥

बलि जाउँ, और कासों कहौं ?

सदगुन-सिंधु स्वामि सेवक-हित कहुँ न कृपानिधि सो लहौं ॥

जहँ जहँ लोभ लोल लालचबस निजहित चित चाहनि चहौं ।

[^1] उरगाय = विष्णु।

तहँ तहँ तरनि तकत उलूक ज्यों भटकि कुतरु-कोटर गहौं ॥

काल सुभाव करम बिचित्र फलदायक सुनि सिर धुनि रहौं ।

मोको तौ सकल सदा एकहि रस दुसह दाह दारुन दहौं ॥

उचित अनाथ होइ दुखभाजन, भयो नाथ किंकर न हौं ।

अब रावरो कहाइ न बूझिये सरनपाल साँसति सहौं ॥

महाराज राजीव-बिलोचन मगन-पाप संताप हौं ।

तुलसी-प्रभु जब तब जेहि तेहि बिधि राम निरबहौं ॥ 222॥

आपनो कबहुँ करि जानिहौ ।

राम गरीब-निवाज राजमनि बिरद-लाज उर आनिहौ ॥

सील सिंधु सुंदर सब लायक समरथ सदगुन-खानि हौ ।

पाल्यो है, पालत, पालहुगे प्रभु प्रनत प्रेम पहिचानिहौ ॥

बेद पुरान कहत, जग जानत, दीनदयालु दिन दानि हौ ।

कहि आवत, बलि जाऊँ, मनहुँ मेरी बार बिसारे बानि हौ ॥

आरत दीन अनाथनि के हित मानत लौकिक कानि हौ ।

है परिनाम भलो तुलसी को सरनागत-भय भानिहौ [1]॥ 223॥

[^1] भानिहौ = भंजन करोगे, नष्ट करोगे।

रघुबरहि कबहुँ मन लागिहै ?

कुपथ, कुचाल, कुमति, कुमनोरथ, कुटिल कपट कब त्यागि है ?॥

जानत गरल अमिय बिमोहबस, अमिय गनत करि आगि है ।

उलटी रीति प्रीति अपने की तजि प्रभुपद अनुरागिहै ॥

आखर अरथ मंजु मृदु मोदक राम-प्रेम-पगि पागिहै ।

ऐसे गुन गाइ रिझाइ स्वामि सों पाइहै जो मुँह माँगिहै ॥

तू यहि बिधि सुख-सयन सोइहै जिय की जरनि भूरि भागिहै ।

राम-प्रसाद दासतुलसी-उर राम-भगति-जोग जागिहै ॥ 224॥

भरोसो और आइहै उर ताके ।

कै कहुँ लहै जो रामहि सो साहिब, कै अपनो बल जाके ॥

के कलिकाल कराल न सूझत मोह-मार-मद छाके ।

कै सुनि स्वामि-सुभाउ न रह्यो चित जो हित सब अँग थाके ॥

हौं जानत भलि भाँति अपनपौ, प्रभु सो सुन्यो न साके ।

उपल, भील, खग, मृग, रजनीचर भले भए करतब काके ?॥

मोको भलो राम-नाम सुरतरु सो रामप्रसाद कृपालु कृपा के ।

तुलसी सुखी निसोच राज ज्यों बालक माय बबा के ॥ 225 ॥

भरोसो जाहि दूसरो सो करो ।
मोको तो राम को नाम कल्पतरु कलि कल्यान फरो ॥
करम, उपासन, ज्ञान बेदमत सो सब भाँति खरो ।
मोहि तो सावन के अंधहि ज्यों सूझत रंग हरों ॥
चाटत रह्यो स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो ।
सो हौं सुमिरत नाम सुधारस पेखत फरुसि धरो ॥
स्वारथ औ परमारथ हू को नहि कुंजरो नरो [1]।
सुनियत सेतु पयोधि पषाननि करि कपि कटक तरो ॥
प्रीति-प्रतीति जहाँ जाकी तहँ ताको काज सरो ।
मेरे तो माय-बाप दोउ आखर हौं सिसु-अरनि अरो ॥
संकर साखि जो राखि कहौं कछु तौ जरि जीह गरो ।
अपनो भलो राम नामहि ते तुलसिहि समुझि परो ॥ 226॥

नाम राम रावरोई हित मेरे ।
स्वारथ परमारथ साथिन्ह सों भुज उठाइ कहौं टेरे ॥
जननी जनक तज्यो जनमि, करम बिनु बिधिहु सृज्यो अवडेरे [2]।

[^1] कुंजरो नरो = नरो वा कुंजरो वा, दुविधा या संदेह।

[^2] अवडेरे = चक्करदार, बेढब।

मोहुँ से कोउ कोउ कहत रामहि को सो प्रसंग केहि केरे ?॥
फिर्‌यौ ललात बिनु नाम उदर लगि, दुखउ दुखित मोहि हेरे ।
नाम-प्रसाद लहत रसाल फल अब हौं बबुर बहेरे ॥
साधत साधु लोक परलोकहि, मुनि गुनि जतन घनेरे ।
तुलसी के अवलंब नाम को एक गाँठि कई फेरे ॥ 227॥

प्रिय रामनाम तें जाहि न रामो ।
ताको भलो कठिन कलिकालहुँ आदि मध्य-परिनामो ॥
सकुचत समुझि नाम-महिमा मद लोभ मोह कोह कामो ।
राम-नाम-जप-निरत सुजन पर करत छाँह घोर घामो ॥
नाम प्रभाउ सही जो कहै कोउ सिला सरोरुह जामो ।
जो सुनि सुमिरि भाग-भाजन भइ सुकृतसील भील-भामो [1]॥
बालमीकि अजामिल के कछु हुतो न साधन सामो [2]।
उलटे पलटे नाम-महातम गुंजनि जितो ललामो [3]॥
राम तें अधिक नाम-करतब जेहि किए नगर-गत गामो ।

[^1] भील-मामो = भील की स्त्री शबरी भी।

[^2] सामो = सामग्री।

[^3] ललामो = रत्नों के आभूषण।

भए बजाइ दाहिने जो जपि तुलसिदास से बामो ॥ 228॥

गरैगी जीह जो कहौं और को हौं ।
जानकी-जीवन! जनम-जनम जग ज्यायो तिहारेहि कौर को हौं ॥
तीनि लोक तिहुँ काल न देखत सुहृद रावरे जोर [1] को हौं ।
तुम्ह सों कपट करि कलप कलप कृमि ह्वैहौं नरक घोर को हौं ॥
कहा भयो जो मन मिलि कलिकालहिं कियो भौंतुवा [2] भौंर को हौं ।
तुलसिदास सीतल नित यहि बल बड़े ठेकाने ठौर को हौं ॥ 229॥

अकारन को हितू और को है ?
बिरद गरीब-निवाज कौन की भौंह जासु जन जोहै ?॥
छोटो बड़ो चहत सब स्वारथ जो बिरंचि बिरचो है ।
कोल कुटिल कपि-भालु पालिबो कौन कृपालुहि सोहै ?॥
काको नाम अनख आलस कहें अघ अवगुननि बिछोहै ?
को तुलसी से कुसेवक संग्रह्यो, सठ सब दिन साईं द्रोहै ?॥ 230॥

---

[^1] जोर = जोड़।

[^2] भौंतुवा = जौ बराबर एक काला कीड़ा जो नदियों में तैरा करता है, ये नावों के निकट झुंड के झुंड दिखाई देते हैं।

और मोहि को है काहि कहिहौं ?

रंक-राज ज्यों मन को मनोरथ केहि सुनाइ सुख लहिहौं? ॥

जम-जातना जोनि-संकट सब सहे दुसह अरु सहिहौं ।

मोको अगम, सुगम तुम्हको प्रभु! तउ फल चारि न चहिहौं ॥

खेलिबेको खग-मृग,तरु-कंकर है रावरो राम हौं रहिहौं ।

यहि नाते नरकहुँ सचु पैहौं, या बिनु परमपदहुँ दुख दहिहौं ॥

इतनी जिय लालसा दास के कहत पानही [1] गहिहौं ।

दीजै बचन कि हृदय आनिये तुलसि को पन निर्बहिहौ ॥ 231॥

दीनबंधु दूसरो कहँ पावो ?

को तुम बिनु पर-पीर पाइहै ? केहि दीनता सुनावों ?॥

प्रभु अकृपालु, कृपालु अलायक जहँ जहँ चितहिं डोलावों ।

इहै समुझि सुनि रहौं मौन ही, कहि भ्रम कहाँ गँवावों ?॥

गोपद बूड़िबे जोग करम करौं बातनि जलधि थहावों ।

अति लालची काम-किंकर मन, मुख रावरो कहावों ॥

तुलसी प्रभु जिय की जानत सब, अपनौ [2] कछुक जनावों ।

---

[^1] पानही = जूता।

[^2] अपनौ = आप भी।

सो कीजै जेहि भाँति छाँडि छल द्वार परो गुन गावों ॥ 232॥

मनोरथ मन को एकै भाँति ।

चाहत मुनि-मन-अगम सुकृत-फल, मनसा अघ न अघाति ॥

करमभूमि कलि जनम कुसंगति मति बिमोह मद माति ।

करत कुजोग कोटि कयों पैयत परमारथ-पद-सांति ॥

सेइ साधु गुरु, सुनि पुरान स्रुति बूझ्यो राग बाजी ताँति ।

तुलसी प्रभु सुभाउ सुरतरु सो ज्यों दरपन मुख-काँति ॥ 233॥

जनम गयो बादिहिं बर बीति ।

परमारथ पाले न पर्‌यो कछु, अनुदिन अधिक अनीति ॥

खेलत खात लरिकपन गो चलि, जौबन जुवतिन लियो जीति ।

रोग-बियोग-सोग-स्रम-संकुल बड़ि बय बृथहि अतीति [1]॥

राग-रोष-इरषा-बिमोह-बस रुची न साधु-समीति [2]।

कहे न सुने गुनगन रघुबर के, भइ न रामपद-प्रीति ॥

हृदय दहत पछिताय-अनल अब सुनत दुसह भवभीति ।

तुलसी प्रभु तें होइ सो कीजिय समुझि बिरद की रीति ॥ 234॥

---

[^1] अतीति = बीत गई।

[^2] समीति = समिति, समाज।

ऐसेहि जनम-समूह सिराने ।
प्राननाथ रघुनाथ से प्रभु तजि सेवत चरन बिराने ॥
जे जड़ जीव कुटिल कायर खल केवल कलिमल-साने ।
सूखत बदन प्रसंसत तिन्ह कहँ, हरि तें अधिक करि माने ॥
सुख हित कोटि उपाय निरंतर करत न पायँ पिराने ।
सदा मलीन पंथ के जल ज्यो कबहुँ न हृदय थिराने ॥
यह दीनता दूर करिबे को अमित जतन उर आने ।
तुलसी चित चिंता न मिटै बिनु चिंतामनि पहिचाने ॥ 235॥

जो पै जिय जानकी-नाथ न जाने ।
तौ सब करम धरम स्रमदायक, ऐसेइ कहत सयाने ॥
जे सुर, सिद्ध, मुनीस, जोगबिद बेद पुरान बखाने ।
पूजा लेत देत पलटे सुख हानि-लाभ अनुमाने ॥
काको नाम धोखेहूँ सुमिरत पातक-पुंज सिराने ।
बिप्र, बधिक, गज गीध कोटि खल कौन के पेट समाने ॥
मेरु से दोष दूरि करि जन के, रेनु से गुन उर आने ।
तुलसिदास तेहि सकल आस तजि भजहि न अज हुँ अयाने ॥236॥

काहे न रसना रामहि गावहि ?

निसि दिन पर-अपवाद बृथा कत रटि-रटि राग बढ़ावहि ॥

नरमुख सुंदर मंदिर पावन बसि जनि ताहि लजावहि ।

ससि समीप रहि त्यागि सुधा कत रबिकर-जल कहँ धावहि ॥

काम-कथा कलि-कैरव-चंदनि सुनत स्रवन दै भावहि ।

तिनहिं हटकि कहि हरि-कल-कीरति करन कलंक नसावहि ॥

जातरूप मति जुगति रुचिर मनि रचि रचि हार बनावहि ।

सरन-सुखद रबिकुल-सरोज-रबि राम-नृपहि पहिरावहि ॥

बाद-बिबाद-स्वाद तजि भजि हरि सरस चरित चित लावहि ।

तुलसिदास भव तरहि, तिहुँ पुर तू पुनीत जस पावहि ॥ 237॥

आपनो हित रावरे सों जो पै सूझै ।

तौ जनु तनुपर अछत सीस सुधि क्यों कबंध ज्यों जूझै ॥

निज अवगुन, गुन राम रावरे लखि सुनि मति मन रूझै [1]।

रहनि कहनि समुझनि तुलसी की को कृपालु बिनु बूझै ॥ 238॥

जाको हरि दृढ़ करि अंग कर्‌यो [2]।

---

[^1] रूझै = रुद्ध होता है, रुकता है।

[^2] अंग कर्‌यो = अंगीकार किया।

सोइ सुसील पुनीत बेदबिद बिद्या-गुननि-भर्‌यो ॥

उतपति पांडु-तयन की करनी सुनि सतपंथ डर्‌यो ।

ते त्रैलोक्य-पूज्य, पावन जस सुनि सुनि लोक तर्‌यो ॥

जो निज धरम बेद-बोधित सो करत न कछु बिसर्‌यो ।

बिनु अवगुन कृकलास [1] कूप-मज्जित [2] कर गहि उधर्‌यो [3]॥

ब्रह्म बिसिख [4] ब्रह्मांड-दहन-छम गर्भ न नृपति [5] जर्‌यो ।

अजर-अमर कुलिसहुँ नाहिंन बध सो पुनि फेन मर्‌यो [6]॥

बिप्र अजामिल अरु सुरपति तें कहा जो नहिं बिगर्‌यो ?

उनको कियो सहाय बहुत, उर को संताप हर्‌यो ॥

गनिका अरु कंदर्प तें जग महँ अघ न करत उबर्‌यो ।

तिनको चरित पवित्र जानि हरि निज हृदि-भवन धर्‌यो ॥

केहि आचरन भलो मानैं प्रभु सो तौ न जानि पर्‌यो ।

---

[^1] कृकलास = गिरगिट।

[^2] कूप-मज्जित = कुएँ में पड़ा हुआ (राजा नृग)।

[^3] उधर्‌यो = उद्धार किया।

[^4] ब्रह्म बिसिख = ब्रह्मास्त्र।

[^5] राजा परीक्षित।

[^6] नमुचि दैत्य को इंद्र ने समुद्र की फेन से मारा था।

तुलसिदास रघुनाथ-कृपा को जोवत पंथ खर्‌यो [1]॥ 239॥

सोइ सुकृती सुचि साँचो जाहि राम तुम रीझे ।
गनिका, गीध, बधिक हरिपुर गए लै करसी [2] प्रयाग कब सीझे ॥
कबहुँ न डग्यो निगम-मग तें पग नृग जग जानि जिते दुख पाए ।
गज धौं कौन दिछित जाके सुमिरत लै सनाभ बाहन तजि धाए ॥
सुर मुनि बिप्र बिहाय बड़े कुल गोकुल जनम गोपगृह लीन्हो ।
बायों दियो [3] बिभव कुरुपति को, भोजन जाइ बिदुर घर कीन्हो ॥
मानत भलहि भलो भगतनि तें, कछुक रीति पारथहि जनाई ।
तुलसी सहज सनेह राम बस और सबै जल की चिकनाई ॥ 240॥

तब तुम मोहूँ से सठनि को हठि गति न देते ।
कैसेहुँ नाम लेहि कोउ पामर सुनि सारद आगे ह्वै लेते ॥
पाप-खानि जिय जानि अजामिल जमगन तमकि तये ताको भे ते [4]।

---

[^1] खर्‌यो = खड़ा खड़ा।

[^2] करसी = कड़े की आग। जंगली कंडो की आग में जल कर मरना बड़ा भारी तप माना जाता था।

[^3] बायों दियो = किनारा खींचा, छोड़ दिया।

[^4] भे = भय।

लियो छुड़ाइ, चले कर मींजत, पीसत दाँत गए रिस-रेते ॥
गौतम-तिय, गज, गीध, बिटप, कपि हैं नाथहिं नीके मालुम जेते ।
तिन्ह के काज साधु समाजु तजि कृपासिंधु तब तब उठि गे ते [1]॥
अजहुँ अधिक आदर येहि द्वारे, पतित पुनीत होत नहिं केते ।
मेरे पासंगहु न पूहिहैं, ह्वै गए, है, होने खल जेते ॥
हौं अबलौं करतूति तिहारिय चितवत हुतो न रावरे चेते ।
अब तुलसी पूतरो बाँधिहै [2] सहि न जात मोपै परिहास एते ॥ 241 ॥

तुम सम दीनबंधु न दीन कोउ मोसम सुनहु नृपति रघुराई ।
मोसम कुटिल-मौलिमनि नहिं जग, तुम सम हरि न हरन कुटिलाई ॥
हौं मन-बचन-कर्म पातक-रत, तुम कृपालु पतितनि-गतिदाई ।
हौं अनाथ प्रभु, तुम अनाथ-हित, चित यहि सुरति कबहुँ नहिं जाई॥
हौं आरत, आरति-नासक तुम, कीरति निगम पुराननि गाई ।
हौं सभीत तुम हरन सकल भय, कारन कवन कृपा बिसराई ?॥
तुम सुखधाम राम स्रम-भंजन, हौं अति दुखित त्रिबिध स्रम पाई ।

---

[^1] गे ते = गए थे

[^2] पूतरो बाँधिहै = भाट लोग जिससे कुछ न पाकर अप्रसन्न होते है उसके नाम का पुतला बनाकर उनकी निंदा करते हुए लिए फिरते है।

यह जिय जानि दास तुलसी कहँ राखहु सरन समुझि प्रभुताई ॥ 242॥

यहै जानि चरनन्हि चित लायो ।

नाहिन नाथ अकारन को हितु तुम समान पुरान स्त्रुति गायो ॥

जननी, जनक, सुत, दार, बंधुजन भए बहुत जहँ जहँ हौं जायो ।

सब स्वारथ हित प्रीति कपट चित, काहू नहिं हरिभजन सिखायो ॥

सुर, मुनि, मनुज, दनुज, अहि, किन्नर मैं तनु-धरि सिर काहि न नायो ।

जरत फिरत त्रयताप पापबस काहु न हरि! करि कृपा जुड़ायो ॥

जतन अनेक किए सुख-कारन हरिपद-बिमुख सदा दुख पायो ।

अब थाक्यो जलहीन नाव ज्यों देखत बिपति-जाल जग छायो ॥

मो कहँ नाथ! बूझिए यह गति सुख-निधान निज पति बिसरायो ।

अब तजि रोष करहु करुना हरि तुलसिदास सरनागत आयो ॥ 243॥

याहि ते मैं हरि! ज्ञान गँवायो ।

परिहरि हृदय-कमल रघुनाथहि बाहर फिरत बिकल भयो धायो ॥

ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद अति मतिहीन मरम नहिं पायो ।

खोजत गिरि, तरु, लता, भूमि, बिल परम सुगंध कहाँ तें आयो ॥

ज्यों सर बिमल बारि परिपूरन, ऊपर कछु सिवार तृन छायो ।

जारत हियो ताहि तजि हौं सठ, चाहत यहि बिधि तृषा बुझायो ॥
ब्यापत त्रिबिध ताप तनु दारुन तापर दुसह दरिद्र सतायो ।
अपनेहि धाम नाम-सुरतरु तजि बिषय-बबूर-बाग मन लायो ॥
तुम सम ज्ञान-निधान, मोहि सम मूढ़ न आन पुराननि गायो ।
तुलसिदास प्रभु यह बिचारि जिय कीजै नाथ उचित मन भायो ॥244॥

मोहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो [1]।
याके लिये सुनहु करुनामय मैं जग जनमि-जनमि दुख रोयो ॥
सीतल मधुर पियूष सहज सुख निकटहि रहत दूरि जन खोयो ।
बहु भाँतिन स्त्रम करत मोहबस, बृथहि मंदमति बारि बिलोयो [2]॥
करम-कीच जिय जानि सानि चित चाहत कुटिल मलहि मल धोयो
तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ फिरि फिरि बिकल अकास निचोयो ॥
तुलसिदास प्रभु कृपा करहु अब मैं निज दोष कछू नहिं गोयो ।
डासत ही गई बीति निसा सब, कबहुँ न नाथ! नींद भरि सोयो ॥ 245॥

लोक बेद हूँ बिदित बात सुनि समुझि ।
मोह-मोहित बिकल मति थिति न लहति ।

[^1] बिगोयो = बिगाड़ा, नष्ट किया।

[^2] बिलोयो = मथा।

छोटे बड़े, खोटे खरे, मोटेऊ दूबरे,

राम! रावरे निबाहे सबही की निबहति ॥

होती जो आपने बस रहती एकही रस

दूनी न हरख सोक सांसति सहति ।

चहतो जो जोई जोई लहतो सो सोई सोई,

केहू भाँति काहू की न लालसा रहति ॥

करम काल सुभाव गुन दोष जीव जग माया

तें सो सभय भौंह चकित चहति ।

ईसन, दिगीसनि, जोगीसनि, मुनीसनि हूँ,

छोड़ति छोड़ाये तें, गहाये तें गहति ॥

सतरंज को सो राज [1], काठ को सबै समाज,

महाराज बाजी रची प्रथम न हति ।

तुलसी प्रभु के हाथ हारिबो जीतिबो नाथ!

बहु बेष बहु मुख सारदा कहति ॥ 246॥

---

[^1] राज = राजा।

राम जपु, जीह! जानि, प्रीति सों प्रतीत मानि,
          राम नाम जपे जैहै जिय की जरनि ।
रामनाम सों रहनि, रामनाम की कहनि,
          कुटिल कलि-मल-सोक संकट-हरनि ॥

रामनाम को प्रभाउ पूजियत गनराउ,
          कियो न दुराउ कही आपनी करनि ।
भव-सागर को सेतु, कासी हूँ सुगति हेतु,
          जपति सारद संभु सहित घरनि ॥

बालमीकि ब्याध हे अगाध-अपराध-निधि,
          मरा मरा जपे पूजे मुनि अमरनि ।
रोक्यो बिंध्य, सोख्यो सिंधु घटजहुँ नाम-बल,
          हार्‌यो हिय, खारो भयो भूसुर-डरनि ॥

नाम-महिमा अपार सेष सुक बार बार,
          मति-अनुसार बुध बेद हूँ बरनि ।
नामरति-कामधेनु तुलसी को कामतरु,
          रामनाम है बिमोह-तिमिर-तरनि ॥ 247॥

पाहि पाहि! राम पाहि! रामभद्र रामचंद्र

सुजस स्रवन सुनि आयो हौं सरन ।

दीनबंधु! दीनता-दरिद्र-दाह-दोष-दुख

दारुन-दुसह-दर [1] दरप-हरन ॥

जब जब जग-जाल ब्याकुल करम काल

सब खल भूप भए भूतल-भरन [2]।

तब तब तनु धरि, भूमि-भार दूरि करि

थापे मुनि सुर साधु आस्रम बरन ॥

बेद लोक सब साखी, काहू की रती [3] न राखी,

रावन की बंदि लागे अमर मरन ।

ओक दै बिसोक किए लोकपति लोकनाथ,

रामराज भयो धरम चारिहु चरन ॥

---

[^1] दर = डर।

[^2] भूतल-भरन = पृथ्वी के भार।

[^3] रती = तेज, कांति।

सिला, गुह, गीध, कपि, भील, भालु, रातिचर
ख्याल ही कृपालु कीन्हे तारन-तरन ।
पील-उद्धरन सीलसिंधु ढील देखियत
तुलसी पै चाहत गलानि ही गरन ॥ 248 ॥

भली भाँति पहिचाने-जाने साहिब जहाँ लौं जग
जूड़े होत थोरे ही थोरे ही गरम ।
प्रीति न प्रवीन, नीतिहीन, रीति के मलीन,
मायाधीन सब किए कालहू करम ॥

दानव दनुज बड़े महामूढ़ मूड़ चढ़े,
जीते लोकनाथ नाथ-बल निभरम [1]।
रीझि-रीझि दिए बर खीझी खीझि घाले घर,
आपने निवाजे की न काहू को सरम ॥

सेवा सावधान तू सुजान समरथ साँचो
सद्‌गुन धाम राम पावन परम ।
सुरुख सुमुख एकरस एकरूप तोहि

[^1] निभरम = निःशंक।

बिदित बिसेषि घटघट के मरम ॥

तो सो नतपाल न कृपाल,न कँगाल मो सो,

दया में बसत देव सकल धरम ।

राम कामतरु-छाँह चाहै रुचि मन माहँ,

तुलसी बिकल बलि कलि कुधरम ॥ 249 ॥

तौं हौं बार बार प्रभुहि पुकारिकै खिझावतो न

जो पै मोको होतो कहूँ ठाकुर-ठहरु ।

आलसी-अभागे मोसे तैं कृपालु पाले-पोसे,

राजा मेरे राजाराम,अवध सहरु ॥

सेये न दिगीस, न दिनेस, न गनेस गौरी,

हित कै न माने बिधि हरिउ न हरु ।

रामनाम ही सों जोग छेम [1], नेम प्रेम-पन,

सुधा सो भरोसो एहु, दूसरो जहरु ॥

समाचार साथ के अनाथ-नाथ! कासों कहौं,

---

[^1] जोग छेम = योग्य छेम, प्राप्ति और रक्षा।

नाथ ही के हाथ सब चोरऊ पहरु ।
निज काज, सुरकाज,आरत के काज,राज!
बूझिए बिलंब कहा कहूँ न गहरु [1]॥

रीति सुनि रावरी प्रतीति प्रीति रावरे सों,
डरत हौं देखि कलिकाल को कहरु ।
कहेही बनैगी, कै कहाए बलि जाउँ,राम!
'तुलसी तू मेरो हारि हिये न हहरु' ॥ 250॥

राम रावरो सुभाउ, गुन सील महिमा प्रभाउ,
जान्यो हर हनुमान लखन भरत ।
जिन्हके हिये-सुथल राम-प्रेम-सुरतरु,
लसत सरस सुख फूलत फरत ॥

आप माने स्वामी कै सखा सुभाइ भाइ पति
ते सनेह-सावधान रहत, डरत ।
साहिब-सेवक-रीति प्रीति-परिमिति नीति
नेम को निबाह एक टेक न टरत ॥

[^1] गहरु = विलंब, देर।

सुक सनकादि प्रहलाद नारदादि कहैं

राम की भगति बड़ी बिरति-निरत [1]।

जाने बिनु भगति न, जानिबो तिहारे हाथ

समुझि सयाने नाथ! पगनि परत ॥

छ-मत [2] बिमत [3] न पुरान मत, एक मत

नेति नेति नेति नित निगम करत ।

औरनि की कहा चली? एकै बात भलै भली

राम-नाम लिए तुलसी हूँ से तरत ॥ 251 ॥

बाप आपने करत मेरी घनी घटि गई ।

लालची लबार की सुधारिये बारक, बलि,

रावरी भलाई सबही की भली भई ॥

रोगबस तनु, कुमनोरथ मलिन मन,

---

[^1] बिरति-निरत = विषयों से विरक्ति में तत्पर होने से।

[^2] छ मत = छ दर्शनों के मत।

[^3] बिमत = विरुद्ध मत।

पर-अपबाद मिथ्या-बाद बानी हई ।
साधन की ऐसी बिधि, साधन बिना न सिधि,
बिगरी बनावै कृपानिधि की कृपा नई ॥

पतित-पावन, हित आरत अनाथनि को,
निराधार को अधार दीनबंधु दई ।
इन्हमें न एकौ भयो, बूझि न जूझ्यो न जयो,
ताहि तें त्रिताप तयो लुनियत बई ॥

स्वाँग सूधो साधु को, कुचालि कलि तें अधिक,
परलोक फीकी मति लोक-रंग-रई ।
बड़े कुसमाज राज आजुलौं जो पाए दिन,
महाराज कैहूँ भाँति नाम-ओट लई ॥

रामनाम को प्रताप जानियत नीके आप,
मोको गति दूसरी न बिधि निरमई ।
खीझिबे लायक करतब कोटि कोटि कटु,
रीझिबे लायक तुलसी की निलजई ॥ 252 ॥

राम! राखिये सरन, राखि आए सब दिन ।

बिदित त्रिलोक तिहुँ काल न दयाल दूजो,

आरत-प्रनत-पाल को है प्रभु बिन? ॥

लाले पाले पोषे तोषे आलसी अभागी अघी,

नाथ पै अनाथनि सों भए न उरिन ।

स्वामी समरथ ऐसो हौं तिहारो जैसो तैसो,

काल-चाल हेरि होति हिये घनी घिन ॥

खीझि-रीझि बिहँसि अनख क्यों हूँ एक बार,

'तुलसी तू मेरो' बलि, कहियत किन?

जाहिं सूल निरमूल होहिं सुख अनुकूल,

महाराज राम रावरी सौं तेहि छिन ॥ 253॥

राम रावरो नाम मेरो मातु-पितु है ।

सुजन सनेही गुरु साहिब सखा-सुहृद,

राम-नाम प्रेम-पन अबिचल बितु है ॥

सतकोटि चरित अपार दयानिधि! मथि,

लियो काढ़ि वामदेव नाम-घृतु है ।

नाम को भरोसो बल, चारिहूँ फल को फल,

सुमिरिए छाँड़ि छल, भलो क्रतु [1] है ॥

स्वारथ-साधक परमारथ-दायक नाम,

राम-नाम सारिखो न और हितु है ।

तुलसी सुभाव कही, साँचिहै परैगी सही,

सीतानाथ-नाम नित चित हूँ को चितु है ॥ 254॥

राम! रावरो नाम साधु-सुरतरु है ।

सुमिरे त्रिबिध घाम हरत, पूरत काम,

सकल सुकृत सरसिज को सरु है ॥

लाभहु को लाभ, सुखहू को सुख सरबस,

पतित-पावन, डरहू को डरु है ।

नीचे हू को, ऊँचे हू को, रंक हू को राव हू को,

सुलभ सुखद आपनो-सो घरु है ॥

---

[^1] क्रतु = यज्ञ।

बेद हू, पुरान हू, पुरारि हू पुकारि कह्यो,

नाम-प्रेम चारि फलहू को फरु है ।

ऐसे राम-नाम सों न प्रीति न प्रतीति मन,

मेरे जान जानिबो सोई नर खरु है ॥

नाम-सो न मातु पितु मीत हित बंधु गुरु,

साहिब सुधा सुसील सुधाकरु है ।

नाम सों निबाह नेहु दीन को दयालु देहु,

दास तुलसी को, बलि, बड़ो बरु [1] है ॥ 255॥

कहे बिनु रह्यो न परत, कहे राम! रस न रहत ।

तुम से सुसाहिब की ओट जन खोटो खरो,

काल की करम की कुसाँसति सहत ॥

करत बिचार सार पैयत न कहूँ कछु,

सकल बड़ाई सब कहाँ तें लहत ?

नाथ की महिमा सुनि समुझि आपनि ओर,

हेरि हारि कै हहरि हृदय दहत ॥

---

[^1] बरु = बल।

सखा न, सुसेवक न [1], सुतिय न, प्रभु, आप,

माय-बाप तुही साँचो तुलसी कहत ।

मेरी तौ थोरी है, सुधरैगी बिगरियौ,

बलि, राम रावरी सौं [2] रही रावरी [3] चहत ॥ 256॥

दीनबंधु! दूरि किए दीन को न दूसरी सरन ।

आपको भले हैं सब, आपने को कोऊ कहूँ,

सबको भलो है, राम! रावरो चरन ॥

पाहन पसू पतंग कोल भील निसिचर,

काँच तें कृपानिधान किए सुबरन ।

दंडक-पुहुमि पाँय-परस पुनीत भई,

उकठे बिटप लागे फूलन-फरन ॥

पतित-पावन नाम, बाम हू दाहिनो, देव,

---

[^1] सखा न, सुसेवक न = सखा कहिए तो... सेवक कहिए तो आप ही है।

[^2] सौं = कसम।

[^3] रही रावरी = आपकी बात (साख, मर्यादा) रहे यही चाहता हूँ।

दुनी न दुसह-दुख-दूषन-दरन ।
सीलसिंधु! तोसों ऊँची नीचियौ कहत सोभा,
तोसों तुही तुलसी को आरति-हरन ॥ 257॥

जानि पहिचानि मैं बिसारे हौं कृपानिधान,
एतो मान ढीठ हौं उलटि देत खोरि हौं ।
करत जतन जासों जोरिबे को जोगीजन,
तासों क्योंहू जुरी, सो अभागो बैठो तोरि हौं ॥

मोसे दोस-कोस को भुवन-कोस दूसरो न,
आपनी समुझि सूझि आयो टकटोरि हौं ।
गाड़ी के स्वान की नाईं माया मोह की बड़ाई
छिनहिं तजत, छिन भजत बहोरि हौं ॥

बड़ो साईं-द्रोही, न बराबरी मेरी को कोऊ,
नाथ की सपथ किए कहत करोरि हौं ।
दूरि कीजै द्वार तें लबार लालची प्रपंची,
सुधा सो सलिल सूकरी ज्यों गहडोरिहौं [1]॥

---

[^1] गहडोरिहौं = मथ कर गँदला कर दूँगा।

राखिए नीके सुधारि, नीच को डारिए मारि,

दुहूँ ओर की बिचारि अब न निहोरिहौं ।

तुलसी कही है साँची रेख बार बार खाँची,

ढील किए नाम-महिमा की नाव बोरिहौं ॥ 258॥

रावरी सुधारी जो बिगारी बिगरैगी मेरी, ।

कहौं, बलि, बेद की न लोक कहा कहैगो ?

प्रभु को उदास-भाव जन को पाप-प्रभाव

दुहू भाँति दीनबन्धु ! दीन दुख दहैगो ॥

मैं तो दियो छाती पबि,लयो कलिकाल दबि,

साँसति सहत परबस को न सहैगो ?

बाँकी बिरुदावली बनैगी पाले ही कृपालु !

अंत मेरो हाल हेरि यौं न मन रहैगो ॥

करमी, धरमी, साधु, सेवक, बिरत, रत,

आपनी भलाई थल कहाँ कौन लहैगो ?

तेरे मुँह फेरे मोसे कायर कपूत कूर,

लटे [1] लटपटेनि [2] को कौन परिगहैगो ? ॥

काल पाय फिरत दसा दयालु ! सब ही की,

तोहि बिनु मोहि कबहूँ न कोऊ चहैगो ।

बचन करम हिये कहौं राम ! सौंह किए,

तुलसी पै नाथ के निबाहे निबहैगो ॥ 259॥

साहिब उदास भए दास खास खीस होत [3],

मेरी कहा चली ? हौं बजाय जाय रह्यो हौं [4]।

लोक में न ठाउँ, परलोक को भरोसो कौन ?

हौं तो बलि जाउँ रामनाम ही ते लह्यो हौं ॥

करम सुभाव काम कोह लोभ मोह

ग्राह, अति गहनि गरीबी गाढ़े गह्यो हौं ।

छोरिबे को महाराज, बाँधिबे को कोटि भट,

---

[^1] लटे = शिथिल, नीचे गिरे, पतित।

[^2] लटपटे = गिरते पड़ते।

[^3] खीस होत = नष्ट होते है।

[^4] जाय रह्यो हौं = नष्ट हो रहा हूँ।

पाहि! प्रभु पाहि! तिहुँ ताप पाप दह्यो हौं ॥

रीझि बूझि सबकी, प्रतीति प्रीति एही द्वार,
दूध को जर्‌यो पियत फूँकि फूँकि मह्यो [1] हौं ।
रटत-रटत लट्यो, जाति पाँति भाँति [2] घट्यो,
जूठनि को लालची चहौं न दूध नह्यो [3] हौं ॥

अनत चह्यो न भलो, सुपथ सुचाल चल्यो,
नीके जिय जानि इहाँ भलो अनचह्यो हौं ।
तुलसी समुझि समुझायो मन बार बार,
अपनो सो नाथ हू सों कहि निरबह्यो हौं ॥ 260 ॥

मेरी न बनै बनाये मेरे कोटि कलप लौं,
राम ! रावरे बनाए बनै पल-पाउ मैं ।
निपट सयाने हौ कृपानिधान ! कहा कहौं ?
लिये बेर बदलि अमोल-मनि-आउ मैं ॥

---

[^1] मह्यो = मट्ठा।

[^2] भाँति = मर्यादा, चाल।

[^3] नह्यो न चहौं = नहाना नहीं चाहता।

मानस मलीन, करतब कलिमल-पीन,

जीह हू न जप्यो नाम, बक्यो आउ बाउ मैं ।

कुपथ कुचाल चल्यो, भयो न भूलि हूँ भलो,

बाल-दसा हूँ न खेल्यो खेलत सुदाउँ मैं ॥

देखा-देखी दंभ तें, कि संग तें भई भलाई,

प्रकटि जनाई, कियो दुरित-दुराउ मैं ।

राग रोष द्वेष पोषे, गोगन समेत मन,

इनकी भगति कीन्ही इनही को भाउ मैं ॥

आगिली पाछिली, अबहूँ की अनुमान ही तें,

बूझियत गति, कछु कीन्हों तो न काउ [1] मैं ।

जग कहै राम की प्रतीति प्रीति तुलसी हूँ,

झूठे-साँचे आसरो साहब रघुराउ मैं ॥ 261 ॥

कह्यो न परत, बिनु कहे न रह्यो परत,

बड़ो सुख कहत बड़े सों, बलि, दीनता ।

---

[^1] काऊ = कमी।

प्रभु की बड़ाई बड़ी,आपनी छोटाई छोटी,

प्रभु की पुनीतता, आपनी पाप-पीनता ॥

दुहूँ ओर समुझि सकुचि सहमत मन,

सनमुख होत सुनि स्वामी समीचीनता ।

नाथ-गुनगाथ गाए, हाथ जोरि माथ नाए,

नीचऊ निवाजे प्रीति रीति की प्रबीनता ॥

एही दरबार है गरब तें सरब-हानि,

लाभ जोग-छेम को गरीबी मिसकीनता [1]।

मोटो दसकंध सो न दूबरो बिभीषण सो,

बूझि परी रावरे की प्रेम-पराधीनता ॥

यहाँ की सयानप, अयानप सहस सम,

सूधौ सत भाय कहे मिटति मलीनता ।

गीध सिला सबरी की सुधि सब दिन किए,

होइगी न साई सों सनेह-हित-हीनता ॥

---

[^1] मिसकीनता = [अ. मिसकीन] नम्रता।

सकल कामना देत नाम तेरो कामतरु,

सुमिरत होत कलिमल-छल-छीनता ।

करुनानिधान बरदान तुलसी चहत,

सीतापति-भक्ति-सुरसरि-नीर-मीनता ॥ 262 ॥

नाथ नीके कै जानिबी ठीक जन-जीय की ।

रावरो भरोसो नाह कैसो प्रेम-नेम लियो,

रुचिर रहनि रुचि मति गति तीय की ॥

दुकृत सुकृत बस सब ही सों संग पर्‌यो,

परखी पराई गति, आपने हूँ कीय की [1]।

मेरे भले को गोसाई पोच को न सोच संक,

हौं किए कहौं सौंह साँची सीय-पीय की ॥

ज्ञानहूँ गिरा के स्वामी बाहर-भीतर-जामी,

यहाँ क्यों दुरैगी बात मुखकी औ हीय की ।

तुलसी तिहारो, तुमहीं तें तुलसी के हित,

राखि कहौं हौं तो जो पै ह्वैहौ माखी घीय की ॥ 263॥

---

[^1] कीय की = किए की, करनी की।

मेरो कह्यो सुनि पुनि भावै तोहि करि सो ।
चारिहूँ बिलोचन बिलोकु तू तिलोक महँ,
तेरो तिहुँ काल कहु को है हितू हरि सो ॥

नए नए नेह अनुभए देह-गेह बसि,
परखे प्रपंची प्रेम परत उघरि सो ।
सुहृद-समाज दगाबाजि ही को सौदा सूत,
जब जाको काज तब सिलै पाँय परि सो ॥

बिबुध सयाने पहिचाने कैधौं नाहीं नीके
देत एक-गुन लेत कोटि-गुन भरि सो ।
करम धरम स्रम-फल रघुबर बिनु,
राख को सो होम है, ऊसर कैसो बरिसो ॥

आदि अंत बीच भलो, भलो करै सबही को,
जाको जस लोक-बेद रह्यो है बगरि सो ।
सीतापति सारिखो न साहिब सील-निधान,
कैसे कल परै सठ बैठो सो बिसरि सो ॥

जीव को जीवन-प्रान, प्रान को परम हित
प्रीतम पुनीत कृत नीचन निदरि सो ।
तुलसी तोको कृपालु जो कियो कोसलपाल
चित्रकूट को चरित्र चेतु चित करि सो ॥ 264 ॥

तन सुचि, मन रुचि, मुख कहौं जन हौं सिय-पी को ।
केहि अभाग जान्यो नहीं जो न होइ नाथ सों नातो नेह न नीको ॥
जल चाहत पावक लहौं, बिष होत अमी को ।
कलि कुचाल संतनि कही सोइ सही, मोहि कछु फहम न तरनि [1] तमी [2] को ॥
जानि अंध अंजन कहै बन-बाघिनी-घी को ।
सुनि उपचार बिकार को सुबिचार करौं जब तब बुधि बल हरै ही को ॥
प्रभु सों कहत सकुचात हौं, परौं जनि फिरि फीको ।
निकट बोलि बलि बरजिये परिहरै
ख्याल अब तुलसिदास जड़ जीको॥265॥

[^1] तरनि = सूर्य।

[^2] तमी = रात्रि।

ज्यों ज्यों निकट भयो चहौं कृपालु त्यों त्यों दूरि पर्‌यो हौं ।
तुम चहुँ जुग रस एक राम हौं हूँ रावरो जदपि अघ अवगुननि भर्‌यो हौं ॥
बीच पाइ एहि नीच बीच ही छरनि छर्‌यो हौं ।
हौं सुबरन कुबरन कियो, नृप तें भिखारि करि, सुमति तें कुमति कर्‌यो हौं ॥
अगनित गिरि-कानन फिर्‌यो, बिनु आगि जर्‌यो हौं ।
चित्रकूट गए हौं लखि कलि की कुचाल सब, अब अपडरनि डर्‌यो हौं ॥
माथ नाइ नाथ सों कहौं, हात जोरि खर्‌यो हौं ।
चीन्हों चोर जिय मारिहैं तुलसी सो कथा सुनि
प्रभु सों गुदरि निबर्‌यो हौं ॥ 266॥

पन करि हौं हठि आजु तें राम द्वार पर्‌यो हौं ।
'तू मेरो' यह बिन कहे उठिहौ न जनम भरि, प्रभु की सौ करि निर्‌यो हौं ॥
दै दै धक्का जमभट थके, टारे न टर्‌यो हौं ।
उदर दुसह साँसति सही बहु बार जनमि जग नरक निदरि निकर्‌यो हौं ॥
हौं मचला [1] लै छाड़िहौं जेहि लागि अर्‌यो हौं ।
तुम दयालु बनिहै दिए बलि, बिलंब न कीजिए जात गलानि गर्‌यो हौं ॥
प्रगट कहत जो सकुचिए, अपराध भर्‌यो हौं ।

---

[^1] मचला = मचलनेवाला हठी।

तौ मन में अपनाइए तुलसीहिं कृपा करि, कलि बिलोकि हहर्यो हौं ॥267॥

तुम अपनायो तब जानिहौं जब मन फिरि परिहै ।

जेहि सुभाव बिषयनि लग्यो तेहि सहज नाथ सो नेह छाँड़ि छल करिहै ॥

सुत की प्रीति, प्रतीति मीत की नृप ज्यों उर डरि है ।

अपनो सो स्वारथ स्वामि सों चहुँ बिधि चातक ज्यों एक टेकते नहिं टरिहै॥

हरषिहै न अति आदरे, निदरे न जरि मरिहै ।

हानि लाभ दुख सुख सबै सम चित हित अनहित कलि-कुचाल परिहरिहै ॥

प्रभु-गुन सुनि मन हरषिहै, नीर नयननि ढरिहै ।

तुलसिदास भयो राम को बिस्वास

प्रेम लखि आनँद उमगि उर भरिहै ॥268॥

राम कबहुँ प्रिय लागिहौ जैसे नीर मीन को?

सुख जीवन ज्यों जीव को, मनि ज्यों फनि को,

हित ज्यों धन लोभ-लीन को॥

ज्यों सुभाय प्रिय लगति नागरी नागर नवीन को ।

त्यों मेरे मन लालसा करिए करुनाकर पावन प्रेम पीन को ॥

मनसा को दाता कहैं स्रुति प्रभु प्रबीन को ।

तुलसिदास को भावतो, बलि जाउँ, दयानिधि दीजै दान दीन को ॥ 269॥

कबहुँ कृपा करि रघुबीर मोहू चितैहो ।

भलो बुरो जन आपनो जिय जानि दयानिधि! अवगुन अमित बितैहो॥

जनम जनम हौं मन जित्यो, अब मोहि जितैहो ।

हौं सनाथ ह्वैहौ सही, तुमहूँ अनाथपति, जो लघुतहि न भितैहो [1]॥

बिनय करौं अपभयहु तें [2] तुम्ह परम हितै हो ।

तुलसिदास कासों कहै तुमही सब मेरे प्रभु गुरु मातु पितै हो ॥ 270॥

जैसो हौं तैसो राम! रावरो जन जनि परिहरिए ।

कृपासिंधु कोसलधनी सरनागत-पालक, ढरनि आपनी ढरिए ॥

हौं तौ बिगरायल और को [3], बिगरो न बिगरिए [4]।

तुम सुधारि आए सदा सबकी सब ही बिधि, अब मेरियो सुधरिए [5]॥

जग हँसिहै मेरे संग्रहे, कत इहि डर डरिए ?

---

[^1] भितैहो = डरोगे।

[^2] अपभयहु तें = अपने ही डर से।

[^3] और को = हद दरजे का।

[^4] बिगरिए = बिगाड़िए।

[^5] सुधरिए = सुधारिए।

कपि केवट कीन्हे सखा जेहि सील सरल चित तेहि सुभाव अनुसरिए ॥

अपराधी तउ आपनो तुलसी न बिसरिए ।

टूटियो बाँह गरे परै, फूटैहुँ बिलोचन पीर होत हित करिए ॥ 271 ॥

तुम जनि मन मैलो करो लोचन जनि फेरो ।

सुनहु राम! बिनु रावरे लोकहुँ परलोकहुँ कोउ न कहूँ हितु मेरो ॥

अगुन अलायकु आलसी जानि अधम अनेरो [1]।

स्वारथ के साथिन्ह तज्यो तिजरा कोसो टोटक, औचट उलटि न हेरो॥

भगतिहीन, बेद-बाहिरो लखि कलिमल घेरो ।

देवनि हूँ देव परिहर्‌यो, अन्याव न तिनको, हौं अपराधी सब केरो ॥

नाम की ओट पेट भरत हौं, पै कहावत चेरो ।

जगत-बिदित बात ह्वै परी समुझिए धौं अपने, लोक कि बेद बड़ेरो ॥

ह्वैहै जब-जब तुमहिं तें तुलसी को भलेरो ।

देव! दिनहूँ दिन बिगरि हैबलि जाउँ, बिलंब किए अपनाइए सबेरो॥272 ॥

तुम तजि हौं कासों कहौं, और को हितु मेरे ?

दीनबंधु सेवक-सखा,आरत अनाथ पर सहज छोह केहि केरे ?॥

---

[^1] अनेरी = व्यर्थ का, निकम्मा।

बहुत पतित भवनिधि तरे बिनु तरि बिनु बेरे ।

कृपा, कोप, सति भाय हूँ धोखे हुँ, तिरछेहूँ,राम तिहारेहि हेरे ॥

जो चितवनि सौंधी [1] लगै चितइए सबेरे ।

तुलसिदास अपनाइए कीजै न ढील अब जीवन-अवधि अति नेरे ॥ 273॥

जाउँ कहाँ, ठौर है कहाँ देव! दुखित-दीन को ?

को कृपालु स्वामी सारिखो, राखै सरनागत सब अंग बल-बिहीन को ॥

गनिहिं गुनिहिं साहिब लहै सेवा समीचीन को ।

अधन, अगुन, आलसिन को पालिबो फबि आयो रघुनायक नवीन को ॥

मुख कै कहा कहौं? बिदित है जी की प्रभु प्रबीन को ।

तिहूँ काल, तिहुँ लोक में, एक टेक रावरी तुलसी से मन-मलीन को ॥274॥

द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद, परि पाहूँ ।

हैं दयालु दुनि [2] दस दिसा दुख-दोष-दलन-छम, कियो न संभाषन काहूँ ॥

तनु-जन्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यों मातु-पिता हूँ ।

काहे को रोस दोस काहि धौं मेरे ही अभाग मोसों सकुचत छुइ सब छाहूँ॥

---

[^1] सौंधी = रुचिर, अच्छी।

[^2] दुनि = दुनिया।

दुखित देखि संतन कह्यो सोचै जनि मन माहूँ ।

तोसे पसु पाँवर पातकी परिहरे न सरन गए रघुबर ओर-निबाहूँ [1]॥

तुलसी तिहारो भए भयो सुखी प्रीती प्रतीति बिनाहूँ ।

नाम की महिमा सील नाथ को मेरो भलो

बिलोकि अब तें सकुचाहु सिहाहूँ ॥ 275 ॥

कहा न कियो, कहाँ न गयो, सीस काहि न नायो ?

राम रावरे बिन भये जन जनमि जनमि जग दुख दसहूँ दिसि पायो ॥

आस-बिबस खास दास ह्वै नीच प्रभुनि जनायो ।

हाहा करि दीनता कही द्वार द्वार बार बार, परी न छार मुँह बायो ॥

असन बसन बिनु बावरो जहँ तहँ उठि धायो ।

महिमा मान प्रियप्रान ते तजि खोलि खलनि आगे खिनु खिनु पेट खलायो॥

नाथ हाथ कछु नाहि लग्यो लालच ललचायो ।

साँच कहौं नाच कौन सो जो न मोहि लोभ लघु हौं निलज नचायो ॥

स्रवन नयन मन मग लगे सब थलपति [2] तायो [3]।

---

[^1] ओर-निबाहू = अंत तक निर्वाह करनेवाला।

[^2] थलपति = राजा।

[^3] तायो = जाँचा।

मूढ़ मारि हिय हारि कै हित हेरि हहरि अब चरन-सरन तकि आयो ॥

दसरथ के समरथ तुही त्रिभुवन जस गायो ।

तुलसी नमत अवलोकिए बलि बाँह-बोल दै बिरुदावली बुलायो ॥ 276॥

रामराय बिनु रावरे मेरे को हितु साँचो ।

स्वामी सहित सब सों कहौं सुनि-गुनि बिसेषि कोउ रेख दूसरी खाँचो ॥

देह-जीव-जोग के सखा मृषा टाँचन [1] टाँचो [2]।

किए बिचार सार कदलि ज्यों मनि कनक संग लघु लसत बीच बिच काँचो॥

बिनय-पत्रिका दीन की, बापु! आपु ही बाँचो ।

हिये हेरि तुलसी लिखी सो सुभाय सही करि बहुरि पूँछिए पाँचो ॥ 277॥

पवन-सुवन, रिपु-दवन, भरत लाल, लखन दीन की ।

निज निज अवसर सुधि किए बलि जाउँ, दास आस पूजिहै खास खीन की॥

राज-द्वार भली सब कहैं साधु समीचीन की ।

सुकृत सुजस साहिब कृपा स्वारथ परमारथ गति भए गति-बिहीन की

समय सँभारि सुधारिबी तुलसी मलीन की ।

प्रीति रीति समुझाइबी नतपाल कृपालुहि परमिति पराधीन की ॥ 278॥

---

[^1] टाँचन = टाँको या डोमों से।

[^2] टाँचो = टँके हुए।

मारुति मन रुचि भरत की लखि लखन कही है ।

कलि-कालहुँ नाथ नाम सों प्रतीति प्रीति एक किंकर की निबही है॥

सकल सभा सुनि लै उठी [1], जानी रीति रही है ।

कृपा गरीबनिवाज की, देखत गरीब को साहब बाँह गही है ॥

बिहँसि राम कह्यो सत्य है सुधि मैंहूँ लही है ।

मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की, परी रघुनाथ सही है॥279॥

॥ श्रीसीतारामार्पणमस्तु ॥

॥ इतिश्री ॥

[^1] ले उठी = वही बात कहने लगी।